॥ ओ३म् ॥

यथार्थ प्रकाश तीनों भाग

का

युक्ति युक्त एवं सर्वाङ्गपूर्ण उत्तर

राधा स्वामी मत

और

वैदिक धर्म

लेखक:—

लक्ष्मण आर्योपदेशक

प्रकाशक

वैदिक पुस्तकालय आर्यसमाज बिरला लाइन्स देहली

प्रथमवार] [मूल्य १)

विषय-सूची

अध्याय १

अमृत या वैदिक सिद्धान्तों की मुञ्जार

अध्याय २—विष या ग़लत बयानियों की भरमार

अध्याय ३—वेदादि सत्य शस्त्रों का तिरस्कार

अध्याय ४—महर्षि दयानंद पर एतराज़ों की बौछाड़

अध्याय ५—राधास्वामी शिक्षा सार

भूमिका

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

वेद मुक़द्दस एक परमेश्वर को मानने जानने और पानेको शिक्षा देता है। वह परमेश्वर महान से महान, सर्वज्ञ, ज्ञान स्वरूप तथा अन्धकार से परे है। मनुष्य के लिये मोक्ष प्राप्ति का केवल मात्र साधन उसी का ज्ञान है। और कोई साधन न है न हो सकता है जिस पर इस अन्तिम उद्देश्य की पूर्तीके लिये भरोसा किया जा सके। परन्तु राधास्वामी मत पहिला मत है जो उस परम पुरुष से भिन्न तथा उससे कई लोक ऊपर राधास्वामी नाम की कल्पित सत्ता को पेश करता है। यह सारे आस्तिक मतों की दृष्टि में प्रत्यक्ष रूप से असत्य है तो भी इस मत के वर्तमान आचार्य्य ने यथार्थ प्रकाश नाम की पुस्तकप्रकाशित करके उस परम पुरुष के विरुद्ध जहाद किया है। तथा ईश्वर को मानने वाले सभी मतों को नीचा दिखाने के लिये खास क़दम उठाया है। इस मत के प्रवर्तक को साहस नहीं था कि अपनी शिक्षा सब साधारण के सामने रक्खे, उसने तो सार वचन की भूमिका में ही लिख दिया था कि अन्य मतावलम्बियों को यह शिक्षा न सुनाई जावे। यह खास हिदायत थी कि—"मत गूढ़ छिपाये रहियो"।

इसलामी हदीसों से सात आसमानों की सैर वाला लेख चुराया और अपना रंग चढ़ाया गया और अन्त में लिखा गया कि यह बात हर किसी को सुनाने की नहीं, मुहम्मद, व्यास, वशिष्ठादि का उन ऊपर के लोकों का पता नहीं चला जहां हम पहुँचे हैं। हिन्दू मुसलमान वेद और .कुरान में क़ैद है वह इन लोकों का मानेंगे ही नहीं अतः यह केवल उनको सुनाओ जो यह मानें कि फ़क़ीर और सन्त लोग नबियों और ऋषियों से आगे पहुँचे हैं और .खुदा और ईश्वर दोनों को सन्तों ने पैदा किया है।

इस भाव के विरुद्ध वर्तमान आचार्य्य के साहस का श्रेय उस आर्य्य सामाजिक संस्था को है, जिसमें आपने शिक्षा प्राप्त की तथापि साहब जी महाराज फ़रमाते हैं:—

"चन्द आर्य्य समाजी, सनातन धर्मी तथा अकाली भाई हमारी ख़ामोशी को हमारी इख़लाक़ी कमज़ोरी समझते हैं इसलिये हमें क़लमरानी की ज़रूरत महसूस हुई है" अर्थात् आप फ़ारसी कवि के इस वचन का पालन करते हैं कि—

न बीनी कि चूं गुरबा आज़िज़ शवद
बरारद बचंगाल चश्मे पलंग ॥

(क्या तू नहीं देखता कि बिल्ली जब विवश हो जाती है पंजे से चीते की आंख निकाल डालती है) परन्तु वास्तव में यह सत्य नहीं, राधास्वामी मत की ओर से वेद, .कुरान, बाइबिल तथा राम, कृष्ण, मुहम्मद, मसीह की उस समय घोर निन्दा की गई जब किसी मत को उनके विषय में आलोचनादि का अवसर ही न मिला था। सार वचन में बीसियों बार वेद .कुरान के विरुद्ध शब्द पढ़ कर निश्चय होता है कि इस मत को शान्ति प्रिय समझने वाले लोग केवल मुंह की राम राम सुनते रहे हैं बग़ल वाली कतरनी को वह देख नहीं सके। अतः एक सज्जन के वह शब्द

बहुत रहस्य पूर्ण हैं जो कुछ वर्ष पूर्व उसने हमें सुनाये थे कि—

गुरबए मिस्की अगर परदाशने।
तुख़मे गुजिश्क अज़जहां बरदाशतं॥

(अर्थात् बिल्ली के पर होते तो चिड़ियों का बीज जहान से उठ जाता)।

न केवल सार वचन, यथार्थ प्रकाश से भी इस सज्जन के कथन की पुष्टि होती है और कई लोग कहते हैं कि चेलों, फंडों संस्थाओं आदि से अभिमान युक्त होकर साहब जी महाराज आपे से बाहिर हो रहे हैं अर्थात् बिल्ली को पर मिल गये हैं अतः अब चिड़ियों की ख़ैर नहीं। पर इसके विपरीत दूसरा विचार यह है कि साहब जी का साहस कीड़े के पर निकलने की लोकोक्ति के अनुसार स्वयं राधास्वामी मत के लिये हानि कारक होगा। तथापि हम इस प्रकार के सारे विचारों को अनावश्यक समझते हैं विशेषतः आर्य्यों का यही कर्तव्य है कि साहब जी के इस साहस का शुभ फल सर्व साधारण को मिलने का यत्न करें। उचित रीति से विचार परिवर्तन होना उन्नति का सर्वोच्च साधन है। इसी से बुद्धि प्रकाशित होकर आर्य्यों और राधास्वामियों का मतभेद दूर हो सकता और सच्चा प्रेम बढ़ सकता है। वर्तमान काल में ऐसे ग्रन्थों के विरुद्ध प्रस्तावों द्वारा जो मांमिक भावों को ठेस पहुँचाने का रोना रोया जाता है, हमें हर्ष है ऐसी कोई चेष्टा आर्य्यों ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में नहीं की अन्यथा संभव था हमें उत्तर लिखने का अवसर ही न मिलता।

यथार्थ प्रकाश की लेख शैली प्रायः निर्दोष है तथापि अनेक स्थानों पर इस गौरव को नष्ट भी किया गया है विपक्षियों के लेख को "बे लगाम दरीदा दहनी" ही नहीं कहा गया, महर्षि दयानन्द

की शान में ऐसे विचारों तथा शब्दों का प्रयोग किया है कि यथाथ प्रकाश पर समालाचना और साहब जी के गुण गान करते हुये सम्पादक वतन को भी ६ अगस्त, १६३५ के परचे में आप के व्यवहार को दोप-युक्त क़रार देने पर बाधित होना पड़ा है। महर्षि दयानन्द ही क्या आदिकाल के पवित्रतम ऋषियों की शान में भी आपने संगीन जुर्म अर्थात घोर अनर्थ किया है। वेद को अनीश्वरोक्त बताने के लिये आपने आदिकाल के विषय में एक बड़ा लम्बा लेख अपने मन से घड़कर लिखा है, और कुछ वाक्य ऐसे निराधार तथा दिल दुखाने वाले लिखे हैं कि आपकी लेख सम्बन्धी सारी संजीन्दगी केवल एक ढोंग मात्र मालूम होती है। आप लिखते हैं—

"यज्ञ की तय्यारी होती है सब लोग पुरोहित जी के मन्शा के बमूजिब इन्तज़ाम करते हैं जो जो चीज़ें पुरोहित जी अपने लिये कारआमद समझते हैं उन सब के नमूने देवताओं की नज़र किये जाते हैं, एक बैल की भी कुरबानी की जाती है उसका गोश्त नज़रे आतिश किया जाता है और बाक़ी बतौर प्रशाद तकसाम होता है"। (भाग ३० पृष्ठ २३२)

कई सज्जन कहेंगे कि याज्ञिक लोग पशु बलि देते रहे हैं तब इन शब्दों में विशेष दोप क्या है ? परन्तु स्मरण रहे कि याज्ञिक लोगों का यह व्यवहार बहुत अर्वाचीन काल में हुआ और वह भी बाममार्गादि से लोगों को बचाने के लिये नीति के तौर पर। परन्तु साहब जी महाराज का संकेत प्राचीन तम ऋषियों की ओर है जिनके विषय में बैल की कुरबानी तो कहां किसी तुच्छ से तुच्छ प्राणी के लिये भी हिंसा का भाव आजतक किसी ने ज़ाहिर नहीं किया। ऐसे ही महान् दोप के भा आ छान्दोग्योपनिषद

प्रपाठक २—खण्ड १ वाले प्रमाण के विषय में हुये हैं। आप उसमें यह शब्द लिखते हैं कि—

'इस उपासना का यह व्रत है कि किसी औरत को न छोड़े।'

साधारणत: इसका यह आशय हो सकता है कि किसी भी स्त्री से विवाह हो उसे न छोड़ा जाय। परन्तु आप इन शब्दों से घोर व्यभिचार वाले अर्थ मिलाते हैं, जब कि वास्तव में आशय अत्यन्त पवित्र तथा गृहस्थ सम्बन्धी अति उत्तम शिक्षा देना उपनिषदकार को अभीष्ट है। इन शब्दों से पूर्व के २ मन्त्र बड़े ही रहस्य पूर्ण हैं। बताया गया है कि आदर्श दम्पति (पति-पत्नि का जोड़ा) वह है जिसके विवाह में हिंकार अर्थात निमन्त्रणादि, प्रस्ताव अर्थात् सभा के सामने प्रतिज्ञादि, तथा प्रेम-पूर्वक आयु भर तक मिलकर रहने का व्यवहार हो। ऐसा ही जोड़ा सच्चा दम्पति है इसी से सदाचार, स्वास्थ्य, पूर्णायु युक्त सन्तान तथा सर्व प्रकार के ऐश्वर्यादि की प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार गागर में सागर की भांति गृहस्थ मर्यादा का वर्णन करके अन्त में इस बात का सार बताया है कि स्त्री का त्याग न हो अथवा किसी स्त्री का अपहरण न हो, जैसा रावण ने सीता का किया। नि:सन्देह इस प्रमाण के विषय में आपने अत्यन्त हानिकारक भ्रन्ति फैलाई है। इसी प्रकार सारी पुस्तक में आपने ऐसी कूट नीति से काम लिया है कि सारे दोष रहित अनुवादों को छोड़कर जिस मन्त्रादि के किसी शब्द का जिस अनुवाद में कोई सन्दिग्ध सा शब्द मिलता है उसे ही लिख देने और अंड-संड टिप्पणी करते है। इस साहस का कारण केवल आपका यह दृढ़ विश्वास है कि आपके सतसंगी न वैदिक साहित्य को जानते, न उसे विचारते और न विचार सकते हैं। इसके अतिरिक्त आप एक और विचित्र दाओं खेलते हैं कि सतसंगियों की चापलूसी करते और उनकी विचार शक्ति,

सत्य प्रियता तथा उनके विचार स्वातन्त्र्य के गुण गाकर उन्हें इस प्रकार की प्रेरणा करते हैं कि वदिक साहित्य वा वदिक धर्मी विद्वानों के वचनों पर वह ध्यान ही न देवें। न केवल यह उन्हें पट्टी पढ़ाते हैं कि कोई मत शब्द अभ्यास का मखौल उड़ावे तो उसे 'नादान', सतगुरु भक्ति के विरुद्ध कहे तो उसे 'कजफ़हम', और राधा स्वामी दयाल के विषय में तर्क करें तो उसे 'बदनसीब' कहकर चुप रहो। ऋषि-मुनि तथा सत्यवादी विद्वान जिस नुमाइशी और झूठी तारीफ को एक स्वर होकर विष की उपमा देते थे, उसी तारीफ की विष प्याले भर भर कर इन सतसंगियों को पिलाई जाती और उनके सच्चे हित चिन्तकों को उनसे यह अपशब्द कहलाये जाते हैं तथापि केवल अपना कर्तव्य केवल यह है कि सत्य को यथार्थ रूप प्रकाश कर दें और राधा स्वामी भाइयों से नम्रता पूर्ण प्रार्थना करें कि वह सत्य प्रिय बनें और सत्य को ग्रहण करें। अब यह उनका काम है कि चाहे हमारे इस परिश्रम से लाभ उठायें, चाहे हमें भी नादान, बदनसीबादि कह दें। हमने प्राय: सारे एतराज़ों का जवाब दे दिया है, हां! उन बातों को छोड़ दिया है जो केवल पुस्तक की ज़खामत बढ़ाने को बिना किसी आवश्यकता के लिखी गई हैं। जैसे पं० विश्वबंधु के विरुद्ध पं० भगवद्दत्त जी से लगाये गये दोष। जब साहब जी महाराज स्वीकार करते हैं कि पं० विश्वबंधु जी को ब्रह्म-विद्यालय से अलग करने का यत्न किया गया है, तो न उनके किसी दोष की ज़िम्मेदारी आर्यसमाज पर है न उन दोषों का उत्तरदायित्व हम पर। प० भगवद्दत्तजी के विरुद्ध महाशय एस० डी० शर्मा का लेख नक़ल किया गया है जिसका निराकरण पं० जी स्वयं पर्याप्त रूप से करचुके हुये हैं। साहब जी महाराज ने पं० जी की पुस्तक History of Vedic Literature के जो उद्धरण दिये हैं उनमें भी इन दोषों का भली भांति उत्तर मौजूद है जैसे एक

इलज़ाम यह है कि पण्डित जी पशु यज्ञ को वैदिक स्वीकार करते हैं । परन्तु पृष्ठ २१ पर पण्डित जी के यह शब्द दिये हैं कि "हमारा निज का इस बलिदान वाले यज्ञ पर विश्वास नहीं"

एक और इलज़ाम यह है कि पण्डित जी स्वर्ग व नर्क को स्थान विशेष मानते हैं, पर पृष्ठ २२ पर आप पण्डित जी के यह शब्द लिखते हैं—'अनेक पदार्थ जो स्वर्ग के नाम से पुकारे गये हैं, सब का भाव यही प्रतीत होता है कि सुख विशेष का ही नाम स्वर्ग लोक है चाहे वह इस पृथ्वी पर भोगा जाय या ईश्वर की इस सृष्टि में से किसी और लोक में, होगा वह लोक भी ऐसा ही, हां इतना सम्भव है कि वहां दुःख कुछ कम हो।"

एक और इलज़ाम यह है कि पण्डित जी मानते हैं कि वह ऋषि जिनपर वेद मन्त्र नाज़िल हुए, महाभारत के समय में हुये परन्तु पृष्ठ २२ पर लिखा है कि ऐतरेय ब्राह्मण ८-२३ के श्लोकों में से वर्तमान दुश्यन्ती, भरत, शतानीक और शकुन्तला नाम स्पष्ट महाभारत काल से कुछ ही पहिले होने वाले व्यक्तियों के हैं।" हमें आश्चर्य है कि प्रतिज्ञा तो थी वेद मन्त्रों के विषय में, और प्रमाण दिया जाता है ऐतरेय ब्राह्मण के श्लोकों का, जब कि ऋग्वेदादि भा० भू० से स्वामी जी की युक्तियां नक़ल करके आपने स्वयं सिद्ध किया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं।

वेद में इतिहास सिद्ध करने के लिए शतपथ और अथर्ववेद के प्रमाण से गाथा और नाराशंसी का ज़िकर किया गया है। पर अथर्व का० १५, सू० ६, मं ११ में केवल सिद्धान्त रूप से गाथादि का शब्द है ऐतिहासिक गाथा के रूप में नहीं, और ब्राह्मण ग्रन्थों में मनुष्यकृत गाथा होने को पण्डित जी तथा समाज स्वीकार करते ही हैं। शतपथ में जो मैत्रेयी तथा कात्यायनी नाम

याज्ञवल्क्य की २ स्त्रियों की कथा है वह भी इतिहास का सम्बन्ध ब्राह्मण ग्रन्थों से ही सिद्ध करती है। मूल वेद में इतिहास होने का एक भी प्रमाण आपने नहीं दिया।

एक और इलज़ाम यह है कि पण्डित जी वर्तमान वेद को अपूर्ण तथा उसमें प्रक्षेप मानते हैं परन्तु पण्डित जी के किसी भी लेख का कोई प्रमाण नहीं है जिसमें वेद विषय में आपने यह शब्द लिखे हों। केवल ऋग्वेदीय लोगों के विषय में कहा है कि सूक्त विशेष के वह १५ मन्त्र मानते हैं जब कि हैं १८, परन्तु किसी शाखा के मानने वाले इस बात पर बाधित नहीं किये जा सकते कि वह किसी सूक्त के पूरे के पूरे मन्त्र ही अपने शाखा ग्रन्थ में रक्खे अतः इस भेद से वेद पर कोई दषो नहीं आ सकता। हां वेद में मन्त्रों की संख्या कम हो तो शाखा ग्रन्थ में मिलावट का दोष माना जा सकता है।

पण्डित नरदेव जी की पुस्तक ऋग्वेदालोचन तथा आर्य्य समाज के इतिहास से स्वामी जी के वेद भाष्य तथा आर्य्यसमाज के आन्तरिक दोषों के सम्बन्ध में कुछ उद्धरण दिये गये हैं। परन्तु इनसे वास्तव में वैदिक धर्म, स्वामी जी के भाष्य वा आर्य्य समाज पर कोई दोष नहीं आता। भाष्य के विषय में पण्डित जी के यह शब्द यथार्थ प्रकाश में ही मौजूद है कि "स्वामी दयानन्द के भाष्म को देखने से जैसा वह सुसंगत, सम्बद्ध प्रतीत होता है वैसा दूसरा प्रतीत नहीं होता, यह ठीक है कि प्रथा नई है और आधार तर्क शिला है, सयुक्तिक है, ...' इस से अधिक किसी भाष्य की प्रशंसा क्या हो सकती है कि उसे तमाम भाष्यों से जो मिल सकते हैं उत्तम कहा जाय।

यह आक्षेप कि स्वामी जी ने सायण और महीधर के भाष्यों

के विरुद्ध तो लिखा है पर जिस शतपथ के आधार पर यह भाष्य किये गये हैं उसके विरुद्ध कुछ नहीं कहा। पर जब स्वामी जी ने शतपथादि ब्राह्मणों को परतः प्रमाण कह दिया और विशेष विज्ञापन द्वारा स्पष्ट घोषणा कर दी कि इन ग्रन्थों में जो वेदानुकूल है उसी का मैं साक्षीवत प्रमाण करता हूँ तो खिलाफ लिखने में कसर क्या रही। रही आर्य्यों वा आर्य्य समाज की त्रुटियों वाली बात, इसका सम्बन्ध व्यक्तियों से है सिद्धान्त से नहीं, मनुष्य निर्भ्रान्त नहीं, उसके काममें भूल वा त्रुटि का होना साधारण बात है। To err is human काली भेड़ें हर कहीं हो सकती हैं। साहबजी महाराज कहने को तो वक्त गुरु वा सन्त सतगुरु के रोम २ को रूहानियत से लबरेज़ कहते हैं पर आपकी अपनी ज़ात के विषय में ही जनता में अनेक विरुद्ध विचार हैं। आप कहते हैं गुरु की थूक चाटने से भी गुरु की रूहानियत का प्रभाव पड़ता और गुरु के संसर्ग मे आने वाले आत्मता की दृष्टि से उन्नत होते हैं परन्तु आपके अङ्ग २ से पैदा हुए आपके सुपुत्र काका साहब की हिस्ट्री इस रूहानियत का पोल खोल देने को काफी है। रहे सत्संगी उनके लिए सार वचन, वचन ११ शब्द १ की, साखी मौजूद है।

कहां लग कहूं कुटिलता मन की, कोन न माने गुरु के वचन की।
प्रेम गया और भक्ति छिपानी, वैर ईर्षा की खुली खानी।
माया लाई छलबल अपना, काल दिया कलमल का ढकना।
देखो अचरज कहा न जाई, कलजुग का प्रभाव दिखाई।
हैं गुरु बहन और गुरु भाई, तिन में निस दिन होत लड़ाई।
काल दाव अपना यों खेला सत्संग में आय कीन्हों मेला।
सेवा में घुसपैठ कराई, और तरह कोई घात न पाई।

इन कड़ियों मे तो सत्संगियों और सत्संगिनों के परस्पर के

व्यवहार का संकेत है अब सतगुरु और सतसंगियों का परस्पर का प्रेमादि देखिये।

गुर ताड़े सत्संगी भीखें, काल लगाई ऐसी लीकें।
गुरु समझावें माख न मानें, मन मत अपनी फिर २ ठानें।
गुरु को देवें दोष लगाई, फिर २ चौरासी भरमाई।
इतनें दिन सत्संग जो कीया, कुछ भी असर न उसका हुआ।

इन कड़ियों में सतगुरु नहीं परम गुरु साहब पर सतसंगियों से दोष लगाने तथा कलजुग से लीकें लगने के भयङ्कर शब्द मौजूद हैं अतः साहब जी महाराज को अपनी आंख का शहतीर देखना तथा सिद्धान्त से इतर बातों की वहम से हमेशा बचना चाहिए।

हमने केवल ऐतराज़ों का उत्तर ही नहीं दिया, आवश्यक वैदिक सिद्धान्तों पर भी पूरा प्रकाश डाला है और अन्त में राधा स्वामी मत की शिक्षा का भी भांडा फोड़ा दिया है और हमें पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक के प्रत्येक अध्याय और विशेषतः अन्तिम अध्याय का विचार पूर्वक अध्ययन पाठकों को निश्चय करायेगा कि राधास्वामी मत एक कोरा ढोंग है और सच्चे मनुष्यत्व तथा ज्ञान और सदाचार की रक्षा के लिए इस जाल में फँसे हुए पक्षियों को छुड़ाना सारे सत्य प्रिय मनुष्यों का परम पवित्र कर्तव्य है। यह कहना कि यह तो सन्त मत है सर्वथा निराधार है। हमने सिद्ध किया है कि वैदिक धर्म ही सन्त मत है तथा कोई भी सन्त राधास्वामी को नहीं मानता। न केवल यह सार वचन तक में इन सन्तों का खण्डन तथा उनको पुराने धर्म का अनुयायी माना गया है।

क्या दादू क्या नानक पन्थी, क्या कबीर क्या पल्टू सन्ती।

सब मिल करते पिछली टेका, वक्त गुरु का खोज न नीका।

इसी प्रकार साहब जी महाराज का यह कहना भी सर्वथा असत्य है कि राधास्वामी मत तथा सारे मतों की शिक्षा में प्रत्यक्ष अनुकूलता है। भला जब सब मतों के माने हुये महान् से महान् सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी, परमेश्वर वा ख़ुदा की सर्वोत्कृष्ट सत्ता के मुख्य सिद्धान्त को ही कुचलकर कई लोक ऊपर की कल्पित राधास्वामी नाम की सत्ता का सिक्का बिठाया और सत्य मार्ग से सब को बहकाया जा रहा हो तो लोक दिखावे के लिए कुछ गौण बातों को मिला दिखाने से कोई वास्तविक अनुकूलता वा समानता कैसे सिद्धि हो सकती है।

पर मुख्य सिद्धान्त सम्बन्धी भेद ही नहीं, साधन भी सर्वथा भिन्न है। कबीर साहब के चेलों से कान बन्द करके अन्दर की घूँ घूँ सुनने का ख़्याल उड़ाया और उसपर अपना रङ्ग चढ़ाया गया है और यथार्थ योगाभ्यास के मर्मज्ञ पातांजलि मुनि के अष्टांग योग को निषिद्ध ठैहराया गया है। हठ योगादि की परिभाषाओं के द्वारा सत्संगियों को जड़ शब्द सुनने में लगा कर जड़ बुद्धि-बनाने के बिना इसके साधन का कुछ फल हो नहीं सकता।

कहां तक लिखा जाय हमने इस मत का पूरा २ अध्ययन करके जो परिणाम निकाला है यही है कि इस मत की शिक्षा से मनुष्य जाति के अधः पतन के बिना कुछ फल नहीं मिल सकता। इनके साधन से न जड़ तत्त्वों के विषय में कोई उपयोगी ज्ञान मिल सकता है न आत्मा के विषय में, और न परमात्मा का दर्शन हो सकता है न किसी प्रकार की उन्नति वा मुक्ति के लिये कर्म धर्म वा यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि, क्योंकि ज्ञान, ध्यान, योग, वैराग्य, कर्म-धर्म, जप-तप सब का त्याग इस मत की प्रधान शिक्षा

है। मन वा इन्द्रियों को वश में करना, गृहस्थ को सुनियमित रूप से चलाकर सुख पाना, विद्या की प्राप्ति, ब्रह्मचर्य्य का पालन, सन्तानोत्पत्ति, शिक्षादि किसी भी विषय में पथ प्रदर्शन करना तो कहां, गुरु ही गुरु की पूजा में सब घरबार पति-पत्नि, माता-पिता, सास ससुर, बाल बच्चा को तुच्छ बल्कि काला नाग समझ कर इनसे दूर होने अर्थात् सारी मर्यादाओं को नष्ट करने का उपदेश अवश्य है।

पाठक हैरान होंगे कि साहब जी महाराज तो स्कूल, कालिज, हस्पताल, शू फैक्टरी, लैदर फ़ैक्टरी, बटन फ़ैक्टरी, डेयरी फ़ार्म क्लोथमिल, ईलैक्ट्रिक फ़ैन शापादि खोल रहे हैं परन्तु विदित रहे कि यह सब कुछ पाश्चात्य शिक्षा का फल है अथवा आर्य्य समाज की सामाजिक उन्नति वा परोपकार सम्बन्धी स्पिरिट का बुरा या भला प्रभाव है, राधा स्वामी मत की शिक्षा का फल नहीं और इन सब कामों में साहब जी महाराज को लगा हुआ देखकर स्पष्ट सिद्ध होता है कि वास्तव में साहब जी महाराज स्वयं परम गुरु राधा स्वामी साहब तथा अपने भूत पूर्व दूसरे गद्दी नशीनों के तरीके से पूर्णत: असन्तुष्ट हैं, पर बनी बनाई गद्दी मिल जाने से विशेष प्रकार के लोभ का शिकार होकर आप दो बेड़ियों के मल्लाह बन रहे हैं। यदि आपके मन में विद्या तथा गृहस्थ सम्बन्धी राधा स्वामी तालीम से घृणा न होती तो आप कभी इन संस्थाओं तथा कारखानों के झंझट में न पड़ते।

हमारी हार्दिक इच्छा है कि साहब जी महाराज कुटिल नीति तथा एच पेंच वाली लेख वा भाषण शैली आदि को त्याग कर सरलता से काम लेना सीखें और न केवल एक तुच्छ गद्दी वा असार सांसारिक प्रतिष्ठा वा कीर्ति आदि से आपको वैराग्य हो

आप सच्चे दिल से साहस पूर्वक सत्य को ग्रहण तथा इसका निर्भयता से प्रकाश कर सकें। साथ ही राधा स्वामी भाई यह अनुभव कर सकें कि वह सचमुच भयंकर पाखण्ड जाल में फंसे रहे हैं। उनका कर्तव्य है कि वह अपने विद्या वा बुद्धि बल का सदुपयोग करके बड़ी वीरता से इस जाल के बन्द २ को काट दिखावें जिससे न केवल वह स्वतन्त्र हों, अपने सजातियों के किसी ऐसे धोखे का शिकार होने की संभावना को भी दूर करें। परमात्मा करे हमारी यह मंगल कामना शीघ्र से शीघ्र पूर्ण हो। राधा स्वामी भाइयों का सच्चे अर्थों में कल्याण हो और वह पूर्ववत आर्य्य-जाति तथा सत्य सनातन वैदिकधर्म से प्रेम और श्रद्धा रखते हुये मनुष्य जाति के उद्धार में पूरा २ सहयोग दे सकें।

ओ३म्‌शम

लक्ष्मण

अमृत

या

वैदिक सिद्धान्तों की गुन्जार

प्रथम अध्याय

सर्ग १—ईश्वर

१—यथार्थ प्रकाश को वैदिक धर्म के विरुद्ध समझा जाता है, और निस्सन्देह इसमें विशेष प्रकार का विरोध मौजूद है। परन्तु विरोध भावों को छोड़ कर राधा स्वामी भाई इसे विचार-पूर्वक पढ़ेंगे तो इससे वैदिक सिद्धान्तों का वह महत्त्व उनके दिलों पर अङ्कित होगा जो वर्तमान स्थिति में किसी आर्य लेखक के लेख से नहीं हो सकता। यही कारण है कि हम यह प्रथम अध्याय अपने भाईयों को उनकी विशेष मौलिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये समर्पित करते हैं। और आशा करते हैं कि यथार्थ प्रकाश में साहिब जी महाराज ने जो मजबूरियाँ पेश की हैं वह स्वयं उनके ही लेखसे दूर होंगी और ऐसा शुभावसर उपलब्ध होगा कि राधा

स्वामी भाई अपने यथार्थ प्राचीन, नित्य, पूर्ण, एवं मोक्ष के एक मात्र साधन अर्थात् वैदिक धर्म का अपने अन्य तथा असली धर्म भाईयों की भाँति सच्चा सनमान करेंगे, जिसका कि वह हमारे अथवा किसी के कहने वा सिद्ध करने से नहीं, अपितु स्वभावतः पूर्ण अधिकारी है।

२—यथार्थ प्रकाश के योग्य लेखक महोदय सर्व प्रथम भूमिका में निम्न लिखित वाक्य लिखते हैं "सच्चे मालिक ने मनुष्य को जो अमूल्य पदार्थ प्रदान किये हैं उनमें सर्वोत्तम पदार्थ मज़हब अथवा परमार्थ है।" इसमें सबसे पहिला शब्द सच्चा मालिक है, जो वैदिक ईश्वर के अतिरिक्त कोई अर्थ नहीं रखता उसकी ओर से जो सर्वोत्तम "मज़हब" अर्थात परमार्थ प्रदान किया गया है, वह वेदज्ञान अथवा वैदिक धर्म के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु नहीं है।

३—राधा स्वामी भाई हैरान होंगे कि कहां 'वैदिक' ईश्वर और कहाँ "सच्चा मालिक", परन्तु यह हैरानी सर्वथा निर्मूल है। ईश्वर नाम ही सच्चे मालिक का है। "ईश" नाम है रचना के प्रत्येक पदार्थ का और "वर" का अर्थ है वाला अथवा मालिक वा स्वामी, इन दोनों से मिलकर ईश्वर शब्द बना है। और सच्चे मालिक का ही अर्थ रखता है। कहा जायेगा, कि साहिब जी महाराज ने तो राधा स्वामी दयाल के लिये यह शब्द प्रयुक्त किया है। चुनांचे "राधास्वामी मत की तालीम" पृष्ठ ३, धारा ३, भाग १ पर आपने लिखा है जैसे मानव शरीर को रचने वा जान देने वाला उसका आत्मा (रूह) है वैसे ही सारी सृष्टि को रचने वा जान देने वाला एक परमात्मा है जिसको कुल मालिक या राधा स्वामी दयाल कहते हैं। अतः ईश्वर का यहाँ क्या सम्बन्ध। परन्तु हमारा भोला भाई समझ ले कि हम भी

सृष्टि के रचने वाले परमेश्वर को ही सच्चा मालिक कहते हैं। और उसके और भी अनेक नाम हैं जिन में राधा स्वामी दयाल कोई नहीं है। यदि किसी उचित कारण से कोई ईश्वर को राधा स्वामी दयाल कहे तो आर्यों से इसका विरोध नहीं हो सकता, तो भी वेद, शास्त्र, उपनिषदों के उपरान्त राधा स्वामी आचार्यों ने जिन मनुष्यों का नाम पेश किया है, जैसे गुरुनानक, कबीर, इत्यादि, इनमें से भी किसी की वाणी में ईश्वर को राधा स्वामी दयाल नाम नहीं दिया गया। ओं ईश्वर या ब्रह्म का निज नाम यथार्थ प्रकाश में कई जगह स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त ईश्वर के अनेक गौणिक नामों में से किसी से भी बढ़कर राधास्वामी नाम से ईश्वर की महिमा प्रकट नहीं होती। ब्रह्म, परमात्मा, सर्व शक्तिमान, न्याय कारी, दयालु, अजन्मा, अमर, निराकार, निर्विकार, अनादी, अनन्त, अनुपम, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, अविनाशी, निरञ्जन, गणों का पति, जगत स्वामी, जग का रचयिता, ईश्वर इत्यादि शब्दों को छोड़ कर राधा स्वामी नाम मे विशेषता ही क्या है ? हमें बताया जाना चाहिये कि पूर्व से प्रचलित नामों में ही कौनसी कमी थी, जो राधा स्वामी नाम पूरी करता है। कुछ ही हो उचित कारणों से अथवा किसी पक्षपात या हठ, दुराग्रह आदि से इस नामपर आग्रह ही हो तो भी वह अस्तित्व तो अन्त में सच्चे मालिक या परमात्मा का ही है जिसे ईश्वर कहा जाता है।

४—राधा स्वामी भाई फिर कहेगा कि साहिब जी महाराज तो ईश्वर या ब्रह्म लोक या ब्रह्म पद को नीचा मानते हैं और राधा स्वामी धाम या पद को ऊँचा और यथार्थ पद। चुनांचे स्मरण व ध्यान के विषय में पृष्ठ १२ पर आप कहते हैं।

"वर्तमान काल में जब कि प्रायः हिन्दू भाई वेदों, उपनिषदों

के स्पष्ट आदेश होने पर भी ब्रह्म के सर्वोत्तम नाम अर्थात् ओं शब्द की क़दर न करते हुए, हरिः, शिव, गणेश इत्यादि नामों के जप में संलग्न हैं, तो उनसे कैसे आशा की जा सकती है, कि सन्तों के बतलाये हुये ब्रह्म लोक से परे के धुन्यात्मक नाम की कद्र कर सकें।

हम इन शब्दों में प्रथम तो ईश्वर के निज नाम "ओं" की महिमा का वर्णन पाते हैं, दूसरे पौराणिक लोग जो मङ्गलाचरण आदि में हरिः, शिव, गणेश, इत्यादि शब्दों को ओं के स्थान पर उच्चारण करते हैं उनका निषेध पाते हैं। और तीसरे यदि ब्रह्म लोक से परे कोई धुन्यात्मक शब्द है तो वह ब्रह्म का नीचा होना सिद्ध नहीं करते, किन्तु ब्रह्म दर्शन की सफलता का प्रमाण है, क्योंकि जब सृष्टि के रचने का ज्ञान देने वाला एक परमात्मा स्पष्ट तौर पर धारा ३ में स्वीकार किया गया है, दो तीन या चार नहीं, तो ब्रह्म लोक से परे के धुन्यात्मक शब्दों का वर्णन केवल ब्रह्मके विशेष गुणों का ही साक्षात्कार होने का अर्थरूप हो सकता है। ब्रह्म के अलावा सुन्न या महासुन्न या सत्त; या अलख या अगम, या राधा स्वामी नाम की विशेष सत्तायें इससे पृथक् सिद्ध नहीं हो सकतीं।

ब्रह्मलोक कोई विशेष स्थान नहीं है किंतु उस अवस्थाका बोधक है जिसमें जीवात्मा ब्रह्म का दर्शन करता है और जिसमें वेद के यौगिक शब्दों के अर्थ व सम्बन्ध का दर्शन आत्मा को होता है। यही वेद के शब्द सच्चे अर्थों में धुन्यात्मक शब्द हैं।

५—(राधा स्वामी) यह कैसा अन्धेर है कि सारबचन, सार उपदेशादि राधास्वामी मत की पुस्तकों के विरुद्ध यथार्थ प्रकाश के शब्दों का अर्थ लिया जावे विशेषतः जब कि साहब जी महाराज का आशय हुज़ूर जी महाराज तथा अन्य गुरुओं की पूर्व प्रकाशित

पुस्तकों की पुष्टि वा व्याख्या करना है। चुनांचे सार बचन नज़म, बचन १, शब्द २ के यह वाक्य पृष्ठ १७ भाग १ में आपने उद्धृत किये हैं :—

स्वांति बून्द जस रटत पपीहा। अस धुन नाम लगाए ॥ १ ॥
नाम प्रताप सुर्त अब जागी। तब घट शब्द सुनाए ॥ २ ॥
शब्द पाए गुरु शब्द समानी। सुन्न शब्द सत्त शब्द मिलाए ॥३॥
अलख शब्द और अगम शब्द ले। निज पद राधास्वामी पाए ॥४॥
पूरा घर पूरी गत पाई। अब कुछ आगे रहा न जाए ॥५॥

(आर्य) अरे भोले भाई! तनिक तो बुद्धि से काम लो आख़िर तो मनुष्य हो। शाब्दिक गोरख धंधे में फँस कर असलियत से क्यों बे ख़बर होते हो। सोचो तो सही इस बचन में ब्रह्म से भिन्न किसी दूसरी वा तीसरी सत्ता का वर्णन कहां है। कथन तो केवल यह किया कि नाम की धुन लगनी चाहिए। जैसे पपीहा स्वांति बून्द की रटना लगाता है। इस नाम की बदौलत आत्मा में जागृति आएगी और आन्तरिक शब्द अर्थात् ज्ञान का प्रकाश होगा। इससे आत्मा का गुरु शब्द अर्थात् ओ३म् में मेल होगा और सुन्न, अलख, अगम शब्दों का अर्थ विदित होगा और राधास्वामी अर्थात् इन कड़ियों का रचने वाला कवि निज पद अथवा शुद्ध, स्वतन्त्र आत्मिक स्थिति को प्राप्त करेगा या सुर्त निज स्वामी से मिलेगी जो इसका अन्तिम लक्ष्य है। नाम और शब्द के २ शब्दों की युक्तियुक्त एवं स्पष्ट व्याख्या आगे की जावेगी, तो भी उपरोक्त प्रमाण में कोई शब्द ब्रह्म से भिन्न किसी और सत्ता का संकेत नहीं करता, हाँ केवल ब्रह्म के विशेष गुणों का ज्ञान हो जाने का वर्णन है।

६—(रा० स०) निःसन्देह इन शब्दों में पृथक सत्ताओं का शब्द नहीं, तो भी राधास्वामी मत में अनेक पुरुष माने अवश्य

जाते हैं इसी लिये उपरोक्त शब्दों का प्रयोग भिन्न २ पुरुषों के लिये होना आवश्यक है। देखिये सार बचन पृष्ठ १० पर लिखा है

"कुल के आदि राधास्वामी अर्थात कुल मालक—यहाँ शब्द अतिशय गुप्त है और उसकी उपमा इस रचना में कही नहीं है इसी शब्द से सत पुरुष प्रगट हुए।

शब्द पहिला—सत पुरुष का शब्द जिसको सत नाम और सत शब्द भी कहते हैं और जिसकी सत्य सामर्थ्य से सोहंग पुरुष और पारब्रह्म, ब्रह्म और माया प्रगट हुए। दूसरा सोहंग पुरुष का शब्द, तीसरा पार ब्रह्म का शब्द, जिस की सहायता से तीन लोक की रचना ठहरी हुई है। चौथा ब्रह्म शब्द, जो कि प्रणव है। जिससे सूक्ष्म अर्थात् ब्रह्मण्डी वेद और ईश्वरीय माया प्रगट हुई। पञ्चम, माया और ब्रह्म का शब्द जिससे त्रिलोकी की रचना को सामग्री प्रगट हुई और आकाशी वेद प्रगट हुए। चूँकि यहाँ राधास्वामी, सत, पुरुष, सोहंगपुरुष, पारब्रह्म, ब्रह्म का पृथक २ वर्णन है, अतः शक्तियों वा सत्ताओं के भिन्न २ होने में क्या संदेह रहा ?

(आर्य)—मेरे प्यारे और भोले भाई! पुरुषका शब्द पढ़कर मत भूल, विद्यासम्बन्धी योग्यताका प्रयोग वर्तमानकालमें प्रायः ईश्वरोय प्रजा के अपनी इच्छा पूर्ति का साधन बनाने के लिये हो रहा है। जैसे अनपढ़ लोग भी ताश के अनेक प्रकार के खेल, जादू, अथवा मदारियों जैसी चालाकियों से बड़े २ विद्वानों तथा अन्वेशकों को भ्रान्ति का शिकार कर जाते हैं, ठीक इसी प्रकार पुरुष का शब्द आपको धोका दे रहा है। अन्यथा इस उद्धरण का यथार्थ आशय केवल यह है कि शब्द की महिमा का वर्णन करते हुए हुजूर जी महाराज सारवचन पृष्ठ १० धारा १२ में कहते हैं—

"अब हुजूर राधा स्वामी साहिब ने तफ़सील शब्दों की और

उनका भेद और बुजुर्गी का हाल खोल कर साफ़ २ इस वाणी में लिखा है। अतः धुन्यात्मक शब्दों के अर्थ का बोध कराना अभीष्ट है। सत्ताओं की भिन्नताओं को न स्वीकृत न वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् धारा १३ के आरम्भ में लिखा है। "खुलासा भेद शब्द का नीचे लिखा जाता है।" इसके पश्चात् वह वाक्य हैं जो पेश किये गये हैं। अतः यह सारा लेख शब्दों के अर्थ का भेद अथवा एक ही पुरुष के अनेक गुणों का बोध कराता है। ठीक उसी प्रकार जैसे वैदिक धर्मी एक ईश्वर के लिये सत पुरुष, परम पुरुष, अकाल पुरुष, कर्ता पुरुष, इत्यादि शब्द कहते हैं।

हम साहिबजी महाराज और उनके समस्त अनुयाइयोंको चैलैञ्ज देते हैं कि वह यथार्थप्रकाश, सारउपदेश तथा सारवचन आदि किसी अपनी किताब से ही सिद्ध तो करें, कि ऋषियोंका माना हुआ ब्रह्म और उनका कल्पित राधा स्वामी नाम दो पृथक सत्ताओं के नाम हैं।

हमें निश्चय है कि ऐसा होना असम्भव है। केवल एक ही सर्वोत्कृष्ट सत्ता के लिये भिन्न २ स्थानों पर भिन्न २ प्रकार के वर्णन करते हुये शब्द जाल रचा गया है।

यथार्थ प्रकाश भाग ३ पृष्ठ २७२ धारा २४३ में सत सनातन धर्मी की ओर से प्रश्न किया गया है कि "आप काल पुरुष वा दयाल में भेद क्यों करते हैं? ब्रह्म पुरुष को ही काल और दयाल दोनों क्यों नहीं मानते?.........जब आप काल वा दयाल पुरुष में तमीज़ करते हैं तो हमें नागवार गुज़रता है।" इस का उत्तर साहिबजी महाराज देते हैं। "अरे! भाई नागवार गुज़-रने की क्या बात है, आप खुद ही ख्याल कर लें कि जब कुल मालिक में काल वा दयाल, अर्थात् उत्पत्ति करना और सृष्टी की उलझन से मुक्त रहना है, दो परस्पर विरुद्ध गुण मौजूद है, तो फिर

किसी का यह मान लेना कि रचना में कुल मालिक के दो गुणों का दो पुरुषों के रूप में प्रकाश हो रहा है और उसका इन दो पुरुषों को काल वा दयाल के दो भिन्न २ नाम देना सनातन धर्मी भाईयों के दिल को क्यों नागवार गुज़रता है।"

राधास्वामी भाई उपरोक्त शब्दों को पुनः पुनः विचार पूर्वक पढ़ें, और उत्तर दें कि क्या इनमे हमारा पक्ष पूर्णतया सिद्ध नहीं होता। और क्या काल वा दयाल पुरुष के दो शब्दों से एक ही पुरुप के दो गुणों का आशय होने की भांति सच्चा मालिक, कुल मालिक, ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा इत्यादि शब्द एक ही सत्ता के भिन्न २ यौगिक नामों का पता नहीं देते। यथार्थ प्रकाश के अन्त मे एक "क्रोड़ पत्र" है जिसका शीर्शक है "मुनक़िरे खुदा वा मज़्हब से ख़िताब"। इस लेख में साहिव जी महाराज धर्म की आवश्यक्ता और ईश्वर की नित्य सत्ता की सिद्धि विषय में युक्तियाँ देते हैं। पृष्ठ २८५ पर आप सृष्टि नियन्त्रण के भिन्न भिन्न अङ्गों और उन में एक ही प्रकार के नियमों की विद्यमानता का वर्णन करने के पश्चात् लिखते हैं। "इसलिये माना जा सकता है, कि इस द्रव्य के अन्तर में अथवा इसकी पुष्टी पर कोई शक्ति शाली मस्तिष्क मौजूद है। अन्यथा यह क्योंकर सम्भव था, कि इतने अनन्त केन्द्रों से एक ही प्रकार के नियमों तथा एक ही प्रकार के उद्देश्य लाभों का अनुभव होता। और यह मानना भी अनुचित न होगा कि पृथ्वी के अतिरिक्त सूर्य, चाँद तथा नक्षत्रों के नियम बद्ध एवं संयमित भ्रमण तथा सकल जगत के रोम २ में व्यापक सृष्टि नियमों के लिये भी उस उच्च एवं अचिंत्य नित्यसत्ता की शक्ति ही काम कर रही है। विदित हो, कि मज़हब इसी जौहर को आत्मा, उसकी शक्ति को आत्मिक शक्ति और उसके भण्डार को ईश्वर तथा मालिक का नाम देता है। यदि जगत में

आत्म शक्ति नहीं है और सब प्राणी हाईड्रोजन, ओक्सिजन आदि गैसों अथवा गन्धक चूना आदि प्राकृतिक पदार्थों के मेल से बने हैं तो आप तनिक विचार करके उत्तर दें, कि क्या जगत के सकल पदार्थवेत्ता तथा वैज्ञानिक, विद्वन्मण्डल, शूरवीर तथा कवि लोग, लाइड जार्ज, तथा रूज़वेल्ट केवल इस अग्नि के गोले से उत्पन्न हुई, प्राकृतिक वस्तुओं के ढेले ही हैं जो विकास सिद्धान्तानुसार वर्तमान अवस्था में परिवर्तित हुए हैं और क्या पदार्थ विद्या सम्बन्धी वह सकल ज्ञान जिस पर आप तथा आपके सहयोगी नव युवकों को इस क़दर गर्व है, केवल विशेष प्राकृतिक परमाणुओं की खोज की हुई बातें हैं। नहीं! नहीं! नेचरके अन्दर प्रकृति एवं प्राकृतिक शक्तियों के अतिरिक्त, आत्मा, तथा आत्म शक्ति भी विद्यमान है। आपके शरीर को जीवित, जागृत करने वाला आपका आत्मा है। और समस्त जीवों तथा सकल जगत् को जीवित एवं प्रकाशित करने वाला आत्मशक्ति का भण्डार अर्थात् कुल मालिक है।"

८. अब राधास्वामी भाई विचारें, कि जिस ईश्वरीय सत्ता को यहाँ युक्तियों द्वारा सिद्ध किया है, वह वैदिक ईश्वर है अथवा उससे उच्च कोई राधास्वामी नाम की सत्ता? और यदि जैसा कि, निर्विवाद रूप से सत्य है, यहाँ वैदिक ईश्वर ही अभिप्रेत है तो कृपया यथार्थ प्रकाश, सारवचन, अथवा किसी अन्य अपनी पुस्तक से कोई तो युक्ति ऐसी पेश कीजिये, जिससे ईश्वर से उच्चतर अथवा राधास्वामी नाम की सत्ता को माने बिना ईश्वर के पूर्वोक्त गुणों से रचना का कोई कार्य पूरा न होता हो।

प्रतिज्ञा प्रबल शब्दों में की जा सकती है। परन्तु युक्ति और प्रमाण से इसे सिद्ध करना, कुछ अर्थ रखता है। न्याय दर्शन का अनुकरण करते हुए, साहिबजी महाराजने स्वयं ईश्वरके अस्तित्वको

युक्ति और प्रमाण से सिद्ध करने की चेष्टा तो की है। परन्तु राधा-स्वामी नाम की सर्वोच्च कल्पित सत्ता के सम्बन्ध में युक्ति और प्रमाण का तकाज़ा होता है तो उपालम्भ मिलता है, कि तुम लोग विद्या अभिमानी हो, हमारा सम्बन्ध शुद्ध और भक्ति मार्ग से है, अतः तुम इस नाम का रहस्य जान नहीं सकते। कुछ ही हो बुद्धिमानों के लिये स्पष्ट है, कि साहिब जी महाराज ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते, उसे सृष्टि का रचयिता एवं आत्मशक्ति का भण्डार मानते हैं। अतः किसी अन्य सत्ता को मानना अथवा ईश्वर को आंशिक तथा राधास्वामी को पूर्ण स्वामी मानना वा कहना अयुक्त है।

९. पृष्ठ २३५ भाग ३ पर आपने दर्शाया है कि ईश्वर के अस्तित्व पर रचना के आरम्भ से बहुत काल पीछे विश्वास किया गया। यह विचार कितना भी अयुक्त एवं असत्य हो तो भी इस दृष्टि से उस पर यहां आक्षेप नहीं किया जा सकता, कि इससे ईश्वर की अनादि अनन्त सत्ता का खण्डन नहीं किया गया। हो सकता है, कि कोई सत्ता तो हो, परन्तु कोई पुरुष उसका ज्ञान कुछ काल पश्चात् होना स्वीकार करे। तथापि हर्ष का विषय है कि ईश्वर सम्बन्धी अनुभव तथा विश्वास के लिये साहिब जी महाराज पूर्व पुरुषाओं को अत्यन्त प्रशंसा का पात्र समझते हैं। आपके शब्द यह हैं "मनुष्यों वा पशुओं को अपनी माता के 'उदर' से उत्पन्न होते देख कर और पौदों तथा वृक्षों में नर और मादा के कर्तव्य की पूर्ति का एक ही जगह प्रबन्ध देखते २ उस समय के पुरुषाओं को निश्चय होने लगा कि सकल रचना की पृष्ठ पर एक शक्ति देवी (जगत जननी) का हाथ है जो देवताओं तथा सकल सृष्टि की जन्म दात्री है। आधुनिक काल के पढ़े लिखे उस समय के पुरुषाओं के इस विचार की हंसी कर सकते हैं, परन्तु न्याय दृष्टि से देखा जावे

तो उनकी विचारशक्ति का इस ऊँचाई तक पहुँचना कि सकल सृष्टि के पीछे किसी एक शक्तिकी विद्यमानता का अनुभव हो और रचनाकी प्रत्यक्ष विचित्रता की भीड़ भाड़ के अन्दर ऐक्यवाद का सिद्धान्त दृष्टिगोचर हो मानवीय मस्तिष्क का आश्चर्य जनक कमाल था।

१०. चूँकि राधा स्वामी नामपर यहां विचार नहीं करना अतः हमने केवल ईश्वरीय सत्ता के विषय में साहिब जी महाराज के मन्तव्य तक ही अपने इस लेख को सीमित रखना उचित समझा है। तथापि अपने गुमराह होते हुए भाइयों को यह जताना अति आवश्यक है, कि वह समझ सोच से काम लें, और शब्द जाल से बचें। जहांतक यथार्थ स्थिति का सम्बन्ध है, विषय सर्वथा स्पष्ट है कि ब्रह्म, ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मादि, जिस पवित्र सत्ता के नाम हैं उससे भिन्न अथवा उससे उच्चतर न राधास्वामी नाम की कोई सत्ता है और न हो सकती है और केवल शाब्दिक गोरख-धन्दे के अतिरिक्त न 'यथार्थ प्रकाश' भाग १, २ से कोई ऐसी सत्ता सिद्ध होती है न भाग ३ से और न राधास्वामी मत के किसी आचार्यकी किसी पहिली रचना से। हां! ईश्वर की सत्ता को जैसे आर्य तथा अन्य आस्तिक लोग मानते हैं ऐसा ही राधास्वामी मत के वर्तमान आचार्य महोदय का मन्तव्य उनके अपने लेख से सिद्ध है।

सर्ग २—वेद

११. भूमिका के प्रथम वाक्य के प्रथम शब्द 'सच्चे मालिक' पर विचार करने के पश्चात् हम मज़हब या परमार्थ शब्द को लेते हैं। आर्य लोग मानते हैं कि सच्चे मालिक की तरफ़ से सर्वोत्कृष्ट पदार्थ वेद ज्ञान मिला है और 'यथार्थ प्रकाश' को विचारपूर्वक

पढ़ो तो इसके लेखक का विश्वास भी मज़हब या परमार्थ शब्द की दृष्टि से वेद-ज्ञान अथवा वैदिक धर्म्म पर ही सिद्ध होता है और 'सच्चे मालिक' से मज़हब वा परमार्थ रूप सर्वोत्कृष्ट पदार्थ मिलने का भावार्थ वही विदित होता है जो आर्यसमाज के प्रथम नियम का है:—

"सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।" साधारणतः हमारी यह प्रतिज्ञा बेमेल समझी जायगी और इसपर आक्षेप होना सम्भव है। परन्तु, यथार्थरूपेण विवेचना करने पर हमारी प्रतिज्ञा सोलह आने सत्य मानी जायेगी, अन्यथा इस प्रथम वाक्य का कोई विशेष अथवा संगतोद्देश्य हो ही नहीं सकता, और यह साहिब जी महाराज जैसे लेखक की शान से दूर है कि वह विचारशून्य हो कर निरर्थक वा अनर्गल लेख लिखने का अपराध करें।

१२. राधा स्वामी भाई कहता है, कि 'आर्य समाज' तो मज़हब को मानता ही नहीं, धर्म को मानता है। और सार वचन में जो राधास्वामी मत की धर्म पुस्तक है, लिखा है--

राधा स्वामी मानें ना कर्म्म धर्म्म री,

राधा स्वामी जप तप जाने भर्म री॥

हम कहते हैं। निस्सन्देह राधास्वामी मत में वैदिक कर्म धर्म के विरुद्ध बहुत कुछ कहा जाता है परन्तु जिस महानुभाव को हम सम्बोधन कर रहे हैं, वह अर्थात् साहिब जी महाराज इस विचार के नहीं। विरोधी होना तो कहाँ! वह यह भी सहन नहीं कर सकते, कि राधा स्वामी मत के वैदिक कर्म धर्म के विरुद्ध होने का ख़याल क़ायम रहे। वह उपरोक्त वचन के सम्बन्ध में सफ़ाई पेश करते हैं। (पृष्ठ २२९। भाग २) "कर्म से अभि-प्राय हवन यज्ञ, अमावश का स्नान, सूर्यग्रहण का दान, बद्रीनारायण

का दर्शन इत्यादि कामों से है।" हवन यज्ञ स्नान दान आदि बुरे कर्म नहीं, मनुष्य के लिए लाभकारी ही हैं, परन्तु इनसे मुक्ति का मानना सत्य नहीं, इसी अभिप्राय से गीता के उस श्लोक का सम्बन्ध बताया गया है जिसका भाव यह है—कि हे अर्जुन ! सब धर्मों को छोड़ कर केवल मेरी शरण में आ, मैं तुझे सब पापों से छुड़ाऊँगा, तू इसमें सोच मत कर।" साहिब जी महाराज अपने विचारानुसार सत् गुरु-भक्ति आदि को आत्मदर्शन के अभिलाषी के लिये परम साधन, परम धर्म कहते हैं और इतर कर्म धर्म को इस की अपेक्षा से तुच्छ समझते हैं। इसलिए कर्म धर्म को आवश्यक जानते हुए भी वह सारवचन के उपरोक्त शब्द को अनावश्यक अथवा दोषयुक्त नहीं समझते। हम इस स्थिति को युक्तियुक्त समझते हैं। परन्तु साहिब जी महाराज को हम इस में राधास्वामी मत का यथार्थ प्रदर्शन कराते हुए नहीं पाते क्योंकि हमारे सामने सारवचनादि के बीसियों वाक्य हैं जिनमें केवल गुरु-सेवा, गुरु-भक्ति की रट लगाते हुए कर्म धर्म को सर्वथा अनावश्यक, त्याज्य तथा आत्मीयता में विघ्न बताया गया है, और इसके विरुद्ध ज़ाहिर किया गया है। जबकि वास्तव में वैदिक कर्म धर्म आत्मता के उच्च शिखर पर पहुंचने के लिए प्रारम्भिक सीढ़ियाँ हैं। राधास्वामी मत की शिक्षा में जो विशेष और भारी त्रुटि है और जिसकी पूर्ति के बिना लाख नीतियों से इस मत की उन्नति के लिए प्रापेगेंडा किया जाने पर भी इसकी असफलता होना इसकी अमिट तक़दीर है, वह यह है, कि वह कर्म धर्म सर्वथा भुलाये जा रहे हैं जिनसे मनुष्य में उच्च कोटि का सदाचार, योग्यता और ईश्वर प्राप्ति के लिए सच्ची लग्नादि के गुण पैदा हो सकते हैं। राधा स्वामी मत यदि परोक्ष आत्मशक्ति के सम्बन्ध में आन्तरिक स्मरण व ध्यान को अपनी

विशेष शिक्षा ठहराता है तो उसे क्रियात्मक रूप से वाह्य शक्तियों के सदुपयोग की योग्यता अपने अनुयाइयों में उत्पन्न करनी चाहिए।

जो मनुष्य स्थूल पदार्थों का यथार्थ ज्ञान नहीं पा सकता, वह सूक्ष्म अथवा परोक्ष वस्तुओं को समझ ही क्या सकता है। किसी के दाव घात में आकर चाहे कोई स्वांग भरा जाये पर सच्चे कर्म धर्म के अभ्यास के बिना आन्तरिक साधनों की योग्यता असम्भव है। स्थूल विषयों को समझने हुए क्रमशः सूक्ष्म बातों की समझ आती है, विचारशक्ति बढ़ती और एकाग्रचित्त होकर शांत भाव से सोचने समझने का अभ्यास होता है। और इसी गूढ़-विचाराभ्यास का परिणाम है कि मनुष्य प्राकृतिक जगत और उसके समझने के मन इन्द्रिय, बुद्धि के प्राकृतिक साधनों से गुजरकर समाधि द्वारा सूक्ष्म इन्द्रियों अथवा आत्म-शक्तियों से उन सूक्ष्म सत्ताओं अथवा गूढ़ विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है, जो बुद्धि आदि की पहुँच से परे हैं। योग साधन को राधास्वामी मत भक्ति की यथार्थ विधि मानता है। परन्तु इसके पहिले अङ्गो अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायामादि को जैसा कि हम पृथक लेख में सिद्ध करेंगे, यथार्थ रूप से जाना नहीं गया है। और अपनी इस अनभिज्ञता पर परदा डालने के लिये यह ढोंग रचा गया है कि वर्तमान मनुष्य इस साधन को कर नहीं सकते, अथवा इस में खतरे हैं। इसलिये हमने सरल और सुगम मार्ग निकाला है। परन्तु वास्तव में नियमादि का यथाथ ज्ञान न होने पर आत्मश्रोत्रों से शब्द का सुनना तथा आत्मनेत्रों से स्वरूप का ध्यान, अथवा आत्मवाणी से नामका जप करना सर्वथा असम्भव है और यम नियम शून्य स्मरण वा ध्यान कुछ यथार्थ सत्ता नहीं रखता, केवल ढोंग मात्र है। अतः कर्म, धर्म के विषय में साहिब

जी महाराज राधास्वामी को जो सफाई पेश करना चाहते हैं यह तो ठीक नहीं। सार वचनादि के वाक्यों पर ऐसी कोई सफाई पानी नहीं फेर सकती। हां साहिब जी महाराज की इस विषय में निज सम्मति जो इस पुस्तक के कई स्थानों से विदित होती है कुछ युक्त प्रतीत होती है। और धर्म के नाम पर होने वाले अधर्म या यथार्थ ज्ञान अथवा आत्मोन्नति के उच्च साधनों की अपेक्षा से साधारण कर्म धर्म को तुच्छ समझने में कोई हानि नहीं। जैसे साधारण विचार पर विदित होता है कि हजूर जी महाराजादि ने सामूहिक रूप से राधास्वामी मत को कर्म धर्म का विरोधी कहने में भारी भूल की है, क्योंकि सारवचन में वर्णित गुरुभक्ति, गुरुसेवा, श्रुत शब्द अभ्यासादि स्वयं धर्म का अङ्ग, अथवा अच्छे कर्म समझ कर ही लिखे गये हैं। यथार्थप्रकाश में भी राधास्वामी मत की तालीम, तीन शग़ल अनुराग, वैराग्य, स्मरण, ध्यान, सत गुरु की तलाश, आत्मिक शक्तियों की जागृति सात्विक खान पान, सत संग आदि शिक्षाएं भी सब कर्म धर्म के ही अन्तर्गत हैं। अतः कर्म धर्म को न मानने का उपरोक्त प्रमाण उस अर्थ के लेने में कोई रोक पैदा नहीं करता जो हमने मज़हब या परमार्थ शब्द के लिये पेश किया है।

१३—यह सत्य है, कि मज़हब के शब्द में धर्म शब्द का विस्तृत अर्थ समा नहीं सकता परन्तु जब वर्तमान आचार्य साहिब के पैदा होने से पहिले का राधास्वामी मत नाम है तो उसकी वकालत में क़लम उठाते हुये, वह मज़हब शब्द का ही प्रयोग कर सकते थे मत के लिये धर्म के शब्द का प्रयोग न करना उचित ही है।

१४ - राधास्वामी भाई आक्षेप करता है कि वैदिक धर्म को

आर्य लोग सृष्टि के आदि से मानते हैं। परन्तु साहिब जी महाराज यह मानते हैं कि मज़हब की उत्पत्ति रचना के बहुत काल पीछे हुई। इसलिये उनके कहे मज़हब शब्द को वैदिक धर्म के अर्थ में नहीं लिया जा सकता, इस आक्षेप का आधार पृष्ठ ७९ भाग १ के इन शब्दों पर है, "एक वक्त था कि संसार में मनुष्य की अवस्था नन्हे बच्चे की सी थी, उसे न अपनी दिमाग़ी वा रूहानी शक्तियों का अधिक ज्ञान था और न सृष्टि नियमों से कुछ भिज्ञता थी, वह कुदरत की शक्तियों के हाथ में कटपुतलियों की तरह नाचता था, और अपनी इच्छाओं और कुदरत के कामों में समानता न पाकर अपनी लाचारी और बेबसी से अतिशः परेशान था। वह अपने को संसार सागर में उस नावकी तरह अनुभव करता था, जिसका पतबार टूट गया है, और बादबान फट गये हैं और जिसे समन्दर की लहरें कभी इधर कभी उधर धकेलती हैं। फिर एक समय आया, कि दुनियाँ में मज़हबी पेशवाओं की आमद और मज़हबी तालीम की शुरूआत हुई, मनुष्य को मज़हब में गुप्त विज्ञान और भावी जीवन के सुखों के वायदे से बहुत संतोष प्राप्त हुआ। और उसने मज़हब को सच्चा मित्र देख कर उसकी संगति में आयु विताना पसन्द किया। उधर मज़हब ने भी अपनी ओरसे उसके दुख दर्द मिटाने और उत्साह बढ़ाने में कोई कसर बाक़ी न रक्खी। मानवीय मस्तिष्क ने मज़हबी विचारोंकी शः पाकर कुदरत की कुव्वतों को नीचा दिखाने और सृष्टि नियमों पर बिजय पाने के मनसूबे क़ायम किये इत्यादि।"

१५—हम मानते हैं कि यहाँ मज़हब का जन्म होने से पूर्व कुछ काल बिना मज़हब के व्यतीत होने का कथन है। परन्तु वह काल कितना था, और कब तक रहा, मज़हबी पेशवाओं की आमद और मज़हबी तालीम की शुरूआत कब हुई, इसका कुछ वर्णन

नहीं और सारा कथन संदिग्ध है। मनुष्य बालअवस्था में था उसे अपनी दिमाग़ी और रूहानी शक्तियों अथवा सृष्टि नियमों का कुछ ज्ञान न था, तो शरीर और शारीरिक शक्तियों का तो ज्ञान था, यह ज्ञान उसे कहांसे और कब मिला। आख़िर मनुष्य पहिले पैदा हो चुका था। वह खाता था, पीता था, बोलता था, सुनता था, जागता था सोता था, यह सब कर्म अज्ञान के आश्रय थे, अथवा किसी ज्ञान के मनुष्य की जिन इच्छाओं के अनुकूल नेचर न थी वह इच्छाय बिना आवश्यक साधनों का ज्ञान होने के किस तरह मौजूद हो सकती थीं। इच्छाओं के पूरा न होने पर लाचारी बेबसी परेशानी और टूटे पतवार और फटे बादबान वाली किश्ती की गति का अनुभव करने के लिये क्या किसी ज्ञान की आवश्यकता न थी। और यदि मज़हब था नहीं, तो मज़हबी पेशवा कहां से निकल आये, और मज़हबी तालीम कैसे शुरू हुई। अतः आदिम मनुष्यों की बाल्यावस्था मानी जाये अथवा उन्हें बुद्धियुक्त एवं युवा अवस्था में माना जाये, ज्ञान का सम्बन्ध उनके प्रथम से प्रथम श्वास अथवा प्रयत्न वा कर्म के साथ अवश्य मानना पड़ेगा। गति का तकाज़ा है कि जीवात्मा शरीर के अन्दर हो और प्राकृतिक शरीर से आत्मा कोई काम नहीं ले सकता जब तक पहिले उसे कोई ज्ञान न मिले, अतः यह सर्वथा असत्य है कि मनुष्य ने कोई काल बिना मज़हब के गुज़ारा। साहिब जी महाराज के शब्दों से हम २ परिणाम निकालते हैं:— प्रथम यह, कि वह कुछ विवश हैं। यदि वह स्पष्ट कहें कि आदि काल में वेद ज्ञान मिला तो यह उन्हें राधा स्वामी मत सम्बन्धी अपनी जिम्मेवारीके विरुद्ध प्रतीत होता है। यदि वह सच्चा मज़हब कोई और सिद्ध करने लगें, तो राधा स्वामी मत को गद्दी के इख्राजात और इस मत की उन्नति को जिम्मेदारी के कारण

वह अनेक आक्षेपों और विरोधों का निशाना बनें। द्वितीय यह कि जब तक आवश्यकता प्रकट न की जाय, किसी नई ईजाद का नाम असम्भव सा प्रतीत होता है। अतः सतसङ्गी भाई समझ लें कि यह ला मज़हबी का ज़माना भी वैदिक धर्म के आशय के विरुद्ध नहीं लिया जा सकता, अपितुः ला मज़हबी के ज़माने के सम्बन्ध में जो कुछ कथन किया गया है उससे केवल यह सिद्ध होता है कि यथार्थ धर्म मनुष्य के लिये अति आवश्यक है। इसके बिना मनुष्य की अवस्था केवल जड़ पदार्थों की सी अथवा दुखों से भरपूर और मित्रहीन निस्सहाय एवं हीन सी रहती है।

१६—यथार्थ मज़हब मनुष्य मात्र के लिये एक ही होना आवश्यक है और यथार्थ प्रकाश के पहिले ही वाक्य से भी मज़हब या परमार्थ का शब्द एक वचन ही है। परन्तु हैं आज कल अनेक मत मतान्तर, अतः साहिब जी महाराज के शब्द सार्थक तभी हो सकते हैं, जब उनको एक मात्र सच्चे सनातन धर्म पर लगाया जाये। विशेषतः इसलिये भी कि धारा १५ में जो शब्द आपके मज़हब के विषय में उद्धृत किये गये हैं, वह केवल वैदिक धर्म पर ही लागू हो सकते हैं, जो आदिम मानव जाति का एक मात्र धर्म था। इसके प्रमाण रूप के लिये उनके निम्न लिखित शब्दों पर विचार करना पर्याप्त होगा

(१) पुर इसरार फ़िलसफ़ा (रहस्य पूर्ण विज्ञान) जो केवल वेद में वर्णित ईश्वर, जीव प्रकृति, तथा कार्य जगत सम्बन्धी व्याख्या का ही दूसरा नाम है। सारे विज्ञान की असल जान यही सत्तायें हैं।

(२) "भावी जीवन के सुखों के वायदे" जिसका आशय पर-लोक का सुख अथवा स्वर्ग व मोक्ष आदि से है। जो वेदोक्त

धर्म के अनुसार आचरण के फल स्वरूप हैं । (वैशेषिक दर्शन अ० १ सू० २) यतोऽभ्युदय निःश्रेयस्सिधि स धर्मः ॥ अर्थात् धर्म वह है, जिससे लोक भी सिद्ध होता है, और परलोक भी ।

(३) "सच्चा मित्र" यह शब्द भी वैदिक साहित्य में वेदोक्त धर्म के लिये ही प्रयुक्त होता है । मृत्यु के बाद भी इसी की मित्रता को स्थिर माना जाता है ।

ना मुत्रहि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्र दारा न ज्ञातिधर्मस्तिष्ठति केवलः ॥
मनु अ० ४ । श्लोक २३६ ॥

परलोक में न माता, न पिता, न पुत्र, न स्त्री, न सहगोत्री, सहायता दे सकते है । उस समय केवल धर्म ही साथ देता है ।

(४) "इस मित्र की सङ्गति में आयु बिताना" यह भी केवल वैदिक धर्म के लिये ही सत्य है । क्योंकि इसी का यह नियम है कि आयु भर के प्रत्येक क्षण में धर्म पर आरूढ़ रहते अथवा धर्मानुकूल कार्य करते हुए ही विचरो ।

(५) "मजहब का मनुष्य के दुःख दर्द मिटाना, प्रोत्साहित करना" । वेदोक्त आचार व्यवहार से ही सब दुःख दर्द मिटते, सुख बढ़ते और भावी शुभ कर्मों के लिये उत्साह मिलता है । अतः यह शर्त भी वैदिक धर्म पर ही लागू होती है ।

(६) "कुदरत की शक्तियों पर विजय दिलाना" इसका सम्बन्ध भी केवल वैदिक धर्म से है, जिसमें सूक्ष्म सत्ताओ के अतिरिक्त प्राकृतिक तत्त्वों का भी यथार्थज्ञान मिलता और अग्नि, वायु आदि को अपने वश में करके मनुष्य नानाविध लाभ उनसे पाता है । इत्यादि २ सब वैदिक धर्म के ही गुण हैं । अन्यथा मजहब तो निर्विवाद रूप से फूट और दुःख का कारण सिद्ध हो रहा है ।

१७—चूंकि मज़हब या परमार्थ मनुष्य को मिला अतः जब से मनुष्य का आविर्भाव हुआ तब से ही वह मज़हब वा परमार्थ भी है। और चूंकि आर्य समाज यह मानता है, कि सत्य धर्म का उपदेश आदि काल में वेद द्वारा प्राप्त हुआ और उपरोक्त गुप्त विज्ञानादि का वेद से ही यथार्थ एवं मौलिक सम्बन्ध है, वेद से पूर्व अथवा वेद के बराबर की कोई अन्य वैज्ञानिक पुस्तक अथवा गुप्त परम्परागत विज्ञान न स्वामी जी महाराज और न हुज़ूर जी महाराज, और न सरकार जी महाराज, न साहिब जी महाराज पेश कर सके हैं, न किसी निकट वा दूर के भविष्य में ऐसा कर दिखाने की किसी की प्रतिज्ञा है, अतः सच्चे मालिक से मिली हुई सर्वोत्कृष्ट वस्तु केवल वेद ज्ञान या वैदिकधर्म है। और वही मज़हब या परमार्थ के यथार्थ भाव अथवा सार्वजनिक धर्म को प्रगट करता है।

१८—सतसङ्गी भाई कहता है कि साहिब जी महाराज ने वेद ज्ञान को मज़हब वा परमार्थ का यथार्थ अर्थ कहीं नहीं लिखा। यथार्थ प्रकाश भाग ३, पृष्ठ २९६, धारा २६१ में इस से भिन्नार्थ अवश्य लिया है, देखिए "सन्त मत में" परमार्थ शब्द का प्रयोग बहुत होता है। साधारण बोलचाल में इसका अर्थ मज़हबी कार्य-वाहियाँ लिया जाता है। परन्तु यह शब्द परम अर्थात् सर्वोच्च और अर्थ, अर्थात् उद्देश्य से मिलकर बना है। अतः परमार्थ शब्द का यथार्थ अर्थ है—जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य।"

१९—निस्संदेह यहां भी हमारे पेश किए हुए अर्थ को स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं किया गया, परन्तु यदि यह सोचा जाये कि जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य ही परमार्थ का यथार्थ अर्थ होगा तो राधा-स्वामी मत, उसकी तालीम, उसका स्मरण वा ध्यान, उसका सत्संग सब कुछ व्यर्थ होगा। जब सर्वोच्च उद्देश्य हमें कुल मालिक ने दे

दिया तो अब सत्संग अभ्यासादि की दौड़ धूप का क्या अर्थ, प्राप्त वस्तु को प्राप्त क्या करना, और पिसे हुए को क्या पीसना। अतः या तो आशय यह होगा कि सर्वोच्च उद्देश्य की पूर्ति का साधन अर्थात् सच्चा धर्म या ज्ञान, अथवा परमार्थ से सर्वोत्कृष्ट वस्तु वा पदार्थ अभिप्रेत होगा, और वह भी फिर वेद ज्ञान ही होगा। सारांश यह है कि हमारे पक्ष के बिना किसी तरह और अर्थ सिद्ध नहीं होता, यहां तक कि असली आशय को छिपाने वाले साहिब जी महाराज स्वयं अगली ही पंक्तिमें लिखते हैं—"प्राचीन पुरुषाओं ने रूहानियत की ऊँची से ऊंची चोटी पर पहुँचना मनुष्य जीवन का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य ठहराया था," इससे पाया जाता है कि परमार्थ शब्द का आशय उद्देश्य पूर्त्ति का साधन है। यदि कुल मालिक ने जीवन का उद्देश्य दिया होता तो प्राचीन पुरुषाओं का यह विचार करना ही अनावश्यक होता कि उच्च आत्मपद हमारा अभीष्ट है अथवा कुछ और ?

२०—धारा २० पृष्ठ २९७ पर आप फ़रमाते हैं कि—"लोग परमार्थ को भूल गए और रूहानी शग़लों को ही परमार्थ समझने लगे" इससे पाया जाता है कि आन्तरिक साधनों का नाम आप परमार्थ नहीं मानते। यह केवल उस वैदिक सिद्धान्त पर आपका विश्वास होने का प्रमाण है, जो यजुर्वेद अ० ४०, मं० ११ में वर्णन किया है।

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

(अर्थात)—जो विद्या और अविद्या दोनों को साथ साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्म उपासना आदि के द्वारा मृत्यु को तरता और विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष पाता है। भावार्थ यह कि यज्ञादि कर्म एवं उपासना आदि मुक्ति का कारण

नहीं इन से मृत्यु को तरा जाता है और मुक्ति का कारण यथार्थ ज्ञान है, दूसरे शब्दों में असली परमार्थ तो है ज्ञान और आन्तरिक साधन हैं दरमियानी मनजिलें।

२१—यही भाव परमार्थ का आप के अगले शब्दों से मिलता है कि—

"मजहबी रसमों और पूजा पाठ का ही नाम परमार्थ समझा गया और हस्ब मामूल कुदरतने इसमें नैरंगी विभिन्नता को दाखिल किया मगर नैरंगी की पृष्ठमें हमआहंगी (समानता वा सादृश्यता) को नियत किया अर्थात् भिन्न २ रीतियों के आधार पर भिन्न २ सम्प्रदाय चले परन्तु उनका सम्बन्ध सर्वतन्त्र अर्थात् एक ही प्रकार के सत्य सिद्धान्तों से रहा। मत वा सम्प्रदाय चाहे भिन्न हुए वेद धर्म या परमार्थ को सब मानते रहे और सर्वतन्त्र सत्य सिद्धान्तों का प्रभाव सब पर रहा। परन्तु इसके पश्चात् आप कहते हैं, अवस्था बदल गई वह सर्वतन्त्र सिद्धान्त भी भूल गये जो विभिन्नता के अन्दर गुप्त रूप से समानता रखने का काम कर रहे थे। यहाँ तक कि मत भेद ने भिन्न २ प्रकार की शिक्षा देने वाले मत मतान्तर का रूप धारण किया। इस सारे कथन का सार यह है कि साहब जी महाराज एक पक्ष परमार्थ को मानते हैं और दूसरा मत मतान्तर को। इसे दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कहेंगे कि ईश्वर की ओर से तो परमार्थ या धर्म का अमूल्य रत्न मिला है और मतमतान्तर मनुष्य कृत हैं, उन्हीं में से एक ७०–७५ वर्ष की आयु वाला राधा स्वामी मत है।

२२—महर्षि दयानन्द का प्रसिद्ध वचन है कि नित्य, सत्य, एक रस एवं पूर्ण धर्म के सर्वतन्त्र सिद्धान्त अब भी सारे मतमतान्तर से सत्य माने जा रहे हैं या यह कि जिन बातों को सारे मतवादी एक स्वर होकर सत्य मानते हैं वह असली धर्म है। साहिब जी महाराज इस व्यापक सार्वजनिक शिक्षाको कानून हम आहन्गी

का नाम देते हैं अथवा कहीं भिन्न २ मतमतान्तरमें प्रत्यक्ष सादृश्यता मानते हैं। अन्य शुद्ध हृदय अन्वेशक भी प्रायः यही सम्मति प्रगट करते हैं। परन्तु अपने शब्दोंकी तह तक पहुंचनेका कष्ट कोई गवारा नहीं करता अर्थात् सोचते नहीं कि वह सारे सिद्धांत जिनमें से कोई किसी एक मत को शोभा देरहा है कोई दूसरे को, वह किस ज्ञान भण्डार से सम्बन्ध रखते हैं। सर्वतन्त्र सिद्धान्तोंका भण्डार ईश्वरीय ज्ञान प्रकाशित न होता तो मत मतान्त्र में कोई भी सच्ची शिक्षा न पाई जाती। मतमतान्तर की पारस्परिक मिलती जुलती शिक्षा इस बात का बोध कराती है कि एक ही पवित्र सत्ता से जो सर्वज्ञ अथवा ज्ञान स्वरूप है वे सब वैज्ञानिक नियम आविर्भुत हुए हैं। ले दे के मनुष्यों में प्रचलित समस्त विद्याओं अथवा मत मतान्तर का वास्तविक आत्मा वही पवित्र ईश्वरीय ज्ञान है। इससे पृथक होने पर मज़हब केवल मुर्दा जिस्म है। एक मनुष्य कहता है, कि मेरे पास ५ सेर आटा है। दूसरा कहता है, मेरे पास ४ सेर आटा है। तीसरा कहता है मेरे पास दस रुपये हैं। चौथा कहता है मेरे पास १५) रु० हैं। पाँचवां आठ गज़ कपड़ा और छटा बारह गज़ कपड़ा रखता है। इत्यादि भिन्न भिन्न तोल, नाप और गिन्ती के पदार्थ हैं। उनकी परस्पर तुलना आदि भी नित्य होती है। परन्तु यह नहीं समझा जाता, कि सेर का बाट, १६ गिरहके गज़ का नपैना, अथवा एक, दो, आदि गणित के अङ्कों का ज्ञान पूर्व से विद्यमान न हो तो गिनती, नाप, तौल आदिकी परस्परकी समानता अथवा असमानता का अस्तित्व या उनकी तमीज़ स्थिर नहीं रह सकती। ठीक इसीप्रकार मतमतान्तर की परस्परकी समान शिक्षा और भेद वा विरोध भाव के शब्दों का आवश्यक अनुरोध यह है कि सत्य और असत्य का निर्णय करने वाला परम प्रमाण मानव जाति को कुल मालिक की ओर से मिले। उसी का नाम मज़हब वा परमार्थ जैसी उत्तम वस्तु

हो सकता है।

प्रत्यक्ष सादृश्यता के लिये भी समान गुण पहिले मनुष्य के दिमाग़ अथवा ज्ञानमें मौजूद होने चाहियें, अतः राधास्वामी सतसङ्गियों को सचाई के असली श्रोत की खोज करनी चाहिये और साहिबजी महाराज के उस आशय का पूरा करना चाहिये जो कानून हम आहनगी की तरफ़ से विशेष पुकार अथवा अपील के रूप में आपने पेश किया है। पक्षपात और घृणा वा द्वेषभावसे मनुष्य ऊपर उठकर परस्परमें सङ्गठित हों, यह इस अपीलका यथार्थ आशय है। यह कानून मनुष्यों को फूट के भयङ्कर परिणामों से भिज्ञ करता है, और मुक्तकण्ठ से इस प्रकार कहता है "मैं एक बार नहीं अन्तिम बार फिर समझाये देता हूँ कि यदि अपना और अपने देश का कल्याण चाहते हो, और मानव जाति की भलाई वा हित चिन्तन करते हो, तो फूट से ध्यान हटा कर मेरी ओर आओ मैं तुम्हारी सब विपत्तियों का अन्त करके तुम्हें आत्मीयता के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा दूंगा जिसे परमार्थ की भाषा में परम गति कहते हैं।" साहिब जी महाराज ने इन शब्दों में जो कुछ कहने का हक़ था कह दिया, अब समझने वालों की योग्यता का परीक्षण है।

२३—मत मतान्तर की व्यापक सच्चाइयों का भण्डार कौनसा है, यह विषय विचारणीय है। हमने विशेष प्रकार की भ्रान्तियां फैली होने के कारण अनेक पुरुषों को सद्भाव से और कईयों को पक्षपातादि के कारण इसके सच्चे और एक मात्र उत्तरके कथन करने से संकोच करते पाया है। वेद अथवा सच्चे ज्ञान का नाम लेने के स्थान में अनेक सज्जन उत्तर में कहते हैं कि नेचर या कुदरत की खुली किताब ही इन सचाइयों की बोधक है। परन्तु यदि यह उत्तर सत्य हो, तो सारी यूनीवर्सिटियां, स्कूल, कालिज, गुरुकुल, पाठशाला, सारे प्रिंसपल, प्रोफ़ेसर, अध्यापक और सारी पुस्तकें अना-

वश्यक होंगी। और विद्या प्रचार के लिये गवर्नमैन्ट या सुसाइटीको और विद्या प्राप्ति के लिये विद्यार्थियों को भी सब प्रकार के वर्तमान उपाय तथा परिश्रम बन्द कर देने चाहियें। क्यों ना बिना किसी अन्य की शरण लिये निःशुल्क शिक्षा नेचर से प्राप्त कर ली जावे। हमारी सम्मति में वेद के न मानने वाले, स्वार्थी अथवा यथार्थता से अनभिज्ञ लोगों ने यह अत्यन्त भ्रांतिकारक युक्ति निकाल रक्खी है। प्रकृति तो विज्ञान के नियमों के लिये केवल प्रयोग स्थली है, स्वयं ज्ञान वा नियम नहीं न ज्ञानी वा नियामक। जब तक ईश्वर अथवा ज्ञानी मनुष्यों या ज्ञान की पुस्तक से सृष्टि नियमों का ज्ञान न हो, गूङ्गी अथवा बहरी प्रकृति मात्र से कुछ जाना नहीं जा सकता।

२४—ऊपरके सारे कथनसे विचारशील पुरुषोंके लिये सत्यधर्म अथवा वेद ज्ञान का महत्व स्पष्ट है। परन्तु साधारण मनुष्य इस प्रकार के संकेतों से भी अधिक स्पष्ट व्याख्या चाहते हैं और हमें हर्ष है कि वेद विषय में साहिब जी महाराज की स्पष्ट स्वीकृति भी विद्यमान है। (१) पृष्ठ २१८ धारा २१२ में है। "सनातन धर्म शब्दके अर्थ प्राचीन मजहब के हैं।" क्या इससे स्पष्ट विदित नहीं होता, कि परमार्थ या मजहब का यथार्थ आशय वैदिक धर्म से ही है। (२) इस धारामें रामायण और महाभारतकालकी तुलना करके आप बताते हैं कि "महाभारत का दौर शुरू होने के कुछ पहिले हिन्दू कौम आत्मिक उन्नति के शिखर से बहुत गिर चुकी थी" इसके पश्चात् विशेष दूषित भाव पैदा होने का संकेत करके कहा है, "कौम का क़दम दिन ब दिन दीनी वा दुनयावी तनज्जुली की तरफ बढ़ने लगा, और महाभारत के जङ्ग अज़ीम में तहज़ीब वा तमद्दुन की बागडोर सम्भालने वाले हज़ारहा पेशवायाने कौम के तहे तेग़ हो जाने पर तनज्जुली की रफ्तार तेज़तर हो गई, और रफ्ता रफ्ता

नौबत यहाँ तक आ गई कि कौम के अन्दर न कोई धर्म का समझने वाला निगहबान रहा न तहज़ीब वा तमद्दन को हिफ़ाज़त का ज़िम्मेवार या पुरसाँ रहा। क़ौम से कर्म वा धर्म दोनों उठ गये। कौम बारह बाट हो गई।" क्या यहां हमें प्रश्न करने की आज्ञा होगी कि हिन्दू जाति को उस आत्मिक एवं मानसिक उन्नति के शिखर पर पहुंचाने का साधन क्या था? और वह धर्म जिसे समझने वाले महाभारत से पूर्व मौजूद और सर्व प्रकार की उन्नति के कारण थे, कौनसा था? आगे आप लिखते हैं, जिस कौम के सपूतों ने एक वक़्त रुए ज़मीन को तहज़ीब सिखा कर जानवर से इन्सान बनाया, और जिसके बुजुर्गों ने ज़मीन आसमान और उससे परे के तबक़ों के पोशीदा वा सरबस्ता राज़ दरियाफ्त करके अपनी औलाद की नहीं! नहीं! नोए इन्सान की, दीन व दुनिया की बहबूदी व राहबरी के लिये ऐसे क़वानीन वा ज़वाबत मुरत्तिब किये, जिसका नज़ीर दुनियाँ की किसी क़ौम की तारीख़ में नहीं मिलती" यहाँ सारे भूगोल को सभ्यता सिखाने का तात्पर्य, वैदिक सभ्यता के अतिरिक्त क्या हो सकता है? और पृथिवी से लेकर द्यौ लोक तकके गुप्त रहस्यों का ज्ञान अथवा पदार्थ विद्या, गणित विद्यादि सब विद्याओं के अतिरिक्त ज्योतिष विद्या का प्रकाश, व्यावहारिक तथा पारमार्थिक उन्नति, एवं पथ प्रदर्शन के नियम उपनियम का मानव धर्म शास्त्र जैसी रचनाओं के द्वारा प्रसार—सब कुछ वेदकी अद्वितीय महिमाका सूचक है क्योंकि इनसब विद्याओंके प्रकाशक तथा इन सब विद्याओं में कुशल और प्रवीण विद्वान एक स्वर होकर वेद को ही इन सत्य विद्याओं का आदि मूल बताते हैं। और क्या यदि आर्यसमाज वर्तमान मनुष्यों को पुनः उसी सभ्यता का प्रेमी बनाना चाहता है जिसने कभी सारे भूगोल को पशु से मनुष्य बनाया था और उन मनुष्यकृत मत

मतान्तरों के विरुद्ध आवाज उठाता है जिनके कारण भूगोल के पुनः मनुष्य से पशु बनने की सम्भावना है तो यह कोई उचित कारण उस पर आपके कुपित होने का हो सकता है ? और देखिये फूट वगैरह ने) "ऐसी मुन्तैखिबुलज़मान कौम को तरक्की के सातवें आसमान से गिरा कर ज़लालत के ग़ार में पहुंचा दिया। न राज रहा, न तहज़ीब रही, न इख़लाक़ रहा, न रूहानियत, फ़र्ज़ी क़िस्से कहानियाँ सुन कर दिल बहलाना, और नकली परमार्थ की रसमियात बजा लाना, अवाम का कर्म धर्म रह गया।" यहाँ स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि प्राचीन धर्म में सभ्यता, इख़लाक़, आत्मता, सब कुछ था, तथा वर्तमान मत मतान्तर नकली परमार्थ हैं। अब यह निर्णय पाठक करें कि राधास्वामी मत असल परमार्थ या प्राचीन वैदिक धर्म है, या नकली परमार्थ।

२५—पृष्ठ २१६ धारा २१४ में असली सनातन धर्म की तहक़ीक़ करते हुए चार बातें लिखी जो संक्षेप रूप से इस प्रकार हैं। (१) आर्य जाति जगत की एक प्राचीन उच्च जाति है। इसका प्राचीन धर्म इस प्रकार जाना जायेगा कि उसके वर्तमान धार्मिक विचारों की गङ्गा के आदि स्रोत तक पहुँचा जावे। अति प्राचीन हिन्दू जाति के आत्मिक प्रकाश ने पहिले पहिल आदि काल के सभ्य मनुष्य के मन को प्रकाशित किया, मज़हब या आत्मिक ज्ञान मानवीय आविष्कार नहीं, कुल मालिक का बहुमूल्य दान है। अतः अन्वेशणीय विषय यह है कि मनुष्य के होश सम्भालने और आत्मिक शिक्षा के योग्य होने तक पहिले पहिल और क्रमशः किस आत्म विद्या का साक्षातकार हुआ। (२) ऋग्वेद अत्यन्त प्राचीन धर्म पुस्तक कही जाती है। और हिन्दू लोग सदा से इसे अपनी पवित्र धर्म पुस्तक मानते हैं, अतः

आदिम आत्म शिक्षा का निर्णय ऋग्वेद के मन्त्रों से होगा। (३) वर्तमान काल के आक्षेपों अथवा उपालम्भों के भय व निजू सम्बन्धों से प्रभावित होकर अथवा वर्तमान अवस्थाओं वा रूढ़ियों के अनुसार वेदों के अर्थ न होंगे। किन्तु साधारण हिन्दू मन्तव्य के अनुसार प्राचीन ऋषि, महर्षि लोगों के समझे हुए अर्थों को मुख्यता दी जानी चाहिये। (४) आदिम काल के आर्यों को कुल मालिक ने आत्म शिक्षा दी जिसका अति प्राचीन रिकार्ड ऋग्वेद है। और ऋषियों ने इसका अर्थ ज्ञान पाकर सांसारिक मनुष्यों में इसे फैलाया अतः आवश्यक है कि सारी आर्य जाति के विचार, रहन सहन, और वेदों पर निरधारित विद्याओं तथा शिल्प विज्ञान संबंधी आविष्कारों और रीति नीतिमें इस ज्ञानकी झलक हो।

यह चार बात हैं जो साहिब जी महाराज के ज्ञान और विवेचना का परिणाम हैं। और इन में आर्य जाति की महिमा और कुल मालिक से उसे आत्म ज्ञान मिलने और उसी ज्ञान का नाम वेद होने का स्पष्ट वर्णन है।

२६—इन चार बातों से साहिब जी महाराज ने निम्न लिखित परिणाम निकाले हैं:—

(१) कुल मालिक की ओर से आत्म शिक्षा का प्रबन्ध पवित्र एवं प्रकाशित मन वा मस्तिष्क युक्त मेधावी व्यक्तियों के द्वारा होना जो इसे ग्रहण वा दान करने के योग्य हों।

(२) उन प्रतिष्ठित व्यक्तियों के द्वारा ईश्वरीय वाणी का यथार्थ अर्थ समझने और आत्मशिक्षा प्राप्त करने के योग्य बुद्धि तथा मस्तिष्क युक्त व्यक्तियों का होना (३) ईश्वरीय आज्ञा के प्राप्त होने से पूर्व प्राकृतिक दृश्यों के अध्ययन और सृष्टि के गुप्त रहस्यों की जांच के लिए मन और मस्तिष्क लगाये रखनेसे धार्मिक विषयों में रुचि होना, (४) अन्वेषणके लिए उचित एवं पर्याप्तसाधन न होने

से सर्वसाधारण के मनों में अनेक विषयों के सम्बन्ध में मिथ्या विचारों एवं भ्रम भावों का होना।

(५) आत्म शिक्षा के लिए चुने हुए प्रतिष्ठित व्यक्तियों और कुल मालिक में परस्पर आवरण रहित सम्बन्ध होने का विशेष प्रबन्ध होना।

(६) मनुष्यों में साधारणतः इस प्रकार का सम्बन्ध स्थिर होने की योग्यता होना।

(७ कुल मालिक के सर्व ज्ञान युक्त एवं सर्वज्ञ होने से उसकी ओर से मिली हुई आत्मशिक्षा का अति सरल स्पष्ट, प्रकाश युक्त सन्तोषजनक, एवं आह्लादिक होना और उससे उन लोगों की कठिनाइयों का दूर होना।

(८) उनकी मनोवृत्तियो में परिवर्तन होने के कारण सारी जाति के जीवन तथा विचारों में प्रत्यक्ष क्रांति का प्रगट होना।

(९) कुछ मनुष्यों का नया पाठ सीखने के अयोग्य होने से पहिले मन्तव्यों वा विचारों ही पर आरूढ़ होना।

(१०) नए पाठ के पश्चात् जाति के अन्दर धार्मिक विचारों के साथ साथ तीन लहरें मौजूद होना, प्रथम उच्च एवं यथार्थ विचारों की लहर जो ईश्वरीय ज्ञान के अनुसार तथा नए पाठ के प्रभाव से चुने हुए व्यक्तियों के मनों में स्थिर हुई। द्वितीय, पूर्व से मौजूद मन्तव्यों तथा विचारों की लहर जिनका हठ धर्मी लोगों ने त्याग न किया, और तृतीय पूर्ववर्त्तीय तथा नवीन दोनों प्रकार के विचारों की मिश्रित लहर।

(११) आदि स्रोतसे चलकर नदियोंके जलमें जैसे कूड़ा करकट आदि मिलते जाते हैं, वैसे ही तीनों धारोंमें मिलावट होते जाना।

(१२) इस मिलावट को दूर करने और भावी आत्म पाठ पढ़ाने के लिए इसी प्रबन्ध का पुनः पुनः दोहराया जाना।

(१४) इस प्रकार के आत्मिक पाठों के प्रचार करने वाले प्रतिष्ठित व्यक्तियों की यथार्थ शिक्षा में प्रत्यक्ष समानता होना, और प्रत्येक नवीन महापुरुषों की शिक्षा से प्राचीन पुरुषाओं की शिक्षा की पूर्ति होना।

(१५) आत्म शिक्षा का प्रबन्ध विशेष रूप से हिन्दुओं के लिए ही न होना, किन्तु दूसरी जातियों को भी आत्मिक शिक्षा का प्राप्त होना।

(१६) आत्मिक शिक्षा का स्रोत एक ही होने से सब मतमता-न्तरों की शिक्षा में प्रत्यक्ष समानता का होना।

(१७) आर्यों के असली सनातन धर्म और सब जातियों की विशेष मजहबी वा रूहानी तालीम में सादृश्यता होना।

२७—सतसङ्गी भाई धारा २५ को चारों बातों और धारा २६ के सत्तरह परिणामों को विचारपूर्वक पढ़ेंगे, तो न केवल वेद के ईश्वरोक्त होने पर साहिब जी महाराज का विश्वास सिद्ध होगा, वरन् दो तीन शब्द मात्र के भेद को छोड़ कर आर्यसमाज के पक्ष की पूर्ण पुष्टि होगी, जो क्रमशः इस प्रकार है:—

(१) ईश्वर से अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा को इलहाम द्वारा यथार्थ ज्ञान मिला वे ही इसके ग्रहण करने के योग्य थे।

(२) इन आदिम ऋषियों से एक एक वेद पढ़कर चार वेद के ज्ञाता ब्रह्मा पदको प्राप्त हुए।

(३ वेद ज्ञान के द्वारा मानव जाति में सर्वतन्त्र सिद्धान्तों की परख एवं धर्म कर्म की ओर रुचि हुई।

(४) अयोग्य एवं अनधिकारी लोग अनेक विषयों में मिथ्या मन्तव्यों तथा भ्रान्ति का शिकार हुए।

(५ आदिम ऋषियों ने बिना किसी अन्य माध्यम के सीधा परमात्मा से अपने आत्मा में ज्ञान का प्रकाश पाया।

(६) प्रत्येक मनुष्य में स्वाभाविक यह योग्यता है कि वह सीधा परमात्मा से योग अथवा विद्या का प्रकाश प्राप्त कर सके।

(७) ईश्वर सर्वज्ञ है अतः उससे प्राप्त हुआ वेद ज्ञान स्वतः प्रमाण, निर्भ्रान्त एवं परम प्रमाण है।

(८) इस ज्ञान के द्वारा मनुष्यों को विद्या वा बुद्धि की दृष्टि से भारी पल्टा मिलता है।

(९) अयोग्य मनुष्य वेद का प्रचार होने पर भी अपने पहले मन्तव्यों व विचारों पर हट करते हैं।

(१०) जब भी अविद्या की वृद्धि होने पर सत्य धर्म का प्रचार होता है तो तीन प्रकार की लहरें चलती हैं। एक तो केवल वैदिक सिद्धान्तों की लहर, दूसरी मिथ्या मन्तव्यों तथा भ्रम जाल सम्बन्धी हट वा दुराग्रह की लहर और तीसरी दोनों प्रकार के विचारों की मिली जुली लहर।

(११) फिर इन तीनों प्रकार की लहरों में भी देश व काल की अवस्थाओं के प्रभाव से परिवर्तन होते जाते हैं।

(१२) इन मिलावटों तथा परिवर्तनों के प्रभाव को दूर करने के लिए प्रत्येक विचार के मानवीय समुदायों में सुधारक होते हैं। एक दो बार नहीं सदैव यह प्रवाह चला जाता है कि धर्म की शुद्ध अवस्था को स्थिर रखनेके लिए महान आत्माओं का प्रादुर्भाव हो।

(१४) प्रत्येक काल के प्रचारकों की शिक्षा पूर्वीय प्रचारकों के अनुकूल होती है, अथवा आधुनिक उपदेशक लोग प्राचीनों की शिक्षाको प्रमाणित करने वाले होते हैं।

(१५) ईश्वरीय ज्ञान केवल आर्य जाति ही के लिए नहीं वरन् सब अवस्थाओं तथा समुदायों के लिए है।

(१६) मत मतान्तर कितने भी अधिक संख्या में हैं

आदि स्रोत सब का वेद ज्ञान ही है, इसलिए सत्य सब में व्यापक है।

(१७) आर्यों के असली सनातन धर्म और संसार की समस्त जातियों की विशेष मज़हबी अथवा रूहानी शिक्षा में इसी कारण से पारस्परिक समानता एवं सादृश्यता है।

२८—पृष्ठ १९ धारा २१६ में धारा संख्या २५ वाली ४ बातों के विषय में वेद विरोधियों के ऐतराज़ लिखे गए हैं:—

(१) 'बहुत लोग मज़हब अथवा ज्ञान को आत्म शक्ति का दान स्वीकार नहीं करते।' (यहां मज़हबको स्पष्टरूप से ज्ञान का पर्याय कहा गया है। अतः यह सिद्ध है कि हमने आरम्भ से ही आपका यथार्थ आशय कथन किया है।)

(२) अनेक मनुष्य कहते हैं कि वेद में बच्चों की सी बातें भरी हैं। उनके मन्त्रोंके संगत अर्थ निकालने और उनसे किसी आत्मिक शिक्षा का पता चलाने के लिए यत्न करना पत्थरों से तेल निकालने का परिश्रम करना है

(३) वेदमन्त्रों के सर्व प्रथम अर्थ जानने वाले ऋषियों की कोई प्रमाणिक पुस्तक नहीं मिलती, क्योंकि तब न काग़ज़ क़लम, दवात, थी और न लेखनकला।

(४) आर्य (हिन्दू) लोग वेदकी रचना आदि कालसे मानते हैं। अर्थात् लाखों बल्कि करोड़ों वर्षों से, परन्तु पुरानी से पुरानी किताबें पांच सहस्र वर्ष की मिलती हैं। अतः उससे पूर्व की खोज नहीं हो सकती, और सनातन धर्म की यथार्थ स्थिति का अन्वेषण करना व्यर्थ है।

२९—यह आक्षेप लिखकर साहिब जी महाराज स्वयं, वेद के पक्ष में खड़े होते हैं। और फ़रमाते हैं, कि आक्षेप निर्मूल है। कतिपय मनुष्य तो मरण पर्यन्त ऐतराज़ ही करते हैं, क्योंकि

हमारा लक्ष यथार्थ अनवेशन के द्वारा किसी लाभकारी परिणामपर पहुंचने का है। शाब्दिक कुचक्र अथवा समय नष्ट करने में प्रयोजन नहीं। अतः संक्षिप्त रूप से उत्तर देते हैं।

(१) पहिला आक्षेप प्रसिद्ध पाश्चात्य फ़िलोस्फ़र बर्टरैंडरसल के इन शब्दों के आधार पर किया है कि—"मज़हब एक रोग है, जो कि भयके कारणसे पैदा होता है, और मनुष्यके लिये अकथनीय विपत्तियों का कारण है, अतः किसी परोक्ष शक्ति की ओर से किसी प्रकाश या साक्षात्कारका विचार असत्य है।" इसका उत्तर यह है कि मनुष्य के शरीर की भांति उसका मन भी कुछ रोगों का शिकार होता है। और उनमें से एक रोग अहङ्कार है। जो कई प्रकार का होता है। जैसे आजकल पाश्चात्य और उनकी छूत से कतिपय पूर्वीय लोग भी प्रायः इस रोग में फंसे हुए हैं। और इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाले तथा तीन ताप की सीमा से सीमित (Three Dimensional Knowledge) विद्या आवश्यकता से अधिक निगलकर और उसे विद्या की अन्तिम पराकाष्ठा मानकर प्रत्येक ऐसे विषय के सम्बन्ध में जिसका उन्हें अनुभव नहीं है अनुचित शब्द कहते हैं। पाश्चात्य मित्र, उस इन्द्री को जगावें, जिससे उस परोक्ष शक्ति का ग्रहण होना सम्भव है। और फिर उसके होने न होने तथा उसके नियम उपनियमादि के विषय में कोई सम्मति प्रगट करें। जो सज्जन इन्द्रियों से प्राप्त होनेवाले ज्ञान से परे जाना नहीं चाहते, उनके लिये ना ईश्वर है, ना आत्मता है, और ना मज़हब वा आत्मशिक्षा है। क्या हज़रत मसीह अथवा किसी अन्य मज़हबी गुरु अथवा मज़हब पर बलिदान होनेवाले लाखों मनुष्यों में से किसी एक व्यक्ति ने अपने समय के जगत् प्रेमियों से कठिन से कठिन कष्ट दिये जाने पर एक क्षण के लिये भी किसी प्रकार का भय प्रगट किया यदि ऐसा नहीं हुआ तो

फिर वह किस आधार पर मज़हब को भय की उपज ठहराते हैं। मज़हब वास्तव में एक अद्वितीय अतिथि सत्कारी है। यहाँ तक कि सच्चे ईश्वर प्रेमियों के अतिरिक्त पापी मनुष्य भी आपत्ति के साधन पैदा करके जब कहीं रक्षा नहीं पाते, तो मज़हब का ही द्वार खट-खटाते हैं। तब यह उनका प्राचीन मित्र उनके दोषों का ध्यान न करके उन्हें उदारता पूर्ण सहायता देता है। और चूंकि मनुष्य के पुराने अभ्यास वा त्रुटियां एकदम दूर नहीं होतीं, इस लिये उनके किसी दोष के प्रगट होने पर परिणाम निकलता है। मज़हब भय के कारण से पैदा होता है। परन्तु जैसे औषधालय, औषधिनिदान, स्वीटज़रलैंड आदि रमणीक स्थान शारीरिक रोगों की उपज नहीं कहे जा सकते, अथवा जैसे स्वास्थ्य बिगड़ जाना हस्पतालादि के जल, वायु के कारण नहीं समझा जा सकता अथवा, जैसे कूप पिपासा की उपज नहीं है वरन् रोग वा पिपासा को दूर करने का साधन है। ऐसे ही मज़हब मानवीय त्रुटियों की उपज नहीं, उन का निदान है। मनुष्य की कायरता वा दुर्बलता का हेतु अविद्या जन्य सांसारिक पदार्थों की ममता असार जीवन से प्रेम तथा राज्य वा सृष्टि के नियमों का भंग करना है और जब इसके फल रूप में सांसारिक पदार्थों से विवश होकर पृथक होना अथवा कानून के फ़ौलादी पंजे में पकड़े जाने का अवसर आता है वह कायरों की भांति जान छिपाने को इधर उधर दौड़ता है। पर मज़हब के प्रेमियों को न सांसारिक पदार्थों के वियोग का दुःख होता है, न कानून की पकड़ का भय। अतः वह कठिन से कठिन वाह्य विपद में भी हंसमुख यहाँतक कि कूच करते हुए भी अतिशय शान्त रहते हैं। इस उत्तर के अन्तिम भाग का भावार्थ यह है कि इस रचना के पीठ पीछे आत्म शक्ति है। सूर्य्य चन्द्रादि की भांति मनुष्यो-

त्पत्ति में भी विशेष रहस्य एवं विज्ञान काम कर रहा है। और इसी रहस्य का तकाज़ा है कि मनुष्य इस गुप्त शक्ति से धीरे धीरे जीवनोद्देश्य की ओर बढ़ता जाये। मज़हबी दुनियां एक स्वर हो कर कहती है कि मानव जाति को जीवनोद्देश्य की ओर ले जाने वाले प्रबन्धका ही नाम मज़हब है और प्रकृतिके अन्य प्रसिद्ध दानोंकी भांति यह प्रबन्धभी एकदान है। रही यह बात जो प्रायः पाश्चात्य लोग कहते हैं कि वेदों में बच्चों की सी बातें भरी हैं। इसका उत्तर यह है कि—"बच्चोंकी बातें सदा निर्दोष एवं छल छिद्रादि से रहित होती हैं। अतः यदि वेद मन्त्रों के क्रमबद्ध एवं संगत अर्थ ना भी विदित हो सकें, तो भी इनके स्वाध्याय से वैदिक काल के हिंदुओं के मन्तव्यों का बहुत कुछ पता चल सकेगा। आप को विदित रहना चाहिये, कि सचाई सदैव सीधे सादे शब्दों में वर्णन होती है, और होती रहेगी, इसे अपने प्रकाश के लिये, न किसी कृत्रिम सौंदर्यादि अथवा शोभा की आवश्यकता है, और न व्याकरण के नियमों की अधिक परवाह। इसे आवश्यकता केवल सादा शब्दों, सुगम वाक्यों, नित्य प्रति के अलङ्कारों और लोक प्रसिद्ध लोकोक्तियों की है। चुनाचे आपको प्रत्येक जाति की धर्म- पुस्तक में प्रायः इनका प्रयोग मिलेगा"।

साहिब जी महाराज की बड़ी कृपा होती यदि वह वेद को इसके हाल पर छोड़ते, अथवा आर्यसमाज को इन प्रतिवादियों से निपटने देते तथापि आपने जो कष्ट गवारा फरमाया है, उसके लिए कृतज्ञता प्रकट करना हमारा कर्त्तव्य है। हम समझते हैं जिस पुस्तक का उद्देश्य वेद के सम्बन्ध में शङ्काओं एवं भ्रांतियों का फैलाना समझा जाता है। उसमें इतने और इस प्रकार के Defence का मौजूद होना भी हज़ार ग़नीमत है। और हम इस वचन के साथ आपकी इस कृपा का स्वागत करते हैं। हर्चे अज़ दोस्त मेरसदनेकोस्त। जो कुछ मित्र से पहुँचता है भला ही है।

३०—राधास्वामी मत की कोई प्राचीन धर्म पुस्तक नहीं, इस मत को शिक्षा की सत्यता की जांच स्वयं राधास्वामी सत्सङ्गी अपने किसी मान्य प्रामाणिक ग्रंथसे कर नहीं सकते। इस मौलिक त्रुटिपर पर्दा डालनेके लिए दो नियम घड़े गए हैं, एक तो संतमतके नाम से यथार्थ सच्चाइयों के गुप्त परम्परागत (सीना बसीना) आने का और दूसरा ज्ञानके मानवीय अनुभव और वेदके ऋषियोंके पुरुषार्थ का परिणाम होने का इन दोनों विचारों के अत्यन्त असत्य एवं अयुक्त होने का, वर्णन अगले अध्यायों में आयेगा, और सिद्ध होगा कि अनुमानिक बातों और कल्पित एवं मनघड़न्त इतिहासों की शरण लेने से और अन्धविश्वासी अथवा सरल हृदय सत-सङ्गियों की ओर से घोर विरोध या आक्षेप न होने पर भी साहिब जी महाराज अपने अन्तिम विचार को सर्वथा छिपा वा दबा नहीं सकते और स्थान स्थान पर आपकी लेखनी से बहुत कुछ लिखा जाता है जो वेद को ईश्वरोक्त और सृष्टि के आदि से मिला हुआ सिद्ध कर सकता है। पृष्ठ २३६, धारा २२५ से अपने स्वभावानु-सार एक पेचीदा लेख लिखने के पश्चात् आप फरमाते हैं—"यह सब तैयारी होने पर सृष्टि नियमों ने प्रबन्ध किया कि इस जाति के अन्दर ईश्वर कोटि जीव कलाधारी सूरतें अर्थात् ऐसे आत्मा जन्म धारण करें कि जिनके अन्दर उच्च आत्मता जागृत हो चुनाचि ऐसा ही हुआ और भारत भूमि पर प्रथम सच्चे ऋषि ने पग रखा, देश के अन्दर रूई, दीपक और तेल उपस्थित थे, प्रकृति ने तीनोंको एक स्थानमें एकत्रित कर दिया और कुल मालिक ने ब्रह्माण्ड के आत्मिक स्थान की एक विशेष आत्मिक किरण उतार कर यह दीपक प्रकाशित कर दिया और देश के अन्दर प्रथम बार यथार्थ आत्मता का चांदना हो गया। और जैसे एक प्रज्वलित दीपक के द्वारा बीसियों दीपक रोशन हो जाते हैं, एक

सच्चे ऋषि के द्वारा शतशः सच्चे ज्ञानी पैदा हो गए।" जादू वह जो सर चढ़कर बोले, साहिबजी महाराज उस सच्चे ऋषिका नाम फुटनोट में ब्रह्मा बताते हैं। यह ब्रह्मा शब्द आर्यजाति के मुखिया की उपाधि है। चार वेद का ज्ञाता ब्रह्मा कहाता है। वह (१) एक सच्चा ऋषि है (२) वह ज्वलन्त दीपक है (३) कुल मालिक उस दीपक का प्रकाशक होता है (४) विशेष आत्मिक स्थान की ज्वलन्त किरण अथवा ईश्वरीय ज्ञान से यह दीपक प्रकाशित होता है (५) चार वेद के ज्ञाता ब्रह्मा के द्वारा सैकड़ों ज्ञानी पैदा होते हैं और (६) वह ज्ञानी सच्चे ज्ञानी और आर्य जाति के लिए गर्व का कारण हैं। तब फरमाइये ईश्वर से इल्हाम के द्वारा वेद का आत्मा में प्रकाशित होना किस प्रकार सन्दिग्ध हो सकता है। और अब सत्सङ्गियों के लिए कौनसी कठिनाई है जिसके कारण वह आर्यों के सदृश वेद की इज्जत करने से लाचार है, और जब ब्रह्मा के ज्ञान को यथार्थ आत्मिक प्रकाश मान लिया गया तो कसर क्या रही।

३१—इससे पूर्व साहिबजी महाराज की कथन की हुई चार बातें और उनसे निकाले गए सत्रह परिणाम उद्धृत करके हम ज़ाहिर कर चुके हैं कि अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा पर वेद का प्रकाश होना और उनसे ब्रह्मा का चार वेद का ज्ञान प्राप्त करना स्पष्ट विदित है। जैसाकि आर्यसमाज मानता है, परन्तु उपरोक्त उद्धरणमें यदि किसी अयुक्त व्याख्या से चार ऋषियोंकी जगह ईश्वर से वेद का ब्रह्मा पर प्रकाश होना माना जावे तो यह सनातन धर्म सभा के मन्तव्य के अनुकूल है, सार यह है कि किसी भी तावील से वेद के ईश्वरोक्त होने में कोई सन्देह नहीं रह सकता। तथा यह कहना कि रूई, तेल और दीपक के विद्यमान होने पर आत्मज्ञान का चांदना हुआ आर्यसमाज के इस सिद्धान्त की ही

पुष्टि करता है कि आदि काल में ऋषियों की विशेष योग्यता ही उन पर वेद के प्रकाश होने का कारण बनी।

३२—न केवल वेद के ईश्वरोक्त होने को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। आपने कहीं भी स्पष्ट रूप से वेद के अनीश्वरोक्त होने अथवा उसे मनुष्यकृत सिद्ध कर दिखाने का बीड़ा नहीं उठाया, हां जहां कहीं बल दिया है, इस बात पर दिया है कि वेदों के यथार्थ अर्थ को हम जान नहीं सकते। वैदिक धर्मी विद्वान वेद मन्त्रों के भिन्न भिन्न अर्थ देते हैं तो हम किसे सत्य समझें और किसे असत्य अथवा यह कि विशेष कारणोंसे सत्संगी यह विश्वास कर सकता है कि वर्तमान वेद सम्भव है कि असल न हों क्योंकि वेद की हज़ार से अधिक शाखा हैं। प्रत्येक शाखा का पृथक ब्राह्मण ग्रन्थ पृथक् निघण्टु है, अथवा यह कि अनेक भाष्यों में सभ्यता के विरुद्ध शब्द मिलते हैं परन्तु इन सब का उत्तर फ़ार्सी कवि के इस प्रश्न में आ जाता है कि—

गर न बीनद बरोज़ शपरा चश्म, चश्मए आफ़ताब राह चे गुनाह

अर्थात् यदि दिन को चमगादड़ की आंख नहीं देखती तो सूर्य का इसमें क्या दोष। हम जहां साहिबजी महाराज के लेख में सामूहिक रूप से संजीदगी पाकर उन की प्रशंसा करते हैं। वहां आपकी इस रचना के एक प्रत्यक्ष दोष की मज़म्मत किए बिना भी नहीं रह सकते और वह यह है कि आपने बिना किसी विशेष प्रतिज्ञाके तथा बिना विचारे अकारण ही सत्सङ्गियोंके हृदयमें संशय भरने का प्रयत्न किया है। आप स्वयं वेदका अर्थ कर नहीं सकते। ऋषियों वा पण्डितों के अनुवादों की पारस्परिक अनुकूलता वा प्रतिकूलता में अन्तर नहीं कर सकते, तो विचारे सत्संगी वेद के सम्बन्ध में आप से क्या सहायता पा सकते हैं। इस दशा में वह रोग उनके मनों में बैठाना जिसकी कि चिकित्सा आप स्वयं नहीं

कर सकते केवल सत्सङ्गियों को उस दुर्भाग्य का निशाना बनाना है जो गीता के इस प्रसिद्ध वाक्य में वर्णन किया है कि "संशयात्मा विनश्यति"।

३२—यहां एक उदाहरण आपके लेखका पेश करना आवश्यक है। जिससे हमारा उपरोक्त कथन सत्य सिद्ध होगा "किसी साधारण बुद्धि वाले आर्य (हिन्दू) के लिए यह मानना कठिन अपितु असम्भव हो गया कि ऋषियों का सिखाया हुआ सनातन धर्म क्या है और वह सच्चा व ख़ालिस आत्मिक उपदेश जिसके पृथ्वी पर उतारने और दिलाने के लिए ईश्वर कोटि जीव और ब्रह्म-लोक निवासी ऋषियों को भौतिक शरीर धारण करना पड़ा था। स्वार्थान्ध मनुष्यों के दुर्व्यवहार एवं कुरीतियों के प्रभाव से उनके चलाये हुए पाखण्डों तथा मिथ्या भ्रमजाल की धूली व गुबार के नीचे दब गया। आप ही विचारें कि यदि जिस रूप में वेद आज-कल मिलते हैं उसी रूप में ईश्वर की ओर से प्रकाशित हुए थे और मानवी हाथ ने उन्हें स्पर्श नहीं किया तो उनके अन्दर ऐसी गन्दी, अश्लील, असभ्यतापूर्ण और बुद्धि के विरुद्ध बातें जिनके उदाहरण पिछले पृष्ठों में पेश हो चुके हैं कहां से आ गई।"। इस उद्धरण से आपका विश्वास, आदिम इल्हाम पर दृढ़ सिद्ध है और यह भी प्रत्यक्ष है कि वह इल्हाम आप ईश्वर कोटि जीवों और मुक्त ऋषियों से सम्बन्ध मानते हैं तथा यह कि वह ऋषि आत्मा सृष्टिके आदि में भौतिक शरीर धारण करते ईश्वरीय ज्ञान पाते और मानव जाति में उसका प्रचार करते हैं। साथ ही वह ज्ञान आपके विचार में सच्चा और ख़ालिस आत्मिक उपदेश है। अर्थात् वेद के प्रकाशित होने का रहस्य और उसके अद्वितीय गुण सब आपको स्वीकार हैं, अब प्रश्न यह है कि आप में और हम में भेद किस बात का है, इसका उत्तर यह है कि आप यह मानते हैं कि

वह उपदेश स्वार्थान्ध एवं कुटिलता युक्त मनुष्यों के पाखण्ड तथा भ्रम जाल की धूली वा गुबार के नीचे दब गया है, हम कहते हैं कि ऐसा ही है तो उस धूली वा गुबार को हटा दो। हमें आज्ञा दो तो हम सहयोगके लिये हाज़िर हैं। प्रायः ऐसा होता है कि जब मकान गिरताहै तो प्यारे सम्बन्धी तथा धन-माल, मिट्टी ईंट, शहतीरादिके भार के तले बुरी तरह दब जाता है तो आख़िर उसे ज्यों त्यों निकाला ही जाता है। यह तो शूरवीरता नहीं कि अवस्था बदलने पर हम भी भीरू और कायर होकर कठोरता वा निर्दयता से काम करें, अथवा मरे को मारने लगें, हम दुर्जनतोष न्याय से मान लेते हैं कि आप यह विश्वास करने में सत्य पर हैं कि वर्तमान वेद आदि काल के आत्मिक उपदेश यथार्थ रूप को प्रकट नहीं करते और अवश्य इनमें मानवीय हस्तात्तेप हुआ होगा, परन्तु क्या हमारा यह हक़ नहीं कि हम इस के स्पष्टीकरण के लिए इसे युक्ति और परिमाण से सिद्ध करने का कष्ट दें अथवा क्या! आप का यह कर्त्तव्य नहीं कि जिस सचाई का आप पर प्रत्यत्त हुआ है उससे आप हमारा भी उपकार करें। साहिबजी महाराज कहेंगे कि इसी कर्त्तव्य पूर्ति के फलरूप में ही तो हम वर्तमान वेदों के अन्दर गन्दी, अश्लीलता, असभ्यतापूर्ण एवं बुद्धि विरुद्ध बातें दिखा रहे हैं। हम कहते हैं श्रीमान् जी आपने वर्तमान वेद के किसी भी मन्त्र में कोई भी दोषयुक्त बात यथार्थ प्रकाश के तीनों भागोंमें नहीं बताई। आप नक़ल कर रहे हैं टीकाओं वा भाष्यों के वाक्य और इन टीका-भाष्यादि को आप स्वयं एक दूसरे से भिन्न तथा परस्पर विरुद्ध बताते और इसी कारण से इस सशोपञ्ज में हैं कि किसे मानें और किसे न मानें, ऐसी अवस्था में न्याय से कहिये कि आपकी सम्मति हमारे अथवा किसी भी और मनुष्य के लिए क्या वज़न रख सकती है। सन्दिग्ध अवस्था है, टीका वा भाष्य की

दोपयुक्त बातें हैं उन्हीं टीका वा भाष्यों की जिन्हें आप विश्वासपात्र नहीं समझते, तब मूल वेद पर उनके दोषों का प्रभाव क्या ? आप कहेंगे कि टीका वा भाष्य भी तो वेद के हैं और मूल वेदों को हम समझ नहीं सकते, इस पर हमारा निवेदन यह है कि योग्यता का अभाव तो हो आपकी अपने पवित्र व्यक्तित्व में और वेद को न समझ सके आप की बुद्धि अथवा आपकी स्रुत और इसका दण्ड भुगतें मूल वेद, और अपने सत्संगियों को आप जुदा करें वेद के सच्चे और निरपराध भक्तों से यह कहां का न्याय ? कहा की बुद्धिमत्ता और कहां की ईमानदारी है ? प्रेम और भक्ति के शब्द तो बहुतेरे सुने थे, परन्तु श्रीमानों का प्रेम पंथ तो हमें बहुत मंहगा पड़ रहा है, हम फिर मान लेते हैं कि आप यह विश्वास करने में सचाई पर हैं कि वर्तमान वेद अवश्य मानवीय हस्ताक्षेप का शिकार हैं परन्तु क्या हमारा यह कहना सत्य नहीं होगा कि ईश्वर और मनुष्य की कारीगरी में पृथ्वी आकाश का अन्तर है। अतः कितना स्रुत शब्द अभ्यास करने पर भी यदि आप एक दो मन्त्र के सम्बन्ध में छाती पर हाथ रखकर अब तक यह घोषणा नहीं कर सके कि यह मनुष्यकृत है, इसका ईश्वरोक्त होना असम्भव है, तो केवल आपके सन्दिग्ध संशयात्मक, निरर्थक, युक्ति शून्य, परिणाम शून्य कारणों को जो मनुष्य तनिक भी वज़न देता है केवल अपनी मानसिक पराधीनता, अन्ध विश्वास एवं पक्षपात का परिचय देता है।

३४—उपरोक्त शब्द लिखते हुए हमें ख्याल आता है कि जब सब मतवादी मज़हबी पुस्तकों की टीकाओं तथा भाष्यों के आधार पर ही आलोचना कर रहे हैं। विपक्षी किसी मत के अनुयायियों से सुने सुनाए वचनों को ही उस मत की शिक्षा समझ सकते हैं और वेद के प्रचलित भाष्यों अथवा वैदिक धर्मियों के मन्तव्य

सुनकर तथा रीति नीति को देखकर ही बौद्धोंने यहां तक कहा और हमने सुना कि तीनों वेदों के रचने वाले भाण्ड, धूर्त और निशाचर हैं, तो साहिबजी महाराज का असल वेद को मानना और प्रचलित वेद अथवा भाष्यों के सम्बन्ध में शङ्का करना, इतना नागवार क्यों गुज़रा। हमारा उत्तर यह है कि साहिबजी महाराज ने असल वेद अथवा आदि सृष्टि के सच्चे और शुद्ध आत्मिक उद्देश्य को मानकर अपने उत्तरदायित्व को बुद्धादि से विशेष स्थिति दी है। आर्य समाज के माने हुए वेदों के सम्बन्ध में संशयात्मक स्थिति लेना केवल तभी उसी अवस्था में उचित हो सकता है कि (१) आप किसी पुस्तक को अपने पूरे ज्ञान और विश्वास के साथ असली और सच्चे आत्मिक उपदेश के रूप में इस दावे के साथ पेश करें कि यह है वह आदिम इल्हाम और चूंकि प्रचलित वेद में तुलनात्मक दृष्टि से दोष वा भेद हैं, अतः वह सन्दिग्ध है। (२) आप किसी मन्त्र के असल शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में दावा करें कि जो अर्थ हम समझते हैं उसके बिना और अर्थ होना असम्भव है और चूंकि इन अर्थों में अमुक २ दोष सिद्ध होते हैं। अतः आधुनिक वेद में यह मन्त्र प्रक्षिप्त है और (३) यह भी हो सकता था कि आप भिन्न भिन्न टीकाओं में से किसी एक के सत्य सिद्ध कर के उस के आधार पर वेद के ज़िम्मे कोई दोषारोपण करते परन्तु ऐसा कोई भी मार्ग न पकड़ कर केवल यह कहना कि टीका वा सम्मतिमें मत भेदादि देखकर हमारे सत्संगी वेदका मान न करने पर बाधित हैं अथवा हम आधुनिक वेदसे उन्हें दूर रखनेमें सच्चाईपर हैं किसी प्रकार युक्तियुक्त नहीं होसकता।

३५—आपकी इस त्रुटि के होने पर भी हमें हर्ष है कि सिद्धांत रूप से आप हमारे साथ वेद के इश्वरोक्त होने अथवा कुल मालिक की ओर से सच्चा और पवित्र आत्मिक उपदेश मिलने में सहमत हैं। यहाँ तक असली सनातन धर्म के विषय को समाप्त करते

हुए बहुत से वेद मन्त्रों और उपनिषद मन्त्रों का अनुवाद देकर पवित्र और सच्चे आत्मिक उपदेश का आदर्श दिखाते हैं और इस शिक्षा की प्रशंसा करते हुए आप व्यवस्था देते हैं कि "अल-ग़रज़ यह है वह शाहराह जिस पर सच्चे ऋषि खुद चले और जिस पर चलने के लिए वह ब्रह्म दर्शन के अभिलाषियों को मशवरा देते हैं।" इस के साथ ही पृष्ठ २८६ पर आप के यह शब्द विचारणीय हैं कि "मनुष्य के आत्मा को उच्च शिखर पर पहुँचाने के साधन को योग साधन कहते हैं। और जो मार्ग अथवा पंथ मनुष्य शरीर के अन्दर आत्मा के निवास स्थान से चलकर आत्म ज्ञान के भण्डार तक पहुँचता है उसको मज़हब कहते हैं।" सारांश यह है कि साहिब जी महाराज के पहिले वाक्य में जिस अमूल्य वस्तु को मज़हब अथवा परमार्थ की संज्ञा दी गई है उसे वह सन्मार्ग, पंथ, आत्मज्ञान के भण्डार तक पहुँचने का साधन सच्चे ऋषियों के ज्ञान और आचार वाला महान पथ, सच्चा और पवित्र आत्म उपदेश, असली वेद, प्रकाशित दीपक यथार्थ आत्मता का चांदना, निर्दोष, छल छिद्र रहित सच्चाई, जीवनोद्देश्य की पूर्त्ति का प्रबन्ध, आदि काल से योग्य और महामान्य व्यक्तियों पर प्रकट हुआ, ईश्वरीय ज्ञान, ब्रह्मादि से प्रचार किया गया, सच्चा धर्म मनुष्य जाति के आदिम पुरुषाओं अथवा आर्यजाति को आत्मिक और मानसिक उन्नति और कल्याण के उच्च से उच्च शिखर पर पहुंचाने वाला ज्ञान इत्यादि २ उत्तम नामों तथा गुणों से सुशोभित करते हैं। अब राधास्वामी सत्सङ्गी भाई स्वयं निर्णय करें कि मज़हब या परमार्थ से वेद, अथवा वैदिक धर्म का भाव होने में हम सत्य का प्रकाश करते हैं, अथवा असत्य भाषण के दोषी हैं।

सर्ग ३ —शब्द की महिमा का यथार्थ भाव

३६—राधास्वामी मत में शब्द की महिमा बड़ी महान है। कान बन्द करके विशेष साधन द्वारा आन्तरिक शब्द को सुनना इस मत में भक्ति का उच्चतम आदर्श है। जैसाकि साहिबजी महाराज ने १८२६ पृष्ठ तक शब्द के शीर्षक से एक विशेष लेख लिखा है जिसके अन्त में सार वचन नज़म शब्द २ वचन ९ की यह तुकें दी हैं:—

शब्द नें रची त्रिलोकी सारी, शब्द से फैली माया भारी ॥१॥
शब्दनें अराड ब्रह्माराड रचारी, शब्दसे सात दीप नौखंड बनारी ॥२॥
शब्दने गुग और प्रजा धारी, शब्द से धर्ण आकाश खड़ा री ॥३॥
शब्दने जीव और ब्रह्म कियारी, शब्दसे चांद और सूर भयारी॥४॥
शब्दने सुन्न महासुन्न संवारी, शब्द ने चौथा लोक कियारी ॥५॥
शब्दही घट घट करे पुकारी, शब्द फिर अलख अगम से न्यारी ॥६॥
शब्दसे खाली कोई न रहारी, शब्द सब ठौर ठिकाने भरा री ॥७॥
शब्दकी महिमा क्या कहूँगा री, शब्दको जैसे बने तैसे पारी ॥८॥
गुरु अब कहत हेला मारी, शब्द बिन कोई न करे उपकारी ॥९॥
शब्द में सुरत लगाकर भारी, शब्द ही चेतन करे उजारी ॥१०॥
शब्दकी करनी करो सदारी, शब्द बिन खुदी न जाय तुम्हारी ॥११॥

३७—यह शब्द का सारा पसारा वास्तव में वैदिक सिद्धान्त की महिमा का ही सूचक है। वेदादि सत्य शास्त्रों में ईश्वरीय ज्ञान को देव वाणी, देव काव्य आदि अनेक नाम दिए हैं और इसे शब्द भी कहा है। वेद ज्ञान जिसका आत्मा में प्रकाश हुआ,

शब्द, अर्थ और सम्बन्ध के रूप में था, इनमें से शब्द भाग दूसरों तक सच्चे ज्ञान के संकेत पहुंचाने का साधन है और यह जिह्वा से बोला जाने के कारण वाणी, कान से सुना जाने के कारण श्रुति कहलाता है। इसी शब्द भाग के अर्थ और सम्बन्ध का ज्ञान आत्मा का विषय है और वह समाधि अवस्था में साक्षात् होता है। सकल सृष्टि की रचना इस ज्ञान के आधार पर होती है, जो परमात्मा में सदा एक रस विद्यमान रहता है। मिट्टी का वर्तन विशेष आकार का कुम्हार के मस्तिष्क में पहिले उपस्थित होता है और आभूषण स्वर्णकार के मस्तिष्क में अङ्कित होता है। बिना पूर्व ज्ञान के क्रियात्मक रूप में कोई वस्तु बन नहीं सकती यह सृष्टि भी परमात्मा के ज्ञान में पहिले थी और उसी ज्ञान के अनुसार प्रकृति से कार्य जगत बनता है। उस ज्ञान का प्रतिनिधि शब्द है। इस लिए कहा जाता है कि शब्द से माया का विस्तार हुआ, शब्द से उत्पत्ति हुई। प्रत्येक पदार्थ का नाम उसे दूसरे पदार्थों से पृथक् करता है। अतः चन्द्र, सूर्य, जीव, ब्रह्म आदि का भेद भी शब्द से ही विदित होता है। मनुष्य सोये को जगाता है तो शब्द से, भूले भटके को मार्ग बताता है तो शब्द से, ठीक इसी प्रकार प्रलय काल में प्रसुप्त सृष्टि को जगाते हुए सर्व प्रथम वेद शब्द का प्रकाश होता है। न्याय दर्शन अध्याय १ आन्हिक १ सूत्र ७ में कहा है "आप्तोपदेशः शब्दः" अर्थात् आप्त पुरुष के उपदेश को शब्द प्रमाण कहते हैं। महर्षि दयानन्द कहते हैं कि सत्य एवं ज्ञान स्वरूप परमात्मा परम आप्त पुरुष है। अतः उसका उपदेश जो वेद रूप में है, परम प्रमाण, है। मनुष्यों में सदाचारी, सत्यवादी, विद्वान आप्त पुरुष है; उसका उपदेश भी वेद के अनुकूल हो सकता है, इसके अतिरिक्त शब्द वैशेषक दर्शन में आकाश का गुण बताया गया है। वह कानों से सुना जाता है।

परन्तु वह अर्थ और सम्बन्ध शून्य होने से आत्मा के लिये व्यर्थ है। अतः यह ज्ञान विद्वान मनुष्यों में पाया जाना चाहिये कि ईश्वरीय शब्द मानवीय शब्द, तथा आकाशवर्ती शब्द का भाव परस्पर में गड़बड़ न हो जाय । परन्तु राधास्वामी मत मे जान बूझकर शब्द के सम्बन्ध में गड़बड़ की जा रही है। तथापि यह विषय यहां विचाराधीन नहीं, जताना केवल यह है कि साहिब जी महाराज ने वैदिक साहित्य से जितने भी प्रमाण शब्द विषय में दिये हैं। वह सिद्ध करते हैं कि आपका वैदिक शब्द महिमा पर हार्दिक विश्वास है। और यद्यपि सत्संगियों को यथार्थ ज्ञान के प्रतिनिधि असली शब्द अर्थात् वेद से दूर करने के साधन प्रयुक्त हो रहे हैं तथापि केवल यथार्थ प्रकाश से ही नहीं। सार वचन, सारोपदेश आदि से भी रचना के आदि काल के ईश्वरीय ज्ञान रूपी शब्द को महिमा प्रगट होती है। सारोपदेश पृष्ठ ४३ पर स्पष्ट लिखा है कि रचना वास्तव में शब्द ही करता है, जिसको वेद मे शब्द ब्रह्म कहा है फ़ारसी में कलामे इलाही और बाईबिल में जो यह कहा है, कि इब्तदा में कलाम था, कलाम खुदा के साथ था, कलाम ही खुदा था, इसकी ओर भी इसी जगह सारवचन में संकेत किया गया है जिस से सिद्ध है। कि ज्ञान स्वरूप परमात्मा के ज्ञान के प्रकाश करने वाली वेद वाणी की महिमा को सार वचन का लेखक भी स्वीकार और सिद्ध करता है। यहाँ तक की जमीमा सारोपदेश पृष्ट ८ पर स्पष्ट लिखा है कि:—

पहिले जाहिर हुआ शब्द भण्डार,
फिर हुआ पैदा उसमें सब संसार। ६६ ॥

शब्द करता ना अपना जो इज़हार,
कभी प्रगट न होता यह संसार। १०० ॥

सुनो वह शब्द और लो आनन्द,
भूल आपे को छोड़ दे दुख दण्ड। १०१ ॥

क्या ही अच्छा हो कि राधास्वामी भाई उस शब्द भण्डार से उपकार पा सकें जिसके प्रकाश होने पर संसार का प्रगट होना निर्भर है और जो सच्चे ज्ञान का दान देकर दुख दण्ड की इति श्री कर सकता है।

सर्ग ४

वेद के मुलहिम और मन्त्र द्रष्टा ऋषि

३८—यथार्थ प्रकाश के प्रकाशन का उद्देश्य राधा स्वामी मत का प्रोपेगण्डा करना है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये वेद शास्त्र के सम्बन्ध में शंकाएं पैदा की जा रही हैं, परन्तु वैदिक सिद्धान्तों में वह प्रबल सत्य रूप शक्ति है कि स्वयं लेखक महाशय उनके सामने झुकने के लिये बाधित है और जादू सिर चढ़ कर इस प्रकार बोलता है।

"कुल मालिक ने आत्माओं को सृष्टि से सम्बन्ध कायम करने और मानव शरीर से पूरा लाभ उठाने का अवसर देने के लिये इसके अन्तर में अनेक गुप्त शक्तियाँ रक्खीं और मनुष्य जाति को इन शक्तियों तथा इनके उपकारों से भिज्ञ करने के लिये यह प्रबन्ध किया कि समय समय पर ऐसी पवित्र तथा जागृत आत्मायें प्रगट हों जो इन शक्तियों के रहस्य उनके जागृत करने के साधनों तथा उनको प्रयोग में लाने की विधि से भली भांति भिज्ञ हों और जिन्हें वह रहस्य दूसरों को समझाने, इन शक्तियों को जगाने और मानव जाति को इनसे लाभ पहुँचाने की सामर्थ्य प्राप्त हो।"

यह हूबहू इस सिद्धान्त की गुँजार है कि परमात्मा ने रचना के आदि में मनुष्यों के पूर्ण पथ प्रदर्शन के लिये वह ज्ञानदिया अर्थात

आदिम ऋषियों की आत्मा में, शब्द, अर्थ और सम्बन्ध के रूप में ज्ञान का प्रकाश किया, और भविष्य के लिये ब्राह्मणों, विद्वानों, ऋषियों, मुनियों, योगियों, सन्यासियों का कर्त्तव्य ठहराया, कि वह इस ज्ञान के अनुकूल मानव जाति का पथ प्रदर्शन करें।

३९—हमारे माननीय साहिब जी महाराज राधा स्वामी मत की गद्दी पर विराजमान हैं। वह राधा स्वामी मत उसके सतसङ्ग उसके कोषादि के उत्तरदायित्व के भार में दब रहे हैं। अतः वह इन सच्चाइयों को प्रकट करने तथा फैलाने के लिये बाधित नहीं किये जा सकते, वह आदिम ऋषियों वा मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का नाम न लें, वह सत, सत गुरु आदि शब्दों से इस भाव को जाहिर करें, अथवा और प्रकार से उनकी इच्छा, परन्तु यथार्थ स्थिति की दृष्टि से कोई भी अन्वेशक अथवा लेखक वेद महिमा के इस इतिहास को मिटा नहीं सकता, और ना ही इसका खण्डन कर सकता है। राधा स्वामी मत तो कहाँ, इसलाम, जो सर्व साधारण से, वैदिक धर्म से बहुत दूर गिना जाता है। यही व्यवस्था देता है।

सूरये बकर आयत नं० २१२:—

आदि में सब का एक मत था। परमेश्वर ने शुभ समाचार देने तथा भय दिलाने के लिये पैग़म्बरों वा नबीयों को प्रादुरभूत किया। और उन पर सत्य ज्ञान से भरपूर पुस्तकों का प्रकाश किया ताकि परम प्रमाण के रूप में उनसे विवादास्पद विषयों का निर्णय होता रहे। परन्तु पुस्तक में स्पष्ट रूप से निश्चित सिद्धान्त होने पर भी परस्पर के द्वेष अथवा पक्षपात से मतभेद पैदा होते हैं। तो परमेश्वर अपनी दयालुता से धर्मात्माओं को सत्यमार्ग दिखाता है, सत्य है, वह जिसे चाहे सच्चा मार्ग दिखाये।

४०—जिस प्रकार क़ुरान मजीद की इस आयत में आदिकाल के ईश्वरीय ज्ञान तथा एक मात्र धर्म के सिद्धान्त और धर्म इति-

हास को गागर में सागर की भांति बन्द कर दिखाया है उसी प्रकार राधा स्वामी मत के वर्तमान आचार्य के विचारास्पद शब्दों का और कोई अर्थ नहीं हो सकता, जो यथार्थ प्रकाश भाग १ पृष्ठ ४ धारा ४ में लिखे गये हैं—"वर्तमान मतभेद हमारे मन्द भाग से ईर्षा, द्वेष, तथा पक्षपात के भावों को बढ़ा रहा है और इसी दोष से अनेक विद्वान इन शब्दों से और का और अर्थ लेने वा ज़ाहिर करने पर बाधित हैं। राधा स्वामी मत का पृथक् सतसङ्ग होना कदापि उचित न समझा जाता, यदि हमारे विचार के अनुसार इनका उपरोक्त भाव ही यथार्थ अर्थ स्वीकार किया जाता। तथापि आत्माओं का सृष्टि से सम्बन्ध प्रकट करना, मानव शरीर को सफलता, मानव जाति के सच्चे मालिक से मिले हुये अमूल्य पदार्थ, उनका यथार्थ प्रयोग, उनके उपकारोंका अनुभव पवित्र एवं जागृत आत्माओं का प्रकट होना, उन पवित्र आत्माओं का सूक्ष्म वैज्ञानिक सिद्धान्तों, अथवा सूक्ष्म शक्तियों की यथार्थ स्थिति को जानना, अन्य मनुष्यों को जनाना, मानव जाति का इनसे उपकार करना" सारा कथन, क्या सिद्धान्त और क्या आचरण की दृष्टि से केवल उसी सच्चाई का समर्थन करता है जो हमने इससे निकाली है, और जो केवल वैदिक मर्यादा ही है।

४१—साहिब जी महाराज यथार्थ प्रकाश भाग २ पृष्ठ २८८ पर पाताल देश के एक फिलास्फर मिस्टर विल डेवरैण्ड को पुस्तक (The mansions of Philosophy) के पृष्ठ ६७ से एक उद्धरण देते हैं। "जो प्रकृति के अन्दर एक अप्राकृतिक सत्ता को स्वीकार करने की प्रेरणा करता है। जिसमें स्वाभाविक सूक्ष्मशक्ति तथा जीवन, गुप्तरूप से विद्यमान है।" इस उद्धरण के पश्चात् आप फरमाते हैं "क्या कोई पदार्थवेत्ता बतला सकता है, कि वह द्रव्य क्या है, जो प्राकृतिक नहीं, और प्रकृति को रूप तथा शक्ति

प्रदान करता है। और जिसमें स्वाभाविक शक्ति विद्यमान है ? कदापि नहीं, क्योंकि मनुष्य की वाह्य इन्द्रियों और बुद्धि की पहुँच एक सीमा तक हो सकती है और वह द्रव्य उस सीमा से परे है, सीमा के परे का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आन्तरिक इन्द्रियों का प्रयोग होना है।" इन शब्दों में न केवल ईश्वर की सत्ता, उसके सूक्ष्म, व्यापक, सर्वशक्तिमान, जीवनाधार और सर्वज्ञादि गुणों को भी स्वीकार किया गया है, और बताया है कि वह वाह्य इन्द्रियों तथा आन्तरिक बुद्धि आदि तक की पहुँच से परे है। और केवल आत्मिक नेत्रों से उस का दर्शन हो सकता है। यह दर्शन पाने वाले ऋषि कहलाते और अपनी आत्मशक्ति से ज्ञान का साक्षात् अथवा इसे ग्रहण करते हैं। यही बात आपके इन शब्दों से सिद्ध है। ऋषि शब्द के अर्थ हैं—"वह मनुष्य जिसके आन्तरिक नेत्र खुले हों, आप निश्चय करें कि सच्चे ऋषियों, सन्तों, तथा महात्माओं ने आत्मा व परमात्मा के विषय में जो कुछ वर्णन किया वह उनके अपने मस्तिष्क की उपज न थी किन्तु आन्तरिक नेत्र से साक्षात् की हुई बातें थीं। उन की आत्मा जागृत थी जागृत आत्मा ने आत्मिक जगत् की सीमा के अन्दर प्रविष्ट होकर प्रकृति के अन्तर विद्यमान द्रव्य तथा कार्य करने वाली शक्ति का सीधा ज्ञान प्राप्त किया। और जितना उचित समझा, यह ज्ञान सर्व साधारण के लाभ के लिये जाहिर किया।"

४?—सारांश यह, कि साहिब जी महाराज ईश्वर उसकी सर्वज्ञता तथा उसकी ओर से ऋषियों के आत्मा में ज्ञानका प्रकाश होने आदि की सब बातों को मानते हैं। जिनका आर्यसमाज प्रचार करता है और, यहां यह भी साफ माना है कि ज्ञान मानवीय मस्तिष्क की उपज नहीं, ईश्वरीय है। इसके अतिरिक्त पृष्ठ २१६ पर हिन्दू मतानुसार ऋषि-महर्षि आदि संज्ञा वाली

पवित्र व्यक्तियों का वेदमंत्रों की यथार्थता का साक्षात् करना लिखा है, और स्पष्ट कहा है कि उचित होगा कि इनका निष्पक्ष रूप से स्वाध्याय किया जाये। और उन महानुभावों के विचारों तथा आदेशों का पूरा मान किया जाये, जिनके विषय में विश्वास किया जाता है कि मन्त्रों की यथार्थता से पूर्णतः भिज्ञ थे।

धारा २१५ पृष्ठ २१५ के १७ परिणाम पहिले वर्णन हो चुके हैं। उनमें से प्रथम यह है कि यदि कुल मालिक की ओर से मनुष्यों की आत्मिक शिक्षा के लिये कोई प्रबन्ध हुआ, तो वह ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों के द्वारा हुआ होगा, जिनके मन और मस्तिष्क इतने पवित्र एवं प्रकाशित थे कि ईश्वरीयोपदेश उनमें यथार्थ रूप से प्रकाशित हो और समा सके, और सर्व साधारण तक बिना किसी न्यूनता वा अधिकता के पहुंच सके, (२) उस समय की सर्वसाधारण जनता में कुछ एक मनुष्य अवश्य मौजूद होंगे, जो इन महान् व्यक्तियों से सहायता पाकर ईश्वरीयोपदेश को याथातथ्य से ग्रहण करने योग्य हों, (३) जो उच्च व्यक्तियाँ मानव जाति की आत्म शिक्षा के लिये चुनी गईं, उनमें कोई ऐसा विशेष प्रबन्ध होगा, जिसके द्वारा उनमें और कुल मालिक में सीधा सम्बन्ध स्थिर हो सके।" हम नहीं समझते इससे अधिक आर्य सिद्धान्तों की जय और क्या हो सकती है ?

सर्ग ५—ओ३म् महिमा

४३—धारा ११ के विषय 'सच्चा मालिक' में सार वचन, नजम बचन १ शब्द २ के प्रमाण से बताया गया है, कि इसमें गुरु शब्द अर्थात् ओ३म् के ध्यान में मग्न होने का वर्णन है। साहिब जी

महाराज ने अन्य अनेक स्थानोंपर भी ओ३म्‌की महिमा लिखी है। भाग ३ पृष्ठ २४७ धारा २३० में आपने लिखा है, "गायत्री मन्त्र वेद की शिक्षा का निचोड़ है, और ओ३म् शब्द गायत्री मंत्र का निचोड़ है। और जिस किसी मनुष्यको इस पवित्र मन्त्र का मनमें पाठ करने और ओ३म् शब्द का यथोचित विधि से जप करने का अवसर मिला है वह अवश्यमेव मानेगा, कि गायत्री मन्त्र के पाठ और ओ३म् शब्द के जप में विशेष महत्व है। और, जिन उच्च व्यक्तियों को आन्तरिक दर्जों का ज्ञान है, और उन दर्जों की आत्मावस्था का अनुभव है, जिससे इस शब्द का सम्बन्ध है, वह निस्संकोच भाव से साक्षी देंगे कि इस पवित्र नाम को इस्मे-आज़म (गुरू शब्द) कहलाने का अधिकार इसलिये प्राप्त नहीं है कि यह अ, उ, म् के विशेष अक्षरों का संग्रह है किन्तु इस-लिये कि उसके यथोचितोच्चारण से आन्तरिक चक्रों में विशेष प्रकार की थरथराहट पैदा होती है, जिसके प्रभाव से अभ्यासी के अन्तर में न केवल ब्रह्म पद अर्थात त्रिकुटी स्थान की और उससे निचले दर्जों की रूहानियत सुगमता से जागृत हो जाती है; अपितु माया शबल, ब्रह्म के स्वरूप दर्शन प्राप्त करने की योग्यताभी आ जाती है।

४४—साहिब जी महाराज ही नहीं आपके पूर्व आचार्य भी ओ३म की महिमा का वर्णन करते आये हैं। यद्यपि उनका भाव यह था कि वैदिक धर्मियों का इस विधि से मुख बन्द करके उसके अन्ध विश्वासी भाग को अपनी ओर सहज से खींचा जा सकेगा, और साथ ही उन्होंने पांच शब्दों में से इसे चौथे दर्जे पर रक्खा, और कहीं २ कल्पित राधा स्वामी धर्म'की बड़ाई के लिये यह भी लिख दिया है कि ओ३म् इस पद की महिमा को नहीं जान सका। तथापि इस दृष्टि से उनके कहे तीन पहले शब्दों की ओ३म् शब्द

से मुख्यता अथवा उन नामों वाली सत्ताओं की सत्यता किसी भी प्रमाण से सिद्ध होनी असम्भव है।

अतः पूर्वाचार्यों की किसी कूट नीति वा चाल को छोड़कर उनका यथार्थ विश्वास ओ३म् पर ही था। सार वचन पृष्ठ १९ पर लिखा है "चौथा ब्रह्म शब्द जो कि प्रणव है, और जिससे सूक्ष्म अर्थात् ब्रह्मण्डा वेद और ईश्वरीय माया प्रकट हुई।" सार वचन में अनेक स्थानों पर श्रुत शब्द अभ्यासमें ओ३म् शब्दका वर्णन है। जैसे "बङ्कनालमें सहज धसूंगी, त्रिकुटी जा मैं ओ३म कहूंगी। ६ वचन ४ शब्द ५ शब्द पाय गुरू शब्द समानी १३ वचन १ शब्द यहाँ गुरू शब्द ओ३म् को कहा है।

धुन धधकार सुनो ओंकारा वचन ३५ शब्द २॥

सर्ग ६—बीज मन्त्र और योगी पुरुष

४३—महर्षि दयानन्द ने शाखा, उपशाखा, ब्राह्मण ग्रन्थ, वेदाङ्ग, उपाङ्ग, सबको परतः प्रमाण और केवल मूल वेद को स्वतः प्रमाण माना। और तर्क तथा आप्त प्रमाणों से इसे सिद्ध किया। मूल वेद में ही योगिक शब्द हैं, जिनके अर्थों का विस्तार ही जगत के प्रचलित अनेक विद्याओं के रूप में हो रहा है। यूं कहो तो वेद मन्त्र बीज हैं, और संसार में फैली हुई विद्यायें वृक्ष-वत् हैं। जिसमें जड़, तना, टहने, शाखा और पत्ते आदि अनेक अङ्ग हैं। बीज ही वास्तव में वह पदार्थ है जो इस वृक्ष का अन्तिम फल है। शेष सारा वृक्ष अर्थात् शाखा, पत्ते आदि पृथ्वी, जल आदि के परमाणुओं से उस बीज के मेल का परिणाम है। जो विशेष संयोग तथा आकर्षण से हर बीज के साथ सम्बन्ध

पैदा करते हैं। इसी प्रकार वेद, अथवा मूल संहिता ही सत्य विद्या की यथार्थ प्रतिनिधि है शेष सब अङ्ग, उपाङ्ग, शाखा, उपशाखा, मानवीय बुद्धि तथा मस्तिष्क के द्वारा भिन्न भिन्न पदार्थों के साथ इन मूल संहिताओं के सम्बन्ध होने का फल है। साहिब जी महाराज स्वयं वेद के समझने में असमर्थ हैं, और इसी कारण से वेद मन्त्रों के भिन्न २ अर्थ पढ़कर हैरान होते हैं कि किसे सत्य मानें और किसे असत्य। यदि आप में वह योग्यता होती जो मन्त्रों के यथार्थ अर्थ का दर्शन करने के लिए आप ऋषि मुनियों में ही विशेष रूप से मानते हैं तो न आप पं० राजाराम के अर्थों के लिए मुंह देखते, न नरदेव शास्त्री जी को प्रमाण मानकर संशयात्मक अवस्था का शिकार होते और न आपके भोले भाले सरल स्वभाव सत्संगियों की कठिनाइयों में वृद्धि होती। अतः पहिली आवश्यकता तो साहिब जी महाराज को स्वयं तैयारी करने की है और हमारी सम्मति में वह जो एक लाख से अधिक सत्सङ्गियों के धर्म अथवा यथार्थ पथ प्रदर्शन के उत्तरदाता हैं, उनका कर्त्तव्य है कि कम से कम उन लाखों अनुयाईयों की खातिर ही योग द्वारा मन्त्रों के अर्थ देखने का यत्न करें। जिन्होंने विशेष मानसिक भावों के आधीन होकर अपने आप को उनके सुपुर्द कर दिया है। यथार्थप्रकाश में बीसियों जगह उनके लेख का भाव यह निकलता है कि वह सत्संगियों को सत् गुरु के ही अर्पण होने की शिक्षा देते हैं। और येन केन प्रकारेण उन पर यह प्रभाव डालते हैं कि वह कुलमालिक से सीधा सम्बन्ध रखते और उन की सब कठिनाइयों को दूर कर सकते हैं। परन्तु क्रियात्मक रूप में परीक्षा का समय आता है तो आप वेद मन्त्रों के अर्थों के लिए साधारण पंडितों के द्वार पर भटकते फिरते हैं। जैसे प्रथम भाग पृष्ठ १३ पर धुनयात्मक शब्द वा बीज मन्त्र की व्याख्या में आप यह

सिद्ध करते हैं कि वाच्य और वाचक अर्थात् नाम और नामी में परस्पर अटूट सम्बन्ध है। आप प्रमाण रूप में अपने स्वभावानुसार जहां तहां उर्दू और फारसीके शेर पेश करते हैं। तदनुसार इस विषय में भी ख्वाजामुईनउद्दीन चुशती का वचन लिखते हैं:—

मियाने इसमो मुस्मा चोफ़क नेस्त बीबीं ता।
तो दर तज्जलीयें अस्मा कमाले नामे खुदा॥

अर्थ—हे प्यारे नाम और नामी में अन्तर नहीं होता। अतः तू देख कि नामों के तेज में परमेश्वर के नाम का कमाल दृष्टिगोचर होता है। ऐसे ही और भी शेर दिए हैं। जिनमें से प्रथम यह है—

यक़ीं बिदां कि तू बाहक़ निशस्तै शबोरोज़।
चो हम नशीन बाशिद ख्याले नामे खुदा॥

अर्थात् यदि परमेश्वर के नाम का ख्याल तेरे मन के साथ बैठा हुआ है तो निश्चय जान तू रात दिन ईश्वर की संगत में है। परन्तु यह प्रमाण कोई स्वतन्त्र स्थिति नहीं रखते, यथार्थ आधार आपका एक अपने माने हुए सिद्धान्त पर है जो पृष्ठ १३ पर आप लिखते हैं कि "प्रत्येक केन्द्रीय शक्ति की धारों से एक २ शब्द होरहा है। इन शब्दों की मनुष्य भाषा में नक़ल करने से जो आवाज़ें बनती हैं वही धुन्यात्मक नाम अथवा बीजमन्त्र कहलाती हैं।" इसी भाव को और प्रकार से दर्शाया है अर्थात् रचना के तीन बड़े देश और प्रत्येक बड़े देश में छः छोटे लोक अर्थात् अठारह स्थान साहिबजी महाराज ने वर्णन किए हैं, प्रत्येक स्थान में केन्द्रीय शक्ति को माना है। वह केन्द्रीयशक्ति कुल़ मालिककी है। उसी शक्ति की प्रत्येक धारा से शब्द धारा का जारी होना ज़ाहिर किया है और इन्हीं शब्दों को मनुष्य भाषा में जो इस चमड़े की जिह्वा से बोली जाती है, बीजमन्त्र कहा है। आशय यह निकला कि परमात्मा की ओर से आत्मा में आत्मिक बोली के द्वारा प्रका-

शित हुए ज्ञान को साहिबजी महाराज बीजमन्त्र मानते हैं और इस वैदिक सिद्धान्त को प्रकट रूप से स्वीकार करते हैं कि मनुष्यों में ज्ञान का क्रम कभी न चलता यदि उसका प्रतिनिधि भाषा के रूप में ईश्वरीयज्ञान के द्वारा आदिम ऋषियोंको न मिलता। वेदके ईश्वरोक्त होने में रहस्य की बात ही यह है कि विद्या और भाषा में अटूट सम्बन्ध है। मनुष्य की भाषा उसके आन्तरिक ज्ञान अथवा अनुभव का बोध दूसरों को देती है। अविज्ञात भाषा में कोई अपने विचार को प्रकट नहीं कर सकता। न अविज्ञातार्थ को अपनी मातृभाषा में वर्णन कर सकता है। अतः यथार्थ विज्ञान के प्रकाश के लिए वैज्ञानिक भाषा अत्यन्त आवश्यक है और चूँकि मानवीय भाषायें केवल मानवीयानुभवकी प्रतिनिधि हो सकती हैं अतः ईश्वरीय ज्ञान के लिए कोई मनुष्यभाषा काम नहीं दे सकती। ईश्वरीय अथवा इलहामी भाषा ही इस उद्देश्य को पूरा कर सकती है और धुन्यात्मक शब्द अथवा बीजमन्त्रों का उपदेश परमात्मा से होना आवश्यक है। योगदर्शन समाधि पाद, सूत्र सताईस का प्रमाण आप अपने पक्ष की पुष्टि में पेश करते हैं कि "तस्य वाचकः प्रणवः" प्रणव अर्थात् ओ३म् शब्द नाम है और परमात्मा नामी। इस जगह ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका से स्वामी दयानन्द के यह शब्द उद्धृत किए गए हैं जो व्यास भाष्य वाली व्याख्या के आधार पर लिखे गए हैं।

"नाम और नामी का सम्बन्ध योगी ही समझते हैं।" न केवल यह आप अपनी ही सम्मति का प्रकाश इस प्रकार करते हैं। "इससे स्पष्ट हो जाता है साधारण मनुष्य बीजमन्त्रों अथवा धुन्यात्मक शब्दों की क्यों कदर नहीं करते। उनकी कदर केवल योगियों को ही होती है क्योंकि वह उनका जप करके नामी से सहायता पाकर अपनी कठिनाइयां हल करते हैं। यहां विदित

होना चाहिए कि नाम और नामी का सम्बन्धक वही नियम है, जिसे हम शब्द और अर्थ अथवा भाषा और विद्या की परिभाषाओं से वर्णन कर आए हैं और वेद मन्त्रों के अर्थ का यथार्थ साक्षात जो योगियों पर ही होता है, उस का प्रमाण भी इसी उद्धरण में पूर्णतः मौजूद है। इसके अतिरिक्त इसी स्मरण वा ध्यान के विषय में यथार्थ प्रकाश के योग्य लेखक महोदय एक और सच्चाई को भी अत्यन्त उत्तमता से प्रकट करते हैं कि किसी नामका जाप मात्र अथवा शब्द का स्मरण मात्र व्यर्थ है। यह शिक्षा आर्यसमाज के सर्वथा अनुकूल है। पृष्ठ १४ धारा २५ में यथार्थ विधि से आयत अथवा मन्त्र पढ़ने वाले को इस कसौटी से परखा गया है कि आया पाठ करने वाले का ख्याल अथवा उसका मन, पाठ के साथ २ चलता है वा नहीं। इसी लेख में आप लिखते हैं—

"यदि किसी मनुष्य को परले दर्जे की मानसिक पवित्रता प्राप्त है और आयतों वा मन्त्रों के अर्थ पूर्णतः उसकी समझ में बैठ गए हैं और निरन्तर अभ्यास से उसका मन इन अर्थों को अपने संस्कार बना चुका है और आयतें वा मन्त्र पढ़ते समय स्वयं ही वह विचार क्रमशः उसके मन में उठते जाते हैं वही मनुष्य इन आयतों वा मन्त्रों के पाठ से यथार्थ लाभ उठा सकता है।"

यह परले दर्जे की मानसिक शुद्धता योगी पुरुषों को ही प्राप्त होती है और इस प्रकार के सारे बयानों पर विचार करने से इसी नियम की सत्यता प्रकट होती है कि यथार्थ ज्ञान के शब्द, अर्थ, सम्बन्ध रूप तीन अङ्गों में से शब्द भाग को हम यौगिक शब्द युक्त मानते हैं तो साहिब जी महाराज किसी आदि काल के इलहामी शब्द भाग का तो कहीं जिक्र नहीं करते। हां, सन्दिग्ध रूप से धुन्यात्मक वा बीज मन्त्रों को स्वीकार अवश्य करते हैं। पर उनकीभी कोई सूची नहीं देते। तथापि हमारी प्रतिज्ञा सर्वप्रकार

से सिद्ध है कि यौगिक शब्दों और उन शब्दों का अर्थ योगी पुरुषों पर ही प्रकट होने के सिद्धान्त पर आपका विश्वास है तथा यह भी सिद्ध है कि योग साधन का पक्षपाती होने और अपने अनुयायियों को कुल मालिक से अपना सम्बन्ध होने के संकेत देने पर भी वास्तव में आपको योग विद्या का ज्ञान नहीं, ऐसा होता तो, वैदिक शब्दों के यथार्थ अर्थ को आप साक्षात् करते और दूसरों के संशय निवारते, परन्तु वर्तमान दशा में तो आप स्वयं ही संशयात्मक हैं और भाष्योंमें भिन्न २ शब्द पाकर आप शशोपञ्ज में हैं कि किस को सत्य मानें और किस को असत्य।

सर्ग ७—योगानन्द की महिमा

भाग ३ पृष्ठ २८६ धारा २५४ के अन्तिम भाग में आप फरमाते हैं, "मानव शरीर के अन्दर स्थित श्रुत की चेतन शक्तियों को जागृत करके मनुष्य आत्मिक उन्नति करने और आत्मता के भण्डार तक पहुँचाने के साधन को योग साधन कहते हैं।" वैदिक धर्म में भी आत्मा का परमात्मा से योग होना योग साधन का ही परिणाम कहा गया था और पतञ्जलि महाराज ने एक विशेष शास्त्र योग विषय में लिखा जिसके तुल्य भूगोल भर में कोई मनुष्य आजतक कोई पुस्तक नहीं लिख सका। साहिबजी महाराज का योग साधन पर विश्वास प्रत्यक्ष तो है परन्तु पतञ्जलि मुनि कृत योगदर्शन का स्थानापन्न अथवा उस जैसा वा उससे बढ़िया योग शास्त्र, राधा स्वामी मत के किसी आचार्य ने भी बनाया हो इसका कहीं संकेत मात्र भी उल्लेख नहीं मिलता और राधास्वामी

मत के प्रचलित शब्द अभ्यास की स्पष्ट व्याख्या भी आपने नहीं की सम्भवतः आपको इसका साहस ही नहीं हुआ। हाँ स्थान २ पर योगदर्शन के ही प्रमाण दिये और इस दर्शन के प्रत्येक वचन को सत्य स्वीकार किया है इससे भी हमें बड़ा आश्चर्य है कि कुल मालिक से योग होने को श्रुत की आखिरी मंजिल और उसका एक मात्र हेतु योग साधन को मानते हुये भी वैदिक धर्मियों से पृथक् सत्सङ्ग कायम करने को साहिब जी महाराज किस प्रकार सत्य सिद्ध कर सकते हैं। न केवल सिद्धांत में ही मेल है; आप योग के फलरूप आनन्द के विषय में लिखते हैं "नाम के स्मरण से सोई हुई श्रुत शक्ति धीरे धीरे जागृत हो जाती है। और अभ्यासी के अन्तर में रूहानी शब्द प्रकट हो जाता है। इस शब्द को पकड़कर उसकी श्रुत गुरु शब्द अर्थात् त्रिकुटी के ओ३म शब्द से योग करती है; और फिर सुन्न स्थान और सत्य लोक के शब्दों से मेल करती हुई अलख लोक तथा अगम लोक के शब्दों से सम्बन्ध कायम करती है। और अन्त में राधा स्वामी धाम में प्रवेश करती है। यहाँ पहुँचने पर यात्रा की समाप्ति हो जाती है। पूरा घर और पूरी गति मिल जाती है। वहाँ पहुँचकर जो गति आनन्द वा ज्ञान की होती है अकथनीय है।" इसमें एक राधा स्वामी धाम के शब्द को अलग करदो तो सारा लेख वैदिक सिद्धांत का ही बोधक है। नाम का स्मरण और शब्द विचार एक ही बात है। परन्तु शब्द का विचार तभी कहा जा सकता है जब उसका अर्थ विशेष से सम्बन्ध हो। अन्यथा विचार के कुछ अर्थ नहीं। योगियों को ही वेद मन्त्रों वा वैदिक शब्दों का अर्थ योगावस्था में प्रत्यक्ष होता है यह सिद्धांत नाम स्मरण और शब्द विचार से उत्तम रीति से सिद्ध है। ज्यों ज्यों आत्मा शब्द के अर्थ का मनन करता है उसके अन्दर जागृति पैदा होती जाती है और योग समाधी

अवस्था (जो अर्थ के मननावस्था की अन्तिम पराकाष्ठा है) में रुहानी शब्द अर्थात् यथार्थ आशय वा विषय का दर्शन होता है। और आत्मा का इस अभ्यास से ओ३म् परमात्मा से योग होता है। इस अवस्था में आकाशवर्ती शब्द का जो जिह्वाका विषय है, उच्चारण नहीं होता प्रत्युत उसके यथार्थतत्व का परमात्मा के निमित्त से आत्मा पर साक्षात्कार होता है। यह कहना कि गुरु शब्द अर्थात् ओ३म् शब्द से योग होने के पश्चात् सुन्नस्थान, सत्यलोक, अलख लोक, अगम लोक, से क्रमशः मेल होता है केवल शब्द जाल है अर्थात् ऐसा नहीं कि यह शब्द पृथक् २ लोकों के लिये हों और उनसे गुज़रकर राधास्वामी अन्तिम लोक में पहुंच होती हो, यदि यह पृथक लोक हों तो परमात्मा वा सच्चे मालिक अनेक माने जायेंगे और इनके भिन्न २ दर्जे और भिन्न २ गुण कर्म स्वभाव और कर्त्तव्य निश्चय करने होंगे। परन्तु साहिब जी महाराज मानते हैं कि सच्चा मालिक एक है। अतः अलख अगमादि लोक केवल उसी एक परमात्मा के गौणिक नामों का भाव समझाने के लिये हैं। अर्थात् ब्रह्मलोक या ब्रह्मदर्शन की प्राप्ति पर ओ३म् शब्द के विस्तृत अर्थ का भान होता और आत्मा को यथार्थ रूप में उसी समय में स्वयं आत्मनेत्रों से इस बात का अनुभव होता है कि इसी ओ३म् को अलख और अगम कहा जाता है। क्योंकि उस तक इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि की गमता नहीं। वैदिक परिभाषा में लोक शब्द धात्वर्थ की दृष्टि से देखने से सम्बन्ध रखता है। अंग्रेज़ी शब्द (Look) इसी का रूपान्तर और इसी अर्थ का बोधक है। अतः ओ३म् से मेल होने पर अलख अगमादि नामों की यथार्थता आप से आप प्रकट हो जाती है और आत्मा अपनी आत्मशक्ति से अनुभव करता है कि अहोभाग्य हैं मेरे उस निर्लेप सत्य स्वरूप वाणी, लेख अथवा मन

इन्द्रिय आदि की पहुंच से परे जो परमपुरुष है । और जिसकी प्राप्ति मेरा अन्तिम अभीष्ट है वह मुझे आज प्राप्त है । शब्दों और परिभाषाओं की कितनी भी तोड़ माड़ की जावे वास्तविक भाव ओ३म की महिमा और परमात्मा के दर्शन का है । इस योग या समाधि अवस्था को राधा स्वामी धाम कहो, अन्तिम पद कहो, पूरा घर, पूरी गति, नित्य मोक्ष अथवा अनित्य मुक्ति चाहो सो कहो, आपका अधिकार है । परन्तु फलरूप में जिस ज्ञान वा आनन्द की प्राप्ति होती है उससे आपको इन्कार नहीं और यह भी आपको स्वीकार है कि वह ज्ञान वा आनन्द अकथनीय है । क्या यह हूबहू इस उपनिषद् वाक्य का ही भावार्थ नहीं कि—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् । न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

समाधि के द्वारा जिसके अविद्या आदि दोष दूर होगये हों, जिन ने आत्मा मे स्थिर होकर परमात्मा में ध्यान लगाया हो उसको परमात्मा के योग से जो सुख वा आनन्द मिलता है वह वाणी से वर्णन नहीं हो सकता, उसे तो स्वयं आत्मा ही अन्तःकरण द्वारा ग्रहण करता है ।

सर्ग ८—तीन अनादि का सिद्धान्त

ईश्वर परमात्मा वा सच्चे मालिक का वर्णन तो पहिले आ लिया, अब वेद आदि सत्य शास्त्रों में जो ईश्वर के साथ जीवात्मा और प्रकृति को अनादि माना गया है उस पर आपका विश्वास दिखलाया जाता है । राधा स्वामी मत की तालीम पृष्ठ ३ धारा २

इस प्रकार है। "राधास्वामी मत सिखलाता है कि मनुष्य के शरीर में तीन द्रव्य विद्यमान हैं। १) कार्य प्रकृति—जिससे मनुष्य का स्थूल शरीर बना है। (२) कारण प्रकृति—जो मनुष्य के मन का मसाला है। (३) आत्मा (श्रुत)—जो मानव शरीर का जीवन या प्राण है। और जिससे इसके मन वा शरीरका विकाश होता है। मनुष्य का शरीर वा मन दोनों नश्वर हैं। परन्तु आत्मा अविनाशी है।" यहां परमात्मा के अतिरिक्त तीन द्रव्य कहे हैं परन्तु अनादित्व की दृष्टि से केवल दो का ही भाव निकलता है। प्रकृति के दो द्रव्य गिने गये हैं; स्थूल और सूक्ष्म, किन्तु वास्तव में द्रव्य एक ही है। उसकी दो अवस्थाओं को साहिबजी महाराज ने दो पृथक् द्रव्य लिख दिया है अतः आत्मा प्रकृति और परमेश्वर यह तीन सत्ताएँ ही वैदिक त्रिकुटी के सिद्धान्त के अनुसार इस मत में भी मानी जाती हैं। मन और शरीर को नश्वर लिखने का भी यही अर्थ है कि कार्य प्रकृति को नित्य नहीं कहा जा सकता, हां, आपकी इस लेख शैली में एक गुण अवश्य है कि इससे सृष्टि में जो चार पाद पुरुष का वेद में वर्णन है उसकी पूरी पुष्टि होती है। देखिये यजुर्वेद, पुरुष सूक्त, मन्त्र ॥ ३ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

भूत, वर्तमान, और भविष्य की जितनी भी रचना है, सबसे उस पुरुष की अद्भुत महिमा प्रकट होती है। यह सारा भौतिक जगत उस पुरुष का एक पाद है और तीन पाद उसके अमृत हैं। जिन्हें दिवि कहा जाता है। इस मन्त्र के अर्थों का भिन्न २ विद्वानों ने भिन्न २ भावों के लिये प्रयोग किया है परन्तु सबसे एक ही मुख्य आशय अर्थात पुरुष की महिमा सिद्ध होती है और वह पुरुष क्या है, ईश्वर, जीव, प्रकृति और कार्य जगत के चार पाद

का मेल, जिनमें से एक पाद कार्य जगत नाशवान है और तीन पादामृत अविनाशी हैं। अतः आर्य्य-समाज यदि तीन अनादि पदार्थ मानता है, तो साहिबजी महाराज भी तीन को ही अनादि मानते हैं और यदि वेदके पुरुषसूक्त में चार पाद पुरुष कहा गया है तो साहिबजी महाराज भी कुल मालिक श्रुत, सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति के चार अङ्गों को मानते हैं।

सर्ग ९—पिण्डे सो ब्रह्माण्डे

वैदिक साहित्यमें एक अत्यन्त रहस्यपूर्ण और अनन्त सच्चाइयों को गागर में सागर की भांति अपने अन्दर रखने वाला एक वचन है—"पिण्डे सो ब्रह्माण्डे!" अर्थात मानव शरीर में जो कुछ अद्भुत रचना है वही ब्रह्माण्ड में है। आर्य समाज के प्रसिद्ध संन्यासी श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी ने यथार्थ प्रकाश की रचना से चालीस से भी अधिक वर्ष पूर्व एक ट्रैक्ट लिखकर इस विषय की सत्यता सर्व साधारण पर प्रगट की थी। वेद में इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में शतशः प्रमाण मिलते हैं। यदि मानव शरीर में सिर, बाहु, उरू और पाद ये चार अङ्ग हैं तो मानव जाति के विराट् शरीर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चार भाग हैं, यदि मानव शरीर में सिर धड़ और पैर यह तीन अंग हैं तो ब्रह्माण्ड में भी द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी, ये तीन अंग हैं। शरीर में नेत्र है तो विराट्में सूर्य है। शरीरमें मुख है तो जगत् में अग्नि है, ऐसे ही शरीरमें श्रोत्र है तो विराट् में दिशायें हैं। शरीर से उठने का काम लिया जाता है तो विराटमें अग्नि सब पदार्थोंको ऊपर उठा ले जाती है। इस सिद्धान्तकी सच्चाईको भी साहिबजी महाराज मानते हैं यथार्थ प्रकाश भाग १ पृष्ठ ४ धारा ३ में यह शब्द मौजूद हैं—

"चूंकि आत्मा और परमात्मा अर्थात श्रुत और कुल मालिक का जौहर एक ही है। इसलिए मानव शरीर सकल रचना का नमूना स्वीकार किया जाता है और रचनाको आलमे कबी, ब्रह्माण्ड लोक और मानव शरीर को आल्मे सग़ीर (पिण्ड लोक) कहते हैं।"
इस उद्धरण से स्पष्ट है, कि कोई नया विचार वा ज्ञान नहीं दिया जा रहा, केवल शब्दों का परिवर्तन हो रहा है। आत्मा न कहकर श्रुत शब्द का प्रयोग किया जा रहा है और ईश्वर न कहकर कुल मालिक का। आत्मा और परमात्मा की दो निर्विवाद चेतन सत्ताओं पर आर्य जाति की रचना के आदि से ही विश्वास है। आर्य्य जाति क्या राधा स्वामी मत के प्रवर्त्तक से भी पहिले मुसलमान और ईसाई आदि तक में इन दो सत्ताओं का विश्वास और चर्चा थी। आर्य्य लोग मानते हैं कि आत्मा भी चेतन है और परमात्मा भी चेतन है। भेद इन में सर्वज्ञता और अल्पज्ञता आदि के कारण से है। मुसलमान, ईसाई लोग भी इस भेद का महदूद और गैर महदूद अथवा अलिमे कुल वा क़लील आदि से वर्णन करते हैं और इसी चेतनता वाले सादृश्यता को बाईबिल इन शब्दों से वर्णन करती है, कि "खुदा ने इन्सान को अपनी सूरत वा शकल पर बनाया" यह तो मोटी बात है, कि ईश्वर और मनुष्य की तुलना चेतनता आदिके कारण है। शारीरिक अंगों के कारण नहीं और इसी भाव को आप भी इन शब्दों द्वारा प्रकट करते हैं कि "आत्मा और परमात्मा अर्थात श्रुत और कुल मालिक का जौहर एक ही है" और यही 'पिण्डे सो ब्रह्माण्डे' का सिद्धान्त आप उस जगह भी सिद्ध करते हैं। जहाँ लिखते हैं कि मानव शरीर का पालन पोषण जैसे आत्मा पर निर्भर है वैसे ही सकल जगत का पालन पोषण का आधार एक परमात्मा पर है। जिसे कुल मालिक कहते हैं।

सर्ग १०—तीन प्रकार की शक्तियाँ

भाग १ पृष्ठ ४ धारा ५ में राधास्वामी मत में विशेष बल इस बात पर दिया जाता है कि मनुष्य अपनी शारीरिक, आत्मक, मानसिक, तीनों प्रकार की शक्तियों के जागृत करने को जीवन का लक्ष्य बनावे और आलस्य एवं प्रमाद को दूर करके वीर पुरुषों की भांति उचित उपाय काम में लावे।" आर्य जाति की विशेषता यह है कि वह इन तीन, क्या जितनी भी शक्तियां मानव देह में जीवात्माको प्राप्त हैं। उनकी वृद्धि, उनकी उन्नति, तथा उनके उचित प्रयोग उस को मानव जीवन का लक्ष्य बताती है। न केवल यह इन शक्तियों की जागृति अथवा प्रफुल्लता को जहां जगत् में केवल शाब्दिक शोभा का विषय बनाया जाता है, वहाँ आर्य जाति इन शक्तियों की क्रियात्मक उन्नतिके साधन को भी वेद आज्ञा के अनुसार मनुष्यों को बतानी है। ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों, ब्राह्मण, आदि वर्णों, गर्भाधानादि, संस्कारों, ब्रह्मयज्ञ आदि नित्य कर्मों और अनेक प्रकार के यज्ञादि नैमित्तिक कर्मों के विज्ञान को समझे और उन पर आचरण किये बिना इन शक्तियों का विकास होना कठिन ही नहीं वरन् सर्वथा असम्भव है, और कोई मनुष्य इनमें कभी सफलता नहीं पा सकता, जब तक मानव जाति के सदस्य अर्थात् सब मनुष्य इनके सम्बन्ध में पारस्परिक सहयोग को काम में न लावें, इसीलिये आर्य समाज वेद के इस उद्देश्य को लक्ष्य रखता है, कि वेद की कल्याणी वाणी का मनुष्य मात्र में प्रचार करो। ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्ण ही नहीं, नीच से नीच शूद्र मति और पापी से पापी चाण्डाल तक सब नर नारी के कान और मन तक इस सर्व दुख निवारणी शिक्षा का संदेश पहुँचाओ। और इसी उपदेश के

अनुसार आर्य समाज के छटे नियम में यह शब्द आये हैं कि "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्योद्देश्य है। अर्थात्, शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना"। और इसी नियम की क्रियात्मक सफलता के लिये नवें नियम में कहा गया है-"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये बल्कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।" साहिब जी महाराज ने सामाजिक अथवा सामूहिक शक्ति को वर्णन नहीं किया। तथापि व्यक्तिगत, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का विकास होने से समाज का समष्टि रूप में विकास आप से आप प्रदर्शित होने लगता है। इसलिये हम आप के कथन में अधिक दोष नहीं देखते, प्रत्युत वैदिक सिद्धान्त की गुञ्जार आपके इस कथन में भी मानते हैं।

सर्ग ११ — (सन्त, सत, गुरू की शागिर्दी)
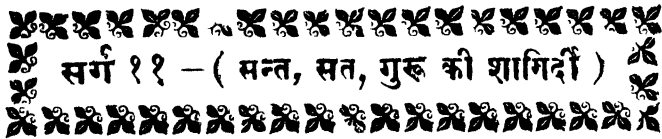
भाग १ पृष्ठ ४ धारा ६ "यह निर्विवाद है, कि शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों को जगानेके लिये प्रत्येक नव जात शिशुको प्रथम कुछ काल अपने माता पिता से सहायता लेनी पड़ती है। तदनन्तर वह शारीरिक व्यायाम तथा विद्या आदि सद्गुणों में कुशल पुरुषों की शागिर्दी स्वीकार करता है, इसी सिद्धान्त के अनुसार राधास्वामी मत सिखलाता है, कि अपनी गुप्त आत्मिक शक्तियां जागृत करने के लिये भी प्रत्येक मनुष्य को किसी पूर्ण आत्मिक गुरू की शरण लेनी चाहिये। जिसे सन्त मत की परिभाषा में सन्त सतगुरू कहा जाता है।" यह धारा भी केवल वैदिक धर्म्म की शिक्षा का ही प्रकाश है। आश्रम व्यवस्था में प्रथम ब्रह्मचर्या-

श्रम है, और उसका रहस्य ब्रह्मचारी का सदाचार तथा उच्च गुरु से शिक्षा पाने में है। गृहस्थाश्रम है तो उसमें भी वेदादि सत्य शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण, सन्यासी आदि के सत्सङ्ग अथवा विद्वान आचार्यों के उपदेश पर निर्भर है जो सच्चे गुरु समझे जाते हैं। रहे वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम इनमें तो प्रत्येक मनुष्य आत्मशिक्षा के ही समर्पण होता है और अपने से अधिक योग्य विद्वान् अथवा आप्त पुरुष को गुरु समझते हुए क्रमशः आत्मिक उन्नति करने की शिक्षा है और बड़े से बड़े विद्वान योगी पुरुष तक को यही शिक्षा वेद से मिलती है कि वह योग द्वारा परम गुरु परमात्मा से ज्ञान प्राप्त करे। योग दर्शन पाद १। सूत्र २६। है, स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। वह प्राचीनतम पुरुषाओं का काल आदि की दृष्टि से परिवर्तन रहित एक मात्र गुरु है। इससे सिद्ध है कि परमात्मा सर्वोत्तम और सब का यहां तक कि गुरुओं का भी गुरु है। यज्ञोपवीत, अथवा वेदारम्भ संस्कार में आचार्य शिक्षा देते हुए कहता है कि वास्तविक गुरु वा आचार्य तो परमेश्वर ही है, मैं केवल उसका अनुगामी वा प्रतिनिधि मात्र हूँ। अतः गुरु शब्द और उसका भावार्थ तो आप वेदोक्त ही मानते हैं और प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक अवस्था में अपने से उच्च विद्वान से शिक्षा पाने की आवश्यकता भी रहती है। सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११। में महर्षि दयानन्द स्वयं मुण्डकोपनिषद् खण्ड २। मन्त्र १२। का प्रमाण देते हैं। "तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। सत्यादि को पूर्ण रूप से जानने के लिए वह हाथ जोड़े, हाथ में समिधा लिये, वेद के ज्ञाता ब्रह्म के सच्चे मानने वाले और सदाचारी गुरु की शरण में जावे। अतः सिद्धान्त की दृष्टि से गुरु की शागिर्दि वैदिक सिद्धान्त है रहे पाखण्डी संत

और गुरु, उनका आर्य्य-समाज खण्डन करता है। आपभी पृष्ठ ७। धारा ४। में लिखते हैं, "परन्तु विदित रहे कि सन्त सत गुरु से आशय किसी ऐसे मनुष्य का नहीं है जो आत्मिक शक्तियों तथा लोकोंके आन्तरिक रहस्य का केवल शाब्दिक ज्ञान या पाठमात्र का ज्ञान रखता हो। किन्तु उस पूर्ण पुरुष से है जिसने साधन के द्वारा अपनी आत्मिक शक्तियों को पूर्णतः जागृत करके सच्चे मालिक से योग प्राप्त किया है अथवा जिसको जन्म से ही परम गति प्राप्त है।" पांचवे अध्याय में हम सिद्ध करेंगे कि राधास्वामी मत में गुरुडम है गुरुभक्ति नहीं और यथार्थप्रकाश का यह सिद्धान्त सम्बन्धी बयान राधास्वामी मत के साधन से सर्वथा भिन्न है। परन्तु यहां केवल वैदिक सिद्धान्त की गुञ्जार का विषय है। ज्ञान विना आचरण के मुर्दा है। अथवा जीवशून्य शरीर बड़ा है, ज्ञान का यथार्थानुभव होता ही आचरण से है, इसलिये वेद मनुस्मृति, सत्यार्थप्रकाशादि में सच्चे गुरु और पाखण्डी सन्तादि के लक्षण विस्तार पूर्वक वर्णन किये गये हैं। यह सत्य है, कि ज्ञान आचरण के बिना निरर्थक है। परन्तु यह भी सत्य है कि यथार्थ ज्ञान के विना सदाचार भी असम्भव है। अतः छः और सात दोनों धारायें मिलकर वैदिक शिक्षा की ही सचाई का दम भरती हैं कि सब मनुष्य ज्ञान और सदाचार दोनों प्रकार से उन्नत पुरुषों की शरण में बैठकर मन और आत्मा की पवित्रता के संबंध में शिक्षा पाते रहें और निष्काम विद्वान योगी संन्यासी सब कोई विद्या सम्बन्धी तथा आत्मिकोन्नति में लगे रहें। स्वार्थ पाखण्ड आदि के दुर्गुणयुक्त गुरु स्वयं कुमार्गगामी हैं और अपने अनुयायियों को भी कुमार्ग में भटकाते हैं।

सर्ग १२-आचार, अनाचार, भक्ष्य, अभक्ष्य

वेदादि सत्य शास्त्रों में मुक्ति और बन्ध, विद्या और अविद्या का जहां आत्मा की दृष्टि से वर्णन किया गया है वहां शारीरिक मानसिकोन्नतिके लिये आचार, अनाचार और भक्ष्य अभक्ष्य अर्थात् खाने न खाने की वस्तुओं के सम्बन्ध में भी स्पष्ट नियम बताये हैं। स्वामी दयानन्द ने इन्हीं प्राचीन ग्रन्थों की शिक्षा का सत्याथ प्रकाश समुल्लास १० में प्रकाशित किया है और हर्ष का विषय है कि यथार्थप्रकाश में भी इन्हीं नियमों का बलपूर्वक समर्थन किया गया है। खान पान और सङ्गादि में सावधानता की आवश्यकता बताते हुए यद्यपि राधास्वामी मत से आप विशेष कलङ्क मिटाने में सफल नहीं हुए तथापि सिद्धान्त रूप से आपके इस कथन में भी वैदिक सचाई का ही दर्शन हो रहा है। "आत्म-ज्ञान के जिज्ञासु की साक्षी सांसारिक स्वतंत्रता छोड़ और शरीर वा मन की अनावश्यक चेष्टाओं को रोक कर अपना ध्यान आत्मिक ध्येय पर क़ाइम करने की होती है और चूंकि मनुष्य के शरीर वा मन पर भोजन, जीवन के साज़ व सामान और देश काल की अवस्था का भारी प्रभाव पड़ता है इसलिये राधास्वामी मत सिखलाता है कि शौकीन परमार्थी केवल इस प्रकार के सतो-गुणी भोज्य पदार्थों का प्रयोग करे जो उसके शरीर व मन को अनावश्यक एवं असभ्यता पूर्ण चेष्टाओं के लिए उत्तेजित् न करें। और जीवन के साज़ व सामान से केवल कार्यमात्र वास्ता रक्खे, और अपना समय ऐसे साधनों और सतसंगों में व्यतीत करे जो इष्टपूर्ति में सहायक हों।" पृष्ठ ६२ पर आप फरमाते हैं— "साधारण मनुष्यों को यह ज्ञान नहीं कि खान पान के पदार्थों का 'जो हमारे प्रयोग में आते हैं' प्रभाव हमारे शारीरिक

स्वास्थ्य तक ही सीमित नहीं रहता, प्रत्युत हमारे मन और विचारों तक पहुँचता है। चुनाँचे इन पदार्थों के सम्बन्ध में सावधान न रहकर बहुत से परमार्थी अपनी आत्मिक उन्नति के मार्ग में अकारण ही रुकावटें पैदा कर लेते हैं। जैसे किन्हीं दूषित अंगों ('काम, क्रोध, मोह, लोभादि) में जोर के साथ बर्तने वाले अथवा छल छिद्र से रुपया कमाने वाले पुरुष के घर का एक बार दिल खोलकर भोजन पा लेने से परमार्थी को चिर काल तक सिर पटकना पड़ता है। कारण यह कि उसका मन इतना मलीन हो जाता है कि किसी प्रकार वश में नहीं आता है। इसी प्रकार दुर्व्यसनी लोगों की सङ्गत में कुछ समय बिताने और उनके कामों में थोड़ी सी दिलचस्पी लेने से उसके मन में ऐसी प्रबल चंचलता आजाती है कि महीनों परेशान रहना पड़ता है।" इस प्रकार की शिक्षा किसी मनुष्य की निजो शिक्षा नहीं, मनुष्यों के कल्याण के लिए सब आवश्यक शिक्षायें परमात्मा की ओर से रचना के आरम्भ से ही वेद के रूप में मिली हुई हैं। और सत्यार्थ-प्रकाश आदि में उनको ऐसी उत्तमता से वर्णन किया गया है कि किसी और पुस्तक में नहीं किया गया। परन्तु स्वामी दयानन्द अथवा किसी और ऋषि ने उन पर अपना स्वत्व नहीं जमाया। परम गुरु परमेश्वर की अमानत के तौर पर सचाई का सन्देश मनुष्य को पहुँचाते आये हैं अतः उचित यह है कि साहिब जी महाराज भी पूर्व से विद्यमान अच्छी शिक्षाओं पर राधास्वामी मत की अथवा अपनी छाप न लगावें, केवल सत्तर वर्ष की आयु का राधा-स्वामी मत इस ज्ञान का आविष्कारक नहीं, सब भलाइयों और सत्य विद्याओं का ज्ञान परमात्मा का है और उसी के ऐजन्ट ऋषि मुनि उनका प्रचार करते आ रहे हैं।

सर्ग ३—एकाग्रता और उपासना

यथार्थ प्रकाश धारा ११पृष्ठ ६—"अभ्यास के समय नाम और रूप की धारें उसके मन को चञ्चल और उसके ध्यान को डावां-डोल करती हैं। इन धारों को रोकने के लिए सब से उत्तम उपाय यह है कि मनुष्य अपने मन को एक किसी रोचक नाम वा रूप में लगाने का यत्न करे जैसे शरीर बालक किसी रुचिकर खेल से लग कर दूसरी शरारतों से रुक जाते हैं ऐसे ही अभ्यासी का मन भी किसी रोचक नाम वा रूप के ध्यान में लगकर दूसरे नामों तथा रूपों की याद भूल जाता है।"

वेदादि सत्य शास्त्रों में योग विद्या का पूरा विधान है। उसी के आधार पर योगदर्शन में योग के आठ अंग बताये हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। इनमें सारे आवश्यक विषयों तथा अंग प्रत्यङ्ग का अत्यन्त सत्य एवं मुख्य सार सा आगया है और सफलता के अभीष्ट पद तक पहुँचने के दर्जों का क्रमशः वर्णन किया गया है। इन्हीं में से एक अंग धारणा का जो छटा अंग है उपरोक्त उद्धरणमें संक्षिप्त तथा संदिग्ध सा वर्णन है। सच्ची और पूर्ण मर्यादा के विना यथार्थ उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता, तथापि सिद्धान्तरूप से उपरोक्त कथन वैदिक शिक्षा का ही भाव दर्शाता है। मालिक की याद के अनेक प्रचलित साधनों का संकेत करके पृष्ठ ६ धारा १२ में लिखा है—"राधा स्वामी मत में जो मार्ग अभ्यास का बताया जाता है वह इन सब से विलक्षण और उत्तम है। इसके द्वारा अभ्यासी की श्रुत रूपी वाणी से नाम का जप और श्रुतरूप नेत्र से रूप का ध्यान करना होता है।" निस्संदेह यह विचार वैदिक शिक्षा के अनुकूल है।

पौराणिक घण्टा, घड़ियालादि के शोर अथवा चर्म दृष्टि से मूर्ति के दर्शन करने के स्थान में आत्मा से ध्यान करना ही सर्वोत्तम उपासना विधि है। राधा स्वामी मत में श्रुत शब्द के अभ्यास अथवा अनहद शब्द के नाम से जो साधन प्रचलित है उस पर अनेक आक्षेप हो रहे हैं और वह वैदिक अभ्यासादि के अन्तर्गत नहीं आता परन्तु साहिबजी महाराज ने जो आत्मनेत्र और श्रोत्र से उपासना का सम्बन्ध जोड़ा है, इसे हम अवश्य वेदानुकूल मानते हैं क्योंकि शारीरिक सम्बन्धों से स्वतन्त्र रूपसे निराश स्वभाविक शक्तियों से जो आत्मा का व्यवहार समाधि और मुक्ति में होता है उसी का संकेत इन शब्दों में किया गया है। सब ऋषि, मुनि, योगी, यती सृष्टि के आदि में यथार्थ अभ्यास करते और अपने वैज्ञानिक एवं आत्मिक कौशल से जगत् को उपकार पहुंचाते आये हैं अतः एकाग्रता का नियम अथवा आत्मिक अनुभव राधास्वामी मत का आविष्कार नहीं, हां जितना भी आत्मवाणी से नाम का जप और आत्म नेत्र से स्वरूप का ध्यान करने का साधन है अथवा साधन के विना कोरा कथन मात्र भी है, उतना ही श्रेयस्कर है। "जब स्मरण और अभ्यास के द्वारा अभ्यासी का मन किसी क़द्र शान्त हो जाता है तो उस समय २ पर आत्मा के निवास स्थान पर आत्मिक शब्द जिसे सन्त मत की परिभाषा में अनहद शब्द कहते हैं सुनाई देने लगता है। यह रूहानो आवाज़ प्रत्येक मनुष्य के अन्दर चाहे वह किसी जाति वा मत का हो हर समय जारी है।" पृष्ठ ६ धारा १३। स्मरण अथवा ध्यान की यथार्थ विधि क्या है? मन का कुछ अथवा पूर्ण रूप से शान्त होना क्या अर्थ रखता है? आत्मा का निवास स्थान कौनसा है? रूहानी आवाज़ और सन्त मत का अनहद शब्द क्या है? इन विषयों पर तो द्वितीय अध्याय में विचार होगा। हां, रूहानी आवाज़

का नियम निर्विवाद है इसे आत्मिक प्रेरणा, ज़मीर की आवाज़ अथवा सत्य का साक्षात्, कुछ ही नाम दो। यह सब में हो सकती है, इसलिए कि प्रत्येक मनुष्य में आत्मा है" स्मरण वा ध्यान की युक्तियाँ जो राधास्वामी मत में प्रचलित हैं कोई नई बात नहीं हैं। प्राचीनकाल से इनका रिवाज चला आता है। पातञ्जल योग सूत्रों में भी इनका वर्णन है परन्तु इन युक्तियों की सचाई, अनुराग और सहज वैराग्य के बिना असम्भव है" इन शब्दों में साफ़ इक़-बाल है कि स्मरण और ध्यान की जो विधि प्राचीन समय में थी. वही यथार्थप्रकाश के लेखक महोदय की सम्मति में राधा-स्वामी मत का वास्तविक लक्ष्य है और क्योंकि धारा १२ में आप फ़रमा चुके हैं कि राधा स्वामी मत में जो विधि अभ्यास की बताई जाती है वह इन सब से विलक्षण और उत्तम है, इसके द्वारा अभ्यासी को आत्मिक वाणी से नाम का जप और आत्मनेत्र से स्वरूप का ध्यान करना होता है।" इसलिए इन दोनों वर्णनों के परस्पर के मेल से सिद्ध होता है कि साहिब जी महाराज स्मरण और ध्यान को प्राचीन वैदिक शैली पर ही विश्वास रखते हैं।

सर्ग १४—श्रुत, शब्द अभ्यास और अनहद शब्द
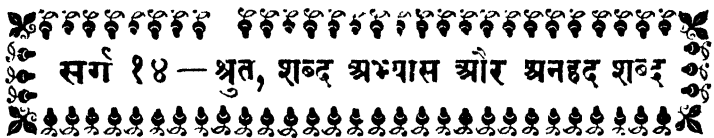
वैदिक धर्म में यथार्थोपासना विधि यह है कि योग के आठ अङ्गों का ज्ञान और उन पर आचरण हो। समाधि अवस्था में परमात्मा के ओ३म् नाम अथवा वैदिक शब्दों का अर्थ सहित जप वा विचार हो यही सच्चा स्मरण वा ध्यान है इसी से आत्मा अपनी स्वाभाविक शक्ति से देख और सुन सकता है और इसी से यथार्थ अर्थ वा ज्ञान का दर्शन पा सकता है। इसी सच्चाई को मानते हुए

यथार्थप्रकाश में वाणी के जप को निकृष्ट और मन के जप को भी बहुत साधारण दर्जा दिया गया है। यहीं तक ही नहीं आप आंख बन्द करके मन से ईश्वर के सर्वव्यापकादि गुणों पर मनन करना अथवा गायत्री का जप करना वा कल्पित ध्यान से ईश्वर को आकाशवत् व्यापक समझना आदि को भी असली आशा से नीचे बताते हैं, कारण यह कि वास्तव में आत्मा से स्मरण और ध्यान केवल समाधि अवस्था में ही हो सकता है। उस वक्त के जप किए गए शब्द का यथार्थ अर्थ भी साथ ही प्रगट हो रहा हो इस सारे कथन में आपकी आदर्श शिक्षा योगदर्शन का ही लक्ष्य है जो यह कि—"तज्जपस्तदर्थभावनम्" अर्थात ओ३म् नाम का जप हो परन्तु उसके अर्थ वा यथार्थ सत्ता का भान करते हुए। साहिब जी महाराज के इस विषय सम्बन्धी सारे लेख का निचोड़ यह हैकि वह श्रुत शब्द, अभ्यास अथवा अनहद शब्द सुनने की फिलासफी से अर्थ सहित जप या स्मरण और ध्यान का आशय लेते हैं। हम किसी अगले अध्याय में इस पर विचार करेंगे कि राधास्वामी मत का श्रुत शब्द योग पतञ्जलि मुनि के योग से न केवल अनुकूलता नहीं रखता उस से कोई यथार्थ लाभ भी मनुष्य को नहीं हो सकता। हां जैसे अन्धविश्वास आदि के द्वारा प्रत्येक मनुष्य मिथ्या भ्रमजाल का शिकार हो सकता है उसी प्रकार राधास्वामी मत में भी यह भ्रम जाल घर कर चुका और उस मत के अनुयाईयों को सच्चा ही प्रतीत होता है परन्तु हम केवल मौलिक सिद्धान्त की दृष्टि से विचार कर रहे हैं इसलिए हमें यह सच्चाई पाठकों के आगे रखनी है कि श्रुत शब्द अभ्यास की प्रचलित परिभाषा मिथ्या शैली होने पर भी प्राचीन ऋषियों के अभ्यास की स्मृति अवश्य ताजा कराती है। जैसे—

अज़ नक़शोनिगारे दरो दीवारे शिकस्ता,
आसार पदीदस्त सनादिदे आजमरा।

योगाभ्यास करने वाले ऋषि मुनि समाधि अवस्था में वेद वा श्रुति के शब्दों का यथार्थ रूप से तथा उच्चतम मनन करते हुए उनके अर्थ और सम्बन्ध का दर्शन पाते थे। यह प्राचीन चर्चा श्रुत, शब्द योग वा श्रुत शब्द अभ्यास से प्रगट होता है। श्रुति की जगह श्रुत शब्द चला और श्रुति के शब्द का समाधि अवस्था में जो विचार होता था, वह श्रुतशब्द अभ्यास कहागया, और चूंकि श्रुति का सम्बन्ध ज्ञान से था, जो चेतन जीवात्मा से ग्रहण किया जाता है इसलिये समय पाकर अन्तर श्रुत को आत्मा के ही अर्थ में लिया गया और श्रुत शब्द अभ्यास की वर्तमान परिभाषा का रिवाज़ हुआ। सार वचनादि में अनेक स्थानों पर स्रुत की जगह श्रुत ही लिखा मिलता है। यह तो हुई शाब्दिक समानता, अब लीजिये अर्थ की समानता को, योगाभ्यास अपनी यथार्थ और खालिस अवस्था में सत्य ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। आत्मा और परमात्मा की सूक्ष्म सत्ताओं का ज्ञान न हो और प्रकृति के मुक़ाबले पर इनका महत्व हृदय पर अंकित न हो तो योगाभ्यास अथवा समाधि के कुछ अर्थ नहीं रहते। इसी लिये जब ज्ञान की न्यूनता हुई तो तत्व ज्ञान के स्थानापन्न शब्दों पर मनन होना बन्द हुआ और कोरा शब्द सुनने का रिवाज हुआ पर समाधि अवस्था का सम्बन्ध अन्तर से था, इसलिये उसके संस्कारों के कारण आन्तरिक शब्द सुनने की रुचि हुई और कान को बन्द करके इसे सुनने की सूझी, पर यह आन्तरिक शब्द भी आकाश-वर्ती और अर्थशून्य है। इसके अभ्यास पर ध्यान देने से अष्टाङ्ग योग की मर्यादा अरुचि कर एवं विस्मृत होती गई। तथापि श्रुत, शब्द अभ्यास के शब्द निस्सन्देह वास्तविक वैदिक सचाई के यथार्थरूप से अब तक उत्तराधिकारी हैं। यथार्थ प्रकाश का विचार पूर्वक पाठ करते हुए हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि

साहिब जी महाराज अपनी विवेचना व विचारशक्ति से इस बात को भली भांति समझ चुके हैं। इसी का परिणाम है कि वह ध्वन्यात्मक शब्दों अथवा बीज मन्त्र की परिभाषाओं को अपनी पुस्तक में सार्थक बना सके हैं और यही वह यथार्थ रहस्य है जिसके द्वारा आप अनहद् शब्द का यथार्थ रूप अनाहत पेश करते और पृष्ठ २२ धारा ३४ में फरमाते हैं—"शब्द दो प्रकार के हैं, आहत और अनाहत जो शब्द ताड़न से पैदा होते हैं वे आहत कहलाते हैं और जो बिना ताड़न के आप से आप प्रकट होते हैं उनको अनाहत कहते हैं।" अब यह भाव निकला कि अनहद् शब्द वास्तव में अनाहत शब्द है और वह वाणी और कान के प्रयत्न के सम्बन्ध से परे और आत्मा में प्रकट होता है। यही नहीं आप स्पष्ट रूप से स्वामी दयानन्द की पोजीशन को अपनी पुष्टि में पेश करके एक प्रकार से अन्तिम व्यवस्था देते हैं कि अनाहत शब्द वास्तव में वैदिक शब्द है। आप लिखते हैं—"स्वामी दयानन्द के विचारानुसार ईश्वर ने वेदों का ज्ञान अनाहत शब्दों द्वारा ही प्रकट किया क्योंकि उसके होंट और जबान तो थे नहीं, जिन्हें हिला वा टकरा कर वह आहत शब्द पैदा कर कर सकता।" ईश्वर करे मानव जाति को फिर वह समय देखने का सौभाग्य प्राप्त हो कि कान मूँदकर कल्पित अनहद् शब्द सुनने की जगह समाधि अवस्था में अनाहत शब्दों को सुन अर्थसहित उन का दर्शन पाया जा सके।

सर्ग १५ आत्मा की जागृति और मुक्ति

वैदिक सिद्धान्त बताता है यह शरीर जड़ है, मन भी जड़ है। मन में जो पांच इन्द्रियों के द्वारा रूप, रस स्पर्श, गन्ध और

शब्द का अनुभव होता है। यह आत्मा की विद्यमानता के कारण से है। वह आत्मा चेतन है, और शरीर अथवा जन्म मरण के बन्धन में उसकी स्वतन्त्रता परिमित हो रही है। जितना बन्धन न्यून होता है उतना ही अधिक स्वतन्त्रता से आत्मा को स्वाभाविक शक्तियों का प्रकाश होता है। शरीर व इन्द्रियों के बन्धन होने पर भी आत्मा सत्य विद्या एवं सदाचार से अनेक प्रकार की मानसिक स्वाधीनता पाती और जीवन मुक्त कहाता है। और अधिक उन्नति करके प्राकृतिक सम्बन्ध से सर्वथा मुक्त होकर मोक्ष पाता है। इसी भाव को यथार्थ प्रकाश में इस प्रकार वर्णन किया गया है "श्रुत एक जीवित चेतन शक्ति है और ज्ञान उसका स्वाभाविक गुण है, इस समय श्रुत शरीर और मन के गिलाफों में लिपटी है, परन्तु तो भी उसके जौहर के गुणों के प्रभाव से शरीर और मन तक अपनी स्थिति और योग्यता के अनुसार चेतन हो रही हैं। ज्यों ज्यों साधन के द्वारा श्रुत इन गिलाफ़ों से मुक्त होती जाती है। उसके स्वाभाविक गुण अधिक से अधिक बल के साथ प्रकट होते हैं। यहाँ तक कि सब के सब गिलाफ़ दूर होने पर उसका सत् चित् आनन्द स्वरूप प्रकट हो जाता है। चूंकि श्रुत शब्द अभ्यास श्रुत को इन गिलाफ़ों से क्रमशः स्वाधीनता दिलाने का ही साधन है। और श्रुत का अन्तर में क्रमशः उच्च आत्मिक केन्द्रों पर पहुंचाना इन गिलाफ़ों से क्रमशः छूटने को ही सिद्ध करता है अतः स्वभावतः इस साधन के बन पड़ने पर अभ्यासी के अन्दर धीरे धीरे दिव्य ज्ञान शक्तियाँ विकसित होती हैं और श्रुत शक्ति के पूर्णतः जागृत होने पर अथवा कुल मालिक का आवरण रहित दर्शन करके कृतकृत्य हो जाता है।" इस उद्धरण में केवल दो शब्द छोड़ कर शेष सारा वर्णन हूबहू वही है जो वैदिक धर्मियों का मन्तव्य है। आत्मा के लिये सत्,

चित, आनन्द, का शब्द प्रयुक्त करने तथा स्तुत शब्द अभ्यास के हानि लाभ पर किसी अन्य स्थान में प्रकाश डाला जायेगा। यहाँ यह कहना उचित है, सिद्धान्त रूप से आत्मा से प्राकृतिक सम्बन्ध अथवा अविद्या का पर्दा दूर होने पर आत्मशक्तियों का विकसित होना वह भाव है, जो आर्यधर्म वेदानुकूल माना जाता है। इस जागृति की अन्तिम पराकाष्ठा का नाम मुक्ति है। जिसके विषय में आपका विश्वास है, कि जैसे प्रारम्भ में आत्मिक शब्द की सहायता से निचले स्थानों में फैली वा भ्रमती हुई आत्मा सहज से मानव शरीर में वर्तमान अपने निवास स्थान पर सिमिट आती है। ऐसे ही उच्च कोटि के आत्मिक शब्दों की सहायता से वह क्रमशः मध्यवर्ती मञ्जलें तै करती हुई एक दिन रचना के आत्मिककेन्द्र अर्थात् सच्चे मालिक के दरबार में पहुँच कर कृतकृत्य हो जाती है। राधास्वामी मत की यही अन्तिम मञ्जिल है और इस स्थान पर पहुंचने ही को सच्ची मुक्ति वा परमगति की प्राप्ति कहते हैं। आत्मिक शब्द की किसी भिन्न प्रकार की सम्भव व्याख्या को छोड़ कर आत्मा का समाधि अवस्था तक पहुँचना और इस अवस्था में परम आत्मपुरुष परमात्मा के दर्शन और तत्व ज्ञान के साक्षात से अन्त में जन्म मरण के बन्धन से छूटना सच्चे अर्थों में मुक्ति है और यही ऊपर के शब्दों का लक्ष्य है।

सर्ग १६ पूर्व कल्प के संस्कार

वैदिक धर्म का सिद्धांत है, कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है। रात और दिन के चक्र की भांति उत्पत्ति और प्रलय का चक्र है। महाप्रलय के समय के संस्कारों के अनुसार ही नई रचना में जन्म

मिलता है। इसी सिद्धांत को मानते हुए साहिब जी महाराज भाग १ धारा १८ पृष्ठ ९ पर लिखते हैं। "जब किसी मनुष्य के वह पुराने संस्कार जिनके कारण उसकी सुत की रचना के आदि में संसार में उतरना पड़ा, समाप्त होने के निकट होजायें और उसकी सुत की प्रवृत्ति प्रकृति की ओर कम हो जाये तब कहीं उसके मन में कुल मालिक के चरणों के लिये अनुराग पैदा होता है। यही कारण है कि जगत में अनेक बड़े २ योग्य और चतुर पुरुष इस सौभाग्य से वंचित हैं और कई अत्यन्त सीधे सादे लोग इससे माला माल हैं। राधास्वामी मत में ऐसे लोगों को महरी जीव कहा जाता है।"

यहाँ न केवल पूर्व रचनाओं और संस्कारों को स्वीकार किया गया है किन्तु इस वैदिक सचाई को भी माना गया है कि मनुष्य की उन्नति तथा अवनति का आधार उसके संस्कारों की कमाई पर है। क्या जन्म और क्या कर्म फल सबका आधार यह संस्कार हैं। मुक्ति का पहला चिन्ह यह है, कि ईश्वर के चरण शरण की ओर आकर्षण हो। जब तक प्रकृति की ओर संस्कार झुके हुए हैं तब तक मनुष्य ईश्वर की ओर प्रवृत्त नहीं होता। संध्या वा भक्ति में मन का न लगना भी केवल विपरीत संस्कारों की प्रबलता का परिणाम है। और स्वाध्याय सत्सङ्ग आदि सारे साधनों का यथार्थ उद्देश्य केवल यह है, कि बुरे संस्कार दब जावें, और उत्तम संस्कार प्रबल हों।

सर्ग १७--ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात्रि

५३—उस (परब्रह्म पुरुष) के जिम्मे ब्रह्मांड व पिंड की रचना व ब्रह्म की संभाल है। चूँकि उसकी सृष्टि की आयु परिमित

मित है और समय आने पर उसकी सृष्टि का विनाश हो जाता है। इसलिये उस पुरुषको काल पुरुष भी कहते हैं। ब्रह्माण्ड व पिंडकी कुल सृष्टि जो त्रिगुणात्मक है, इसी पुरुष के आधार पर काइम है, यह स्वयं अमर है परन्तु यह कुछ काल जागता है और कुछ काल सोता है। उसके जागने के समय को उसका दिन और उसके सोने के समय को उसकी रात कहते हैं। जब उसका दिन शुरू होता है तो उसकी सृष्टि प्रगट हो जाती है और जब उसकी रात होती है तो उसकी सृष्टि उसमें समा जाती है। इस समा जाने के व्यवहार को ही महा प्रलय कहते हैं। (धारा २०६ पृष्ठ २४७)

(आर्य्य) परब्रह्म पुरुष से सोना वा जागना के शब्दों को जोड़ना असलियतको न समझने अथवा सावधानता पूर्वक मौलिक सिद्धांत पर ध्यान न देने का परिणाम है। जब वास्तव में प्रगट हुई तो सृष्टि और ब्रह्म में लीन हुई तो सृष्टि तब सोना वा जागना सृष्टि का हुआ या ब्रह्म का ? ब्रह्म तो दोनों अवस्थाओं में एक रस और दोनों अवस्थाओं का साक्षी भूत हुआ। इस ग़लती को छोड़ कर इस उद्धरण से विदित होता है कि साहिब जी महाराज ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात्रि अर्थात् सृष्टि की स्थिति और प्रलय के वैदिक सिद्धांत को मानते हैं। यद्यपि आपने न सृष्टि का समय लिखा, न महाप्रलयका और बयान संदिग्ध व अधूरा दिया है परन्तु आशय तो पूर्णतः वही है। तथा सोना और जागना के शब्द भी जो ब्रह्म से सर्वथा मिथ्या रूप से प्रयुक्त किये गये हैं, इनके अन्दर भी ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात्री के शब्द काम करते हैं। ब्रह्म का अर्थ लेना था बड़ा और १२ घण्टे के छोटे दिन के मुकाबले पर चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष के दिन पर बुद्धि से विचार करना था पर आपने केवल ब्रह्म शब्द को लिया, प्रकरणानुकूल इसके अर्थ पर विचार न किया और दिन और रात के साथ इसे लगा

देख कर आप ने ब्रह्म का दिन और ब्रह्म की रात कही और जब दिन और रात ब्रह्म का हुआ तो सोना और जागना के सम्बन्ध में भी आपको दूर की सूझनी ही थी।

सर्ग १८—प्रकृति जड़ है

पृष्ठ २१९ धारा १७६ के यह शब्द साहब जी महाराज के सम्बन्ध में भ्रांति फैलाने वाले हैं। "रचना का व्यवहार आरंभ होने से पूर्व यह गुबार अर्थात् न्यून चेतन (जिसे और लोग माया कहते हैं) विशेष चेतन से मिला हुआ था। सृष्टि क्रम ने उसे पृथक् कर दिया"। धारा १७७ में लिखा है "सन्त मत आद चेतन जौहर में दर्जे मानता है इसलिये धारें भी चेतन हैं और माया भी चेतन है परन्तु इनमें उत्तम या निकृष्ट का भेद है। जिन धारों में न्यून चेतन की मिलौनी थी अर्थात् जो धारें निर्मल चेतन से किसी दर्जे का न्यून चेतन लेकर निकली थीं उनका प्रकाश निर्मल चेतन के प्रकाश की अपेक्षा जंगारयुक्त था जंगार का प्रकाश न्यून चेतन की मौजूदगी से हुआ।"

(आर्य्य) यहां माया वा प्रकृति को चेतन कहना सचमुच एक विलक्षण बात है, परन्तु इसका मुज़ाइका नहीं हो सकता, क्योंकि न्यून चेतन और विशेष चेतन कहकर उन्हीं दो प्रकार के गुणों वाली सत्ताओं की तमीज़ कराई गई है जिन्हें वैदिकधर्मी जड़ और चेतन कहते हैं। साहब जी महाराज ने धारवाद का प्रचार करना है आखिर राधास्वामी मत को पृथक् रखने के औचित्य का आधार भी तो होना चाहिए। आद चेतन धारा को माने विना रचनाका सिलसिला कायम नहीं हो सकता। उस आद

चेतन धार का सम्बन्ध राधास्वामी दयाल से हुए बिना राधास्वामी मत की विशेषता कुछ हो नहीं सकती अतः उस राधास्वामी धाम को कहा गया निर्मल चेतन देश की चोटी का स्थान। अब बाकी यह सोचना था कि उस स्थान से निकलने वाली आद चेतन धार में जड़ प्रकृति का सम्बन्ध जोड़ें इसके लिये आप आद चेतन धार में रचना की इच्छा और रचना की सामग्री मानने के लिये बाधित थे अन्यथा कार्य्य जगत् में विद्यमान सारे जड़ पदार्थ अभाव से उत्पन्न हुए मानने पड़ते। अतः अपने सारे बयानों को सगत करने के लिये बड़ी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से आपने आदि चेतन धारवाली रचनाकी सामग्री को भी चेतन कहा और चूँकि इस कथन के प्रत्यक्ष रूप से मिथ्या समझा जाने का भय था, इसका उपाय चेतन के साथ अदना या न्यून की उपाधि लगा कर किया गया। परन्तु एक ओर आपको यह सूक्ष्मदर्शिता और दूरदर्शिता है और दूसरी ओर सत्य सिद्धान्तों की शक्ति, इनमें प्रबल कौन है, इसका निर्णय पृष्ठ २४७ पर आपके ही दिये हुए इन शब्दों से होता है।

"चूँकि इसकी सृष्टि का ममाला स्वभावतः निकृष्ट एवं गति-शून्य (जड़) है और इसकी सृष्टि के सारे रूप रंग आत्माओं के ही आश्रय स्थित हैं"......इन शब्दों से यह प्रत्यक्ष सचाई आप की ही लेखनी से प्रगट होती है कि प्रकृति परब्रह्म की शक्ति से कार्य्य अवस्था में आती और जीवात्माओं के कर्मफल भोग का साधन बनती तथा जड़ तथा ज्ञानशून्य है। शरीर और मन प्राकृतिक हैं और साहब जी महाराज इन गिलाफों में लिपटा होने से आत्मा को मुक्ति से वंचित मानते हैं अर्थात् इन परदों को दूर करके ही आत्मा मुक्ति पा सकता है। साहब जी महाराज का यह मन्तव्य भी प्रकृति को जड़ ही सिद्ध करता और न्यून चेतन शब्द

को जड़ का ही पर्याय बताता है। आत्मा की विद्यमानता से शरीर और मन पर चेतनता का प्रभाव पड़ता है, वास्तव में उनमें चेतनता नहीं; यही भाव साहब जी महाराज ने हर कहीं ज़ाहिर किया है।

सर्ग १९—उत्पत्ति से पूर्व अवस्था

नहीं ख़ालिक़ मख़लूक़ न ख़लकत, कर्ता कारण काज न दिक्कत ॥३
द्रष्टा दृष्ट नहीं कुछ दरसन वाच्य लक्ष्य नहीं पद न पदारथ ॥ ४ ॥
ज़ात सिफ़ात न अव्वल आख़िर गुप्त न परगट बातन ज़ाहर ॥५
राम रहीम करीम न केशव कुछ नहीं कुछ नहीं कुछ नहीं था सो॥६

यह कड़ियां सार वचन नज़म, वचन ३८, जेठ मास में है। साहब जी यहां शब्दों का आशय इस प्रकार वर्णन करते हैं:—

(रचना से पूर्व) मालिक ने ख़ालिक रूप धारण न किया था और न उस समय कोई ख़लकत थी न मालिक कर्ता रूप से प्रकट हुआ था और न कारज रूपी सृष्टि था और न इस वक्त की सी तजुरबे में आने वाली माया की रुकावट रूनुमा थी। न कोई द्रष्टा था न दृश्य था न वाच्य (स्थूल ममाला) था और न लक्ष्य (सूक्ष्म ममाला)। सार यह कि सृष्टिक्रम के व्यवहार में आने पर जितनी भी सूरतें प्रगट होती हैं और जितनी रचना दिखाई देती है वह उस समय कुछ न थी।" यह कड़ियां केवल इस मन्त्र का भावार्थ दर्शाती हैं।

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो यो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ॥

उत्पत्ति से पूर्व अभाव की अवस्था थी कि यहाँ तक शून्य आकाश भी न था क्योंकि उसका व्यवहार मौजूद न था। सत्त

नाम प्रकृति भी न थी, न परमाणु था न कार्य्य जगत को बसाने वाला विराट्, केवल ब्रह्म की सूक्ष्म सामर्थ्य अर्थात प्रकृति थी। प्रभात समय के कुहरे के से अल्प जड़ को सामर्थ्य ही क्या है जो जो किसी वस्तु को ढाँप सके वह न गहरा है न ज़ोर वाला।

(ऋग० १०, १२०, १)

जो कुछ था सो अब कह भाखूँ, उनमुन सुन्न विस्मादि राखूँ॥१०॥
हैरत हैरत हैरत होई, हैरत रूप धरा इक सोई ॥ ११ ॥
आप ही आप न दूसर कोई, उठी मौज परगट सन्त ? होई ॥१४॥

अर्थात् उस समय एक मालिक कुल था और दूसरी कोई शै ज़ाहर न थी और मालिक उस समय उनमुन अवस्था में या सुन्न समाधि रूप था अर्थात् उसकी शक्ति उसके अन्दर गुप्त थी उसमें मौज या हिलोर उठी जिससे सत (त्रिगुणात्मक प्रकृति) ज़ाहर हुई। इस प्रकार सारे भाव इन वेदमन्त्रों के आशय के अन्तर्गत हैं:—(१) "ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत" अर्थात् ऋत नाम ब्रह्म वा ज्ञान और सत्यनाम प्रकृतिसे अभीद्धातप प्रकट हुआ।

२-तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमाइदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥

पहिले तम अवस्था थी, गहरे अंधेरे जैसी, जानने के अयोग्य आकाश रूप, अप्रकेत, सलिल अवस्था में सब जगत था, अनन्त परमेश्वरके सम्मुख तुच्छ, एकदेशी और उससे आच्छादित, पश्चात् ब्रह्म के ज्ञान व तप से यह कारण से कार्य्य अवस्था में आया।

ऋ० १०, १२९, ३।

वेद में जिसे तम अवस्था कहा, बाइबिल में उसे इन शब्दों में वर्णन किया गया हैकि "ज़मीन वीरान और सुनसान थी" और सार वचन में इस भाव को उनमुन सुन्न अवस्था नाम दिया है और और ब्रह्म के ज्ञान वा तप का सम्बन्ध मौज उठने या हिलोर से

बयान किया है जो कार्य्य जगत के प्रगट होने का कारण है। न केवल यह, साहब जी महाराज अनेक स्थानों पर लिखते हैं कि उत्पत्ति उस सामग्री से हुई जो महाप्रलय के समय परब्रह्म में कारणरूप में लीन हुई थी। पृष्ठ २३ के अन्त अर्थात् धारा १६२ में आप लिखते हैं—

"यह संसार उस सच्चे कुल मालिक ने बनाया और यह उस मसाला यानी जौहर से बना है जो सृष्टि की उत्पत्ति शुरू होने से पहिले मालिक के अन्दर गुप्त था।" इस से स्पष्ट है कि अन्य स्थानों पर जो आपने परब्रह्म की दो अवस्था गुप्त वा प्रकट बताई हैं वह असत्य हैं। गुप्त और प्रकट का सम्बन्ध प्रकृति से है और दूसरे यह कि आपको वह वैदिक सिद्धान्त मन से प्रिय है जो ऋ० १०, १२९, ३ के अनुसार मनु० अध्याय १ श्लोक ५ का विषय है।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

अर्थात् यह जगत् इस अवस्था में मौजूद था कि जाना न जा सकता था न उसके लक्षण वा बाह्य चिह्न विद्यमान थे, न यह तर्क से जाना जाता था और न इस अवस्था में होने के योग्य था मानों प्रसुप्तप्राय वा सुप्त अवस्था थी।

सर्ग २०—इलहामीभाषा अथवा शब्द और ज्ञान

५६—यद्यपि राधास्वामी मत में सूक्ष्म एवं गूढ़ अर्थ वाले वैदिक शब्दों का अभ्यास वा समाधि अवस्था में मनन नहीं होता, मनन होना तो कहां वेद को कुल मालिक की वाणी ही नहीं

माना जाता और न समाधि अवस्था पर विश्वास है। तथापि सुर्त शब्द अभ्यास की परिभाषा इनमें प्रचलित है और वह आंख कान बन्द करके शब्द सुनने की क्रिया करते हैं। इस शब्द की महिमा का सिक्का उनके मनोंपर बिठाने के लिये आदि चेतन धार से पहिले शब्द प्रकट होने का सिद्धान्त पेश किया जाता है और वह शब्द राधा स्वामी कहा जाता है। आर्य्य-समाज परमेश्वर को परम आप्त पुरुष मानता और उस वेद शब्द रूप उपदेश के प्रकट होने पर विश्वास रखता है जो यथार्थ ज्ञान के प्रतिनिधि-शब्दों का भण्डार है। अब यह बात कि राधा स्वामी शब्द मात्र असल कुल मालिक की धार द्वारा प्राप्त हुआ अथवा उसने ऋषियों के आत्मा में वेद शब्द का अर्थ वा सम्बन्ध के साथ प्रकाश किया, दूसरे अध्याय में बयान होगी। यहां केवल इस सिद्धान्त का सम्बन्ध है कि आदिकाल में शब्द प्रकट हुआ और यह वैदिक सिद्धान्त राधास्वामी मतमें बराबर माना जा रहा है। न केवल यह, साहब जी महाराज तो खुले तौर पर और डंके की चोट यह भी फरमाते हैं कि वह शब्द कान से सुना जानेवाला शब्द न था अपितु आत्मा में प्रकाशित होने वाला शब्द था।

पृष्ठ २१५, धारा १६६ में आपके यह शब्द विचारणीय हैं:—

"शब्द से यहां मुराद उस आवाज़ से नहीं है जो जानदारों के मुँह से या चीज़ों के टकराने या मुतहर्रिक होने से पैदा होती है। आप के शास्त्रों में इसी स्थूल शब्द को आकाशका गुण बताया है। चुनांचे वैशेषिक दर्शन में लिखा है कि श्रोत्र से ग्रहण किया जाता जो अर्थ है वह शब्द है (१०-०-३१), परन्तु सृष्टिके आरम्भ में जो शब्द प्रकट हुआ वह चेतन शब्द था वह स्थूल कान से सुनाई देने वाला शब्द न था।

सर्ग २१—सत्य का मंडन तथा असत्य का खंडन

५७—यजुर्वेद अध्याय १ मं० ७ में कर्म कांड की शिक्षा का आरम्भ करते हुए सर्व प्रथम यह उपदेश दिया गया है कि झूठ पाप तथा बुरे और अपवित्र विचारों को निर्मूल करना मनुष्य का सर्वोच्च कर्तव्य है। ऐसे ही हानिकारक एवं हिंसक पशुओं वा मनुष्यों से भी समाज को सुरक्षित रखना आवश्यक है। इसके बिना धर्म कर्म के क्रियात्मक रूप के लिये मैदान साफ़ नहीं हो सकता। सूर्य्य उदय होते ही अन्धकार का नाश करता है। कृषक खेती के लिये पहिले झाड़ झंकाड़ से भूमि को साफ़ करता है, हल चलाता, फिर खेत के चहुं ओर मनुष्यों व पशुओं से उसे सुरक्षित रखने के लिए कांटों वाली बाड़ लगाता और आन्तरिक विघ्नों अर्थात् स्वजात बूटियों को दूर करने के लिये नलाई करता है। गंदगी आदि के ढेर पर कोई हवन यज्ञ नहीं करता। राजा बाह्य आक्रमणों से राज्य को सुरक्षित रखता तथा चोरी आदि आन्तरिक दोषों से प्रजा को निश्चिन्त करने के प्रबल साधनों को धारण करके ही संतोष पूर्वक राज्य कर सकता है। इसीप्रकार सत्य वा धर्म के प्रचार तथा रक्षा के लिये अधर्म और असत्य का खण्डन परम आवश्यकीय है। महर्षि दयानन्द और आर्य-समाज ने मत-मतान्तर की अयुक्त एवं दोष युक्त शिक्षा का जो लेख, भाषण तथा शास्त्रार्थ द्वारा प्रबल खण्डन किया वह वेद की इसी पवित्र आज्ञा को पालन करने के लिए है। फोड़े से मवाद निकाले बिना मरहम लाभ नहीं पहुंचा सकती परन्तु लकीर के फकीर तथा असत्य पर निर्धारित मत मतान्तर इस खण्डन से अपनी हानि समझते हैं। अविद्या के कारण जो लोग सर्वसाधारण को भ्रम-

जाल में सफलता पूर्वक फंसाकर स्वयं धन कमाते हैं उनके दिल पर इस खण्डन कार्य से पोल खुलने और रोज़ी बन्द होने का विचार सांप की तरह लोटता है और वह अपने बचाव के लिये पब्लिक के शुभचिन्तकों को बदनाम तथा कष्टों का शिकार बनाने का यत्न करते हैं। राधास्वामी आचार्य भी खण्डन के कारण राधास्वामी सत संगियों के मन में आर्य्य-समाज के सम्बन्ध में अश्रद्धा तथा घृणा के भाव भरते रहे और उत्तर देकर अपनी सचाई सिद्ध करने का यत्न करने के स्थान में उनको यह पट्टी पढ़ाते रहे कि 'यह वादविवाद की शैली दूषित एवं प्रेम व भक्तिभाव के विरुद्ध है' यथार्थप्रकाश में पूर्वाचार्य्यों का अनुकरण करते हुए खण्डन अथवा वादविवाद आदि में अनेक प्रकार के दोष बताये गये हैं तथापि साहब जी महाराज आर्य्यसमाज की शिक्षा से प्रभावित होने के कारण असत्य के खण्डन को मुख्य धर्म मानते हैं, यह रहस्य अन्तमें प्रगट होकर ही रहा। आपने राधास्वामी मत की ७० वर्ष की मौन छाप को तोड़कर यथार्थप्रकाश के द्वारा लेखबद्ध मज़हबी बहस में कूदना अपना कर्तव्य समझा और एक कदम और आगे बढ़े तो यथार्थ प्रकाश भाग २ की भूमिका में आपने महर्षि दयानन्द की कार्य शैली की सत्यता को पब्लिक तौर पर सबके लिये अनुकरणीय सिद्ध कर दिया। आप फ़रमाते हैं:—

"तवारीख़ बतलाती है कि हमेशा से यह दस्तूर चला आया है कि महापुरुषों ने अपनी तालीम का आम प्रचार करते वक्त खंडन व मंडन दोनों से काम लिया क्योंकि उनकी दिली आरज़ू यह थी कि आम राइजुलवक्त अग़लात से आगाह होकर उनसे बचें और मंज़िले मकसूद के सिराते मुस्तकीम पर लगें।" इन शब्दों में वेद की आज्ञा और स्वामी दयानन्द के खंडन के कार्य को सब मनुष्यों के लिये एक दृढ़ नियम एवं सर्वतन्त्र सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। यही नहीं, स्वामी दयानन्द का जो विरोध

किया गया उसे भी मूर्खता माना गया है। यह लिखकर कि "यह दुरुस्त है कि उनके इस किस्म के जाइज व मुफ़ीद खंडन से अकसर नादान आजुर्दाह ख़ातिर हुए और उन्हें अपने मज़हब का दुश्मन तसव्वर करने लगे मगर मुशकिल यह है कि महापुरुषों की कभी यह मनशा न थी न आइन्दा कभी होगी कि किसी का दिल नाहक दुखायें।" यही नहीं, असत्य खंडन के कार्य्य को सर्वसाधारण के लिये श्रद्धास्पद सिद्ध करने के लिये आप आगे लिखते हैं:—

उनका मन्शा सिर्फ़ उन नाक़िस ख्यालात व रसूमात का हुस्न व क़ुबह दिखलाना होता है जो बुजुर्गों की तालीम के नाम से मज़हबी जमाअतों में रिवाज पकड़ जाते हैं उनका हमला किसी शख़्स की ज़ात या किसी बुज़ुर्ग के चाल चलन पर नहीं होता बल्कि मज़हबी जमाअत के अन्दर राईज ग़लत कारियों पर रहता है और चूंकि उन्हें बखूबी मालूम है कि इस किस्म का खण्डन दरअसल इन्सान के मन में नश्तर की हैसियत रखता है और जैसे जिस्म में नश्तर लगाने के बाद उसकी तकलीफ़ दूर करने और जख़्म भरने के लिये मरहम इस्तैमाल किया जाता है इसलिये वह भी राइजुलवक्त नाकिस ख्यालात व रसूमात का खण्डन करके असली रूहानी तालीम का मरहम इस्तैमाल करते हैं।"

५८—महर्षि दयानन्द निर्विवाद रूप से वेदों के अपूर्व विद्वान, वेदार्थ के महत्व को योग अवस्था में साक्षात् करने वाले महापुरुष और झूठ का सबसे बढ़कर खंडन करने वाले पुरुष थे। उनकी न किसी प्रचलित मत से शत्रुता थी न किसी मत के प्रवर्तक से कोई वैरभाव। जो कुछ किसी मत के मन्तव्य वा उसके वानी के विषय में निर्भयता पूर्ण एवं पक्षपातरहित आलोचना हुई वह केवल सर्व साधारण के हित के लिये नश्तर के रूप में हुई जिसके चुभोने और मवाद निकालने से पूर्व आपने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम १०

अध्याय में वह मरहम तैयार करके रख दी थी जो गहरे से गहरे घाव को अत्यन्त सुगमता से भर सकती है। अतः साहब जी महाराज ने जो अन्यमत विषयक स्वामी जी के लेख पेश करके आर्यसमाज और स्वामी जी के सम्बन्ध में शंका पैदा करने का यत्न किया है, वह स्वयं उन पर अनेक प्रकार के दोष लागू करता है, जिनका वर्णन करना यहाँ असंगत होगा। हमें यहां तो केवल सिद्धांत रूप से यह दिखाना है कि साहब जो महाराज आप क्या मानते हैं। यह सत्य है कि आपने मूर्ख लोगों की ओर से किसी मत के मान्य व्यक्तियों का अपमान होने के व्यवहार को इस भूमिका में भो निन्दनोय कहा है, परन्तु बुद्धिमान और मूर्ख आलोचक का निर्णय कैसे हो और यह निश्चय कैसे किया जाय कि अमुक लेख सत्य है तथा झूठ के आवश्यक खंडन की स्पिरिट से लिखा गया है और अमुक अपमानसूचक भाव से। ऐसे प्रधान विषयों के लिये कोई कसौटी पेश नहीं की गई और जब वह वेद मंत्र के आदेश के अनुसार असत्य के खण्डन को आवश्यक समझते और ऋषि, मुनि, सन्त आदि को सदा से इसी नियम पर आचरण करने वाला मानते हैं और क्रियात्मक रूप में सादी के इस वाक्य को अपना मोटो बनाते हैं कि:—

दुरुश्ती व नरमी बहम दर बेह अस्त।
चो रगज़न कि जर्राह व मरहम नेह अस्त॥

अर्थात सखती और नरमी या खंडन और मंडन दोनों का साथ साथ होना ही अच्छा है जैसा कि नश्तर लगाने वाला डाक्टर चीर-फाड़ भी करता है और मरहम भी लगाता है। तब इस एक और वचन के आशय को उन्हें खुशी से स्वीकार करना चाहिये कि—

कू दुशमने शोख़ चशमे बे बाक, को ऐबे मरा बमन बिगोयद।

अर्थात् ऐसे धृष्ट एवं निर्भय शत्रु को धन्य है जो मेरे दोषों से मुझे भिज्ञ करे। अतः नियम की दृष्टि से तो मनुष्य को आक्षेपक वा आलोचक की ओर ध्यान न करना चाहिये, आक्षेप वा आलोचना को ही दृष्टिगत रखना चाहिये। परन्तु ऐसी धीरता वा साहस न हो सके तो भी साहब जी महाराज जैसी व्यक्ति को कम से कम शिकायत का शब्द ज़बान पर न लाना चाहिये विशेषतः उस आर्यसमाज या स्वामी दयानन्द के विषयमें जोअसली सनातन धर्म के प्रचार का दावेदार है अर्थात् उस एकमात्र धर्म का जिसके द्वारा ही यथार्थ प्रकाश के टाइटल पर लिखे इन शब्दों को सार्थकता के प्रगट होने की सम्भावना है कि—

"सच्चा व असली मज़हब एक ही हो सकता है और सब मतों के बुज़ुर्गों की मज़हबी तालीम में प्रत्यक्ष समानता है।"

हमें यह देखकर सचाई की अचल शक्ति के आगे सिर झुकाना पड़ता है कि एक ओर तो अकेला दयानन्द निन्दा स्तुति का ख़्याल छोड़ कर निर्भयता पूर्वक सब मनुष्य कृत मतों के विरुद्ध आलोचना करता है और दूसरी ओर साहब जीमहाराज खंडन को सत्य सिद्धान्त मानते हुए तथा आर्य्यसमाज के विरुद्ध लिखे बिना अपना बचाव असम्भव समझते हुए भी किसी वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला लिखने का साहस नहीं कर सकते। केवल नाना प्रकार से शंकाओं का प्रकाश करते और सत मतियों को सत्य के स्वीकार करने मे असमर्थ बताने पर ही सन्तोष करते है। मुक्ति से पुनरावृत्ति के एक विषय को अयुक्त सिद्ध करने का साहस आपने अवश्य किया है परन्तु यह भी निजु वा स्वतन्त्र साहस का परिणाम नहीं, केवल अन्य वैदिकधर्मियों को इस विचार का विरोध करते देखकर आपने यह साहस किया है। कुछ ही हो यह सर्व प्रकार से सिद्ध है कि आप असत्य या

पाखंड खंडन के सिद्धान्त और महर्षि दयानन्द तथा आर्य्यसमाज के खंडन के काम पर हार्दिक श्रद्धा रखते हैं। रहा यह प्रश्न कि इस काम का अधिकारी कौन है इस पर विस्तृत विचार अन्य स्थान पर होगा।

सर्ग २३—दया व न्याय

५९—(य० प्र० भाग ३ पृ० १२३-१३१) दया व न्याय विषय पर विचार करते हुए जाहर में तो स्वामी जी पर बहुत आक्षेप किये हैं। परन्तु अपने मन में स्वामी जी के मन्तव्य पर पूर्ण विश्वास होने का परिचय दिया है। स्वामी जी फ़रमाते हैं कि "परमेश्वर पापोंको क्षमा नहीं करता। यदि ऐसा करे तो सबमनुष्य बड़े पापी हो जावें। पापियों का साहस तो इसलिये बढ़ेगा कि मिन्नत खुशामद से क्षमा करा लेगें और जो लोग अपराध नहीं करते वह भी दंड का भय न रहने से पापकर्म में संकोच न करेंगे।" साहब जी महाराज पहिले तो इसका खंडन करते हैं कि दंड का आशय सुधार है न कि अपराध का बदला लेना वा वैरभाव रखना। न्यायपूर्वक दंड देने को कोई बुद्धिमान वैरभाव नहीं कह सकता। फरीकैन तो बदला चाहते हैं पर जज न्याय चाहता है और यह न्याय दया के भाव पर ही अवलम्बित है जो दोनों पक्षों के दुःखके कारण को दूर करने वाला है। आप यह भी फ़रमाते हैं कि 'कभी कभी समझदार लोगों का सुधार क्षमा से हो जाता है और सीधे साधे नवयुवकों को जेल भेजने से उनकी अवस्था और भी बिगड़ जाती है तथा करोड़ों मज़हबी लोग जो दया प्राप्ति की

आशायें रखते हैं शान्ति पूर्ण एवं सदाचार का जीवन व्यतीत करते हैं और हजारों दूषित स्वभाव युक्त नास्तिक अनेक प्रकार के पाप करते हैं।' परन्तु इन युक्तियों में रत्ती भर भी वज़न नहीं यदि दया से कभी कोई सुधर गया है तो सब के सुधरने का तो आप का दावा ही नहीं और ऐसा न होने से यह दया का विचार कोई सर्वतन्त्र सिद्धान्त तो न हुआ। ऐसे ही कुछ नवयुवक जेल जाने से बिगड़ गये तो सब कैदियों के बिगड़ने का तो आप दावा नहीं करते, इस के विपरीत दया के सिद्धान्त से बिगाड़ और दंड के भय से सब लोगों के अपराध न करने के परिणाम को प्रायः सब लोग मानते हैं और जहाँ आप दया से सुधार समझते हैं वह आप को क्या ज्ञान है कि सुधरने वाले ने पश्चात्ताप तथा गिड़गिड़ाने आदि के रूप में कितना दुःख पाया है। और आप को यह भी विदित है कि वायसराय तथा बादशाह तक भी दया के प्रार्थना-पत्रों को सदा स्वीकार ही नहीं करते, और स्वीकार भी करते हैं तो बहुत कम और उस समय तक अपराधी मनुष्य सहस्रों प्रकार के अपमान, कष्ट और असाधारण अपने दुखदाई भार के रूप में एक प्रकार से भारी दंड भुगत चुका होता है। शान्तिप्रिय तथा सदाचारी लोगों के लिये तो क्षमा का प्रश्न पैदा ही नहीं होता वह तो शुभ फल के लिये शुभ कर्म करते हैं। यदि दंड से बच जाने की आशा हो तो वह शुभ कर्म छोड़कर चोरी डाका से सफलता पाने की कामना कर सकते हैं। रहे दोषयुक्त स्वभाव के लोग वह पाप करते हैं तो दुख और दंड भी तो पाते हैं अतः क्षमा का सिद्धान्त तो किसी प्रकार सिद्ध नहीं।

६०—परन्तु दिखावे के आक्षेप करके और अपने तर्क के जौहर दिखाने के पश्चात् आप स्वयं ही स्वामीजी की सचाई वा वैदिक सिद्धान्त का महत्त्व सिद्ध करने लगते हैं। स्वामी जी ने

लिखा है कि हाथ जोड़ने आदि व्यवहारों से क्षमा मिलना पाप के लिये साहस बढ़ाता है। इस पर साहब जी महाराज फ़रमाते हैं :—

"स्वामी जी को यह ख्याल कैसे हुआ कि ईश्वर केवल अपराधी के हाथ जोड़ने पर उसके पाप क्षमा कर देता है। तमाम दुनिया जानती है कि प्रत्येक विचारशील मनुष्य किसी अपराधी का अपराध तभी क्षमा करता है जब वह कई बार गिरया वज़ारी करे और अपने अपराध पर सच्चे दिल से झुरे वा शरमाये और भविष्य में सुधर कर चलने का पक्का प्रण करे। तथा यह भी निर्विवाद है कि मनुष्य को अपराध के क्षमा होने की आशा तभी बंधती है जब बार बार के रोने धोने के पीछे उस के अन्दर हलकापन का अनुभव होने लगे।"

अब पाठक विचारें कि बार बार की गिरया वा ज़ारी, चिर काल तक पश्चात्ताप करना, भयभीत रहना, शरमाना, भविष्य के लिये नेकचलनी की ज़िम्मेदारी लेना आदि का असाधारण दंड साहब जी महाराज क्षमा के मूल्य के रूप में तजवीज़ करते हैं और क्षमा के नियम को स्वीकार न करनेवालों को इस से भी अधिक दंड मिलने में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं तब प्रत्येक पापकर्म के लिये दंड मिलने पर आप का हार्दिक विश्वास तो सिद्ध हो गया, कसर क्या रही।

६१—यही नहीं स्वामी जी ने युक्ति युक्त रूप से इस विषय को स्पष्ट किया है कि न्याय के अन्दर दया का भाव काम करता है और यह बात हमारे प्रतिदिन के व्यवहार से सिद्ध है। आचार्य अपने शिष्य पर दया की दृष्टि रखता है। अपराध के लिये उसे दण्ड देता है। परन्तु इच्छा उसकी यह है कि वह सुधर कर सुख पावे। यही भाव माता पिता से अनेक बार सन्तान की ताड़ना

होने में है। इसके विरुद्ध कुछ न कहते हुए साहब जी महाराज लिखते हैं:—'यदि दया और न्याय का एक ही अर्थ है तो इस प्रकार तो भोजन पाने, भूखा रहने, और घोड़े पर चढ़कर वा पैदल सफ़र करने के एक ही अर्थ होंगे। हम कहते हैं कि भूखा रहना और पैदल चलना अनेक अवसरों पर अधिक लाभकारी होते हैं और और भोजन और सवारी से हानि होती है। अतः स्वामी जी का यह कथन सर्वथा सत्य है कि जैसा और जितना बुरा काम किया हो उसको वैसी ही और उतनी ही सज़ा दी जावे। इसी का नाम न्याय है और इसी में सच्ची दया है। यदि दण्ड न दिया जाये तो दया का सर्वथा अभाव होता है। इस पर साहब जी महाराज ने कोई आक्षेप नहीं किया, हाँ यह प्रश्न कर दिया है कि क्या अपराधी को सत्य मार्ग पर लाने का ईश्वर और मनुष्य के पास यही एक उपाय है कि उसे उचित दण्ड दिया जाय। इससे सिद्ध है कि आप इस दण्ड शैली को सुधार का साधन और दया और न्याय के परस्पर के सम्बन्ध को सत्य मानते हैं। हां सुधार के किसी अन्य उपाय की भी सम्भावना समझते हैं।

६२—स्वामी जी ने मनुस्मृति आदि में प्रतिपादित दण्डों के प्रमाण दिये हैं और बताया है कि कड़ी सज़ा से अपराधों का नाश होता है और हिसाब लगाकर देखा जाये तो कड़ा दण्ड नरम दण्ड की अपेक्षा अधिक परिमाणका नरम सिद्ध होता है। साहबजी महाराज इसके मुकाबले पर अमरीका के पापवृत्ति विज्ञान कुशल पुरुषों का विचार पेश करते हैं कि अपराधियों के साथ नरमी का व्यवहार हो और जेल में शिक्षा दी जाय। परन्तु प्रश्न दण्ड का है, जेल के व्यवहार का नहीं. जिसे फांसी के तख्ते पर लटकाया गया, जेल के सुधार का उससे क्या सम्बन्ध और जब कड़े दण्ड के नियम को आप स्वयं स्वीकार करते हैं तो आक्षेप करने से लाभ

क्या ? आप लिखते हैं:—

"सख्त सजायें तभी कारगर होती हैं जब शाज़ो नादर दी जायें।... .....सख्त सजाओं का इस्तैमाल शाज़ोनादर ही होना चाहिए और यह सजायें आदि मुजरिमों के लिये मखसूस होनी चाहिए और किसी मुल्क में आदि मुजरिम तभी निकल सकते हैं जब मुजरिमों को एक या ज्यादा मरतबा जुर्म पर महज़ तम्बीह करके या हल्की सजा देकर छोड़ दिया जाय।

"अब तो आप अपने दाम में सय्याद आ गया" के अनुसार यहां आपने कड़े दण्ड को भी स्वीकार किया है। अभ्यस्त अपराधियों के लिये कड़े दण्ड को आवश्यक माना है और यह भी माना है कि नर्म सज़ा या केवल ताड़ना करके छोड़ देने से साधारण अपराधी भी अभ्यस्त अपराधी बन जाते हैं अतः स्वामी जी का प्रत्येक बात पर आपको हार्दिक विश्वास है। आप कहेंगे हम तो शाज़ो नादिर ही कड़ा दण्ड देने पर विश्वास रखते हैं। हम कहेंगे यह भी स्वामी जी की ताईद है वह तो स्वयं इस बात को सिद्ध करते हैं कि कड़े दण्ड की अवस्था में अपराध बहुत कम होंगे और ऐसे दंड का प्रयोग करना ही कम पड़ेगा। यहां हमें एक पंजाबी कहावत याद आती है कि "इकते मुरदा बोले ना, इकें ते कफ्फन फाड़े" (अर्थात् कहाँ तो मुरदे का पूरा मौन और कहां कफ्फन को फाड़ना। साहब जी महाराज कहते तो थे सख्त सज़ा को बुरा और वक़ालत करते थे दयावाद की परन्तु मानते आप अन्त में यह है कि दया तो कहाँ साधारण अपराधियों को भी नर्म सज़ा न दी जाये अन्यथा वह अभ्यस्त अपराधी हो जायेंगे। अर्थात् अब आप साधारण दोषों के लिये भी कड़े दण्ड का पक्ष लेते हैं। परन्तु स्वामी जी कैसे सिद्धांत के पक्के हैं आप कहते हैं कि जितना और जैसा बुरा कर्म हो उतनी और वैसी सज़ा दी

जावे अर्थात् हलके जुर्म की हलकी, और भारी जुर्म की भारी सज़ा ही का नाम न्याय है और सब विद्वान हमारे साथ इस बात में सहमत होंगे कि इस सिद्धांत में जहां दया का भाव मौजूद है वहाँ साहब जी महाराज वाली तजवीज़ में निर्दयता भी है और अन्याय भी। कुछ ही हो स्वामीजी के कथन पर आपका विश्वास सर्व प्रकार से सिद्ध है।

६३—साहब जी महाराज की एक और भी भारी भूल यह है कि आप ही तो पहिले मनुष्य राजों व शासकों से क्षमा मिलने का प्रमाण रूप में पेश करके ईश्वर के क्षमा करने के पक्ष को सिद्ध करते रहे और आप ही यह रट लगाते हैं कि ईश्वरीय नियमों के लिये मनुष्य कृत न्याय नियम का बंधन नहीं हो सकता। तथा पहिले तो न्याय और दया को परस्पर विरुद्ध सिद्ध करते रहे पर धारा १४८ में दोनों को परस्पर मिलाते हैं यह कह कर कि यद्यपि दया और न्याय में प्रत्यक्ष अन्तर है तथापि मनुष्य के लिये यह अवसर रहता है कि न्याय करते समय दया से काम लें। फारसी का कवि कहता है कि 'आंचिदाना कुनद कुनद नादां, वलेक बाद अज़ हज़ार रुसवाई।' अर्थात् जो कुछ बुद्धिमान पुरुष करता है वही मूर्ख करता है परंतु हज़ार ठोकर खाकर! स्वामी जी ने पहिले ही कहा था कि ईश्वरीय न्याय के साथ दया का भी भाव अवश्य रहता है और इससे भी बढ़कर यह कि ईश्वरीय दया के अन्दर सच्चा न्याय रहता है।

६४—साहब जी महाराज एक और नियम भी मान गये। आप लिखते हैं। "उसका रहम इस अमर का भी मुक़तज़ी रहेगा कि जीवों को दुखों से छुड़ाने और रूहानी तरक़्क़ी के ज़ीने पर क़दम बढ़ाने का इन्तज़ाम किया जावे। जीवों को दुखों से छुड़ाकर आला से आला रूहानी गति दिला कर उसके रहम को चैन

आना चाहिये।" स्वामी दयानन्द कभी ईश्वर को बेचैन तो नहीं मानते तथापि जीव के लिये उसकी दया का प्रमाण वह यह अवश्य मानते हैं कि वह पाप के विरुद्ध और पुण्य के पक्ष में भय तथा उत्साह आल्हादादि के रूप में प्रेरणा करता है और इससे भी बढ़कर वेद द्वारा सत्य मार्ग का उपदेश देता है और यही वह गुप्त रहस्य है जिसकी ओर ऊपर के शब्दों में आपका युक्त संकेत हो सकता है।

६५—साहब जी महाराज एक और नुमाइशी एतराज़ करते हैं कि स्वामी जी ने अपने घातक को अपनी जेब से रुपया देकर नैपाल भिजवा दिया और उसकी जान बचाई तो यह काम दया का था वा न्याय का ? और क्या इस व्यवहार से न्याय और शान्ति में वृद्धि हुई अथवा पापाचारियों का साहस बढ़ा ? हमारा उत्तर यह है कि इस में दया भी थी और न्याय भी। रहा परिणाम, सो यह भी उत्तम हुआ। घातक के मन को पलटा मिला और मज़हबी मिशनरियों को वैर भाव तथा प्रतिरोध भाव से बचने की शिक्षा मिली। और यह इसलिये कि वेद की आज्ञा जहाँ राजा के लिये यह है कि ठीक न्याय पूर्वक दण्ड देकर अपराधी का सुधार करे वहाँ सच्चे उपदेशकों को विद्या और तप के बल से बुद्धियों को पलटा देने की शिक्षा है। वह अपने शरीर को अपना नहीं समझते और सांसारिक शासकों के स्थान में ईश्वरीय न्याय पर निर्भर रहते हैं। राजा यदि ऐसा करे तो अपराधियों को अवश्य शैह मिले। कुछ ही हो इस विषय में आप स्वामी जी की स्वयं ही प्रशंसा करते हैं और इससे भी बढ़कर आप एक न्यायाधीश के अन्दर भी न्याय और दया को एकत्रित करने के लिये लिखते हैं कि कोई मनुष्य भूल से ऐसा पाप कर बैठे जिस के लिये वह जुर्माना के दण्ड का अधिकारी हो और किसी न्यायाधीश

को निश्चय हो जाय कि वह निर्धन है और उसमें यह अपराध केवल अज्ञानवश हो गया है तो उस न्यायाधीश को अधिकार है कि राज नियमानुसार अपराधी को जुर्माना का दण्ड दे और दया की दृष्टि से जुर्माना अपनी जेब से अदा कर दे। हम इस विचार में न न्याय देखते हैं न दया, यह केवल उन भावों को दर्शाती है, जो न्याय और सत्य में विघ्नकारी हैं। तथापि इससे यह स्वतः सिद्ध है कि स्वामी जी का मन्तव्य सर्वथा युक्तियुक्त है तथा साहब जी महाराज स्वयं दया और न्याय का एक ही आशय मानते हैं।

सर्ग २४—मिश्रित विषय

६६—इसी प्रकार विस्तारपूर्वक पढ़ने से यथार्थ प्रकाश में अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे पाया जाता है कि अनेक अन्य विषयों में भी साहब जी महाराज आर्य समाज के मन्तव्य के अनुकूल ही विचार रखते हैं, जिसे स्तुति-प्रार्थना उपासना, सत्योपदेश से भ्रान्तिमय संस्कारों को दबाना, वर्तमान विकाशवाद का मिथ्या होना, पाश्चात्य शिक्षा का नवयुवकों पर बुरा प्रभाव पड़ना, सर्वतन्त्रसिद्धान्तों का परिवर्तन रहित और वर्तमान साइन्स के भिन्न २ वादों का सदा बदलते रहना मतमतान्तर के मतभेद के अन्दर भी सर्वतंत्रसिद्धान्तों की झलक पाया जाना परन्तु ग्रन्थ वृद्धि के भय से उनपर विस्तारपूर्वक लिखा नहीं जासकता।

नियम तो केवल इश्तहारी प्रोपेगेंडा है। मुसलमान मुहम्मद साहब की शफ़ाअत से, ईसाई मसीह की कुरबानी से मुक्ति को सम्बद्ध बताते हैं। पौराणिक लोग सैकड़ों योजनों से गंगा का नाम लेने पर जन्म जन्मान्तरों के पाप दूर होने का सब्ज़ बाग़ दिखाते हैं और इसी प्रकार अन्य मतवादी सस्ती मुक्ति की दूकान सजाते हैं तो आप भी सुगमता और सरलता की नुमाइश कर लीजिये। यथार्थता की दृष्टि से इस में कुछ सार नहीं। ख़ालसा लोग बड़े फ़ख़र से कहते थे कि गुरू साहब ने हमारी मातृ-भाषा में उपदेश देकर हमारी विशेष कठिनाई को दूर कर दिया है। यदि आप का यही आशय है कि किसी सुगम भाषा में शिक्षा दी गई है तो पहिले ख़ालसा धर्म की मुख्यता होगी और आपका मत गौण पक्ष में होगा पर इस दशा में आपको मानना होगा कि दूसरी भाषा बोलने वालों के लिये आपकी शिक्षा सरल व सुगम नहीं किन्तु कठिन होगी। आप कहेंगे भाषा की दृष्टि से हमने ऐसा कहा ही नहीं, हमारा आशय यह है कि राधास्वामी मत के प्रवर्तक ने प्राचीन ऋषियों के तप वा प्राणायाम वाले योगाभ्यास के स्थान में सुर्त शब्द योग का सरल सा टोटका निकाला है पर हमारा प्रश्न यह है कि क्या किसी भी प्राचीन शैली के पूर्ण योगी ने दोनों तरीकों का मुकाबला करके यह व्यवस्था दी है कि सचमुच आप की इस नई ईजाद से सच्चे मालिक की प्राप्ति पातंजल मुनि वाले योग की अपेक्षा सुगमता से होती है, अतः भविष्य में कोई मेरी तरह कष्ट न उठावे ? इसका उत्तर नकार के बिना हो नहीं सकता। अतः हम दूसरा प्रश्न आप से ही करते हैं कि क्या आपने प्राचीन अष्टांग योग के मानने वाले ऋषियों की तरह इस सुर्त शब्द योग के अभ्यास से कोई लाभ पाया ? आप कहेंगे, हाँ ! और संभव है

दूसरा अध्याय

विष

या

ग़लत बयानियों की भरमार

सर्ग १ —सादा व सहज तालीम

१—य० प्र० भाग १ पृष्ठ ३ धारा १ इस प्रकार है—

"राधास्वामी मत की तालीम निहायत सादा व सहज है लेकिन उस दिल के लिये जो सच्चे मालिक की मुहब्बत से खाली है इसे समझना मुहाल बल्कि ना मुमकिन है।"

(आर्य) यदि आपकी शिक्षा सरल व सुगम है तो हुआ करो, इससे मनुष्यों का लाभ क्या? इन्हें तो चाहिये सत्य विद्या यथार्थ ज्ञान। हमने न कोई रीछ या बन्दर नचाना है न कोई सरकस बनाना, कि पशुओं को सिखा कर टके कमायें। आप कठिन से कठिन और पेचीदा से पेचीदा तालीम दीजिये, मुज़ाइका नहीं; वास्तविक आशय अर्थात् मनुष्य की उन्नति वा कल्याण के उद्देश्य की पूर्ति कर दीजिये। और चूंकि ऐसी यथार्थ शिक्षा सार्वजनिक एवं परिवर्तन आदि विकार से रहित ही हो सकती है इसलिये न उसके साथ सादा व सहज या कठिन आदि की शर्त होगी न राधा स्वामी वा किसी अन्य मत की। सूर्य्य का प्रकाश सब के लिये एकसा है। वह स्वभाव से न सुगम है न कठिन। हाँ देखने वाला अन्धा हो तो अवश्य कठिन है और नेत्र में रोग वा विकार हो तो भी दिक्कत है पर इसमें सूर्य्य का क्या दोष? अतः यह पहला

कहें, उनसे भी अधिक, क्यों कि हम तो ब्रह्म लोक और त्रिकुटी से भी ऊपर सुन्न महा सुन्न, सत्त, अलख और अगम लोकों से भी ऊपर राधास्वामी धाम के दर्शन करते हैं। हम कहते हैं, सुबूत ? आप कहेंगे, करके देख लो। हम कहते हैं करके देखने की बारी तब आयेगी जब आप हमारा कुछ इतमीनान करा देंगे। आप कहेंगे किस प्रकार का इतमीनान ? हम कहते हैं, राधास्वामी के अति उच्च धाम को जाने दो हमें तो केवल यही प्रमाण दे दो कि आप का कोई पूर्व व वर्तमान आचार्य्य ब्रह्म पद को भी प्राप्त हुआ है जो बहुत नीचे का पद है। ब्रह्म से ऋषियों ने वेद ज्ञान पाया ब्रह्म को समाधि में साक्षात करते हुए ही ऋषियों ने मन्त्रार्थ का दर्शन किया। आप फ़रमाइये कि आपके मत के किस गुरू वा शिष्य ने किस २ मंत्र के अर्थ को जाना ? साहब जी महाराज स्वयं तो कहीं पं०राजारामजी का मुंह ताकते फिरते हैं कहीं पं०नरदेव जी की बड़ाई करके प्रयोजन सिद्ध करते हैं और पूर्व आचार्य्यों ने कभी मौखिक वा लेखबद्ध दावा ही नहीं किया कि उन्हें किसी मंत्र के अर्थ का ज्ञान है और निश्चय भविष्य में भी अपने कपोल कल्पित सुर्त शब्द अभ्यास के टोटके से साहब जी महाराज अथवा कोई अन्य राधास्वामी आचार्य्य किसी भी मन्त्र का अर्थ न जान सकेगा। इस मत के सारे आचार्य्य एक स्वर हो कर वेद, ब्रह्मलोक, त्रिकुटी स्थान तथा ओ३म् के रास्तेकी मनज़िलें तो मानते हैं पर पहिली ही मनज़िलकी एक भी निशानी कोई भी नहीं बताता अतः सुर्त शब्द अभ्यास वा राधास्वामी धाम सब हवाई महल या मिथ्या कल्पना है और सादा वा सहज तालीम का ढकोसला किसी भी विचारशील जिज्ञासु को इस मत की ओर खींच नहीं सकता।

२—आपने विपक्षियों का मुख बन्द करने के लिये चाल तो

सूझ चली है कि किसीने एतराज़ किया नहीं और आपने आवाज़-कसा नहीं कि वह सच्चे मालिक के प्रेम से खाली है और इस लिये इस शिक्षा को समझना उसके लिये कठिन एवं असंभव है। परन्तु इस चाल से आप को वास्तविक लाभ कुछ हो नहीं सकता क्यों कि इस प्रकार की कूट नीतियां अन्य मतवादी पहिले कर चुके और सर्व साधारण उनके असली आशय को समझ चुके हैं, कौन इस बात को सत्य मान सकता है कि एक मूर्ख और निर्बुद्धि पुरुष राधास्वामी मत में दाखिल हो जावे तो उसके मन में तो सच्चे मालिक का प्रेम है और वह राधास्वामी मत की तालीम को समझता है और यदि वेदों के ज्ञाता, उपनिषदों और शास्त्रों की गूढ़तम फिलासोफ़ी के व्याख्याता तक भी इसे न मानें तो वह सच्चे मालिक से विमुख हैं। यह ख्याल उस यथार्थ उन्नति की दृष्टि से सर्वथा हानिकारक एवं विषसम घातक है जो स्वतन्त्र विवेचना और सत्य प्रकाश के सम्बन्ध में सारी मानव जाति के परस्पर के सहयोग की प्रबल आकांक्षा करता है।

सर्ग २—परीक्षा

३—यथार्थ ज्ञान या शिक्षा को जिज्ञासु की योग्यता के आधार पर कठिन वा सुगम कहा जा सकता है। उसका ग्रहण बुद्धि वा आत्मा से उसी प्रकार होता है जिस प्रकार नेत्र से रूप वा कानसे शब्द का होता है। सूर्य्य और मनुष्य के नेत्र में जो सम्बन्ध है वही विद्या और बुद्धि या सत्य विद्या और आत्मा में है। सूर्य्य को दिखाने के लिये कभी लैम्प वा दीपक की आवश्यकता नहीं। न कोई नेत्र वाला मनुष्य सूर्य्य के सम्बन्ध में भ्रान्ति में पड़ सका

है। यही हाल सत्य ज्ञान का है। बुद्धि इसे सहज से ग्रहण करती है और इसके अति सूक्ष्म रूप वा अर्थ को आत्मा समाधि में और भी सुगमता से देखता है। अत: देखना अब यह है कि राधा स्वामी मत की यथार्थप्रकाश द्वारा प्रतिपादित शिक्षा कहां तक इस परीक्षा में पूरी उतरती है। इसके लिए कुछ उद्धरणों पर विचार करना पर्याप्त होगा।

४—पहला उद्धरण—आत्मिक शब्द

"राधा स्वामी मत सिखलाता है कि जैसे दुनिया की तबई कुव्वतें मरकज़ से फैलकर मुहीत में काम करती हैं उसी तरह रूहेइन्सानी यानी सुर्त भी अपने मरकज़ से जो दिमाग़ के ख़ास हिस्से में मुक़ीम है रूहानी धारों के ज़रिये अपने मुहीत यानी जिस्मेइन्सानी में फैलकर काम करती है और चूँकि यह आम क़ायदा है कि हर कुव्वत की धार के साथ २ एक आवाज़ यानी शब्द की धार भी रवां रहती है और हर शब्द की धार में अपने मख़ज़न के ख़वास मौजूद रहते हैं और चूँकि रूह यान सुर्त की ख़ास सिफ़त प्रेम यानी मरकज़ की जानिब कशिश है इसलिए जिस दम किसी अभ्यासी के घट में रूहानी शब्द जाहिर यानी प्रगट होता है उसे फौरन ज़बरदस्त अन्दरूनी कशिश महसूस होती है और चूँकि इस कशिश का रुख़ रूह के मरकज़ की जानिब होता है इसलिए उसके ज़ेर असर अभ्यासी के मन व सुर्त उस मरकज़ पर सिमट आते हैं और उसकी तवज्जुह हर तरफ़ से हटकर रूहानी नुक़्ते पर जम जाती हैं। (य० प्र० भाग १ पृष्ठ १७)

(आर्य्य) इस उद्धरण की उपस्थिति में साहबजी महाराज का यह कहना कि राधास्वामी मत की तालीम सादा व सहज है, सत्य नहीं हो सकता। स्त्रियां तो कहां पुरुष और शिक्षित बी० ए०, एम० ए० सतसंगी भी इस उद्धरण के शब्दों, इसमें वर्णित परिभाषाओं और उनसे सम्बद्ध व्याख्याओं को समझने, बयान करने

और उनको युक्त सिद्ध करने में सफल नहीं हो सकते।

(२) इसी उद्धरण का वैदिक शिक्षा के प्रकाश में भावार्थ यह है कि आत्मा के होने से यह जड़ शरीर कर्म करता है। आत्मा की शक्ति से मन और मन के सन्निकर्ष से इन्द्रियोंके व्यवहार होते हैं। इन सब व्यवहारों वा कर्मों का आधार ज्ञान पर है। वह ज्ञान भाषा से सम्बन्ध रखता है या शब्द से मनुष्य उस ज्ञान की ओर संकेत करते हैं अथवा कान से सुनकर जिस शब्द को जाना है समाधि में उसके यथार्थ अर्थ का दर्शन आत्मा को होता है। जो लोग विद्या संबन्धी योग्यता की कमी अथवा आत्मा, मन, ज्ञान शब्दादि के अल्प प्रयोग से इस सरल से भावार्थ को नहीं समझ सकते उनको विवादास्पद उद्धरण की समझ सुगमता से किस प्रकार आसकती है जिसमें तवई कुव्वतें, मरकज़, मुहीत, रूह का मरकज़, रूह का दिमाग़ के खास निचले हिस्से में मुकाम, रूहानी धारें, शब्द की धारें, मख़ज़न के ख़वास, मरकज़ की जानब कशिश, रूहानी शब्द का प्रगट होना, रूह को अन्दरूनी कशिश महसूस होना, कशिश के ज़ेर असर मन व सुर्त का मरकज़ पर सिमट आना, रूहानी नुक़्ते पर रूह की तवज्जुह का जम जाना, ऐसे शब्दादि हैं जिनका मज़हबी पुस्तकों में जो तात्पर्य लिया जा सकता है वह बी० ए० और एम०ए० की भी अकल मार सकताहै।

(३) जो पेचीदा लेख शैली काम में लाई गई है उससे श्रद्धालु भक्तों पर कुछ पल्ले न पड़ने पर भी लेखक महोदय की विद्वत्ता का रोब तो पड़ सकता है पर दूसरे सत्य प्रिय अन्वेषकों से ऐसे लेख पर मखौल वा हँसी ही हो सकती है। साहब जी महाराज के शिष्य को कैसी विलक्षण भाषण शैली की धारणा करनी चाहिये यह भी इस उद्धरण का एक विशेष रहस्य है। एक साधारण मनुष्य यदि यह कहे कि "मैं साहबजी महाराज या सन्त

सतगुरुके दर्शनकर रहाहूँ तो आपके अनुगामी सत्संगीको यह कहना होगा कि मेरी सुर्त की धारें मेरे मन और ज़बान के भी मुहीत से परे फैल कर साहब जी महाराज के मुखारविन्द रूप मुहीत तक पहुंचतीं और इस मुहीत में लौटकर और दरमियानी आकाश, आंख और मन के मरकज़ों में गुज़र कर दिमाग़ के ख़ास हिस्से में मुकीम सुर्त के रूहानी मरकज़ में सिमट आई है।" ऐसे ही दूसरा मनुष्य कहेगा, "मैं सार वचन को पढ़ रहा हूं।" इसे ऊपर के उद्धरण के प्रकाश में सतसंगी को इस प्रकार बोलना पढ़ेगा। "मेरी सुर्त की धार के साथ रूहानी शब्द की धार रवां होकर मेरे तथा मन और आंखकी मनज़िलोंको गुज़र कर सार वचन रूपी वाणी और उस वाणी की शब्द रूपी धार के द्वारा राधास्वामी दयाल के अवतार हुज़ूर परम गुरु महाराज साहब के सुर्त रूपी मुहीत से संसर्ग करने के पश्चात उन्हीं मनज़लों को पार करती हुई मेरे रूहानी शब्द की धार के मख़ज़न में सिमटी जा रही है।" हम नहीं समझते इस शैली की बोल-चाल से हमारे कारबार अथवा व्यवहार पर क्या असर पड़ेगा और इससे राधा स्वामी तालीम में कौनसी सुगमता आयेगी। हम यहां आपसे नम्र भावपूर्ण क्षमा प्रार्थना करते हुए महर्षि दयानन्दके शब्द पेश करते है जो ऊपर के उद्धरण की लेख शैली पर बड़ी उत्तमता से लागु हो सकते हैं। "जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान विषय अपने ग्रन्थोंमें प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रंथों में क्योंकर हो सकता है। महर्षि लोगों का आशय जहां तक हो सके वहां तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगोंकी मरजी ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहां तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें। जैसे पहाड़का खोदना

कौड़ी का लाभ होना और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

(४) आपकी तालीम इस हेतु से भी संशयात्मक तथा भ्रांति कारक है कि आप युक्ति देते हुए तो उस शब्द का भाव पेश करते हैं जो ज्ञान युक्त वाणी का नाम है और जिसके शब्दों में अर्थ का सम्बन्ध है; पर वकालत आप करते हैं उस शब्द की जो आकाश का गुण तथा अर्थ शून्य है। कान मून्द कर जिस शब्द के सुनने पर राधा स्वामी मत में ज़ोर दिया जाता है उसकी उत्पत्ति शरीर के अंदर के आकाश में आन्तरिक मशीनरी वाले अद्भुत कारख़ाने के जारी रहने से हो रहा है वह रूहानी शब्द नहीं है अत: ध्वन्यात्मक नाम, बीज मंत्र, अर्थ सहित नाम स्मरण वा शब्दविचारादि शब्दों वा परिभाषाओं की आड़ में राधास्वामी मत के लिए श्रद्धा पैदा करना शब्द संज्ञा से अनुचित लाभ उठाना है। पृष्ठ २६३ धारा २२६ में प्रतिपक्षी को उत्तर देते हुए आप कहते हैं:—

(५) "कान आंख बन्द करके जो आवाजें सुनाई देती हैं वह असली यानी रूहानी आवाजें नहीं हैं मगर सुनिये तो, यदि राधास्वामी मत में इन शब्दों ही का सुनना सुर्त शब्द योग करार दिया जाता है तो सुर्त के मानी पति पत्नी की हरकत क्यों ज़बान पर लाये जाते हैं। अगर वाक़ई राधास्वामी मत का अभ्यास कहीं कुछ होता जो आप बयान करते हैं तो आपके एतराज़ात जाइज व दुरुस्त होते लेकिन किसी राज़ यानी रहस्य से कतई बेख़बर रहते हुए उसके ख़िलाफ लबकुशाई करनी महज दिल आज़ारी है।"

हम वादी के विरुद्ध आपकी शिकायत को वज़नदार समझते हुए भी महसूस करते हैं कि उत्तर उपालम्भ रूप में दिया गया है और जान बूझकर इस विषयका प्रमाण वा उत्तर नहीं दिया गया कि कान बन्द करके सत्संगी जो शब्द सुनते हैं वह रूहानीशब्द कैसेहैं ?

६—ऋषियों की मनन वा निदिध्यासन शैली में शब्द और अर्थ का समवाय सम्बन्ध है। इसी भाव को विद्या शब्द से वर्णन किया गया है, और ऋषि लोग शब्द के साथ अर्थ ज्ञान देकर गुरू सतगुरू. सन्तमतगुरु आदि पदवी पा सकते हैं। इससे विदित होता है कि कोई भी पुरुष जो विद्वान हो, शब्द के यथार्थ अर्थ का दर्शन पाकर सन्त सतगुरू के तौर पर मनुष्यों का उपकार कर सकता है। परन्तु जहां विशेष गद्दी का सम्बन्ध हो वहां गुण कर्म के सिद्धांत पर निर्धारित विस्तृत अर्थ वाले शब्द का विरोध होता है तथापि आप के यह शब्द पढ़कर प्रसन्नता होती है कि "जिस दम किसी अभ्यासी के घट में रूहानी शब्द ज़ाहिर यानी प्रगट होता है उसे फ़ौरन जबरदस्त अन्दरूनी कशिश महसूस होती है।" इन शब्दों में वैदिक ऋषियों के ध्यान व समाधि में प्रगट होने वाले शब्द और अर्थ का ही भाव है क्यों कि राधास्वामी मत में जो अभ्यास होता है उसमें रूहानी शब्द का प्रगट होना असम्भव है और दूसरे उस शब्द की धार किसी अवसर विशेष पर रूहानी शब्द को प्रगट नहीं करती अपितु उसके जड़ शब्द की धार का प्रवाह निरन्तर जारी रहता है जब तक कि अभ्यास को छोड़ा नहीं जाता।

७—शब्द के प्रगट होने पर प्रबल आन्तरिक आकर्षण होने का भाव भी यही हो सकता है कि ज्ञान का विशेष अनुभव हो कारण यह कि रूहानी शब्द के अन्दर ज्ञान ही गुप्त रूप से विद्यमान रहता है और आत्मा को आकर्षण भी ज्ञान और सत्यादि से ही होता है।

८—जहाँ भी यथार्थ प्रकाश में जिकर आया है सुर्त के रूहानी धारों के द्वारा शारीरिक परिधि तक फैलना ही पाया जाता है परन्तु यह सर्वथा असत्य है क्योंकि रूह के मरकज़

की धार मन तक पहुँचती है; दूसरी इन्द्रियों से काम लेने वाला मन है आत्मा नहीं। बिजली के मोटर की शक्ति का प्रभाव शाफ़्टीन तक है और बाकी मशीनें शाफ़टीन के सम्बन्ध मे चलती हैं। जिस मशीन का पट्टा शाफ़टीन से अलग कर दिया जावे, मोटर का गति उसे चला नहीं सकती और यदि मन का विचार छोड़ कर आत्मा का मुहीत शरीर तक समझा जाता है तो क्या कारण है कि शरीर के बाहर जहाँ तक नेत्र काम करते हैं वहाँ तक उसका मुहीत न समझा जावे। सारांश यह कि विवादास्पद उद्धरण से राधास्वामी मन की शिक्षा सरल वा सुगम सिद्ध नहीं होती अपितु सुगम एवं सरल वैदिक शिक्षा को ऐसा पेचीदा बनाया गया है कि किसी को यथार्थ आशय का ज्ञान ही नहीं हो सकता। लेखक की इच्छा यह हैं कि राधास्वामी मत की पोल तो खुले नहीं उल्टा अंधविश्वासी लोगों पर अपनी विद्वत्ता का सिक्का जमे।

५—दूसरा उद्धरण— राधा स्वामी नाम

(पृष्ठ २७-२८, धारा ४१) चेतन शक्ति की भी दो अवस्था हैं एक गुप्त दूसरी प्रगट। रचना से पूर्व चेतन शक्ति अपने मरकज़ में गुप्त थी। उसको शून्य समाधि अवस्था कहते हैं। होते होते एक समय आया जब चेतन शक्ति के भंडार में हिलोर (क्षोभ) होकर आदचेतन धार प्रगट हुई और शक्ति के प्रत्येक प्रकाश के साथ २ एक शब्द प्रगट होने के नियम के अनुसार उस हिलोर से स्वामी शब्द और आद चेतन धार से राधा शब्द प्रगट हुआ। दूसरे शब्दों में रचना की क्रिया होने अर्थात् चेतन शक्ति के गुप्त से चेतन रूप धारण करने पर कुल मालिक से आद शब्द प्रगट हुआ जिसे मनुष्य भाषा में उच्चारण करने से राधास्वामी शब्द बनता है। यही कारण है कि यह नाम कुल मालिक का निज नाम माना जाता है।"

(आर्य्य) इस लेख में केवल शब्द जाल रचा गया है। संभव है अंध विश्वासी सतसंगी कह दे कि सच्चे मालिक के प्रेम के अभाव से हम इस रहस्य को समझ नहीं सके, परन्तु राधा स्वामी सतसंगियों में तो उस मालिक से प्रेम है।' हम ललकार कर कहते हैं कि कोई भाई मर्दमैदान बनकर बतावे तो सही कि इन शब्दों का तात्पर्य क्या है। साहब जी महाराज मानते हैं कि "पिंडे सो ब्रह्मंडे", तो जब शरीर वाला आत्मा मृत्यु पर्यन्त गुप्त नहीं होता अपितु गाढ़ निद्रा वा सुषुप्ति के पीछे भी यह ज्ञान प्रकाश करता है कि आज खूब गहरी नींद सोए, तो वह तो हर अवस्था में प्रगट ही सिद्ध हुआ ऐसी अवस्था में ब्रह्मांड का आत्मा अथवा इसे रचने व ज्ञान देने वाला परम आत्मा किस प्रकार गुप्तावस्था में जा सकता है। हालत बदलने वाला माद्दा है, कार्य्य अवस्था में वह प्रगट समझा जाता है और कारण में गुप्त। कुल मालक की चेतन शक्ति सर्वदा एक रस है। शून्य समाधि वा गुप्त और प्रगट अवस्था का उससे सम्बन्ध नहीं हो सकता। ऐसा ही यह कहना भी असत्य है कि होते २ एक समय कुल मालक में हिलोर वा क्षोभ होकर आद चेतन धार प्रगट हुई। हमारे मन में इस पर प्रश्न ही प्रश्न उठते हैं। (१) हिलोर धीरे २ क्यों हुआ, एक दम क्यों न हुआ ? (२) रफ़्ता २ का सम्बन्ध काल के साथ ही है तो वह समय कब आया ? (३) कितना काल पीछे आया। (४) कुल मालक इससे पहिले क्या करता था ? (५) उसमें क्षोभ क्यों उठा ? (६) और क्षोभ है क्या ?" (७) क्षोभ होने से आद चेतन धार क्यों प्रगट हुई कुल मालक स्वयं क्यों प्रगट न हुआ ? (८) कुल मालक उस समय कहाँ था ? (९) आद चेतन धार उस समय प्रगट हुई थी तो अब क्यों प्रगट नहीं होती। (१०) और वह धार कितना समय सृष्टि रचती फिरी। (११) और सृष्टि रच कर कहाँ

गई अथवा उसका क्या बना ? (१२) शक्ति के प्रत्येक प्रकाश के साथ एक शब्द प्रगट होने का नियम किसने कब से और क्यों बनाया। (१३) सूर्य्य, चाँद नक्षत्रादि सब का नित्य प्रति प्रकाश होता है इनमेंसे हर शक्तिके साथ जो २ शब्द होचुका है वह बताइये तो सही। (१४) वह शब्द कान से सुना जाता है अथवा आत्म शक्ति से ? (१५) यदि कान से सुना जाता है तो आद चेतन धार प्रकट होने पर किसने कानसे सुना ? कर्णादि इन्द्रियों वाला मनुष्य तो तब पैदा ही न हुआ था। (१६) यदि वह आत्म शक्ति से सुना जाता है तो आद चेतन धार से भिन्न और कौन आत्मा था जिस पर शब्द प्रगट हुआ। (१७) कुल मालक से जो आद चेतन धार प्रगट हुई किस पर हुई। (१८) क्या वह चेतन धार कुल मालक से अलग थी वा उसके साथ। १९ अलग थी तो कितनी दूर थी। (२०) तथा दोनों जिस २ स्थान पर थे उनका क्या २ नाम था ? (२१) और यदि मिले हुए थे तो कुल मालक भी क्यों साथ ही प्रगट न हुआ ? (२२) चेतन शक्ति मरकज़ में गुप्त थी, इसका क्या अर्थ है, क्या कुल मालक की शक्ति उस समय मुहीत में गुप्त न थी ? (२३) कुल मालक के मरकज़ से क्या मुराद है ? क्या वह दाइरे के मरकज़ की तरह एक कल्पित नुक़ता ही है अथवा कुछ लम्बाई चौड़ाई भी रखता है। २४ यदि रखता है तो इसका क्या प्रमाण है और नहीं रखता तो उसका अस्तित्व क्या हुआ ? (२५) इसी विषय को शरीर के अन्दर मौजूद आत्मा के उदाहरण से बताइये कि वह जो किसी भी कल्पित मरकज़ी नुक़ता से भी अधिक सूक्ष्म है वह स्वयं मरकज़ों का मरकज़ है या उसका भी कोई मरकज़ किसी कल्पना में आ सकता है। (२६) और क्या दाइरे के कल्पित मरकज़ी नुकते के अन्दर जिसकी न लम्बाई है न चौड़ाई, कोई और वस्तु भी छिपी रह सकती है ? (२७) नहीं रह

सकती तो चेतन शक्ति के मरकज़ से क्या अर्थ और इस मरकज़ में चेतन शक्ति के प्राप्त होने का क्या तात्पर्य है (२८) और इस में क्षोभ हो तो किस निमित्त से ? (२९) फिर पहिले तो कहा कि चेतन शक्ति से हिलोर होने पर आद चेतन धार प्रगट हुई फिर मरकज़ की हिलोर से स्वामी शब्द ज़ाहिर हुआ। इनमें से सच्ची बात कौन सी है ३०) फिर यदि कुल मालिक मे क्षोभ होने से स्वामी शब्द पैदा हुआ तो जिस्म के मालिक रूह मे जो एक समय नई से नइ हिलोरें वा क्षोभ होते हैं उनसे पैदा होने वाले शब्दों का वर्णन तो कीजिये। (३१) मख़ज़न की हिलोर से स्वामी शब्द ज़ाहिर हुआ यह एक दावा है इसके लिये युक्ति क्या है और प्रमाण क्या ? (३२) ऐसे ही आद चेतन धार से राधा शब्द प्रगट हुआ, यह भी एक दावा है इसमे युक्ति क्या और प्रमाण क्या ? (३३) इसी प्रकार पहिले ता कहा कुल मालिक से आद चेतन धार प्रगट हुई पीछे कहा इससे आद शब्द प्रगट हुआ। इनमें से सच्ची बात कौन सी है (३४) आद चेतन धार और आद शब्द पृथक २ हैं तो एक ही कुल मालिक से किस प्रकार पैदा हुए और कितना काज एक दूसरे के पहिले वा पीछे पैदा हुई (३७) और यदि एक ही हैं तो केवल यह कहना क्यों उचित न समझा गया कि आरम्भ में कुल मालक से आद चेतन धार अर्थात आद शब्द का प्रकाश हुआ (३८) ऐसे ही आद चेतन धार का प्रकाश भी कुल मालक से है तो कुल मालक वा मख़ज़न से स्वामी शब्द निकला और चेतन धार से राधा-यह भेद किस कारण से हुआ (३९ फिर स्वामी शब्द किस पर प्रगट हुआ और राधा किस पर ? (४०) इन दोनों को किस ने और कब मिलाया। (४१) जब स्वामी शब्द ज़ाहिर हुआ इसके अर्थ क्या थे अर्थात स्वामी नाम था तो उसका नामी कौन था और राधा नाम था तो

उसका नामो कौन था ? (४२) क्या यह दोनों शब्द एक साथ प्रगट हुए अथवा कुछ काल के अन्तर से ? (४३) एक साथ ज़ाहिर हुए तो कुल मालक के हिलोर और आद चेतन धार और आद शब्द सब का एक साथ होना आवश्यक है (४४) और यदि इनके प्रगट होने में कुछ अन्तर हुआ तो कितना ? (४५) क्या मालक कुल के अन्दर केवल एक स्वामी शब्द ही था ? यदि यही था तो इसकी आद चेतन धार से ही राधा शब्द कैसे निकल आया और यदि और भी थे तो पहिले स्वामी और राधा दो ही क्यों ज़ाहिर हुए ? (४६) यदि यह २ शब्द प्रगट न होते तो रचना की क्या हानि होती ? और यदि ज़ाहिर हुए तो इन से रचना के आदिम पुरुषों को क्या लाभ पहुँचा ? (४७) क्या किसी इतिहास में यह बयान मिलता है कि पहिले स्वामी और राधा २ शब्द प्रगट हुए (४८) यदि प्राचीन से नहीं किसी अर्वाचीन इतिहास से ही पता चलता है कि कुलमालक को राधा स्वामी नाम से कभी मानव जाति अथवा इसके किसी भाग ने इस नाम से पुकारा हो। (४९) क्या इस समय का ही कोई प्रमाण मिल सकता है कि राधास्वामी मत के प्रवर्तक की धर्म पत्नी का नाम राधा होने और उनके यथार्थ अर्थ में राधास्वामी नामी बनने से पूर्व उन्होंने कुल मालकको राधास्वामी कहा हो अथवा अपने मतका नाम राधास्वामी रक्खा हो। (५०) आप फ़रमाते हैं कि कुल मालक का निज नाम राधास्वामी है और बिना पूछे आप उसका कारण बताते हैं कि चूँकि यह कुल मालक से निकला हुआ आद शब्द है, इस लिये यह निज नाम है, परन्तु जो कारण वास्तव में बिना पूछे आपको बताना था वह आप सब ओर से प्रश्न होने पर भी नहीं बताते अतः हम फिर पूछते हैं कि कारण क्या था कि कुल मालक से राधास्वामी नाम निकला और कोई और शब्द न

निकला ? (५१) साथ ही इसका क्या कारण था कि कुलमालक से तो वेद का ज्ञान न मिला और ब्रह्म से मिला जो राधास्वामी से कई दर्जे नीचे था। (५२) और यदि ब्रह्म भी उसी सच्चे मालक का बड़ा अंश है तो उससे प्रगट हुए वेद क्यों न उसी कुल मालक की बानी समझे जावें। (५३) यदि आप उसमें केवल तीन गुण वाली प्रकृति का ज्ञान मानते और यथार्थ आत्म शिक्षा का सम्बन्ध सिद्धान्त रूप से सन्तों से जानते हैं तो भी जब तक राधास्वामी मत संगी जन्म मरण के चक्कर में हैं और उनके गुरु तीन गुणों वाली प्रकृतिके बने हुए जड़ पदार्थ लकड़ी, लोहा आदिकी सहायता से कारख़ाने चलाते और सामान बनाते हैं तब तक उनका सम्बन्ध वेद से न रहे अथवा अल्प सा रहे तो क्या यह कुल मालक से विद्रोह न होगा ? (५४) त्रिगुणात्मक वेद के अतिरिक्त जिस आत्म विद्या का प्रकाश सन्तों पर हुआ वह मनुष्यों को अब किस मत से वा किस पुस्तक से पूर्ण एवं यथार्थ रूप से मिल सकता है ? (५५) वह सर्व प्रथम किस सन्त पर, कब, कैसे और कहां ज़ाहिर हुआ ? (५६) जब आप स्वयं वेद के अनेक मन्त्रों के अर्थ में आत्मता बलकि सच्ची तथा शुद्ध आत्मता, होने को अपनी पुस्तक में स्वीकार करते हैं तब आपका यह कहना कि वेद तीन गुणों के ज्ञान तक ही परिमित हैं, मिथ्या भाषण वा असत्य प्रकाशन ही क्यों नहीं। (५७) और जब राधास्वामी शब्द स्वयं प्रत्यक्ष रूप से यौगिक नाम है अर्थात् 'वह व्यक्ति जो राधा का पति है' तब इस शब्द को निज नाम मान बैठना ख़ाह-मख़ाह की धींगा मुश्ती नहीं तो क्या है ? (५८) आपने वा आप के भूतपूर्व आचार्य्यों ने आज तक कोई प्रमाण नहीं दिया कि किसी भी भूत काल में किसी सन्त वा ऋषि ने कुलमालक का निज नाम राधास्वामी माना हो। वेद और ब्रह्मवैवर्त पुराण से

आपने भाग ३ पृष्ठ २६६–२६८ पर जो प्रमाण दिये हैं उनमें से भी किसी में भी राधास्वामी नाम नहीं लिखा । (५९) "राधानाम पते" अर्थात् 'राधाओं का पति' का शब्द ईश्वर के लिये प्रयुक्त हो तो वह केवल गौणिक नाम होगा (६०) और यह गौणिक नाम उन अनन्त नामों में से एक है जो सारे पदार्थों के साथ पति आदि शब्द लगाने से बन सकते हैं जैसे इश नाम जगत की सामग्री आदि का है तो ईश्वर इन सकल पदार्थों का स्वामी है । गणों का वर्णन हो तो उसका नाम गणेश वा गणपति होगा जो सब गौणिक नाम हैं तब राधास्वामी निज नाम है इसका क्या प्रमाण ? (६१) आप मानते हैं ।

राधा आद सुर्त का नाम-स्वामी आद शब्द निज धाम

चूंकि राधा आद सुर्त या आद चेतन धार का नाम है और उस धार में रचना की सामग्री वा प्रकृति है, परन्तु राधास्वामी धाम जो चोटी का स्थान है उसमें माया की बिलकुल मिलौनी नहीं है अतः खालिस रूहानी मकाम का नाम राधास्वामी रखना सत्य नहीं हो सकता । जो सत्ता प्रकृति से वा माया देश से सर्वथा निर्लेप है उसे उस राधा से जोड़ना अनर्थ है । (६२) परन्तु जब स्वामी का अर्थ मालक है और मालक मिलकियत के बिना हो नहीं सकता तब केवल स्वामी शब्द भी उसके लिये हो नहीं सकता, अतः सच्चे मालक की शुद्ध आत्म सत्ता के निज नाम के निर्णय में राधा और स्वामी दोनों शब्द त्यागे न जायें इस का क्या कारण है ? (६२) फिर राधा स्वामी से हम मनुष्यों का सम्बन्ध भी क्या हो सकता है जब कि कहा यह जाता है कि:—

उठी स्वामी चरणों से एक आद धार, वही कुल रचना की करतार यार
उसी आद धारा का राधा है नाम, उसी से सरें सबके कारज तमाम॥

आद धार ही रचना करती है और उसी से सब के कारज

सरते हैं तो राधा-राधा की ही पुकार होनी चाहिए। स्वामी का दुमछल्ला लगाना व्यर्थ है। परन्तु जब रचना करने वाली असली शक्ति का नाम धारा है तो उसे उलटा कर राधा कहना भी अयथार्थ नाम रटना होगा अतः क्यों न आप धारा धारा का जप करावें और राधा जैसे उलटे नाम का त्याग करावें। इत्यादि।

६—साहब जी महाराज के मन में यह सब कुछ पहिले ही खटक रहा है और उन्होंने पेश बन्दी के तौर पर वैदिक साहित्य के ऐसे प्रमाण दे दिये हैं जिनके शब्दों की आड़ उनको वही काम दे सकती है जो डूबते को तिनके का सहारा दे सकता है, जैसे हिलोर या क्षोभ या लैहर या रचना की इच्छा आदि के शब्द आप ऐत्तरेय उपनिषद के इस मंत्र के ईक्षत शब्द के पर्याय बताते हैं।

ओ३म् आत्मा वा इदमक एवाग्र आसीत नान्या किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्न सृजां इति॥

"सृष्टि के रचने से पूर्व यह एक ही आत्मा परमेश्वर था वह भगवान् ही ज्ञान से प्रकाशित रूप में विराजमान था और कुछ भी झपकता या हिलता न था। उसने सोचा कि मैं लोकों को रचूँ।" इसमें ईक्षत शब्द का अनुवाद सोचा, ख्याल किया, इच्छा की आदि जो वैदिक धर्मी पंडितों ने किया है उससे आप कुल मालक में कोई परिवर्तन होने का आशय लेते हैं जिससे कि गुप्त और प्रगट दो अवस्था वाला कथन युक्त सिद्ध हो. परन्तु यह आशय पूरा होना कठिन है। प्रथम तो इस मंत्र में स्पष्ट कहा गया है कि रचना से पूर्व भी भगवान् विराजमान थे, किसी गुप्त रूप से नहीं, वरन् ज्ञान से प्रकाशित रूप में। दूसरे ईक्षत शब्द का आशय परमेश्वर में कोई नई बात जाहर होना नहीं किन्तु उसके रचना सम्बन्धी ज्ञान का प्रकृति को कार्य्य अवस्था में लाने का निमित्त बनना है। साहब जी महाराज स्वयं मानते हैं कि महा-

प्रलय में सुर्त और कारणावस्था में लीन हुआ जगत कुल मालक में समा जाता है और पुनः उत्पत्ति होने पर वही सुर्तें और रचना की सामग्री जो कुल मालक में समाई थी, प्रगट होती हैं। परन्तु एक बात आप जानबूझकर हर कहीं गुप्त रखना चाहते हैं और वह हैं 'रचना सम्बन्धी यथार्थ एवं पूर्ण ज्ञान", जिसके अनुसार उपादान कारण कार्य्यावस्था में आता है। वेद स्पष्ट कहता है—

ऋतं च सत्यंचाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत

अर्थात पहिले ईश्वरीय ज्ञान (ऋत) और रचना की सामग्री (सत्य) दो चीज़ें मौजूद थीं। इनसे अभीद्धातप ज़ाहिर हुआ। अर्थात् ईश्वर में कोई नवीनता नहीं आई उसके ज्ञान और रचना की सामग्री दोनों की विद्यमानता कारण बनी अभीद्धातप के प्रगट होने का इसी तप को अन्य स्थानों में ईश्वरीय ज्ञान के प्रकाश का नाम दिया है और कहा है, ' यस्य ज्ञान मयं तपः " उसका तप ज्ञानमय है, इसी ज्ञान वा तप के प्रकाश को उपनिषद् में ईक्षत शब्द से वर्णन किया है। परन्तु राधा स्वामी मत को वर्तमान पृथक अवस्था में चलाने के लिये परमेश्वर वा उसके ज्ञान वेद को पीछे फैंकने और सन्त सतगुरू के नाम से ही ज्ञान ध्यान को सम्बद्ध करके अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये असली मुख्य साधन ज्ञान का तो वर्णन नहीं किया जाता और निर्विकार परमेश्वर से अन्दर हिलोर वा क्षोभादि शब्दों के विकार सा होने का आशय पेश किया जाता है, जो सर्वथा असत्य है। ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १२९ मंत्र २ में कहा है:—

तपसस्तन्महिना जायतैकम्।

वह परमेश्वर तप (ज्ञान वा अपनी सामर्थ्य) से कारण जगतको कार्य्य अवस्था में लाया। उपनिषदों में शब्द ब्रह्म को सृष्टि की उत्पत्ति करने वाला माना है वह शब्द इसी ज्ञान वा तप का पर्याय

है, क्योंकि आप्त का उपदेश शब्द कहाता है और इस उपदेश में असल सार या ज्ञान मुख्य है तथा शब्द का जो अर्थ से सम्बन्ध है वही ज्ञान है। अतः शब्द, ज्ञान, तप, इच्छा, ईक्षणादि सब शब्दों का जिस अर्थ में समावेश होता है वही वेद के सृष्टि रचना विषय का वास्तविक देवता है।

७—(पृष्ठ २१४ भाग २) चेतन शक्ति में उठने वाली हिलोर का वर्णन करते हुये आपने लिखा है:—

"यह चेतन लैहर थी, इसमें रचना प्रगट करने की इच्छा और रचना करने की शक्ति दोनों शामिल थीं" पृष्ठ २९, पर आपने लिखा है, "कुल मालक की आद चेतन धारमें दो गुण होने चाहियें, प्रथम यह कि वह धार आत्मशक्ति की धार होनी चाहियें, दूसरे यह कि उसमें रचना करने की सामर्थ्य अर्थात् रचना करने की इच्छा और रचना करने की सामग्री मौजूद होनी चाहिये", आप के इन शब्दों को यदि युक्त और सार्थक बनाया जा सकता है तो केवल उसी भाव से जो वेदादि सत्य शास्त्रों में परमात्मा के ज्ञान, बल और क्रिया तीनों को एकार्थवाची बनाता है। उस का ज्ञान ही उसकी इच्छा, उसका ज्ञान ही उसका बल और वही उसकी क्रिया है। मनुष्यों के ज्ञान वा कर्म में भेद है; इसी प्रकार मनुष्यों के मन और वाणी में अन्तर हो सकता है और प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि, "हाथी के दांत खाने के और, दिखाने के और" अंग्रेजी में कहा जाता है, 'Saying and doing are two things' कहना और करना दो बातें हैं। परन्तु परमेश्वर में इस प्रकार के प्रत्येक भेद भाव का अभाव बताते हुए उसके ज्ञान, बल और क्रिया तीनों को पूर्ण रूप से एक ही कर दिया गया है और इन तीनों शब्दों के आशय को कहीं एक ऋत शब्द से वर्णन किया है कहीं तप, कहीं ज्ञान, कहीं शक्ति तथा कहीं ईक्षण से। दूसरी चीज़

रचना की सामग्री शक्ति वा सामर्थ्य कहलाती है, और इसमें जीव और प्रकृति दोनों हैं। आप के बयान में भी आत्म शक्ति की धार, चेतन लैहर, रचना की सामर्थ्य, रचना की इच्छा आदि शब्द ज्ञान, बल, क्रिया, ऋत, तप आदि के लिये ही हैं और रचना की सामग्री जीव और प्रकृति से अभिप्रेत है; परन्तु आप कुल मालक को अलग ऊँचे स्थान पर बिठाने से विशेष प्रयोजन की सिद्धी करना चाहते हैं, इसलिये उस मे आप चेतन धार का प्रकाश मानते और उससे रचना होने की घड़न्त घड़ते हैं, अतः हम पूछते हैं कि कुल मालक में क्षोभ होने पर आद चेतन धार प्रगट हुई और उसमें रचना की इच्छा और सामग्री दोनों थीं तो कुल मालक में क्या रह गया ? क्या रचना को इच्छा आद चेतन धार मे भिन्न असल कुल मालक में न रही थी ? और सामर्थ्य के अतिरिक्त रचना की सामग्री भी उसमें रही थी या नहीं; यदि नहीं रही थी तो यह आपके उदाहरण से असत्य है। सूर्य्य की किरणों में सूर्य्य की सत्ता सीमित वा समाप्त नहीं होती और इस अवस्था में आद चेतन धार के अन्दर अति अल्प सी मात्रा ही सामग्री की आई होगी। परन्तु इस अल्प सी मात्रा से इतना विस्तृत जगत कैसे बन सकता है ? और यदि आप यह मानें कि सामर्थ्य और सामग्री कुल मालक में बनी रही तो प्रश्न यह है कि कितनी रही और उसके होते हुए कुल मालक माया की मिलौनी से मुक्त कैसे रहा और सामग्री का अधिक भाग अपने अन्दर रख लेने से उसे प्राप्त क्या हुआ ? अतः या तो सिद्ध कीजिये कि आद चेतन धार में सम्पूर्ण आत्म शक्ति और रचना की पूर्ण सामग्री थी और कुल मालक साहब केवल बे मुल्क के नबाब और सामर्थ्य हीन होकर अलग थलग लटक रहे थे। अथवा यह स्वीकार कीजिए कि आद चेतन धारके प्रगट होनेका विचार केवल कल्पित वा शब्द जाल है।

प्रथमाध्याय के प्रथम सर्ग में हमने सिद्ध किया था कि वास्तव में राधास्वामी, सच्चा मालक, कुल मालक आदि नाम परमेश्वर के ही हैं, और केवल भ्रांति फैला कर अपने मत का महत्व बताने को ब्रह्म से ऊपर सुन्न, महासुन्न, सत्त, अलख अगम लोक और राधा स्वामी धाम की कल्पना की गई है। वही बात आद चेतन वा आत्मशक्ति की धार आदि कहने से यहाँ सिद्ध होती है और यदि भाग २, पृष्ठ २४६ विषय, काल व दयाल,के निम्नलिखित शब्दों को गौर से पढ़ा जावे तो हमारे इसी पत्त की पुष्टि होती है।

"२०६—सन्त मत में माना जाता है कि कुल मालक अनन्त व अपार चेतनता, प्रेम व आनन्द का अथाह सागर है उसके अन्दर बहुत सी कलाएँ वा दिव्य शक्तियां हैं जिनके ज़िम्मे रचना सम्बन्धी काम हैं,उन्हें पुरुष कहते हैं और इसी अर्थ में कुलमालक को परमपुरुष कहते हैं। इन पुरुषों में एक परब्रह्म पुरुष है उसके ज़िम्मे ब्रह्माण्ड व पिण्ड सृष्टि की उत्पत्ति तथा संभाल है।"

इससे विदित होता है कि कुलमालक के वही गुण साहब जी महाराज मानते हैं जो आर्य लोग ब्रह्म के मानते हैं, और चूंकि रचना सम्बन्धी क्रिया वा संचालन में उसकी एक एक कला वा दिव्य शक्ति वा गुण का कथन करना होता है, इस लिये किसी एक दिव्य शक्ति वा कला की दृष्टि से उसे पुरुष कहते तथा उसका कोई नाम रखते हैं। चुनांचि ब्रह्मांण्ड व पिण्ड के उत्पत्ति वा संभाल के काम के कारण से उसे परब्रह्म पुरुष कहा जाता है परन्तु सम्पूर्ण शक्तियों और सर्व श्रेष्ठ गुणों का पुञ्ज होने से उसे परम पुरुष कहते हैं। अतः जिसे राधा स्वामी कहा जाता है वह वास्तव में वही सत्ता है जिसे ब्रह्म कहते हैं और उसी को रचना के आरम्भ की दृष्टि से आद चेतन धार कहा जाता है।

९—कुल मालक के सोने व जागने की बात भी उसी प्रकार

है जैसे उसके गुप्त व प्रगट होने की। पर ब्रह्मका नाम ही काल पुरुष रक्खा गया है इसलिये उसकी रचना और प्रलय का काल नियत है और लिखा है कि:—

"यह स्वयं अमर अर्थात् अविनाशी है परन्तु यह कुछ काल जागता है और कुछ काल सोता है उसके जागने के समय को उस का दिन और उसके सोने के समय को उसकी रात कहते हैं। जब उसका दिन शुरु होता है उसकी सृष्टि प्रगट हो जाती है और जब उसकी रात होती है उसकी सृष्टि उसमें समा जाती है।"

पहले तो कोई कला वा दिव्य शक्ति किसी भी अवस्था में कुल मालक से पृथक् नहीं हो सकती। दूसरे परब्रह्म वा काल पुरुष भी अविनाशी है तो कुल मालक और पर ब्रह्म किसी प्रकार भी भिन्न सत्तायें सिद्ध नहीं हो सकतीं और चूंकि साहब जी महाराज के कथन के अनुसार कार्य सृष्टि प्रगट होती और वही कारण अवस्था में उसमें समा जाती है अतः सोने वा जागने का शब्द प्रकृति पर ही लागू हो सकता है अथवा उससे रची गई सृष्टि पर, ब्रह्म से इन अवस्थाओं का सम्बन्ध नहीं, वह तो दोनों अवस्थाओं में एक रस साक्षीवत है।

१०—उपनिषदों में जगत् का आदि कर्ता ब्रह्म को माना है। वह रचना का निमित्त कारण है और उसके साथ इसी सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिये 'स ईक्षत' जैसा विस्तृत अर्थ रखने वाला शब्द पेश करके उपनिषद्कार ने अपनी विवेचना शक्ति की प्रवीणता का परिचय दिया है; पर यथार्थ प्रकाश के लेखक महोदय को विचित्र प्रकार की कठिनता दरपेश है। सोचना, चाहना, इच्छा करना, ख्याल करना, हिलोर उठना, क्षोभ होना, धार प्रगट होना, लैहर रवां होना, कितने ही शब्द प्रयुक्त किये तो भी 'स ईक्षत' का भाव प्रगट न हुआ। पर न हुआ और होता भी कैसे आप तो ब्रह्म को

एक रस तथा व्यापक होने के गुणों को ही सत्य नहीं मानते। हिलोर उठने वा क्षोभ होने के शब्द उसके एक रस होने के विरोधी हैं, और कुल मालक से धार निकल कर मुहीत तक पहुंचने का विचार उसकी व्यापकता का निषेध करता है। पृष्ठ २१४ भाग २ पर आपने दृष्टांत दिया है कि जैसे समुद्र की लैहर उठकर समुद्र के अन्दर पोशीदा सींप, घूंगे, मूंगे, मछली आदि को किनारे पर फैंक देती है ऐसे ही रचना के आरम्भ में चेतन्ता के अपार सिंध सच्चे कुल मालक में एक लैहर उठी जिसने उसके अन्दर से रचना की मौजूदा सब सामग्री का मसाला प्रगट किया"।

शुकर है आप ने कहीं यह तो नहीं लिख दिया कि लैहर ने कुल मालक के अन्दर से रचना का सब मसाला बाहर फैंक दिया। तथापि यह तो स्पष्ट होना चाहिये कि "मसाला प्रगट किया" का क्या अर्थ है ? किस पर प्रगट हुआ ? प्रगट होने पर वह कहां था ? कुल मालक से तो वह बाहर हो आ गया होगा, क्योंकि आपके कथनानुसार कुल मालक एक देशी है, प्राकृतिक रचना का उससे सम्बन्ध नहीं इस अवस्था में यह बताना भी आप का ही कर्त्तव्य है कि कुल मालक के बाहर आकर उस मसाले ने कितनी जगह घेरी ? और कुल मालक के एक देशी होने से क्या कुल आकाश में अनादि काल से कुछ मौजूद न था ? परन्तु इसका उत्तर आप दे ही क्या सकते हैं ? आकाश की तो अभी उत्पत्ति ही नहीं हुई तो उसमें मसाला किस प्रकार आकर निवास कर सकता है ? यहां है राधास्वामी सत संगियों के लिये।

एक विचारणीय समस्या

चेतन लैहर ने रचना का सब मसाला तो कुल मालक से निकाल दिया जो उसके अन्दर लीन था। परन्तु कुल मालक से भिन्न पहिले किसी अन्य स्थान का भाव भी आपको स्वीकार नहीं, अतः

वह मसाला बाहर निकल कर ठहरा कहां ? यहाँ यह निश्चय होना चाहिये कि कुल मालक विभु हैं वा परिच्छिन्न। साहब जी महाराज तो उसे कहीं अनन्त भी कह देते हैं और कहीं एक देशी, यह परस्पर विरुद्ध है। परन्तु यदि वह सर्वव्यापक है तो उससे मसाले के बाहर निकलने का कुछ अर्थ नहीं और दूसरी अवस्था हो तो पहिले तो एक देशी कुल मालक में रचना की सामग्री का समा जाना असम्भव है, साथ ही कुल मालक का मलान वा निर्मल माया देश से सम्बन्ध टूट जाने से उसके रचना के मसाले को अपने अन्दर रहने की आज्ञा देना असम्भव है और मसाले के निकलने से पहिले आकाश तक का अभाव होने से मसाले को पनाह की जगह मिलना और भी असम्भव है। अतः आद्चेतन धार या लैहर ने जो इस मसाला को कुल मालक के अन्दर से निकाला तो उसे कहां रक्खा अथवा उसे लेकर आप कहां ठहरी ? राधा स्वामी भाई इसका उत्तर दें।

कहां तक लिखा जावे इस दूसरे उद्धरण के लेख से भी साधारण पुरुष तो कहां बड़े २ विद्वानों के पल्ले कुछ नहीं पड़ सकता और आदि सृष्टि में ज्ञान के प्रकाश होने के सिद्धान्त को ही लम्बी, कठिन तथा कुछ आशय समझ में न आने की शैली पर कथन करके अपनी शिक्षा को सादा व सहज कहा गया है, जैसे लोक में किसी महा दरिद्री का नाम धनपत राय वा दौलतराम रखा जाता है।

११—तीसरा उद्धरण—राधास्वामी नामकी व्याख्या—"चूँकि आदि धार रूहानी कुव्वत की धार थी, इसमें शक्तियों के औसाफ़ जरूर मौजूद होंगे। दुनिया में कुव्वते बरक़ा वा कुव्वते मकनातीसी सब से बड़ी शक्तियां हैं। इन दोनों के अन्दर दो खवास देखने में आते हैं। अव्वल यह कि उनकी धारें दो रुखी रहती हैं। मसलन

कुव्वते मक़नातीसी की धारें .कुतबों से रवाना होकर मुहीत में फैलती भी हैं और मुहीत के अन्दर वाक़ा लोहे के ज़र्रों को .कुतबों की जानिब खींचती भी हैं यानी उन का एक रुख़ मरकज़ से मुहीत की जानिब और दूसरा रुख़ मुहीत से मरकज़ की जानिब होता है। इस ख़ासे के बमूजिब आद चेतन धार के अन्दर भी दो रुख़ मौजूद होंगे और इन दोनों से अलैहदा २ शब्द ज़ाहिर होने चाहियें। चुनांचि राधास्वामी मत बतलाता है कि बेरूनी रुख़ से 'रा' और अन्दरूनी रुख़ से 'धा' शब्द ज़ाहिर हुए और उनके मिलाने से जो राधा शब्द बनता है, वह आद धार के मुकम्मल यानी उसके दोनों रुखों के अमल का नतीजा है और चूँकि जैसा ऊपर ज़िकर हुआ इसी धार के रवां होने से पहले चेतन शक्ति के मख़ज़न में हिलोर वाक़ा हुई थी और यह दो रुख़ी कार्रवाई इस हिलोर में भी मौजूद थी इसलिए हिलोर के रुख़ों से भी अलैहदा २ शब्द प्रकट हुए। चुनांचि हिलोर के बेरूनी रुख़ से 'स्वा' और अन्दरूनी रुख़ से 'मी' शब्द का ज़हूर हुआ और स्वामी शब्द आद हिलोर के मुकम्मल यानी दोनों रुख़ों के अमल का नतीजा है। सन्त मत में आद हिलोर को आद शब्द और आद धार को आद सुर्त भी कहते हैं। मसलन फ़रमाया है—

राधा आद सुर्त का नाम, स्वामी आद शब्द निज धाम
(पृ० २६, धारा ४४)

(आर्य्य) आद धार का वर्णन है ही आद से अन्त तक मिथ्या तो इसमें शक्तियों के गुण मानने का अर्थ क्या? सर्वव्यापक कुल मालक की धार की उससे पृथक् रूप में कल्पना होना ही असम्भव है और एक देशी कुल मालिक में रचना की सब सामग्री न होने से उससे भिन्न किसी स्थान आदि का होना असं-

भव है इसलिए उससे धार रवां न हो सकती है और न कहीं पहुँच वा कुछ कर सकती है। रही आपकी दोरुखी धार की फ़िलोसोफ़ी, यह और भी निराधार है। दो रुखा धार के लिए आवश्यक है कि दो पृथक् सत्तायें हों और उनके बीच में फ़ासला हो जैसे पुस्तक के पाठक की आँख के केन्द्र से दर्शन शक्ति की धार पुस्तक रूपी मुहीत तक पहुंचती और वहाँ से मरकज़ की ओर लौटती है जिस से उन शब्दों का ज्ञान होता है जो आँख से दूर थे। परन्तु पुस्तक और आंख को मिला दिया जावे तो दो रुख़ो धार का ख़याल ही उड़ जाता है। ऐसा ही पुस्तक को भी नेत्र के सामने से हटा दिया जावे तो केवल आंख के लिए दो रुखा धार की फ़िलोसिफ़ी का नाम ही नहीं लिया जा सकता। इस के अलावा दो रुख़ी धार का बयान और भी अयुक्त सा हो जाता है जब कथन शैली और ही धारण की जावे। जैसे यह कि रोशनी ने पुस्तक और नेत्र को मिला दिया है अथवा विद्युत शक्ति ने जो व्यापक है कान और दूर खड़े आदमी की आवाज़ को मिला दिया है। कान के मरकज़ से श्रोत्र शक्ति दूर खड़े मनुष्य के मुहीत तक न गई है, न आई है अपितु सूत्रात्मा (विद्युत) की धार (Current) शब्द को कान में डाल रहा है। अतः किसी विषय के सम्बन्ध में किसी विशेष कथन शैली को सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। एक और शैली पर भी इसी भाव को वर्णन किया जा सकता है। वह यह कि सारे पदार्थों में आकर्षण का नियम काम कर रहा है। पृथिवी की आकर्षण शक्ति प्रत्येक पदार्थ को अपनी ओर खींच रही है जो अपने मुसावीउलहुजम हवा से भारी है अथवा यह कह सकते हैं कि प्रत्येक भारी वस्तु अपने समान गुणयुक्त पृथिवी की ओर दौड़ी आ रही है जैसे फ़ौलाद अपनी मक़नातीसी शक्ति से लोहे पर ग़ालब आता और उसे अपनी ओर खींचता है परन्तु जो सुई

इस फ़ौलाद से आकर्षण द्वारा मिल वा सिमट चुकी उसके लिए न दो रुख़ी धार का व्यवहार रहा न आकर्षण का। इसी प्रकार कुल मालक के अन्दर लीन हुई सामग्री और सुर्त कभी सृष्टि रचना के काम में नहीं आ सकती यदि आप की दो रुख़ी धार की फ़िलो-सोफ़ी पर निर्भर रखा जावे। जब कुल मालक और सामग्री में न देश की दृष्टि से अन्तर है न काल की दृष्टि से, तो धार की रवानी कैसी और किस मुहीत तक उसका पहुंचना आप कह सकते हैं ?

१२—चेतन शक्ति कुल मालक में इस प्रकार नहीं जैसे किसी पात्र के अन्दर कोई वस्तु रखी जाती है। शरीर में ख़ून है इस लिये उससे ख़ून की धार जारी हो सकती है। लोटे में दूध है वह धार के रूप में उससे निकल सकता है पर चेतन शक्ति कुल मालिक में इस प्रकार नहीं, अपितु वह कुल मालक है ही आत्मशक्ति रूप। और चूँकि वह अखण्ड एक रस और सर्वव्यापक है इसलिए उस चेतन धार का प्रगट होना, उसका मरकज़ से मुहीत को जाना अथवा अन्दर के रुख़ को लौट आना सब कुछ असत्य है। और पूर्वोक्त राधा शब्द के 'रा' और 'धा' और स्वामी शब्द के 'स्वा' और 'मी' के दोनों भाग जो आद हिलोर और आद चेतन धार के दोनों रुख़ों का पृथक् २ परिणाम बताए गए हैं वह भी निराधार हुए। कुल मालक रूपी आप्त पुरुष में ज्ञान का शब्द माना जाये और उसका आत्मा में प्रकाश हो तो यह एक सत्य सर्वतन्त्र तथा अखण्डनीय सिद्धान्त है परन्तु हिलोर वा क्षोभ के दो रुख़ों से 'रा' और 'धा' का ज़ाहिर होना टक्कर का परिणाम और जड़ आकाश से पैदा होने वाले अर्थ शून्य, शब्द का परिणाम हो सकता है और यही कुछ 'स्वा और 'मी' के सम्बन्ध में सत्य है। परन्तु प्रश्न यह है कि जब आकाश प्रगट ही नहीं हुआ, न अभी कोई जीव कुल मालक से निकला है, न कान से सुनने वाले मनुष्य ने जन्म लिया

से 'रा' और 'धा' और 'स्वा' और 'मी' ज़ाहिर कैसे हुए, किसपर हुए तथा इसका ऐतिहासिक प्रमाण क्या है ? राधास्वामी मत के प्रवर्तकने यह कैसे जाना और क्यों माना और क्या कुलमालक या सर्वोच्च राधास्वामी धाम के राधास्वामी नाम धारी धनी के पास अपने नाम का ही एक शब्द था अथवा उसे और भी किसी शब्द का ज्ञान था ? यदि था तो उस का उपदेश किसी को किया वा नहीं ? किया तो किस को और न किया तो क्यों ? तथा कहा तो किस भाषा में और अब वह उपदेश पूरे तौर पर किसे मालूम है और उसमें क्या विशेषता है ? फिर क्या वह शब्द पृथक् २ हैं और वाणी के स्थान में कान, आँख, अथवा किसी और इन्द्रिय के द्वारा बोले जाते हैं ? और जब रचना करने वा सृष्टि की संभाल करने वाला ब्रह्म है और उस ब्रह्म से प्रकाशित हुए वेद में कहीं यह प्रमाण नहीं मिलता कि उस ब्रह्मसे परे भी कोई असली और कुल मालक है और उसका नाम राधास्वामी है तो इस नाम की सत्यता कैसी ? और जब उसका सम्बन्ध रचना करने से है नहीं तो राधा स्वामी शब्द उसने क्यों रचा ? और रचना के इनचार्ज ब्रह्म के काम में क्यों हस्ताक्षेप किया और परब्रह्म की ओर से राधास्वामी नाम के ज़ाहिर न किये जाने पर उससे क्यों उत्तर न मांगा गया ? व क्यों इस विद्रोह पर उसे दण्ड न दिया गया ? फिर यदि स्वयं राधास्वामी नाम प्रगट करने का कष्ट उठाया था तो उसका अर्थ स्वयं क्यों प्रगट न किया और जब न रा में कोई अर्थ है न धा में न स्वा में और न मी में तो इनके संयोग जन्य राधा स्वामी शब्द में सार्थकता कैसे आगई ? इसके अतिरिक्त जब आप के पेश किये बचनों में यह प्रमाण मौजूद है कि—

राधास्वामी आय प्रगट हुए जब से,
राधास्वामी नाम सुनावें तब से ।

तो यह स्वयं आप के मत के प्रवर्तक का साफ़ इक़बाल है कि उनसे पहिले कभी किसी ने राधास्वामी नाम सुनाया ही नहीं तब आद हिलोर और आद धाम या सच्चे कुल मालक से राधास्वामी शब्द चार हिस्सों अथवा इनके समष्टि रूप में प्रगट होने में युक्ति वा प्रमाण क्या है ?

१३—चौथा उद्धरण—राधास्वामी नाम की महिमा।

'सन्त मत बतलाता है कि हर शक्ति धार से एक धुन प्रगट होती है जो उसके हमराह चलती है यह धुन उस शक्ति धार का स्वरूप ही होती है क्योंकि कुल मालक की चेतन धार से भी एक धुन प्रगट हुई वह मालक का धुन्यात्मक अर्थात् निज नाम कहलाती है और इन मरकज़ो शक्तियों (धनियों) की धारों से भी धुनें प्रगट हुईं वह धनियों के धुन्यात्मक अर्थात् निज नाम हैं चुनांचे ओ३म्, सोहंग आदि इन धनियों के ही निज नाम हैं। मुख़तलिफ़ मजाहब में इन्हीं स्थानों और धनियों में से किसी न किसी की महिमा बयान की गई है और बाज़ में इन धुन्यात्मक नामों का भी बयान आया है (पृष्ठ २५९, धारा २१८)

(आर्य्य) शक्ति और शक्ति धार क्या हैं ? इन में परस्पर क्या सम्बन्ध है और किसी दूसरी वस्तु पर शक्ति का प्रयोग हुये बिना धुन कैसे प्रगट हुई और धुन धार के साथ किस प्रकार चलती है ? धुन और धार के चलने पर शक्ति कहाँ रहती है और धुन और धार कहाँ २ जाती हैं। और फिर जब यह दो नाम मौजूद हैं तो दोनों को एक स्वरूप क्यों माना ? और एक ही स्वरूप मान कर फिर कुल मालक की चेतन धार से धुन के प्रगट होने का जिकर कैसा ? चेतन धार धुन प्रगट करती है कुल मालक प्रगट नहीं करता, ऐसा क्यों होता है ? और एक धुन्यात्मक या बीज नाम होना और कोई धुन न होना यह क्यों ? और केन्द्रिय

शक्तियां जब सब एक ही परम पुरुषान्तर्गत हैं तो उन्हें पृथक २ धनियों के रूप में और पृथक २ बीज नामों के साथ पेश करने से हासिल क्या? धुन्यात्मक नाम अपने २ धनी के गुण प्रकाशक हैं अथवा निरर्थक? यदि गुणों के द्योतक हैं तो ओ३म् किस का निज नाम है और सोहंग किस का? और यह किस गुण पर निर्धारित है, और भिन्न २ मतों के स्थानों और धनियों का संदिग्ध सा वर्णन करने के अर्थ क्या? ज़रा इन के धनियों और धुन्यात्मक नामों की सूची तो पेश कीजिये। और यदि परब्रह्म की धार से ओ३म् का निज नाम प्रगट होता है तो अल्ला और खुदा का शब्द भी बीज नाम है या नहीं? और है तो किस स्थान के धनी की धार में यह प्रगट होता है? और यदि परब्रह्म और खुदा एक ही धनी के धुन्यात्मक नाम हैं तो एक ही धार एक से अधिक और भिन्न २ भाषाओं के नाम कैसे प्रगट कर सकती है?

काश कि राधास्वामी सत्संगी भाई इस कूटनीति को भांप सकें, कि राधास्वामी मत का प्रवर्तक बड़ी विचित्र पेचदार लम्बी और समझ में न आने वाली कथन शैली के द्वारा अपने जाल में फंसे हुआ को अन्य मतों से घृणा दिलाता है, इस प्रकार कि उनके माने हुए खुदा को नीचे बता कर, राधास्वामी को चोटी पर बिठाने का मिथ्या एवं अनर्गल सा बयान घड़ता है और फिर इन मतों को रिश्वत देकर अपने विरोध से रोकता है, कि हम तुम्हारे माने हुए नाम को भी धुन्यात्मक या बीज नाम मानते हैं। क्या ही अच्छा होता कि राधास्वामी नाम के महत्व में युक्ति और प्रमाण दिये जाते, न कि कोई मन माना बयान घड़ा जाता। सारांश यह है कि सारा लेख सरल और सुगम होने के स्थान में पेचदार और कठिन है। और साथ ही समझ में भी नहीं आ सकता कारण यह है कि शब्द कठिन हों पर सत्य बात के लिये

प्रयुक्त हों तो भी समझे जा सकते हैं, परन्तु झूठी बात कभी किसी बुद्धिमान के मस्तिष्क में कायम हो ही नहीं सकती, और जान बूझ कर लम्बी और पेचदार शैली में वर्णन होने पर तो उनका समझमें आना और भी असम्भव होता है उनको अल्पवित अथवा अन्ध विश्वासी जनों से युक्ति और प्रमाण के बिना मनवाना ही इश्तहारी मत मतान्तरों का कमाल हो सकता है। यही कारण है कि कहीं प्रेम भक्ति के नाम से, कहीं नित्य मुक्ति के प्रलोभन से, कहीं सत्संगियों की चापलूसी करके और उन्हें बहुत दूरदर्शी, सूक्ष्मदर्शी, सत्य प्रिय, स्वतन्त्र विचारवान इत्यादि, कह कर फुसलाया, और उनके मानसिक भावों की तुष्टी करके अपने प्रभावाधीन रखा या फंसाया जाता है।

मर्म २—राधा स्वामी साहिब हैं कौन ?

१४—सृष्टि के सारे वर्तमान मनुष्य यथार्थ प्रकाश के लेखानुसार परब्रह्म की रचना हैं. और ओ३म् ब्रह्म का धुन्यात्मक या बीज नाम है। ब्रह्म पद से ऊपर के लोकों की जो कल्पना करके राधास्वामी निजधाम को शिखर स्थान बताया जाता है वह प्रत्यक्षरूप से एक व्यक्ति की अपनी घड़न्त है। राधास्वामी मत का प्रवर्तक ही यह दावा करता है, वही राधा स्वामी की महिमा गाता है. वही राधास्वामी के सम्बन्ध में शब्द और भजन बनाता है। और वही अपनी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती नारायणदेवी जी के स्थान में राधा होने का पता देता, और स्वयं उनका पती होने से अपने आप को स्वामी कहता! और राधास्वामी गौणिक नाम से अपनी प्रसिद्धि करता है। सारवचन की आरतियां जिनमें राधास्वामी की महिमा है, उसी की रचना हैं। ब्रह्मादि से उच्चपदवाला

कल्पित राधास्वामी का यदि कोई यथार्थ अस्तित्व होता तो भी उसका इस विषय से सम्बन्ध न होता क्योंकि वह न इस सृष्टि से सम्बन्ध रखता है, न उसे किसी की अपेक्षा है, अतः जो प्रतिष्ठा, पूजा, सेवा वा भेंट अनुयायियों से सम्भव है उस सब का क्रियात्मक लाभ उसी महानुभाव को था, और उसने अपने आप को राधास्वामी का अवतार कहकर खूब ही लीला खेली। अब तक जितने भी मनुष्य राधास्वामी मत में प्रविष्ट हुए हैं उनमें से एक भी ऐसा नहीं जो कल्पित राधास्वामी धाम से आया अथवा कभी वहां पहुँचा वा पहुँच सकता हो। न ब्रह्म के अतिरिक्त उसकी कोई सृष्टि, न कोई चिन्ह वा प्रमाण वा साक्षी है। हां यथार्थ प्रकाश के लेखक महोदय ने बुद्धिमत्ता से यह संकेत कई स्थानों पर दे दिया है, कि राधा स्वामी या परम पुरुष या परमात्मा वही पूर्ण सत्ता है, जिसके ब्रह्म, अलख, अगम आदि नाम हैं। राधा स्वामी का नाम तो वह स्वयं राधा स्वामी गद्दी के महन्त होने से छोड़ नहीं सके, न ऐसा साहस दयानन्द जैसे पूर्ण और सच्चे वैरागी तथा विद्वान योगी पुरुष के बिना किसी से होना सम्भव है, तथापि राधास्वामी को ब्रह्म से परे कोई सत्ता हो इसका खण्डन विचारशील पुरुषों के लिये भली भांति कर दिया है। हां, राधा स्वामी नाम का महत्व जो आपने बताया है, उसका निराकरण अवश्य बाकी है।

१५—श्री शिवदयाल सिंह जी की धर्म पत्नी का नाम राधा है और उनके पति होने से आप राधा स्वामी हैं, और इसी से आपने राधा स्वामी नाम से मत चलाया है, परन्तु यथार्थ प्रकाश के लेखक महोदय लिखते हैं कि आपकी धर्म पत्नी का नाम राधा इस मत के जारी होने के पीछे रक्खा गया। हम कहते हैं 'उज़रे गुनाह बदतर अज़ गुनाह' (पाप कर के मुकरना और भी बड़ा

पाप है) इससे सिद्ध होता है, कि पहिले तो आपने किसी अच्छे भाव से नाम रक्खा, पर पीछे अपने साथ अपनी स्त्री को भी पूजा तथा आर्ती में सम्मिलित कराने का दोष युक्त आडम्बर रचा। पर जब मत जारी ही राधा स्वामी नाम से हुआ और उन्होंने अपना नाम भी राधा स्वामी रखा, और इस नाम की सार्थकता के लिये आवश्यक ही यह है, कि पहिले आपकी धर्म पत्नी का नाम राधा हो, तो आप कोई भी सम्भव व्याख्या पेश करें आपका उत्तर स्वीकार नहीं हो सकता।

१६—साहिब जी महाराज फ़रमाते हैं, कि "ब्रह्मवित ब्रह्मैव भवति" इस उपनिषद् वाक्य के अनुसार ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही होता है। इसीलिये राधा स्वामी को जानने वाला राधा स्वामी ही होता है। परन्तु ऐसा ही है, तो फिर उन्हें राधा स्वामी का अवतार क्यों कहते हो, असल राधा स्वामी ही मान लो, और उत्तर दो कि राधा स्वामी तो अविनाशी है, यह महानुभाव क्यों मृत्यु का ग्रास बने ? और जिन लोगों ने विद्युत का ज्ञान प्राप्त किया, और कला कौशल बनाये, वे विद्युत ही क्यों न हो गये ? और साहिब जी महाराज को जानने वाले साहिब जी और दयाल बाग़ को जानने वाले दयाल बाग़ और बूटों को जाननेवाले बूट क्यों न हो गये ? अतः उपनिषद् का आशय केवल यह है, कि ब्रह्म के शुभ गुण ब्रह्म ज्ञानी में आते हैं।

१७—आप फ़रमाते हैं, सार वचन के वचन नं० २ में स्वामी जी ने लिखा है—

राधा धुन का नाम सुनाऊं। स्वामी शब्द भेद बतलाऊं॥
राधा प्रीत लगावे मन हारी। स्वामी प्रीतम नाम कहारी॥
राधा आद सुरत का नाम। स्वामी आद शब्द निजधाम॥

आर्यः—वाह ! धन्य हैं आप और धन्य हैं आपके स्वामी जी !

परन्तु महाराज विचारिये तो, कि आप तो केवल प्रतिनिधि हैं, असल मुद्दई तो स्वामी जी महाराज हैं। अतः अपनी प्रतिज्ञा के लिए, मुद्दई का ही प्रमाण क्या वज़न रखता है। वह धुन का नाम सुनावें शब्द का भेद समझावें उनकी इच्छा, हमें तो उनके कथन की सत्यता का प्रमाण चाहिये। राधा स्त्रीवाचक शब्द है, स्त्री पति से प्रेम करती ही है, और स्वामी को प्रीतम कहा ही जाता है. इसमें अनोखी बात ही क्या हुई और इसमें राधा स्वामी मत के उस व्यक्ति से जारी होने का खण्डन कैसे हुआ, जो राधा नाम स्त्री का पति था। इसमें तो उलटा पति पत्नी के संयुक्त नाम का प्रमाण मिलता है। यह कहना कि राधा आदि सुर्त का नाम है, और स्वामी आदि शब्द या निज धाम का, कुछ वज़न नहीं रखता क्योंकि यह शब्द भी उसी व्यक्ति के हैं, जो स्वयं विवादास्पद है। और साथ ही आदि सुर्त और आदि शब्द का जो वर्णन वह करते हैं उसका कहीं खोज नहीं मिलता।

१८—आप फरमाते हैं. "सारवचन के आरम्भ में ही इसकी कितनी महिमा की गई है, तनिक विचार तो करो।

राधा स्वामी नाम जो गावे सोई तरे।
कल कलेश सब नाश सुख पावे सब दुख हरे ॥ १ ॥
ऐसा नाम अपार कोई भेद न जानई।
जो जाने सो पार बहुर न जग में जन्मई ॥ २ ॥
राधा स्वामी गाय कर जनम सुफल करले।
यही नाम निज नाम है मन अपने धरले ॥ ३ ॥
वैठक स्वामी अद्भुती राधा निरख निहार।
और न कोई लख सके सोभा अगम अपार ॥ ४ ॥
गुप्तरूप जहां धारिया राधा स्वामी नाम।
बिना मेहरि नहीं पावहूँ जहां कियो बिसराम ॥ ५ ॥

आर्यः—यह वचन भी उन्हीं साहिब की रचना है और हमें तो इनमें किसी कल्पित सत्ता की महिमा के स्थान में स्वयं इनकी रचना करने वाले का दोष दृष्टिगत होता है, कि एक असम्भव सत्ता और नाम की कल्पना से स्वयं ही मत चलाते हैं, स्वय ही उसके अवतार बनते हैं और स्वयं ही शाब्दिक सब्ज बाग दिखाकर सरल हृदय मनुष्यों को फुसलाते हैं। यदि राधा स्वामी नाम गाने से पार उतारा होता है, तो साधन और सुर्त शब्द योग सब व्यर्थ हुए। इसी नाम से क्लेश और दुख दूर होते हैं उसका कोई भेद नहीं जानता, जो जानता है, वह मुक्ति पा जाता है, इत्यादि प्रकार के शब्द कौनसा मनुष्य कृत मत अपने लिये प्रयुक्त नहीं करता ? फारसी कवि कहता है—"कस न गोयद कि दोगे मन तुर्शस्त" कोई नहीं कहता कि मेरी छाछ खट्टी है।"

१९—चूंकि कुल मालिक की परोक्ष सत्ता का नाम लेने के बिना मत का चलना सर्वथा असम्भव था इसलिये इस सत्ता का सारवचन में वर्णित होना, इस बात का किसी प्रकार खण्डन नहीं कर सकता, कि इस मत के प्रवर्तक ने अपनी धर्मपत्नि के नाम की अपेक्षा से मत चलाया। यह ख्याल भी मिथ्या है कि राधा स्वामी मत जारी होने के पीछे आपकी पत्नि का नाम राधा हुआ। कारण यह, कि राधा स्वामी के जीवन चरित्र पृष्ठ ११ पर विवाह के समय आपकी धर्म पत्नि का नाम राधा लिखा है। "पश्चात् जब महाराज की शादी हो गई और राधा जो महाराज आगरे में आई तो उनको स्वामी जी महाराज ऊँचे दर्जे के परमार्थ की समझौती दिया करते थे।"

इसके अतिरिक्त सार वचन में अनेक स्थलों पर पति पत्नि दोनों की पूजा आदि का वर्णन है, जैसे वचन ६ शब्द १ में है।

हे राधा तुम गति अति भारी, हे स्वामी तुम धाम अपारी

राधा स्वामी दोऊ मोहि गोद बिठारी ॥ १ ॥
राधा चरण गहे मैं आरी । स्वामी शरण हुई गति न्यारी ।
राधा स्वामी की हु मैं प्यारी ॥ २ ॥
राधा अंतर दया बिचारी स्वामी प्रगट किया उबारी ।
राधा स्वामी मिलकर मोहि संवारी ॥ ३ ॥
राधा पल पल नाम रटारी । स्वामी तिल तिल रूप निहारी ।
राधा स्वामी मुझको किया अपना री ॥ ४ ॥
राधा गुण क्या कहूँ पुकारी, स्वामी महिमा अकह अपारी ।
राधा स्वामी अब मोहि लीन सुधारी ॥ ५ ॥
राधा चरण सिंहासन धारी । स्वामी चरण सम्हार पखारी ।
राधा स्वामी चरण अब मिला अधारी ॥ ६ ॥
राधा गल अब हार चढ़ारी, स्वामी सीतल तिलक लगारी ।
राधा स्वामी पूजन आज करारी ॥ ११ ॥
राधा आगे भोग धरारी, स्वामी सन्मुख थाल भरा री ।
राधा स्वामी दोनों मान लिया री ॥ १२ ॥

हम मान लेते हैं, कि सत्संगी भाई राधा शब्द कहते हुए आद सुर्त, स्वामी शब्द कहते हुये आद शब्द, राधा स्वामी कहते हुये कुल मालिक राधा स्वामी दयाल का ख़्याल रखते हों, परन्तु यह बात न असत्य हो सकती है न इससे कोई इन्कार कर सकता है, कि राधा स्वामी मत के प्रवर्तक के मन में अपनी धर्म पत्नी को अपने इस सौभाग्य में हिस्सेदार बनाने का भाव मौजूद था। उन्होंने क्रियात्मक रूप में अपने साथ उनकी पूजा करवाई और स्वयं ही वचन बना कर उन्होंने अपने अनुयाईयों के मन में अपनी धर्म पत्नी की भी पूजा का भाव पैदा किया।

२०—भाग १ पृष्ठ ३३ पर साहिब जी महाराज लिखते हैं, "मुहक़्क़ीन की राय है, कि लफज राधा का अर्थ आराधना अर्थात्

पूजा का प्रेम करने वाली है। इस अर्थ में प्रत्येक गोपी और प्रत्येक कृष्ण भक्त इस नाम का अधिकारी हो सकता है"।

आर्य:—निस्सन्देह कई विचारशील इसी परिणाम पर पहुंचे हैं, यहां तक कि वैष्णव सम्प्रदाय वाले जीवात्मा को राधा और कृष्ण को परमात्मा की उपाधी देकर उसकी पूजा करने का विधान करते हैं।

इसकी फिलासफी यह है, कि जीव आत्मा परमात्मा के विषय में अनेक प्रकार के सम्बन्धों की कल्पना कर सकता है। राजा पिता, माता, गुरु, मित्र, सखा, सब कुछ उसे कहा जा सकता है। परन्तु सब से बढ़िया भक्ति का आदर्श पति पत्नि के सम्बन्ध में है। क्योंकि इस सम्बन्ध में दोनों का भेद भाव बिलकुल नहीं रहता दोनों शरीर की दृष्टि से दो हैं परन्तु आत्मा की दृष्टि से एक। अत: परमात्मा को पति भाव से याद करके अपने आपके लिये पत्नि भाव रखते हुये जो भक्ति की जाती है, उसमें पत्नि रूप जीव आत्मा से राधा नाम से आराधना की जाती है। और प्रेम रूप आकर्षण के कारण परमेश्वर को कृष्ण कहा जाता है।

यह विचार कितना भी सद्भाव पूर्ण हो इसका परिणाम हमारे सामने कृष्ण और गोपियों के प्रसिद्ध सम्बन्ध या रास लीला जैसी असभ्यता पूर्ण एवं आचार हीन व्यवहारों के रूप में है। सम्भव है कि इन्द्रियों पर विजय पाने वाले पूर्ण योगी और जति इस सम्बन्ध को लक्ष रखते हुये सफलतापूर्वक ईश्वर ध्यान कर सकें। और काम वासना का शिकार न हों, परन्तु आदर्श ब्रह्मचर्य की महिमा को समझने वाले ऋषि जिस सावधानता पूर्ण पथ प्रदर्शन को लक्ष रखते और मन वा बचन द्वारा स्त्री पुरुष के सम्बन्ध विशेष के चर्चा करने से मना करते हैं, उसको दृष्टि से इस भाव का परिणाम यही हो सकता था, कि यह दोष प्रकट हों जो देश

और जाति को कलंकित और नष्ट करने वाले हैं । और हम अध्याय ५ में सारत न आदि के वह प्रमाण पेश करेंगे जो राधा स्वामी मत के सम्बन्ध में भविष्य में ऐसे ही भयङ्कर परिणाम प्रकट होने का निश्चय कराते हैं।

२१—भाग ३ पृष्ठ २६६ पर आप ऋगवेदके मन्त्रमें राधा स्वामी नाम का पर्याय नाम बताते हैं।

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानांपते. पिबात्वस्य गिर्वणः ऋ० ३।५१।१०॥

हे राधाओं के पति अर्थात बिजलियों के स्वामी, हे स्तुति के योग्य यह सोमरस आपके लिये बड़ा जोर लगा कर निकाला गया है, आप इसे पान कीजिये।

आप अथर्व वेद. काण्ड २०, सूक्त ४१ मन्त्र २ और ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ३० मन्त्र ५ में भी "राधानांपते" का होना मानते हैं। और फ़रमाते हैं, राधा कान्त, राधा रमन, राधा वल्लभ, राधा धी आदि नामों के अर्थ भी राधा स्वामी ही लेते हैं।

आर्य – यही क्या सारे मंत्रो को फिर पड़ताल लीजिये, राधा स्वामी नाम निश्चय वेद में आपको न मिलेगा। आपका पक्ष है, यह कुल मालिक का निज नाम है हमारा दावा है. यह अधिक से अधिक गौणिक नाम हो सकता है। चूंकि आपने जो प्रमाण पेश किया है. उसमें भी यह नाम हू बहू नहीं और जो नाम इसका पर्याय बताया है वह स्पष्टतः गौणिक है। और इससे कुल मालिक का भाव नहीं निकलता इस लिये आपका पक्ष किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। 'गणानांत्वा गणपतिं, में गणों का पति, इसी प्रकार विश्व पति, जगत पति आदि सब नाम गौणिक हैं। रहे प्रचलित राधा कान्त आदि पर्याय शब्द, यह भी इसी बात का प्रमाण हैं, कि राधा स्वामी नाम नाद शब्द या बीज नाम नहीं हैं

किन्तु ऐसे प्रचलित शब्दों को देख कर यह नाम रक्खा गया है।

२२—उदयपुर के छपे शब्दार्थ चिन्तामणि से आप राधा के लिये यह श्लोक पेश करते हैं, जो देवी भागवत पुराण का कहा जाता है—

राध्नोति सकलान् कामान् ततो राधेति कीर्तिता।

अर्थात् चूंकि इससे सब कामनायें सिद्ध होती हैं, इस लिये इसका नाम राधा है। परन्तु यदि वास्तव में राधा के यही अर्थ हैं, और आपका इस वचन पर विश्वास है, कि—

उसी आद धारा का राधा है नाम।
उसी से सरैं सब के कारज तमाम॥

तो फिर केवल राधा मत ही क्यों काफ़ी नहीं हुआ, और इससे यह कैसे सिद्ध हुआ, कि राधा स्वामी मत नाम रखते हुए स्वामी शिवदयाल सिंह जी साहिब के मस्तिष्क में अपनी धर्मपत्नि का नाम नहीं था। निश्चय यदि उपरोक्त अर्थ वाला शब्द अपने मत के नाम करण संस्कार के समय विचार में होता तो केवल राधा मत का नाम ही उचित समझा जाता।

२३—ब्रह्मवैवर्त पुराण से आप निम्न लिखित प्रमाण देते हैं:—
(१) 'खण्ड ४ पूर्वार्ध अध्याय ५,'-कौथोमी शाखा वाले सामवेद में देखा गया है, कि 'रा' शब्द के उच्चारण से ही कृष्ण शुद्ध हो जाता है। और 'धा' शब्द के उच्चारण से बेतहाशा पीछे दौड़ता है। (३८)
(२) 'खण्ड २ अध्याय ४' 'रा' शब्द उच्चारण से भगत जन दुर्लभ भक्ति को प्राप्त होता है। और "धा" शब्द के उच्चारण से कठिनाई के समय हरि (भगवान) के पद की ओर दौड़ता है।
(३) 'खण्ड १ अध्याय ५५' कृष्ण जी ने राधा से फ़रमाया कि गोलोक में राधा ज्योति रूप निराकार है, और भक्तों पर दया करने के लिये शरीर धारण किये है। तुम सारे ग्वालों की ईश्वरी

हो, तुम्हारे बिना मैं निर्जीव तथा प्राण शून्य शरीर और सारे कामों में अशक्त हूँ। (८)

(४) 'खण्ड १ अध्याय ५' राधा कृष्ण परमात्मा के प्राणों की राधा अधिष्ठात्री देवी है। वह उनके प्राणों से उत्पन्न हुई, श. २७ (५) 'खण्ड २ अध्याय ४९'-राधा ने गो लोक में गर्भ धारण किया और एक अण्डा पैदा किया, जिससे महा विराट पैदा हुआ, और उससे कुल सृष्टि पैदा हुई। २—(६) 'खण्ड २ अध्याय ४२' ग्वालों की ईश्वरी मूल-प्रकृति स्वयंभू ईश्वरी कृष्ण की शक्ति, कृष्ण से पूज्य, राधा की श्रद्धा के साथ पूजा करनी चाहिये। २०। (७) 'खण्ड ४ पूर्वार्ध अध्याय १९' रा का अर्थ दान और धा का अर्थ स्वयं निर्माण धात्री सकल संसार को धारण करने वाली है। २२३

इन प्रमाणों से आप बताते हैं कि हिन्दुओं की पुस्तकों में सृष्टी को पैदा वा धारण करने वाली शक्ति का ही नाम राधा है। राधा स्वामी मत में राधा कुलमालिक के चरणों से प्रगट हुई आद धार है। और हिन्दू पुस्तकों में कृष्णजी के चरणों से पैदा हुई शक्ति का नाम राधा है। अतः दोनों में निराकार आत्म-शक्ति और सकल जगत् को पैदा करने वाली राधा है।

आर्य—हमने आपके पेश किये हुए प्रमाण असल शब्दों तथा अर्थों पर विचार किये बिना ज्यों के त्यों दे दिये हैं। और इन सबको आपके सामने रखकर हम पूछते हैं कि क्या आप का और हमारा मतभेद राधा शब्द के अर्थ की बाबत है? या क्या आपको कभी आर्य्यों ने यह कहा है, कि राधा शब्द संस्कृत का नहीं, अथवा पुराणादि में इसका प्रयोग नहीं हुआ। श्रीमन्! हमारा तो इसके विपरीत यह दावा है, कि सारे शब्द और विचार हमारे हैं, और उनके अर्थ वा सम्बन्ध तथा प्रयोग में परिवर्तन

वा मिलावट आदि करके वैदिकधर्मियों तथा अन्य श्रद्धालु एवं सरल हृदय मनुष्यों को इस मार्ग से हटाया जा रहा है। एक मनुष्य जब अनुचित, धर्म विरुद्ध कमाई करने पर तुल जाता है, तो वह अनुचित विधियों से दूसरों के धन माल को प्राप्त करता है और उनके वाह्य रूप को बदलता, नाना प्रकार से भिन्न भिन्न स्थानों में उन्हें छिपाता और उनकी असलीयत के विदित हो जाने की प्रत्येक सम्भावना को मिटाता है। यही कुछ राधास्वामी मत में वैदिक शिक्षा के साथ किया जा रहा है। अतः वेद पुराण अथवा स्मृति में किस शब्द के क्या अर्थ हैं, इन उलझनों में न पड़कर स्पष्ट कहिये, कि क्या कोई भी ऐसा प्रमाण आप पेश कर सके वा कर सकते हैं, जिस से राधास्वामी नाम कुल मालिक का निज नाम माना गया हो ? आपका उत्तर साफ़ नकार में है, क्योंकि आपने धारा २४१ में लिख दिया है, "रहा लफ़्ज़ स्वामी, बेशक यह लफ़्ज़ आपके शास्त्रों में राधा के साथ मुरक्कब होकर मुस्तअमल नहीं हुआ है।"

आप यह भी मानते हैं, कि कृष्ण और राधा के गोपाल सहस्र नाम और राधा सहस्र नाम पुस्तकों में एक एक सहस्र नाम हैं, परन्तु राधास्वामी नाम इन में भी नहीं। यह व्यवस्था देकर आप फ़रमाते हैं:—कुछ भी हो आक्षेपकों का यह ख्याल सर्वथा मिथ्या एवं निराधार है, कि दो शब्द राधा व स्वामी, राधास्वामी मत की उपज हैं। खूब ! साहिब जी महाराज ने अच्छा मैदान मारा, बयान और सिद्ध तो आप यह करने लगे थे, कि राधा-स्वामी नाम की उच्च स्थिति और महिमा क्या है, परन्तु पूरा बल लगाने के पश्चात् अन्त में अपनी सारी नाकामी के छिपाने के लिए इस विचार पर संतुष्ट हो जाते हैं, कि राधा और स्वामी के दोनों शब्द हमने नहीं बनाये। परन्तु यह किसी आर्य

ने कभी कहा ही नहीं कि यह शब्द राधास्वामी आचार्य ने बनाये हैं। हमारा तो निर्विवाद पक्ष ही यह है, कि राधास्वामी मत नया है। और राधाकृष्ण आदि नामों का प्रचार देखकर राधास्वामी नाम रक्खा गया है, अर्थात् टट्टी की आड़ में शिकार खेला गया है।

(२५) यह माना जा चुका है, कि कुल मालिक का निज नाम तो कहां, राधास्वामी शब्द गौणिक नाम के रूप में भी वैदिक धर्मियों से ईश्वर के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ। इसपर भी "पञ्चों का कहना सिर माथे पर, पर पतनाला वहीं," इस लोकोक्ति के अनुसार आप फरमाते हैं "यह अवश्य है, कि आपके मन्तव्य के अनुसार इन शब्दों के संयुक्त राधास्वामी नाम को वह पद प्राप्त नहीं है, जो उसे राधास्वामी मत देता है, जिसका कारण स्पष्ट है, अर्थात् यह कि आप ध्वन्यात्मक वा वर्णात्मक नामों में तमीज नहीं करते और यह कि आपको यह विदित नहीं है कि राधा स्वामी एक ध्वन्यात्मक शब्द है।"

अच्छा साहिब! सिद्ध तो आप स्वयं कुछ नहीं कर सकते, और बेतमीजी हमारी मानते हैं, तो इसका अर्थ इसके बिना क्या है, कि सामर्थ को नहीं दोष गुसाईं। परन्तु प्रश्न यह है, कि जब आप अनाहत शब्दों को जो बिना टक्कर के आपसे आप होते हैं, ध्वन्यात्मक नाम या बीज मन्त्र कहते हैं, और राधा स्वामी नाम के सम्बन्ध में कोई भी साक्षी वा प्रमाण न होने को आप स्वयं स्वीकार करते हैं, तो केवल यह कह देना, कि आदधार से रा और धा का, आद हिलोर से स्वा और मी का प्रकाश हुआ, किस प्रकार ध्वन्यात्मक नाम माना जा सकता है। प्रथम तो ब्रह्म से कई पद ऊपर के राधा स्वामी नाम की सत्ता का अभाव-फिर हिलोर तथा आदधार के अस्तित्व का अभाव। परन्तु दुर्जन-तोष

न्याय से इनकी सत्ता को मानलें, और इनसे शब्द प्रकट होने को भी स्वीकार करलें, तो भी आप यह किस प्रकार दावा कर सकते हैं, कि धार से 'रा' और 'धा'की धुन निकली। हम कहते हैं, आदधार के दोनों रुखों से बा और बा की धुन निकली और आद हिलोर से ना और नक की और इस प्रकार बाबा और नानक दो शब्द मिलकर बाबा नानक का ध्वन्यात्मक शब्द प्रकट हुआ। कोई अन्य पुरुष कह सकता है, दा और दू और पल और टू अर्थात् दादू और पल्टू का प्रकाश हुआ। तीसरा कहसकता है, अग और नि और वा और यु अर्थात् अग्नि और वायु का प्रकाश हुआ। चौथा कह सकता है, ब्राह और मण तथा क्ष और त्रि अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रि का प्रकाश हुआ। अब इसमें कौनसी युक्ति वा प्रमाण या ऐतिहासिक साक्षी आप दे सकते हैं, जिससे और सबका खण्डन हो और केवल राधास्वामी नाम ही धुन्यात्मक नाम रह जाये। और जब आप राधास्वामी नामकी एक धुन मानते ही नहीं किन्तु एक जोड़ा 'रा' और 'धा' का है। और एक जोड़ा 'स्वा' और 'मी' का है, तो अकेला धुन्यात्मक नाम तो आपने कोई माना ही नहीं। और फिर इस जोड़े से गुज़र कर जब आप दो जोड़ों को संयुक्त करते, और राधास्वामी नाम बताते हैं, तो यह धुन्यात्मक कैसे हुआ ? इन दोनों को मिलाने वाला तो प्रत्यक्ष रूपसे मनुष्य ही है।

(२६) इस प्रकार के अनेक प्रमाणों और युक्तियों से स्पष्ट सिद्ध होता है, कि राधा स्वामी नाम के सम्बन्ध में जितने भी बयान इस मत के प्रतिनिधि पेश करते हैं, कि यह शब्द चोटी के स्थान के धनी का है, यह आद शब्द है इत्यादि, यह सब निर्मूल, सर्वथा असत्य और मन घड़न्त हैं। और यह पूर्णतः सत्य है कि श्री स्वामी शिवदयालसिंह जी एक मनुष्य थे, मनुष्यों

की भांति अपने माता और पिता के समागम के पश्चात् माता के गर्भ से और सब दूसरों मनुष्यों की तरह जन्मे थे। वह पहिले लोगों की प्रचलित भाषा बोलते थे, उर्दू, फ़ारसी की औरों की भांति उन्होंने शिक्षा पाई थी। औरों की भांति उनका विवाह हुआ था, औरों की भांति वह सोते, जागते, उठते, बैठते, खाते, पीते अथवा सब सांसारिक भोग भोगते थे। और ६० वर्ष की आयु में औरों की भांति आपका देहान्त हुआ। राधास्वामी मत के अनुसार ब्रह्म सृष्टिकर्ता है। राधास्वामी सबसे ऊँचे शिखर स्थान पर हैं। उनका रचना अथवा माया विशेषतः मलीन माया देश से सम्बन्ध नहीं हो सकता। अतः यह असम्भव है, कि वह स्वयं इस संसार में जन्म लें, अथवा अवतार धारण करें। एक ओर उनको सर्वथा माया आदि से मुक्त मानना और दूसरी ओर उनके अवतार को मलीन माया देश में फंसाना और उनसे विवाहादि के सब भोग भुगाना सिद्ध करता है, कि इन बुद्धिमानों को स्वांग उतारना भी नहीं आया। केवल अल्प विद्या और बुद्धि हीन मनुष्यों को कूट नीति अथवा नित्य मुक्त आदि के प्रलोभनों से तथा साधारण और निस्सार युक्तियों से काबू किया जा रहा है अन्यथा वास्तव में राधास्वामी एक मनुष्य और केवल मनुष्य और साधारण योग्यता के मनुष्य थे। वह स्वार्थ विशेष से अपने सम्बन्ध में जो चाहें बतावें और चेले जितना चाहें उन्हें उड़ावें। सोचने और समझने वालों पर यह वास्तविक स्थिति प्रकट हुए बिना नहीं रह सकती, कि आपने राधा नाम अपनी धर्मपत्नी के सम्बन्ध से ही राधास्वामी नाम रक्खा है।

(२७) साहिब जी महाराज इसका खण्डन एक युक्ति से करते हैं, कि "राधास्वामी संगत में राधा और इसके संयुक्त नाम

सैंकड़ों स्त्रियों के हैं। यदि सीताराम और राधाकृष्ण नामों के सदृश राधास्वामी नाम की उत्पत्ति पुरुष तथा स्त्री विशेष का नाम जोड़ने से होती तो राधाकृष्ण, सीताराम नामों की तरह राधा और स्वामी दोनो नामों का रिवाज राधास्वामी संगत में दिखाई देता। परन्तु एक भी मनुष्य का नाम स्वामी नहीं। (पृष्ठ ३१ भाग १)

आर्य—हम नहीं समझते, इस युक्ति में क्या सार हो सकता है। आधे नाम अर्थात् राधा के संयुक्त नाम तो आप मानते ही हैं और दूसरे आधे से संयुक्त नाम नहीं हैं, तो यह गुरूडम के प्रभाव का परिणाम है, अथवा गुरू के विषय में उसी प्रतिष्ठा के भाव का प्रमाण है, जिससे प्रभावित होकर हिन्दू स्त्रियां अपने पतियों का नाम नहीं लेतीं। और चूंकि सारवचनादि में सत्सङ्गियों को पत्नी का ही पद मिला और उन्हें राधास्वामी को पति मानने की ही बुद्धि प्रदान की गई है, अतः स्वामी नाम का न रखना आपके पक्ष के विरुद्ध जाता है, हक में नहीं!

(२८) यथार्थ प्रकाश में राधास्वामी शब्द के सम्बन्ध में दावा तो किया गया है, परन्तु अर्थ विशेष का निश्चय नहीं किया गया है। भिन्न भिन्न मनुष्यों से अथवा भिन्न भिन्न पुस्तकों में इससे क्या आशय लिया गया है वह बता दिया है। और राधास्वामी नाम के किसी मत वा इतिहास में मौजूद न होने को मानते हुए यह कहीं संकेत तक नहीं किया, कि कभी पहले राधास्वामी नाम या मत मौजूद था। और किसी द्वेश वा पक्षपात के कारण इस नाम का बहिष्कार किया गया था और यह भी निर्विवाद है, कि राधा स्त्री वाचक शब्द है। और इस मत के प्रवर्तक की स्त्री का नाम भी राधा है। और दूसरा शब्द स्वामी पति के लिए ही प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त किसी

स्त्री के नाम की अपेक्षा से मत का नाम रक्खा जाने का उदाहरण भी नहीं मिलता अतः इस असाधारण नाम और इस नाम में पति और पत्नि दोनों का समावेश होना अकारण, अकस्मात् अथवा दैवयोग से नहीं हो सकता। अपितु इससे राधास्वामी मत के प्रवर्तक का सांसारिक सम्बन्धों में लिप्त होना और आत्मता आदि के स्थान में सांसारिक मान प्रतिष्ठा का अभिलाषी होना सिद्ध होता है।

सर्ग ३—दो बेड़ियों के मल्लाह अथवा कल्पित अनहद शब्द

२९—प्रथम अध्याय में हमने बताया था, कि साहिब जी महाराज का अर्थ सहित शब्द पर पूर्ण विश्वास है और राधा स्वामियों का प्रचलित सुर्त शब्द अभ्यास भी प्राचीन काल की शैली का स्मरण कराता है, क्योंकि श्रुति के शब्द पर योगाभ्यास द्वारा जो विचार होता था, उसी को भूलकर अब सुर्त शब्द योग के नाम से आन्तरिक शब्द सुना जाता है। कानको मून्दकर अन्दर की आवाज़ सुनना योग साधन में लक्ष नहीं है.न इसका अंग है किन्तु यह साधन निस्सन्देह हास्यजनक है। तथापि साहिब जी महाराज योगदर्शन के प्रमाण देते और मुक्त कण्ठ से नहीं खुल्लमखुल्ला योगाभ्यास की महिमा को मानते हुए भी उस अभ्यास की वकालत करते हैं जो सच्चे योगाभ्यास के विरुद्ध राधा स्वामी मत में प्रचलित है। परन्तु अपने अभ्यास को तो गुप्त रखते हैं और वैदिक योगाभ्यास की बातें खुले तौर पर करते हैं और विद्या, युक्ति तथा प्रमाण के बल से अन्हद शब्द की फ़िलासफ़ी को सिद्ध नहीं करते, हां नीति

विशेष से भ्रान्ति फैलाकर यत्न करते हैं कि इसकी पोल न खुलने पावे। वह भ्रान्ति क्या है? यह कि युक्ति और प्रमाण वह दिये जाते हैं जिससे असली योगाभ्यास वा शब्दार्थ विचार की महिमा प्रगट हो, परन्तु इसका लाभ आप उस शब्द फ़िलासफ़ी को पहुँचाते हैं, जो स्पष्ट रूप से वर्णन होने पर सन्दिग्ध हो नहीं सर्वथा अयुक्त एवं असत्य सिद्ध होती है। आपकी इस कूटनीति का प्रमाण अगले नम्बरों में पेश किया जाता है और यदि साहिब जी महाराज दो बेड़ियों के मल्लाह की तक़रीर को अच्छी तरह समझ सकें, तो वह अवश्य दुरङ्गी छोड़कर एकरङ्ग होंगे। सरदार बहादुर काहनसिंह रचित गुरुमत सुधाकर के पृष्ठ १६० से निम्न लिखित फुटनोट शब्द विषय में उद्धृत किया गया है।

"शब्द सुर्त तों भाव शब्द का विचार है। शब्द आकार वृत्ति है। कई प्रपञ्चो कान बन्द करके कल्पित अनहद शब्द सुननलई सुर्त जोड़नी दस के, बुद्धू सिक्खानूं अपना सेवक 'बनांवदे' और धर्मो पतित करदे हन।"

इस उद्धरण से विदित होता है कि सरदार बहादुर काहनसिंह का पक्ष यह है कि शब्द के अर्थादि का विचार होना चाहिये। कल्पित अनहद शब्द का ढोङ्ग व्यर्थ है। शब्द को कान बन्द करके सुनने में जो आत्मा को लगाने का उपदेश दिया जाता है, यह बुद्धू सिक्खों को अपना सेवक बनाना और धर्म से पतित करना है।

साहिब जी महाराज के अनेक बयानों से अर्थ सहित शब्द विचार का सिद्धान्त निर्विवाद सच्चाई है। इस पर भी आप सरदार बहादुर के शब्दों का खण्डन करते, और राधा स्वामियों के प्रसिद्ध अनहद शब्द का पक्ष सिद्ध करते हैं, जिससे पाया जाता है कि शब्द विचार और अनहद शब्द का सुनना परस्पर विरुद्ध क्रिया है और साहिब जी महाराज अनेक स्थानों पर शब्द विचार

को मानते हुए यहां उसी नियम का विरोध करते हैं। परन्तु कान मूंदकर अनहद शब्द सुनने का आपने कोई युक्त स्पष्टीकरण नहीं किया, इससे विदित होता है, दाल में काला अवश्य है।

३१—शब्द हर कहीं मौजूद है, जहां ब्रह्म और आकाश है। परन्तु ब्रह्म का शब्द अर्थ और सम्बन्ध रखता है और आकाशवर्तीय शब्द अर्थ शून्य है और यही कारण है, कि इस जड़ शब्द का विचार होना व्यर्थ है। राधा स्वामी लोग जो शब्द कान मूँदकर सुनते हैं वह आत्मिक शब्द नहीं उनको केवल भ्रान्ति लग रही है। तार वा रेल के खम्बे के साथ कान लगायें तो निरन्तर शब्द सुनाई देता है। अधिक ध्यान देने पर प्रबल शोर सुनाई देता है। और इससे भी अधिक ध्यान देने पर बड़ी तेज़ चलती हुई गाड़ी अथवा इञ्जन वा बादल की गर्जे के से शब्द का अनुभव होता है। यह केवल विद्युत की धार (Current) के आन्तरिक आकाश में से गुज़रने का परिणाम है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य शरीर के अन्दर जो अद्भुत कारखाना चल रहा है, सारे शरीर में खून का दौरा, भोजन को पचानेवाली भट्टी पर चढ़ाना, अथवा जठराग्नि से पचाना, हड्डी, मांस, मज्जा आदि का बनाना, सारे अङ्ग प्रतिअङ्ग में काम से जो शक्ति का ह्रास हुआ है उसको अनुकूल सामग्री से पूरा और पुनः ताज़ा करना इत्यादि काम शरीर के अन्दर में विद्यमान सूत्र आत्मा अर्थात् विद्युत की सहायता से हर समय जारी हैं और यह कहना अत्युक्ति न होगा, कि जितने भी कारखाने आजतक सभ्य मनुष्य जाति ने चलाये हैं, वह प्रकृति ने एक मनुष्य शरीर के अन्दर चला रखे हैं, अतः कान को बन्द कर दिया जाय, तो आन्तरिक पर्दे के साथ आन्तरिक कारखाने के चलने से शब्द (आवाज़ों) का छूना और सुना जाना अवश्यम्भावी है और यह भी अवश्य है

कि जितना अधिक मग्न होकर इन शब्दों को सुना जाये, उतनी ही अधिक ऊँची आवाजें सुनाई देंगी। इनके अतिरिक्त एक ही गति पर कारखाना चले, अथवा रेल दौड़े, तो आवाजों या शोर के अन्दर गौर करने पर नियम बद्धता पाई जाती है। रेल चलते हुए गाड़ी के पहियों तथा बाहिर के दूसरे निचले पुरजों और रेल की पटड़ी के परस्पर के टकराने से जो आवाज़ निकलती हैं वह सब एक नियमानुसार निकलती हैं और यदि उनमें से किसी एक आवाज़ पर विशेष ध्यान दिया जाये, तो तबला वा ढोलक पर जिस प्रकार संयमित चोट देने से सुर, ताल के अनुसार तान टूटती है, उसी प्रकार की Harmony इन आवाजों में पाई जाती है। अब बाहिर की रेल को छोड़कर अन्दर की गाड़ी इञ्जन वा कारखाना के चलने से पैदा होनेवाली आवाज़ों को सुनें, और बिना हिले जुले एकरस बैठे रहें तो अन्दर के शोर में गड़बड़ न होने से सारी आवाज़ों में नियम बद्धता होती है और सुर, ताल आदि के नियमित होने से, उन्हें तबला, तम्बूरा, मृदङ्ग आदि से उपमा दी जासकती है, बल्कि कुदरत के न चूकने वाले हाथ से बजते हुए वह बाजे अनोखी खूबियां लिये हुए प्रतीत होते है। त्रुटि है तो केवल यह कि इन शब्दों के कुछ अर्थ नहीं, अत: इनसे कुछ ज्ञान नहीं मिलता। आत्मा के अन्दर ज्ञान का संकेत करने वाले शब्दों का सुनना तो उन्हीं महानुभाव सच्चे योगियों के भाग्यमें हो सकता है जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म तक सब पदार्थों का क्रमशः अनुभव करते हुए अन्त में अति सूक्ष्म ब्रह्म के दर्शन में मग्न होते हैं और शरीर के अन्तरवर्तीय आकाश में अन्दर के नानाविध कारखानों की आवाज़ें प्रत्येक मनुष्य सुन सकता है। पर भेद यह है कि योगियों के व्यवहार से तो अन्त में जन्म जन्मान्तर के अज्ञान

का आवरण दूर होता और तत्वज्ञान के साक्षात्कार से ब्रह्म पद अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है और अनहद् शब्द सुनने से मनुष्य का अमूल्य समय नष्ट होता है क्योंकि जैसे सत् चित् आनन्द स्वरूप ब्रह्म का अपने आत्मामें ध्यान करने के स्थान में चरम दृष्टि गोचर जड़मूर्ति की पूजासे कुछप्राप्त नहीं होता, उल्टा मनुष्य जड़ बुद्धि होता है, वैसा ही जड़ आकाश के अर्थ शून्य शब्दका पुजारी होना भी मूर्खता का ही काम है।

३२—ऊपर के कथन से सरदार बहादुर का पक्ष शब्द विचार का अत्यन्त युक्ति युक्त है और साहब जी महाराज स्वयं भी अनेक स्थानों पर अर्थ विचार को शब्द के साथ आवश्यक बता चुके हैं। परन्तु अनहद शब्द पर प्रगट रूप से गहरी चोट लगने के कारण आप सरदार बहादुर के कथन को रद्द करते हैं और वह भी विचित्र प्रकार से। अनहद् शब्द की महिमा बताई नहीं जाती, राधा स्वामी के प्रचलित अभ्यास में शब्द विचार के भाव की विद्यमानता सिद्ध नहीं की जाती, अपितु कहा जाता है कि जिस वचन की व्याख्या से इस फुटनोट का सम्बन्ध है, उसका आशय शब्द विचार है ही नहीं, तथा सिख साहित्य के अनेक प्रमाण दे कर यह सिद्ध किया है कि सरदार बहादुर ने जो शब्द का अर्थ चित्तवृत्ति लिया है वह असत्य है। कहां असल विषय कान मूँद कर अनहद शब्द सुनने के सत्य असत्य होने का और कहां चित्तवृत्ति के शब्द से विवादास्पद विषय को उलझन में डालना। सारांश यह है कि हमें स्पष्ट रूप से साहिबजी महाराज का एक पैर तो वैदिक धर्म की नाव पर दिखाई देता है और दूसरा पैर राधा स्वामी मत की किश्ती पर, अर्थात एक ओर तो आप अर्थ विचार शून्य शब्द अथवा नाम स्मरण के विरुद्ध लिखकर वैदिक धर्मियों से प्रशंसा लूटना चाहते हैं और दूसरी ओर अपने वेद

विरुद्ध अभ्यास पर परदा डालने के लिए पेचदार लेख शैली की आड़ लेते हैं।

३३—विवादास्पद फुटनोट का सम्बन्ध जिस असल वचन से बताया जाता है वह यह है:—

गुरु सिक्खी गुरु सिख सुन अन्दर स्याना बाहिर भोला।
शब्द सुर्त सावधान हो बिन गुरु शब्द न सुनियं बोला॥

अर्थात् हे गुरु के सिख सुन ले कि गुरु सिक्खी यह है कि अन्दर से बुद्धि और विचार से असलियत को जाना जाये और बाहिर से दिखावा या अभिमान न हो किन्तु सरलता हो। शब्द के सुनने में पूरी सावधानता से काम लिया जाये। बिना गुरु (आप्त) के वचन के और तरफ़ ख्याल न जावे गुरु से भिन्न का शब्द बहिरे कानों पर पड़े। इसमें स्पष्ट रूप से सरदार बहादुर का पत्त अर्थात शब्द का विचार है। इसी गुरु मत सुधाकर के पृष्ठ १४९ से एक और प्रमाण दिया है:—

वाणी मुख उच्चारिये होयं रोशनाई मिटे अन्धयारा।
ज्ञान गोष्ट चर्चा सुने अनहद शब्द उठे धुनकारा॥

इसके अन्तिम भाग "अनहद शब्द उठे धुनकारा" के सम्बन्ध में साहिब जी महाराज पूछते हैं, क्या यहां भी शब्द का अर्थ चित्तवृत्ति लोगे? हम इस प्रश्न को असंगत समझते हैं। शब्द का अर्थ चित्त वृत्ति हो सकता है या नहीं, और चित्त वृत्ति का अर्थ विचार के साथ सम्बन्ध है वा नहीं, इस विचार को छोड़कर कान मूँद कर शब्द सुनने का प्रबल खण्डन होता है, क्योंकि कहा गया है कि (१) इससे वाणी वह बोली जाये जो सब से मुख्य है (जैसे वेद या गुरु वाणी) या (२) यह अर्थ होंगे कि जिह्वा से वह उपदेश दिया जाये जिसमें यह गुण हों:—प्रथम मनुष्य के अन्दर उससे ज्ञान का प्रकाश हो, और अज्ञान अन्धकार का नाश हो,

(२) ऐसा विद्वत्ता पूर्ण वाद विवाद हो कि मनुष्य के अन्दर अनाहत शब्द की धुनी गूञ्जने लगे, अर्थात् अर्थ का यथावत् अनुभव हो। स्वयं साहिब महाराज अनहद शब्दके लिए असली शब्द अनाहत पेश कर चुके हैं, और वह अर्थ शन्य शब्द हो ही नहीं सकता।

३४—साहिबजी महाराज ने गुरु मत सुधाकर पृष्ठ ३७५ का यह वचन भी पेश किया है।"वचन हुआ कि मन नीवां कर सिक्खी प्राप्त हुन्दी है जो तुसाडे शरीर पासों, सेवा सिक्खांदीं बन आवे सो करनी ते पिछली रात उठकर स्नान करके शब्ददा अभ्यास करना, ते वाहगुरू गुरु नूं स्वामी ते आप नूं सेवक जानना,ते साध संगत विच जाय के गुरु का शब्द सुनना, ते आपस बिच वाणीका मनन करना।" अर्थात् कहा गया है कि मन से अभिमान दूर करने से सिक्खी प्राप्त होती है। अपने शरीर से जो सेवा सिखों की बन सके वह करो, और ब्राह्म मुहुर्त में उठकर और नहाकर शब्द का अभ्यास करो, परमेश्वर को अपना स्वामी और अपने आपको दास समझो और साधु संगत में मिलकर प्रेम के साथ गुरु वाणी का पाठ करो और परस्पर मिलकर वाणी का मनन करो।

"यहां भी शब्द अभ्यास और मिलकर मनन करने से अर्थ का विचार ही अभिप्रेत है।

३५—परन्तु साहिबजी महाराज ऐतराज़ करते हैंकि "अभ्यास का अर्थ पाठ या पढ़ना नहीं। शब्द अभ्यास संत मत की परिभाषा है, जिस के अर्थ वही क्रिया या साधन हैं, जिसके करने वाले सिक्ख बुद्धू ठहराये गए हैं।" यह शब्द उपालम्भ रूप से लिखे गए हैं, और हैं भी अनावश्यक, असंगत एवं असत्य। न अभ्यास के अर्थ विवादास्पद हैं, न सच्चा संत मत और सच्चा धर्म परस्पर विरुद्ध हैं, न शब्द अभ्यास को संत मत की परिभाषा

मानने से इन्कार किया गया है, न शब्द अभ्यास के कारण सिखों को बुद्धू कहा गया है। वरन् बुद्धू होने से सिक्खों का एक असत्य बात पर विश्वास होने का दोष प्रगट किया गया है और चूँकि आपने आन्तरिक घूँ घूँ सुनने को अपने साधन के विरुद्ध नहीं लिखा, न उसको युक्ति से सिद्ध किया है, अतः न यह क्रिया केवल दोष युक्त है, वरन् उस पर विश्वास लाना भी बुद्धू होने का प्रमाण है। यही सरदार जी का सच्चा ख्याल है, और युक्ति प्रमाण से उसका खण्डन करना आपके लिए अति कठिन या मुहाल है।

३६—साहिबजी महाराज ने ग्रन्थ साहिब के कुछ वचन दिए हैं, जिनमें अनहद तर, अनहद रूप, अनाहद वाणी, अनहद धुन, पाञ्च शब्द, सुखमना, अजवा जाप के शब्द हैं। परन्तु न किसी भी शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में मत भेद विवादास्पद है, न साहिब जी महाराज ने किसी भी सम्बद्ध भाव की दृष्टि से किसी शब्द पर बहस की है और न शब्द विचार के विषय पर केवल यह कहने से कोई प्रभाव पड़ता है कि इनमें से किस २ शब्द के अर्थ बदलोगे, अतः इन पर कुछ विचार नहीं हो सकता। यदि सरदार बहादुर के सम्बन्ध में सिद्ध किया जाता कि अमुक शब्द के अर्थ उन्होंने बदले हैं तो इस कटाक्ष के कुछ अर्थ भी होते अथवा इनसे आप अर्थ शून्य शब्द अभ्यास सिद्ध कर दिखाते तो भी इनका कुछ नोटिस लिया जाता, वर्तमान अवस्था में तो केवल अन्तिम परिणाम पर ही विचार किया जाता है। बिन शब्दे अन्तर आन्हेरा न वस्त लहे ना चुके फेरा, सत गुर हथ कुञ्जी होर तें दर खुल्ले नाहीं, गुरू पूरे भाग मिलावनियां।

परन्तु इसमें भी शब्द से ज्ञान युक्त बाणि के बिना कोई अर्थ नहीं निकलते, क्योंकि स्पष्ट कहा है, कि बिना शब्द के मनुष्य के अन्दर अन्धेरा अथवा अज्ञान है। ना किसी वस्तु की यथार्थता

का पता लगता है, न आवागमन से छुटकारा होता है। इसकी चाबी सतगुरु के हाथ में है। किसी और से यह द्वार खुल नहीं सकता, और पूर्णगुरु तब मिलता है, जब भाग्योदय हो, अतः शब्द यहां प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान के अर्थ में अथवा अर्थ सहित है, और गुरु से ही यह ज्ञान मिलता है, अर्थात् परमगुरु परमात्मा से वेद का ज्ञान, और मनुष्य गुरु से ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल सत्य उपदेश। और यदि वेद का शब्द पक्षपात दोष से न सुखायें तो इसका अर्थ सच्चे योगियों वा सन्तों के द्वारा गुरु परम परागत ज्ञान हो सकता है। परन्तु विचार करने पर वह वही सिद्ध होगा, जो वेद का ज्ञान है। अतः सिद्ध है कि गुरु मत सुधाकर के लेखक सरदार बहादुर काहनसिंह, भाई गुरुदास जी, गुरु नानक साहिब जी और प्राचीन योगी पुरुष सबकी शब्द विषय में एक ही सम्मति है। सौ स्याने इको मत। और अनहद शब्द यदि साहिबजी महाराज के कथनानुसार वास्तव में अनाहत शब्द है, तो आपने विचार के विरुद्ध जो कुछ लिखा है उससे अपने ही पक्ष का खण्डन किया है।

नं० ४— कबीर साहब का अनहद शब्द और स्वामी दयानन्द

३७—सरदार बहादुर काहनसिंह के अलावह सनातन धर्मी और आर्य भाइयों से भी आपका गिला है कि यह अनहद शब्द और सुर्त शब्द अभ्यास की खिल्ली उड़ाते हैं। सत्यार्थप्रकाश का निम्न लिखित प्रमाण पेश किया है और स्वामी दयानन्द पर कबीर साहिब का निरादर करने का दोष लगाया है (पृष्ठ ३७७ हिंदी

संस्करण १३ "कुछ मूर्ख लोग उसके जाल में फँस गए जब मर गया तब लोगों ने उसको सिद्ध बना लिया, जो जो उसने जीते जी बताया था उसको उसके चेले पढ़ते रहे, कान को मूँद के जो शब्द सुना जाता है उसको अनहद शब्द सिद्धान्त ठहराया, मन की वृत्ति को सुर्त कहते हैं। उसको इस शब्द सुनने में लगाना, इसको शब्द और परमेश्वर का ध्यान बताते हैं। इसमें आत्मा की उन्नति और ज्ञान क्या बढ़ सकता है। यह केवल लड़कों के खेलके समान हैं।"

(आर्य)—(१) इस उद्धरण से स्पष्ट सिद्ध है कि राधा स्वामी मत के प्रवर्तक ने जो यह सिद्ध किया है कि हमने दया करके प्राणायाम वाली कठिन शैली के स्थान में शब्द अभ्यास की सुगम शैली निकाली है,यह असत्य है कबीरादि पहिले इसका प्रचार कर चुके थे। दूसरे स्वामीजीका भी इस अनहद शब्दपर वही आक्षेप था,जो सरदार बहादुर ने किया है और तीसरे कान मूँद कर जो शब्द सुना जाता है, वह अनाहत शब्द नहीं, न धुन्यात्मक, या बीज नाम, क्योंकि यह अनहद शब्द शरीर के अन्दर विद्यमान आकाश के आन्तरिक कारखाने के चलने से पैदा होता है। आत्मा के अन्दर प्रकाशित होने वाला यह शब्द नहीं। यदि कबीर साहिब का बताया हुआ या राधास्वामी मतका बताया हुआ प्रचलित शब्द अभ्यास प्राचीन शैली का होता तो साहिबजी महाराज उसकी पूरी व्याख्या करके कबीर साहिब को भी सुर्खरू करते। और स्वामी जी के बयान को भी निस्सार और साथ ही यथार्थप्रकाश के इन शब्दों को सार्थक सिद्ध कर दिखाते कि

"स्मरण वा ध्यान की जुगतियाँ जो राधा स्वामी मत में राइज हैं, कोई नई बात नहीं हैं। ज़माना क़दीम से इनका रिवाज चला आता है। पातञ्जल योग सूत्रों में भी इनका बयान है।"

परन्तु यथार्थ स्थिति अन्यथा है। इस लिये स्वामी जी पर भी उसी प्रकार की चोट की जाती है, जैसे सरदार बहादुर पर की गई। लिखा है, "न मालूम ये सख़्त कलाम महज़ संत मत के खण्डन की ग़र्ज़ से इस्तैमाल किये गये हैं या अपनी धर्म पुस्तकों की नावाक़फ़ियत की वजह से, क्योंकि ख़ुद सत्यार्थप्रकाश के सफ़ा २१२ पर स्वामी जी ने यह समझाने के लिये कि इन्सान कासा, मुंह व ज़बान न रखने वाला ईश्वर मनुष्यों को वेद ज्ञान कैसे प्रगट करता है, लिखा है। "क्योंकि मुख जिव्हा के व्यापार करे बिना ही अनेक व्यवहारों का विचार और शब्द उच्चारण होता रहता है, कानों को उँगलियों से मूँदों, सुनो, कि बिना मुख जिव्हा, तालु आदि स्थानों के कैसे २ शब्द हो रहे हैं, ऐसे जीवों को अन्तर—यामी रूप से उपदेश किया है।"

हमारी समझ में नहीं आता कि किसी विद्वानके सद्भावपूर्ण आलोचनात्मक, बे लाग लपेट शब्दों को कठोर वचन कहना किस प्रकार युक्त हो सकता है। इसके अलावह वादी के यथार्थ आशय को न समझ कर, ख़्वाहमख़्वाह सम्मति स्थिर वा प्रगट करना किस सकार बुद्धि वा न्यायानुकल समझा जा सकता है। स्वामी जी स्पष्ट कहते हैं कि मुख और जिव्हासे शब्द बोलना ज्ञानके प्रकाश करनेका एक मात्र साधन नहीं। क्योंकि शब्द जिव्हा तालवादि स्थानों के बिना भी मनुष्य के अन्दर हो रहा है। आलोचक की युक्ति का सम्बन्ध शब्द उच्चारण के वाह्य साधनों से है और इस लिये आन्तरिक साधनों का संकेत उत्तर की दृष्टि से अत्यन्तावश्यक तथा सर्वथा पर्याप्त था परन्तु इसका यह आशय नहीं, कि वह आन्तरिक शब्द एक ही प्रकार का मानते हैं, विशेषतः उस प्रकार का, जिसके सुनने का सम्बन्ध कल्पित राधा-स्वामी शब्द से है। तथापि साहिबजी महाराज उत्तर को ऐतराज़के

निशाने से हटाकर अपनी ओर मोड़ते और एक प्रकार की स्वार्थान्धता का प्रकाश करते हैं, यह कहकर कि "इस बयान में सरीहन अन्तरी शब्द की हस्ती का इक़रार किया गया है बल्कि अन्तरी शब्द को ईश्वर के संसार में वेद ज्ञान प्रगट करने का जरीआ क़रार दिया है।"

कोई पूछे आन्तरिक शब्द के अस्तित्व का इंकार उन्होंने कब किया था और कब कहा था, कि अन्तरी शब्द के बिना वेद प्रगट हुए? आर्यसमाज का तो सिद्धान्त ही यह है कि परमात्मा ने ऋषियों के अन्तरात्मा में वेद ज्ञान का शब्द अर्थ और सम्बन्ध के रूप में प्रकाश किया, अतः आपकी टिप्पणी सर्वथा व्यर्थ है। न आन्तरिक शब्द विवादास्पद है, न वेद ज्ञान, न आपका आन्तरिक शब्द ज्ञान से सम्बन्ध रखता है, न आपने अपने सुर्त शब्द अभ्यास का स्पष्टीकरण किया है, न उसे प्राचीन शैली और पतञ्जल योग सूत्रों के अनुकूल सिद्ध करने का साहस किया है। अतः आक्षेपकों का ख्याल सत्य है। और आपका असम्बद्ध शब्द जाल इसका समर्थन करता है कि आपका अनहद शब्द केवल एक ढोंग है।

(३८) साहिब जी महाराज को ग़रज़ तो अपने आडम्बर पर परदा डालने की है, पर इसकी पूर्ति आप कबीर साहब की वकालत से करते और फ़रमाते हैं:—"जब स्वामी जी का अक़ीदा है, कि वेद को परमात्मा ने अनाहत शब्द द्वारा प्रगट किया है, तो उनको क्या हक़ था, कि बिला साधन किये या किसी साध से दरियाफ़्त किये अनाहत शब्द के अभ्यास को लड़कों के खेल के समान लीला करार देते?"

हमारा निवेदन यह है, कि इतना कोप करने की आवश्यकता नहीं अपने साधन को अनाहत शब्द अभ्यास सिद्ध कर दीजिये,

विषय स्पष्ट हो जायेगा। रही आप वाला साधन करने की बात, यदि उसके लिये स्वामी जी जैसे योगी पुरुष को अभी दरियाफ़्त करने की आवश्यकता थी, तो आपकी शिक्षा सरल एवं सुगम कैसे है। और यदि स्वामीजी ने कान मूँद कर आन्तरिक शब्द सुनने के साधन को न जाना था, तो उन्होंने यह युक्ति कैसे दी, कि बिना तालु, जिह्वादि के मनुष्य के अन्दर अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण हो रहा है ?

स्वामीजी के शब्द जो कबीर के चेलों से सम्बन्ध रखते हैं, आपको बुरी तरह खटके हैं। इससे भी पाया जाता है, कि अनाहत शब्द वाली थ्योरी Theory) की तो केवल आपने आड़ ली है, अन्यथा वास्तविक लक्ष आपका कबीर साहिब के चेलों वाला लड़कों का खेल ही है। आपका कर्तव्य यहां यह था, कि या तो कबीर साहिब के अनहद को वैदिक अनाहत सिद्धांत सिद्ध करते या राधास्वामी सुर्त शब्द अभ्यास को इससे विलक्षण या भिन्न स्थिति देते। आपने दोनोंमें से एक भी बात नहीं की अतः पातंजल योग दर्शन वाले अष्टांग योग अथवा वेदार्थ को साक्षात् कराने वाले साधन के मुक़ाबले पर राधास्वामियों वा कबीर पन्थियों का अनहद सिद्धान्त सर्वथा व्यर्थ तथा समय का नाश होने से केवल लड़कों के खेल के बिना कोई नाम नहीं पा सकता है।

सर्ग ५—नीम मुल्ला खतराये ईमान !

(३९) साधू वा सन्त लोग जहां उपदेश देते हैं, दृष्टान्तों से अपने भाषण को सर्व-साधारण के लिए सुगम एवं रोचक बनाते हैं। कई दृष्टांत ऐसे होते हैं कि किसी अनुभवी पुरुष का

एक टोटका किसी रोग में सफल हुआ, तो अनुभव शून्य पुरुष ने प्रत्येक रोग पर उसी का प्रयोग करके रोगियों को शमशान में पहुंचाया और सिद्ध कर दिखाया कि नीम हकीम खतराए जान। ऐसा ही तोते की भांति रटे हुए शब्द प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में बोल देने से भी वास्तविक प्रयोजन नष्ट होने और भयंकर परिणाम निकलने के बहुत से लतीफ़े हैं। अपनी धर्मपत्नि को मेके से लाने के लिए एक मनुष्य अपने छोटे भाई को भेजता है और समझाता है कि यथा सम्भव अधिक बातें न करना. व्यर्थ न बोलते रहना। हां वा ना के संक्षिप्त उत्तर का ही ध्यान रखना। देवर साहिब भाई को सुसराल में पहुँचते हैं। श्वसुर को खटकता है कि जामाता स्वयं नहीं आया, अतः वह पूछता है, कि क्या कुछ रोगी था ? उत्तर मिलता है, "हां जी।" (प्रश्न) क्या कुछ इलाज हुआ ? (उत्तर) 'ना जो' (प्रश्न) क्या रोग बढ़ तो नहीं गया ? (उत्तर) हाँ जी। (प्रश्न) क्या यहां से डाक्टर ले चलें ? (उत्तर) ना जी, (प्रश्न) क्या हम ही साथ चलें ? (उत्तर) हां जी, (प्रश्न) जीते तो हैं ? (उत्तर) ना जी। इतना सुनना था कि रोना, पीटना, वा मातम शुरू हुआ, और सारी पार्टी उसके भाई के मकान पर ढाड़ें मार मार कर रोती हुई पहुँची तो बड़े भाई साहिब को अपने आज्ञाकारी छोटे भाई के आज्ञा पालन का रहस्य विदित हुआ। ऐसे ही दृष्टान्तों से धार्मिक जगत में 'नीम मुल्लां खतरांये ईमान' को लोकोक्ति का प्रयोग होता है। और राधास्वामी भाई जब कान मूँद कर अन्दर की घूँ २ सुनने पर इतराते और शब्द सिद्धि पर खुशी मनाते हैं, तो हमें यही लतीफ़े याद आते हैं।

(४०) परन्तु सरल स्वभाव सत्संगी बिचारे क्या करें।

"चो कुफ़र अज़ काबा बरखेज़द कुजा मानद मुसलमानी"

जब काबा से ही कुफ़र उठे तो मुसलमानी कहां रहे।

साहिब जी महाराज जैसे महान पुरुष इतने शिक्षित होकर अपने से पहिले राधास्वामी आचार्यों का अनुकरण करते हुए उनके अन्दर ऐसी जेहनियत पैदा करने में ही अपना सतगुरुपन समझते हैं, तो उन बेचारों की क्या पेश जा सकती है। विचारणीय विषय है, कि आर्य, सनातन धर्मी, सिक्ख सब यदि खिल्ली उड़ाते हैं, तो उस शब्द की जिसका अर्थ विशेष से सम्बन्ध नहीं, और जो केवल मनुष्य के अन्दर विद्यमान जड़ आकाश का गुण है। परन्तु साहिब जी महाराज जड़ या अनाहत शब्द का निर्णय किये बिना खाली शब्द अथवा अनहद की रट लगाते हैं। प्रमाण जो पेश करते हैं, उनमें वर्णित शब्द का आशय उस शब्द से सर्वथा भिन्न है, जो राधास्वामियों के सुर्त शब्द योग से सम्बन्ध रखता है, परन्तु आप उन्हें इस भेद को जानने का अवसर देने के स्थान में वास्तविक आशय को ही गड़मड़ किये जाते हैं।

वैदिक साहित्य में निश्चय शब्द की महिमा महान है। अन्य मत भी प्राया शब्द या ईश्वरीय ज्ञान को ही मानते हैं। यह सत्य है कि कतिपय सम्प्रदायों में अनहद शब्द प्रचलित है, उपनिषद् में शब्द ब्रह्म तथा हृदय आकाश का शब्द मौजूद है। जैसा आप लिखते हैं, अथर्ववेद से किसी ने हिन्सोपनिषद् सम्बन्ध का जोड़ा है। हठ योग दिपका और सत्संग पत्रिका में भी शब्द का महत्व वर्णित है। शेख मोहम्मद अकरम सायरी रचित इक्तबासुलअनवार में भी अनवार का वचन जो आपने पेश किया है, उसके अनुसार हजरत मोहम्मद साहिब भी आवाज मुस्तक़ीम सुना करते थे। अब्दुल कादिर भी जीलानी साहिब भी सुल्तान लअजकारका शग़ल करते थे। हम यह भी मान लेते हैं कि ताण्डय ब्राह्मण में वाणी को दूसरा ब्रह्म कहा है और उसो से सब कुछ

प्रकाशित हुआ है। कायक संहिता का वचन भी हमारे सिर मांथे पर कि प्रजापति और वाणी के संयोग से उत्पत्ति हुई। शत-पथ वा गोपथ में शब्द को देवता कहना या मानना ऐतरेय ब्राह्मण का शब्द को योनी मानना, बृहदारण्यकोपनिषद् में काल पुरुष के मन से वाक पैदा होना, काल पुरुष और शब्द का संग होना, मृत्यु के मुँह खोलने पर माँ शब्द का उच्चारण होना और उसे वाणी कहा जाना, ऋग्वेद के वागारम्भणी सूक्त में वाक का सब देवताओं का निवास स्थान, उनका पालक पोषक, उनकी गति का आश्रय, उनके ज्ञान व कर्म का प्रेरक या सब प्रकार का हर्त्ता कर्त्ता होना, "ब्राह्मण की गौ नामी" पुस्तक का शब्द से उत्पत्ति मानना और इसी सूक्त के आठवें मन्त्र के भाष्य में पं० जयदेव शर्मा का वाणी को सब लोकों की निर्माता, शरीर में प्राण की, संसार में वायु को भांति व्यापक, सूर्य्य आदि लोकों से परे, पृथ्वी से परे, कार्य रूप पदार्थों से पूर्व मौजूद और जगत रचना का कारण कहना सब कुछ जैसा आपने लिखा हम मान लेते हैं, वैसा ही है। और हम यह भी कहते हैं. कि शब्द की जितनी भी महिमा की जावे थोड़ी हो है। किन्तु विचारणीय प्रश्न केवल यह है कि इन सब प्रमाणों से यह कैसे सिद्ध होता है कि राधास्वामी मत में कान मूंद कर जिस शब्द का सुनने का प्रपञ्च जारी है उसमें यह गुण पाये जाते हैं। या वह पातञ्जलि योग दर्शन का लक्ष और अनाहत वा धुन्यात्मक या बीज मन्त्र है, और उससे ज्ञान वा आनन्द की प्राप्ती होती है।

४१—अपने सुर्त शब्द योग का जहाँ भी वर्णन करते हैं। साहिब जी महाराज इसे योग साधन के साथ सम्बद्ध करते अथवा खलत मिलत कर देते हैं, जब कि वास्तव में योग साधन और राधास्वामी अभ्यास में पृथ्वी और आकाश

का अन्तर है। योग का लक्षण है, चित्त की वृत्तियों का निरोध। पर साहिब जी महाराज को तो शब्द से चित वृत्ति का सम्बन्ध कहना तक नहीं भाता। असल योगाभ्यास का वर्णन करते हुए पतञ्जलि मुनि योग के आठ अंग बताते हैं। परन्तु साहिब जी महाराज उनका नाम लेने तक से हिचकिचाते हैं। आठ का तो क्या कथन, पहिले दो यम और नियम तक की आप आवश्यकता नहीं समझते, न उनका व्याख्यान करते हैं। हालांकि बिना उनके मनुष्य में सभ्यता तथा साधारण मनुष्यता का आना भी असम्भव है। आत्मता के उच्च शिखर पर पहुँचने का तो कथन ही क्या है। कहा जायेगा कि यम नियम का कहीं वर्णन नहीं तो खण्डन भी तो नहीं किया। हम कहते हैं इससे अधिक खण्डन क्या हो सकता है कि उनको सर्वथा स्मृति से विस्मरण कर दिया जाये। तीसरा अंग है आसन, इसका ढोंग तो रचा जासकता है परन्तु अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य,अपरिग्रह के पांच यमों और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान के पांच नियमों वाले गुण कर्म के बिना न मनुष्य उच्च आत्म कर्तव्यों के अनुभव का मान्य कर सकता है न उन पर आचरण, और न चंचलतादि छोड़ कर उपासना के लिये सच्चे अर्थों में आसन स्थिर कर सकता है। रहा प्राणायाम इससे तो सुर्त शब्द योग की भूमिका में ही घृणा दिलाई जाती है। सार वचन में लिखा है "कि पिछले वक्तों में यह मत अत्यन्त गुप्त रहा और जो कि इसका अभ्यास शुरू में प्राणायाम के साथ किया जाता था, इस सबब से बहुत कम लोग इससे वाक़िफ़ थे, और न किसी से अभ्यास बन सकता था क्योंकि प्राणायाम करने में संजम और परहेज सख्त दरकार है। और खतरे भी बहुत हैं।"

विचारने की बात है कि इस समय भी प्राणायाम वाले योगा-

भ्यास करने वालों का अभाव नहीं है और प्राणायाम करने वालों की संख्या राधा स्वामियों की अपेक्षा कई गुणा अधिक है और हमें ऐसे पुरुषों से मिलने का अवसर मिला है जो प्राणायाम से मनुष्य के स्वास्थ्य एवं बल को उन्नति देने का तो क्या कथन जीवन से निराश हुए रोगियों को विशेष विधि से प्राणायाम शुरू कराके भला चंगा कर दिखाने में सफल हुए हैं। उनका दावा है कि प्राणायाम से असाध्य रोग भी दूर होते हैं। ऐसे योगाश्रम भी कई स्थानों पर हैं, जो आसन और प्राणायाम से बिना किसी व्यय के निःशुल्क चिकित्सा कर रहे हैं। पाश्चात्य देशों के बड़े से बड़े योग्य मनुष्य (Deep breathing) दीर्घ श्वास का प्रचार करके प्राणायाम की महिमा महान कर रहे हैं और सैर व्यायाम तथा दौड़ तक में मुख को बन्द करके नासिका द्वारा दीर्घ श्वास लेने पर तो प्रायः स्कूलों में भी बल दिया जाता है। क्या कहें राधास्वामी मत का बाबा आदम ही निराला है। Medical Science (चिकित्सा शास्त्र) का विकास जहां प्राणायामको स्वास्थ्य सम्बन्धी सारे खतरों को दूर करने वाला बताता है वहां राधा-स्वामी मत इसमें खतरे बता कर अपने जाल में फँसे भाग्यहीन अनुयाइयों को इससे हटाता है। मेडीकल साईन्स जहाँ थूक के द्वारा रोग के फैलने का भय सुझाता है, न्यायालय तथा उत्तम स्थानों में फ़र्श या तख्ते पर थूकने या निषेध करते हुए जहां Donot spit का बोर्ड लग रहा है, वहाँ सार वचन उपदेश देता है कि गुरू की थूक गट गट कर पी जाओ।

पीकदान ले पीक करावे।
फिर सब पीक आप पी जावे॥

निःसन्देह गुरू जी का यह मन्त्र तो कमाल का है। उन्हें चेले की परीक्षा लेनी है, जिसने अपना थूक चाट लिया, वह

नुमाइशी चेला नहीं हो सकता। परन्तु चेले की मूर्खता के बिना इस से हम दूसरा नतीजा नहीं निकाल सकते। साहिबजी महाराज स्कूल बनावें, कालिज बनावें, शिल्पविद्या सिखावें, अथवा साधारण शिक्षा दिलावें, और नौकरी आदि के प्रलोभन से लोग उनके सत्संग में जावें इसका श्रेय राधास्वामी सत्संग को कुछ नहीं मिल सकता, यह या तो पाश्चात्य शिक्षा का परिणाम है, या आर्यसमाज के प्रभाव का। राधास्वामी मत की शिक्षा तो यह है "कि हे विद्या तू बड़ी अविद्या" इस पञ्जाबी शेर पर मखौल होता था कि "इल्मों बस करीओ यार, इको अलिफ़ तैर दरकार" परन्तु यह किसे मालूम था, कि एक दिन बड़े २ ग्रेजूएटों और शिक्षणालयों का यही मोटो (Motto) होगा।

सब से उच्च पद क्या है ? राधास्वामी। कुल मालिक कौन है ? राधास्वामी ! आद धार और आद हिलोर से क्या प्रगट हुआ ? राधास्वामी। तुम्हारे मत का क्या नाम है ? राधास्वामी। अनहद शब्द क्या है ? राधास्वामी। तुम्हारे मत का संस्थापक कौन है ? राधास्वामी। सार यह, कि ले दे के एक ही शब्द पल्ले पड़ रहा है। सच्चे मालिक से क्या कोई ज्ञान मिला ? पता नहीं, कोई धर्म कर्म ? नहीं हम कुछ नहीं मानते। कोई पुस्तक उस ज्ञान की प्रतिनिधि अथवा प्राचीन काल से मौजूद है ? हमें क्या। अरे एक राधास्वामी शब्द ही तुम्हारे पल्ले है तो सृष्टिरचना का ज्ञान कहाँ रहा ? प्रचलित विद्याओं का आदि स्रोत क्या हुआ ? आत्मोन्नति, शारीरिक बल, मानसिक शुद्धि, बुद्धि विकाश किसी बात का विधान तो इस शब्द से सिद्ध करो। तप का खंडन आपके मत में है। स्वाध्याय के लिये किसी परम प्रमाण अथवा प्राचीन धर्म ग्रन्थ पर विश्वास की रुचि अपने अनुयाइयों में आप नहीं रहने देते। ईश्वर प्रणिधान का नियम आपके अनुकूल नहीं

बैठता। तब योगदर्शन वाली युक्तियां आपके यहां कैसे हुई ? और जब प्रत्याहार के पांचवें जीने तक का भी ज्ञान नहीं है तो एक दम धारणा के छटे अंग पर छलांग जाना और किसी मनोप्रिय नाम पर मन लगाना के क्या अर्थ ? रहे दो अंग ध्यान व समाधि, परन्तु आपको न ध्येय का ज्ञान न ध्याता का न ध्यान को असलियत से भिज्ञता ? ध्येय है आपका है राधास्वामी, वह मलीन माया देश से सम्बन्ध नहीं रखता, जिसमें आप हैं। और मध्यवर्ती ब्रह्मलोक तक आपकी पहुंच असम्भव है, क्योंकि उसके ज्ञान वेद से भी आप विरुद्ध अथवा उदासीन हैं। इस अवस्था में राधास्वामी धाम पर आप कैसे पहुंच सकते हैं। और बिना वहां पहुंचे असल धुन राधास्वामी की कैसे सुन सकते हैं ? "राधास्वामी धाम में जो रचना का सर्वोच्च स्थान है पहुंचने पर प्रत्येक अभ्यासी को इस नाम की धुन सुनाई देती है।" पृष्ठ २७।

अजी साहिब शिखर स्थान के स्वप्न कहां मलीन माया देश के वासी को ब्रह्मपद ही तक पहुंचाओ। सम्प्रज्ञात, और असम्प्रज्ञात समाध का ही विवेचना तो कराओ वही आपके लिए असम्भव है, तो राधास्वामी धुन कहां, और हज़ार लाख बार यह नाम सुनने पर भी अभी जो धुन सुनाई नहीं दी, वह है क्या बला !

ईश्वर करे अविद्या का भूत हमारे भाइयों के सिर से उतरे, और नीम मुल्लानी शिक्षा से सावधान होकर वह अपने वास्तविक धर्म को सुरक्षित कर सकें।

८२—कबीर साहिब का पक्ष लेने के स्थान में साहिब जी महाराज को अपनी खैर मनानी चाहिए, "तुझको पराई क्या पड़ी अपनी नबेड़ तू"। स्वामी जी की आलोचना का कबीर साहिब से सम्बन्ध है। पर अब न स्वामी जी मौजूद हैं और न कबीर साहिब यदि उनके चेलों से सम्बन्ध होगा तो वह स्वयं सत्यासत्य का विचार

करलेंगे। आप तो हिम्मत रखते हैं तो स्वयं यह बताइये कि क्यों जड़ शब्द सुनने के साधन को, लड़कों के खेल अर्थात् एक निष्फल निस्सार सी चेष्टा न कहा जाये। स्मरण रखिये और अच्छी तरह स्मरण रखिये, कि आत्मोपदेश रूपी शब्द, सत्यवादी, विद्वान्, गुरू का उपदेश रूपी शब्द. ज्ञान का उपदेश देने वाला वेद शब्द, वाणी नामधारी शब्द, सच्चे मालिककी वाणी, या आदि सृष्टि में मिले हुये ईश्वरीय ज्ञान रूपी वाणी, ज्ञान स्वरूप ब्रह्म का शब्द कोई भी नाम कहो सबको आर्यसमाज मानता है। इस शब्द या वाणी को समझने के लिए ही विद्याध्ययन पर बल देता है। इसी के लिये स्वाध्याय की आवश्यकता है. इसी ईश्वरीय शब्द की तह तक पहुँचने के लिये योगसाधन है। इसी वाणी पर विश्वास होने के कारण मुसल्मान इल्हाम या कलामे इलाही या (ईश्वरीय वाणी) को मानते हैं, इसी ईश्वरीय वाणी का वर्णन कुरान की इस आयत में है, कि खुदा ने आदम को सब नाम सिखाये, आपका एक राधास्वामी शब्द क्या करेगा। वहां सारे शब्द को स्वीकार किया गया है। इसी शब्द का वर्णन बाइबिल में इस प्रकार है। "आदि में वचन था और वचन ईश्वर के संग था, और वचन ईश्वर था।" ब्रह्म है ही ज्ञान स्वरूप तो ज्ञान का वचन ही ब्रह्म क्यों नहीं, और हम प्रथम अध्याय में बता चुके हैं, कि आप का सुर्त शब्द योग भी वास्तव में वेदार्थ विचार का आशय रखता था अतः वेद विरुद्ध निरर्थक साधन की तिलांजली दीजिये। अन्दर की ज्ञान शून्य आवाजों में भोले भाले अनुयाइयों को लगाये रखने, उनके बहु-मूल्य जीवनों, उनके उठते हुए धार्मिक भावों तथा उनकी विद्या और बुद्धि सम्बन्धी शक्तियों को भूसे के भाव गंवाने से आपको वास्तविक लाभ तो क्या होगा, पाप की गठरी ही भारी होगी।

संग ६
रचना के देश और लोक

४३—यथार्थ प्रकाश में अनेक स्थानों पर रचना के देशों और लोकों का अद्भुत वर्णन है। इस विषय में निम्नलिखित उद्धरण विचारणीय हैं।

(१) सन्तमत की शिक्षा के अनुसार सारी रचना में अठारह दर्जे या स्थान हैं। और प्रत्येक स्थान में एक केन्द्रीय शक्ति का निवास है। जिसकी धारें उस स्थान में फैल कर उसकी सम्भाल कर रही हैं। (पृष्ठ १२, १३)

(२) रचना के आरम्भ में जो आद चेतन धार प्रकट हुई उसके अन्दर भी तीन दर्जे कायम करने का स्वभाव मौजूद होगा, और इस स्वभाव के प्रभाव से रचना का मसाला जो आद धार के अन्दर लीन था, तीन दर्जों में फैला हो ा। इसी कारण से राधा स्वामी मत बतलाता है, कि रचना तीन 'बड़ भागों में विभक्त है।

(१) निर्मल चेतन देश जो रचना का मस्तक है।
(२) निर्मल माया देश जो रचना की काया है!
(३) मलीन माया देश जो रचना का चरण है।

४६—आद चेतन धारके इस स्वभाव का प्रभाव उसके दोरुखी अङ्गों पर भी पड़ा जिसके कारण से प्रत्येक बड़े लोक के अन्दर ६ छोटे लोक प्रकट हुये अर्थात् तीन लोक शब्द अङ्ग के और तीन लोक सुर्त अङ्ग के। और चूंकि आद धार चेतन धार थी, अर्थात उसमें रचना करने का ज्ञान और इच्छा भी थी इसलिये इन सब देशों वा लोकों के केन्द्र भी चेतन थे, और उनके अन्दर रचना करने का ज्ञान और इच्छा भी मौजूद थी, इसलिये इन केन्द्रों को

पुरुष कहते हैं। सारांश यह है कि रचना की क्रिया होने पर पहिले कुल मालिक में आदि हिलोर हुई, और फिर आद चेतन धार रवां होकर वह सब सामग्री जो कुल मालिक के अन्दर गुप्त रूप में थी, तीन बड़े देशों में फैल गई। और प्रत्येक बड़े देश के अन्दर छः छोटे लोक स्थापित हुये। और प्रत्येक लोक में एक चेतन पुरुष प्रगट हुआ। (पृष्ठ ३०)

:—राधास्वामी मत को शिक्षा के अनुसार रचना तीन बड़े और अठारह छोटे भागों में विभक्त है। बड़े भागों को देश और छोटों को लोक कहते हैं। प्रत्येक बड़े भाग में छः लोक हैं। लोक का अर्थ सुर्तों का निवास स्थान है। चुनाचें इन सब लोकों में भिन्न भिन्न दर्जों की रचना है, और प्रत्येक लोक में सुर्तें रहती हैं। यह पृथ्वी लोक तीसरे अर्थात् पिण्ड या मलीन माया देश का अंग है। इससे ऊपर दूसरा दर्जा ब्रह्माण्ड या निर्मल माया देश है। इस से आगे तीसरा दर्जा निर्मल चेतन् देश है। निर्मल चेतन् देश में माया का आधिपत्य नहीं है वहां की रचना भी सत्य है और वहां का ज्ञान व आनन्द भी सत्य है। यह देश आदि चेतन् धार ने रचा है और आद चेतन् धार के सुर्त व शब्द अङ्गों के भेद के कारण उसके अन्दर छः लोक स्थापित हुए। सुर्त अङ्ग चूँकि चेतन् शक्ति का बाहिर फैलने वाला या केन्द्र निर्माण अङ्ग है। इस लिये इससे सम्बद्ध लोक शब्द अङ्ग के (जो केन्द्र की ओर आकर्षण करने वाला है) लोकों से नीचे स्थिर हैं। भंवरगुफा, सत्य लोक व अनामी सुर्त अङ्ग के लोकों के नाम हैं। अलखलोक अगम लोक और राधा स्वामी धाम शब्द अङ्ग के लोकों के नाम हैं। गोया राधा स्वामी धाम निर्मल चेतन् देशका शिखर स्थान है। निर्मल चेतन् देश में प्रलय और महाप्रलय का गुजर नहीं है। इसलिये उसके सब लोक अविनाशी हैं। अर्थात् यहां की रचना

का आद है, अन्त नहीं है। इस देश के किसी स्थान पर पहुँच जाने पर सुर्त को नित्य मुक्ति प्राप्त हो जाती है।"

४—"रचना तीन बड़े भागों में विभक्त है और प्रत्येक भाग छः छोटे दर्जों में, अर्थात् इस प्रकार रचना में अठारह छोटे स्थान स्थापित हैं।। आदि सृष्टि में कुलमालिक को शक्ति की धार अपने केन्द्र से निकली और क्रमशः अठारह केन्द्र स्थापित करती हुई रचना में उतरी। प्रत्येक केन्द्र में एक २ धनी (अधिष्ठात्री शक्ति रहती है और रचना के १८ स्थान इन्हीं अठारह धनियों के रचे हुए मण्डल हैं। प्रत्येक धनी की चेतन धारें उससे सम्बन्ध रखने वाले स्थान में फैली हैं, और उन्हीं के आश्रय उस स्थान की सम्भाल होती हैं। और उनकी अपनी सम्भाल कुलमालिक की चतन् धार से होती है। दूसरे शब्दों में, कुलमालिक की चेतन शक्ति दर्जा बदर्जा उतर कर इन केन्द्रों में ठैहरी, और इन केन्द्रों की शक्तियां अपने २ स्थानों में फैलीं।" (पृष्ठ २५९)

४४—इन देशों और लोकों के विषय में विचार:—

यह विपय अभी तक स्पष्ट नहीं हुआ कि यह देश तथा लोक विज्ञान कहां तक वेद शास्त्रादि के सिद्धान्तों पर निरधारित है, कहां तक सार वचनादि पर और कहां तक आपकी अपनी नवीन घड़न्त पर, तथापि निम्नलिखित विचार वास्तविक स्थिति को समझने में अच्छी सहायता देंगे:—

(१) कुलमालिक साहिब रचना के आदि से पूर्व कहां किस अवस्था में क्या करते थे ?

(२ जो आदि चेतन् धार आदिमें प्रकट हुई, वह कुल मालिक में कब गुप्त हुई थी, और कितने काल तक गुप्त रही थी ?

(३) कुलमालिक में कितनी धारें और गुप्त थीं, उनके नाम क्या थे, और वह क्यों प्रगट नहीं होतीं ?

(४) क्या कुलमालिक स्वयं धार हैं अथवा धार से भिन्न एक पृथक् तत्व है ? यदि धारों का समूह है तो जब आद चेतन् धार चलती बनी तो शेष कुलमालिक पर इसका क्या प्रभाव पड़ा ?

(५) सूर्य की किरणों अथवा समुद्र की बून्दों के निकलने वा दाखल होने या गमनागमन को मानवीय नेत्र वा बुद्धि अनुभव कर सके या न कर सके यह पृथक् बात है। कुछ न कुछ न्यूनाधिक्य अवश्य होता रहता है और चूँकि आद चेतन् धार में समस्त लोकों तथा देशों के रचने की सामर्थ्य तथा सामग्री थी। इस लिए इस धार के निकलने मे कुलमालिक में बड़ी न्यूनता का होना आवश्यक है।

(६) साहिब जी महाराज ने यह कहीं नहीं लिखा कि आद चेतन धार ने गुप्त सामग्री के अतिरिक्त और सामग्री भी कुल मालिक में रह गई थी, इसलिये मानना पड़ता है कि सब सामग्री आद चेतन धार में थी। अत: जब मिलकियत कुल जाती रही तो आप कुल क्या जुज़ (अंश) के मालिक भी न रहे और यदि कुछ सामग्री रख ही ली होती तो भी उसे रचना में काम लाये बिना निकम्मा रखने से आपके हाथ क्या आया ? परन्तु यह कल्पना निर्मूल है। साहिब जी महाराज ने पृष्ठ ४६ पर स्पष्ट लिख दिया है, कि सब मसाला जो कुल मालिक के अन्दर गुप्त रूप में विद्यमान था, तीन बड़े दर्जों में फैल गया।

(७) कुल मालिक में जो आद हिलोर हुई किस निमित से हुई आद हिलोर होने का आशय आपके अनेक लेखों से यह विदित होता है, कि पूर्ववर्तीय शून्य समाधी अथवा गुप्त अवस्था दूर हो गई। चूंकि प्रत्येक परिवर्तन के लिये दूसरे निमित का होना आवश्यक है, सूर्य्य की रशमियों के निमित से जल वाष्परूप धारण करना है, गर्मी के निमित्त से बर्फ पिघल कर पानी बनती है, अत:

आद हिलोर किस निमित से हुई।

(८) सुन्न समाधी अवस्था, गति या क्रिया के अत्यन्ताभाव का नाम है परन्तु जब पिण्ड वाला आत्मा कभी क्रिया शून्य नहीं रहना चाहे शुशुप्ति अवस्था क्यों न हो, तब ब्रह्माण्ड वाले कुल मालिक की शून्य समाधी या गुप्त अवस्था कैसी ? जीवात्मा समाधी अवस्था में भी क्रिया शून्य नहीं होता। उस समय वह श्रेष्ठतम क्रिया ध्यान या शब्द विचार की करता है। अतः कुल मालिक की शून्य अवस्था कहना सर्वथा असत्य है।

(९) परन्तु यदि मान लिया जाये कि प्रलय काल की अवस्था को जिसमें रचना का अभाव है, आप शून्यसमाधी अवस्था कहते हैं तो कृपया यह तो बताइये कि आप के मत में उसकी कितनी अवधि है और शून्य समाधि से पहला अवस्था का क्या नाम है।

(१०) शून्य समाधि अवस्था दूर होने पर आद चेतन धार जब रवां हो चुकी तब कुल मालिक किस अवस्था में रहे ?

(११) आद चेतन धार के रवाँ होने का क्या तात्पर्य है ? पात्र से दूध की, शरीर से रुद्र की धार रवां होती है, क्या ऐसे ही चेतन धार रवां हुई ? और जब आप मानते हैं कि वह दृष्टिगत होनेवाली वस्तु नहीं है, तो वह प्रगट हुई तो किस पर हुई और कैसे हुई ?

(१२) आद चेतन धार ने सारी रचना कितने समय में की ? और तत्पश्चात कहां गई या अब वह कहां है और क्या करती है ?

(१३) आद चेतन धार के ड्राप सीन के पीछे सारे केन्द्र के धनी पुरुषों की देख भाल जो कुल मालिक की चेतन धार करती है, उसका प्रधान स्थान (Head Quarter) एक ही स्थान में है, अथवा वह भी निग्रानी के लिये रवां होती और चक्कर लगाती है ?

(१४) आद चेतन धार और चेतन धार एक ही है अथवा

भिन्न २ ? एक ही हैं; तो आद का शब्द क्यों कहा, और भिन्न २ हैं, तो उनमें क्या भेद है ?

(१५) आद चेतन धार में जो रचना का मसाला था, वह तो काम आ गया, अब वह भी खाली है अत: निम्रानी भी वही कर सकती है। परन्तु प्रश्न यह है,कि अठारह केन्द्रीय शक्तियों के काम क्या क्या हैं। अर्थात उनके अपने अपने स्थान की सम्भाल करने से क्या आशय है ? और कर्तव्य पालन पर उन्हें आरूढ़ रखने तथा सम्भाल वा देख भाल में प्रमाद करने आदि के विषय में दण्ड व फल की व्यवस्था व नियम क्या हैं ?

१६—यदि आपका यह आशय है कि धार का शब्द केवल उस प्रकार के सम्बन्ध का बोधक है जो सूर्य का अपनी रश्मियों के माध्यम से दूर २ के लोकों से है, अथवा जीवात्मा का अपने शरीर से, तब क्या कुल मालिक भी एक देशी है ?

१७—यदि आप कहें ! हां एक देशी है। तो क्या जिस प्रकार सूर्य के आगे काली घटा छा कर उसकी रश्मियों को पृथ्वी पर पहुँचने नहीं देती, अथवा अनेक कारणों से जीवात्मा के होते हुए भी कई अंग कट जाते अथवा आँख अंधी या कान बहिरा हो सकता है वैसे ही कुल मालिक की शक्तियाँ अथवा उसकी देख भाल करने वाली चेतनधार भी किसी समय निकम्मी रह सकती है।

१८—यदि नहीं; तो इसमें प्रमाण क्या और युक्ति क्या ? और यदि रह सकती है तो कुल मालिक के निर्मल चेतन देश का ज्ञान और आनन्द सत्य किस प्रकार रह सकता है ? अनन्त ब्रह्माण्डों की शक्तियों के काम में होने वाले विघ्न और बाधायें उसे अवश्य सताती रहेंगी।

१९—यदि आप कहें, कि कुल मालिक सर्व व्यापक है, और प्रत्येक पदार्थ से उसका सम्बन्ध होने का नाम चेतन धार है तो

केन्द्रों, लोकों, देशों, केन्द्रीय शक्तियों का इतना शब्द जाल रचने का क्या कारण। एक सर्व व्यापक परमात्मा का सर्वज्ञ होने से जगत रचना और सबको कर्म फल देना सारे आशयों को स्पष्ट कर सकता है।

२०—आद चेतन धार में तीन ही दर्जे क़ायम करने का विशेषण क्यों होगा ? शरीर में मुख, बाहु, उरू और पाद के चार भाग हैं. तो ब्रह्माण्ड में भी चार भाग होने चाहिएं, क्योंकि पिण्ड ब्रह्माण्ड का चित्र है। गर्दन, कमर, और घुटना इन तीन स्थानों पर तीन जोड़ हैं, जिन पर अंग मुड़ सकते हैं। और इन तीन से चार भाग प्रत्यक्ष हैं। अतः मस्तक, काया और चरण के तीन ही भाग कहना असत्य है।

२१—आप दीपक के दृष्टान्त मे तीन दर्जे सिद्ध करते हैं।

(१) प्रकाश का आरम्भ। (२) तीव्र प्रकाश। (३) धूम्र स्थान का मध्यम प्रकाश।

परन्तु क्या ही अच्छा होता, कि आप आद, मध्यम और अन्त के तीन प्रसिद्ध दर्जों का वर्णन कर देते। वर्तमान अवस्था में भी तो मध्यम प्रकाश के पीछे धुयें वाली चौथी कक्षा गिनी जा सकती है। वेद ४, शरीर के भाग ४, तो रचना के भी चार ही दर्जे सत्य हो सकते हैं।

२२—रचना के ४ दर्जे जो आपने कहे वह भ वेद आदि सत्य शास्त्रों में ही उत्तम प्रकार से वर्णित है। आकाश से वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, अन्न, और वीर्य, और इनसे आद, मध्य और अन्त के तीन दर्जों की दृष्टी से कुल अठारह दर्जे भी सुगमता से गिने जा सकते हैं। इसके विपरीत आपका सारा कथन संदिग्ध एवं अनरगल सा है। और वही अठारह दर्जे ब्रह्माण्ड में बता कर कहीं उनके पिण्ड में होने का संकेत करते हैं, कहीं उन्हें

पुरुष वा विशेष सत्ताएं बना कर और कहीं इन्हें परम पुरुष की दिव्य शक्तियां वा गुण कह कर यह कोशिश की गई है कि साधारण चेलों पर तो समझ न आने से अपनी योग्यता या विद्वत्ता अथवा कल्पित सन्त मत के अनोखे विज्ञान का प्रभाव पड़े और विद्वान लोग निश्चित भाव समझने के स्थान में स्वयं चक्र में पड़ें और आप आलोचनादि से बचें। यदि यह आशय न होता तो सात परिधि को लेकर आप सात दर्जे कह सकते थे। तीन लोक पृथ्वी अन्तरिक्ष वा द्यु लोक का नाम ले सकते थे, सारांश यह कि रचना के संकेत के लिये जो बीसियों शैलियाँ प्रचलित हैं उनमें से कोई सा आप काम में ला सकते थे, परन्तु आप से ऋषी लोगों के से उच्च उद्देश्य युक्त व्यवहार की संभावना होती, तो आप गुरूडम पर मोहित ही न होते।

२३—दर्जों की भिन्नता से न्यूनाधिक्य का होना अवश्यम्भावी है परन्तु आद चेतन् धार वही है, तब किस पदार्थ के न्यूनाधिक होने का यह परिणाम हुआ ?

(२४) यदि रचने की सामग्री और ज्ञान के कारण से निर्मल चेतन् देश, निर्मल माया देश और मलीन माया देश के दर्जे हुए, तो चेतन् और माया को जुदा किसने किया और कैसे किया, और माया को निर्मल तथा मलीन के भागों में किसने बांटा ?

(२५) यदि आप आद चेतन् धार में तीन दर्जे होने का स्वाभाविक गुण मानते हैं तो फिर रचना की सामग्री किस रोग की औषधि है। आद चेतन् धार के अन्दर सामग्री थी, वह स्वयं सामग्री न थी।

(२६) इन तीनों दर्जों की यथार्थ स्थिति कैसे निश्चित् हो। मलीन माया देश कहां तक है ? और निर्मल माया देश कहां तक ? इत्यादि।

२७—पृथ्वी मलीन माया देश है। परन्तु मलीन से आशय क्या है। यह आपने बताया नहीं मलीन व्यवहार होने से ऐसा कहा है अथवा पदार्थों का स्थूल रूप होने से ? परन्तु चूँकि सारे पौदौं, पक्षियों, जल जन्तुओं, हिंसक पशुओं तथा गाय, घोड़ा आदि पशुओं और मनुष्यों के अन्दर आत्मा भी है, और इस पृथ्वी से सम्बद्ध आकाश में कारण अवस्था वाले प्राकृतिक परमाणु भी हैं और ब्रह्म भी इस पृथ्वी में सर्वत्र व्यापक है। यहां तक कि कल्पित राधास्वामी साहिब को भी प्रत्येक शरीर के अन्दर माने बिना आपके स्मरण, ध्यान, अभ्यास और निज धाम के कुछ अर्थ सिद्ध नहीं हो सकते अतः केवल मलीन माया देश इसे कहना किस प्रकार सत्य हो सकता है। यहाँ तो आपके कहे हुए सारे देश इकट्ठे हो रहे हैं।

२८—सुर्त अङ्ग के तीन लोकों और शब्द अंग के तीन लोकों में क्या भेद है। और उनकी तमीज़ का क्या साधन है ?

२९—एक भेद तो इनमें ऊपर और नीचे होने का है। पर उन लोकों की रचना के व्यवहार और उनमें रहने वाली सुर्तों में परस्पर में क्या भेद है। और प्रत्येक लोक से ऊपर के लोक मे जाने के लिये कितना समय और कौन कौनसा साधन दरकार है ?

३०—आपके सार वचन में लिखा है—

एक जन्म गुरु-भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति-पद, चौथे में निज धाम॥

आपने जन्म के शब्द को पृष्ठ २०३ भाग २ में मंजिल शब्द के अर्थ में लिया है और एक ही जन्म में एक से अधिक मंज़िलों के तै होने की सम्भावना बताई है। परन्तु यदि गुरु-भक्ति और नाम की दो मंज़िलें एक जन्म में तै हो जावें तो तीसरी मंज़िल मुक्ति की कितने काल में तै हो सकती है ? उस समय जन्म तो

होगा नहीं अतः ब्रह्मलोक की अवधि का इस जन्म से क्या सम्बन्ध ? मन्जिल कहो, जन्म कहो, मुक्ति से निज धाम में जाने के लिए तो समय का निश्चय अवश्य होना चाहिये था।

३१—अठारह केन्द्रीय शक्तियां चेतन धार ने रचीं, तो वह कहां से रचीं, आद चेतन धार में जो सामग्री थी, उससे देश वा लोक बने परन्तु निर्मल चेतन देश की ब्रह्म नाम की केन्द्रीय शक्ति अथवा अलख, अगम नाम की केन्द्रीय शक्ति उस सामग्री अर्थात् प्रकृति वा जीवात्मा के उपादान कारण की तो उपज नहीं और आदि चेतन धार स्वयं कसी का उपादान कारण बनती तो उसकी अपनी ही इति श्री हो जाती और कुलमालिक से कोई और धार आई नहीं ना उसके टुकड़े हुए, तब आद चेतन धार ने इन केन्द्रीय शक्तियों को कैसे रचा ?

३२—यह केन्द्रीय शक्तियां या पुरुष अपने २ स्थान की सम्भाल करते हैं तो उनके मण्डलों की सीमा भी नियत होनी चाहिए और एक दूसरे के मण्डल में उनके परस्पर के आने जाने तथा सहयोग असहयोग आदि के नियम अवश्य होने चाहियें। इनका सन्त मत में जो वर्णन हो, वह भी प्रकट करना चाहिए।

३३—राधास्वामी धाम का जगत् रचना आदि से कोई सम्बन्ध नहीं। यह धाम स्वामी साहिब की विशेषता आप बताते हैं। तब यह कहना कि केन्द्रीय शक्तियां तो अपने २ स्थान की सम्भाल करती हैं और कुलमालिक इन केन्द्रीय शक्तियों वा पुरुषों की तो राधा स्वामी साहिब जगत् के बखेड़े से मुक्त कैसे हुए ? केवल एक उच्चाधिकारी और सर्व प्रकार से वास्तविक उत्तरदाता ठहरे।

३४—परन्तु प्रश्न यह है कि वह इन अठारह पुरुषों की सम्भाल किस प्रकार करते हैं। स्वयं तो वह शिखर स्थान पर अलग थलग पड़े हैं, ऐजन्ट (Agent) उनका आद चेतन धार है, जो

केवल रचना करने की ज़िम्मेवार है तब सम्भाल वा देख भाल होती किस प्रकार है ?

३५—विशेषतः पृथ्वी अर्थात् मलीन माया देश जो सब से नीचे है, इसकी सम्भाल तो एक कठिन समस्या होगी उसकी केन्द्रीय शक्ति की सम्भाल के लिये यदि कोई Agent है तो उसका नाम बताइये और कर्तव्य पालन में उसके मार्ग में कोई विघ्न कारी हो तो उसकी सम्भाल के लिये फिर और पुलिस चाहिये।

(३६) निर्मल चेतन देश विशेषतः राधा स्वामी धाम में प्रलय वा महाप्रलय का गुज़र नहीं, एक ओर यह कहा जाता है, दूसरी ओर यह माना जाता है कि सब सुर्तें और प्रकृति कुल मालिक में महा प्रलय के समय लीन हो जाती हैं। यह परस्पर विरोध है। और जब सारी सामग्री उसके अन्दर आगई और महाप्रलय के दीर्घ काल में सब सुर्तों और प्रकृति को अपनी गोद में थपक थपक कर सुलाये रखना और महा प्रलय के अन्त में उन्हें तरो ताज़ा निकाल कर अपनी धार के द्वारा रचना में लाना उसी का काम है, तो महा प्रलय का सारा गुज़र तो उसी में हुआ।

(३७) निर्मल चेतन देश में माया का अधिपत्य न होने से वहां की रचना, वहां का ज्ञान, वहां का आनन्द, सब सत्य हुआ, तो मलीन माया देश जिसका सब से निचला भाग यह पृथ्वी है, असत्य वा मिथ्या हुआ। और जब यहां की रचना और ज्ञान सब असत्य है, तो स्वयं साहिब जी महाराज उनका ज्ञान, उनका राधा स्वामीमत, उनका यथार्थ प्रकाश सब मिथ्या हुआ और जब यह सब मिथ्या हैं, तो पुस्तक का नाम यथार्थ प्रकाश रखना और भी मिथ्या भाषण का दोष हुआ और आपका सुर्त शब्द योग भी असत्य ठहरा।

(३८) चूंकि 'पिण्डे सो ब्रह्माण्डे' वाला सिद्धान्त निर्विवाद है,

इसलिये रचना के तीनों अङ्ग शरीर में होने आवश्यक है। और जब निर्मल चेतन भी शरीर में आगया तो आपकी शिखर भी इसी शरीर में आगई और राधा स्वामी साहिब स्वयं भी शरीर में उपस्थित हुये। और अलख, अगम, सत्य, सुन्न, महासुन्न, ब्रह्म-लोक भी स ा आ गया और इन सब के आने से फिर यह पृथ्वी लोक मिथ्या कैसे हुआ ? यह तो निर्मल चेतन देश हो गया।

३९ और जब राधास्वामी और सब प्रत्येक शरीर में मौजूद हुए, तो आद चेतन धार अथवा किसी एजन्ट (A ent) का होना भी अनावश्यक हुआ।

४०—इसी प्रकार वह प्रत्येक सुर्त में भी होने चाहिए, क्योंकि असल पदार्थ, जिसकी सम्भाल वा देख भाल होनी व जिसे कर्म फल देना व उपकार पहुचाना है, वह सुर्त है। जब ऐसा हुआ तो यह सर्वव्यापक हो गये, एकदेशी न रहे, अर्थात किसी ऊपर के सत्य, अलख, अगम व चोटी के लोक की आवश्यक्ता न रही।

४१—अब प्रश्न यह होगा, कि एक ही शरीर वा सुर्त के अन्दर १८ पुरुषों और एक परम पुरुष की समाई कैसे, और एक ही जड़ शरीर के लिये सुर्त के होते हुए अठारह पुरुषों और एक परम पुरुष की सम्भाल की क्या आवश्यकता है। जीवात्मा के काम में यदि इनका हस्ताक्षेप होगा, तो उसका उत्तरदायित्व क्या होगा, और उसे जो कर्म फल मिल रहा है, इसकी व्यवस्था कैसी बैठेगा ?

४२—इसके अलावह "दो मुल्लाओं में मुर्गी हराम" होती है, तो इन उन्नीस शक्तियों के होते हुए वह किस प्रकार नियम में र' सकेगी। उसे तो इन शक्तियों के परस्पर के ईर्षा द्वेष में कोई पूछ ताछ न कर सकेगा। प्रसिद्ध कहावत है कि दस फकीरों का एक गुदड़ी में निर्वाह हो सकता है. परन्तु दो बादशाहों की एक ' ई

देश व राष्ट्र में समाई नहीं हो सकती। और जहां दो की जगह १९ आ धमकें, वहाँ का तो अल्लाह ही बेली है।

४३—एक सर्वथा अल्प सुर्त के लिये इतने शक्तिशाली पुरुषों की देख भाल भी केवल हास्य जनक है।

४४—जब रचने वाली शक्ति ब्रह्म मानी जाती है, वही सुर्तों को कर्म फल देता है, और मुक्ति पद की प्राप्ति भी उसी से मा ी जाती है, तो ब्रह्म से भिन्न सारे पुरुष हैं भो फ़ालतू, और जन्म मरण के बन्धन से छूटना जब ब्रह्म पद के द्वारा हुआ, तो शेष रह क्या गया जो किसी और पुरुष ने करना है।

४५—यह विचार कि मुक्ति के आगे और ऊँचा पद है, केवल मिथ्या वा स्वार्थ पूर्ण घढ़न्त है। यह सब विचार प्रगट करने वाले मनुष्य हैं, और बन्धन और मुक्ति के ही सापेक्ष शब्द इस भाव को दर्शाते हैं, कि बन्धन और मुक्ति का चक्र जारी रहता है। मनुष्य के अनुभव में इस समय बन्धन और दुःख है; अतः इससे उठने के लिये केवल मुक्ति अर्थात सुख वा आनन्द की प्राप्ति का ख्याल हो सकता है। इससे अधिक मानवीय विचार-शक्ति में कोई और ख्याल आना असम्भव है। न किसी पूर्ण आनन्द को प्राप्त किये हुए आत्मा में कोई इच्छा बाकी रहती है, न बन्धन में पड़ा हुआ आत्मा अपनी स्वाभाविक इच्छा पर नि-र्धारित मुक्ति शब्द का प्रयोग करने के बिना उस आनन्द का यथार्थ अनुभव कर सकता है। और जब मुक्ति वाले आनन्द का अनुभव नहीं तो उससे किसी बढ़िया आनन्द की कल्पना कैसे कर सकता है।

इस युक्ति की प्रबलता का जितना भी अधिक अनुभव किया जाता है, उतना ही हमारा विश्वास अधिक दृढ़ होता है, कि वह दिमाग़ जिन्होंने ब्रह्म पद व मुक्ति से परे किसी अन्य पद

व धाम वा निजपद की कल्पना की उन्होंने जान बूझ कर और बुरे भाव से ईश्वरीय प्रजा को धोखा दिया। और अपनी सांसारिक कामनाओं अर्थात् धन, यशादि भोगोंके लिये मनुष्यों की सर्व प्रकार की उन्नति और आत्म सुधार में विघ्न ही नहीं डाला, किन्तु उन्हें सर्वथा नष्ट भ्रष्ट अथवा उनकी हत्या कर देने के घोर पाप के भी भागी हुए हैं। अतः ब्रह्म वही है, जो कुल मालिक है। उससे परे वा उसके तुल्य कोई सत्ता नहीं। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक होने से एक है, और निश्चय एक है। अलख, अगमादि उसी के अनेक और गौणिक नाम हैं, और राधास्वामी आदि के कल्पित हक्क बाटे की रचना बालबुद्धि लोगों से अपना उल्लू सीधा करने के लिये है।

४६—अब देखिये सुर्तके सम्बन्ध में यथार्थप्रकाश की पेचदार वर्णन शैली। पृष्ठ ३७ भाग १ पर लिखा है—"रूहें तीन प्रकार की हैं। पृष्ठ ३ धारा तीन में तो रूह की कक्षाओं का संकेत तक न था, और वास्तव में सारे जीव स्वभाव मे एक ही प्रकार के हैं। परन्तु जिस भूल भुलैय्यां के बिना राधा स्वामी मत की विशेषता का प्रकट होना कठिन है, उसकी आधार शिला इस वाक्य में रक्खी गई है।

४७—वह कक्षाएँ कौन २ सी हैं ? "प्रथम वह जो अज़ल से माया के लेस से मुक्त थीं" यहां साहिब जी महाराज अज़ल शब्द को स्वयं न समझते हुए प्रतीत होते हैं। अज़लियत का आशय

नित्य वा अनादि होता है, अतः यदि अनादि काल में कुछ सुर्तें माया के लेस से मुक्त थीं तो वह मुक्त स्वभाव कही जानी चाहियें। और इस दृष्टिसे वह कुल मालिक के तुल्य होंगी। माया के लेस से जन्म मरण और कुलमालिक के मेल से मुक्ति होती है।

परन्तु मायाका लेस जिनमें न माना जायगा, उनकी मुक्तिके लिए भी कुलमालिक का सम्बन्ध आवश्यक न रहेगा। वह न कभी बन्धन में आईं और न उससे मुक्त हुईं। अतः स्वयं मुक्त स्वभाव हुई। परन्तु वास्तव में आप ऐसा मानते तो आरम्भ में ही अनादि सत्ताओं में उनकी भी गणना करते, अतः आप का आशय यह प्रतीत पड़ता है, कि रचना के आदि में मुक्त होनेके कारण जिनका जन्म न हो सकता था, उनको जुदा तमीज कराई जावे। यदि इस आशय को स्वीकार न किया जाये तो अनादि सुर्तों की संख्या और उनके अस्तित्व का प्रमाण देना साहिब जी महाराज का काम होगा, और यह भी बताना होगा कि ऐसी सुर्तों का वर्णन करने से उनका उद्देश्य क्या है। और यदि वह न करते तो क्या हानी होती ?

४८— द्वितीय वह जो माया के लेस से लिप्पायमान हैं, परन्तु उनके लेस आरजी है, अर्थात् एक समय दूर हो सकते हैं। यहाँ भी आशय स्पष्ट नहीं होता. आया वह सुर्तें अनादि काल से लिप्पायमान हैं, अथवा किसी विशेष समय से। यदि स्वाभाविक ऐसी हैं तो लेसका दूर होना असम्भव है, और यदि किसी निमित्त से हैं तो वह निमित्त क्या है ? अज्ञान अथवा अज्ञान युक्त कर्म व कुछ और ? यदि यही कुछ है तो स्पष्टतः ऋषियों का वचन क्यों नहीं दोहराते, कि "बन्धो विपर्ययात्" अर्थात् बन्धन विपरीत ज्ञान से होता है। और "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष मिलती है। और इस दशा में दूसरी प्रकारकी सुर्तें वह हुईं,

जिनका पूर्व कल्प के कर्मों वा लेम के अनुसार जन्म लेना आवश्यक था। वह यथार्थ ज्ञान होने पर लेम से मुक्त हो सकती हैं।

४९—तृतीय "वह जिनका लेम नित्य है।" यह किसी सुर्त के सम्बन्ध में किसी भी अवस्था में सत्य नहीं हो सकता, इसका आशय यह होगा कि एक प्रकार की सुर्तें ऐसी है, जिनको कभी मुक्ति मिलेगी ही नहीं। साहिबजी महाराज मौज से आकर एक ओर तो मुक्ति को नित्य सिद्ध करते हैं, जो असम्भव है, तथापि कई मनुष्यों के लिये प्रसन्नता का कारण तो है, परन्तु दूसरी ओर आप लेम को नित्य बताकर निराशा के अथाह सागर में अनेक सुर्तों को गिराते हैं। इसका यह तात्पर्य होगा कि सुर्तों की एक श्रेणी स्वभावत: बन्धन में है, परन्तु ऐसा हो तो जन्म मरण का सम्बन्ध न होना चाहिये, क्योंकि इसमें कुल मालिक के कर्म फल रूपी न्याय नियम का सम्बन्ध होगा और इस जन्म मरण के साथ दीर्घ काल के जन्म मरण अर्थात् मुक्ति वा बन्धन का होना भी आवश्यक होगा और अगर कभी मुक्ति हुई नहीं तो कुल मालिक से बन्धन का होना भी सत्य न होगा क्योंकि जो वस्तु सुर्त को स्वभावत: प्राप्त है, उसके लिये ईश्वर का क्या सम्बन्ध।

चो कारे बेफ़िजूले मन बर आयद।
मरा दर वै स.खुन गुफ्तन न शायद॥

जब कोई काम मेरे बिना निकलता हो तो मुझे उसमें कुछ न कहना चाहिये।

५०—पहिली कक्षा की सुर्तें रचना का प्रकाश होने पर निर्मल चेतन देश के किसी लोक में अपने निज चेतन की दृष्टि से निवास करने लगीं। दूसरी प्रकार की सुर्तों को ब्रह्माण्ड व पिण्ड देशों में अपने लेम का भुगतान करने के उद्देश्य से उतरना पड़ा, यही सुर्तें

उचित साधन करके एक दिन शुद्ध होकर निर्मल चेतन देश में प्रविष्ट हो सकती है।"

(समीक्षा) पहिली कक्षा की सुर्तें यदि स्वभाव से मुक्त हैं, तो उनके लिये किसी देश व लोक में आना जाना कैसे ? और निर्मल चेतन देश में तीन सुर्त अङ्ग के और तीन शब्द अङ्ग के लोक हैं, इन छः भिन्न २ लोकों में उनके निवास करने का क्या आशय है ? क्या वे स्वयं जानतीं या सोच विचारकर और इन लोकों की विशेषताओं को समझ कर फैसला करती हैं कि हम अमुक २ लोक के योग्य हैं, या कुल मालिक फ़ैसला करता है ? और जब महा प्रलय में इन लोकों की तमीज न थी और वह सुर्तें कुल मालिक में मुक्ति का आनन्द लेती थीं, तो उनके लिये रचना होने पर भिन्न २ लोक विभागका लाभ या उसकी आवश्यकता क्या है ? रहीं दूसरी प्रकारकी सुर्तें, वह ब्रह्माण्ड व पिण्ड देशोंमें स्वयं उतरीं अथवा कुल मालिक ने उन्हें उतारा। और ब्रह्माण्ड देशमें उतरने के अर्थ क्या ? क्या ब्रह्मपद की प्राप्ति और मुक्त आत्माओं का ब्रह्म में विचरना तो अभिप्रेत नहीं ? यदि यही है तो उनका अपने लेस का भुगतान करना केवल उन साधनों का धारण करना होगा जिनसे वह अन्त में निज पद या नित्य मुक्ति वाले राधा स्वामी धाम में पहुँच सकें। अब वह साधन क्या हैं, जो अनित्य के स्थान में नित्य मुक्ति दिलाते हैं, यह आपने किसी जगह वर्णन नहीं किया, न सार वचनादि में कहीं इनका वर्णन है ? इससे प्रकट है कि वह पद आपका मन घड़न्त है। यदि वास्तवमें कुछ होता तो वेदादिके अतिरिक्त अन्य उच्च साधनों पर प्रकाश डालने और मुक्त जीवों के एक एक करके क्रमशः छः लोकों की मञ्जिलें तै करने तथा साधनादि का विस्तृत वर्णन होता और यदि ब्रह्माण्ड देश वाली सुर्तें मुक्त आत्मायें नहीं तो इस रचना के महा प्रलय में आने पर जो

सुतें मुक्ति पा चुकी थीं पर निज धाम में न पहुँची थीं उनका डेरा किस लोक में हुआ। और ब्रह्माण्ड देश में उतरने वाली सुर्तों का वृत्तान्त पृथक् बताना चाहिये था।

५०—तीसरी प्रकारकी सुर्तों का चेतन चूँकि निकृष्ट है, इस-लिये वह सदा ब्रह्मण्ड व पिण्ड देशों के लोकों में चक्कर लगाती रहेंगी। प्रलय होने पर पिण्ड देश ब्रह्माण्ड में और महा प्रलय होने पर पिण्ड व ब्रह्मण्ड दोनों काल पुरुप में समा जाते हैं, और पुनः रचना का आरम्भ होने पर फिर प्रगट हो जाते हैं। इन देशों के अन्दर स्थाई रूप से निवास करने वाली सुर्तें भी प्रलय व महा प्रलय के समय अपने देशों के पुरुषों में समा जाती हैं, और पुनः रचना होने पर प्रकट होकर अपने लोकों में निवास धारण करती हैं।

(आर्य)—यह न्यून चेतन सुर्तें सदा ब्रह्माण्ड व पिण्ड देशोंमें चक्कर लगाती रहेंगी इनकी कभी मुक्ति नहीं होगी, यह दण्ड उनके लिये किसने और क्यों नियत किया? क्या ऊँचे शिखर पर विराज-मान राधास्वामी साहिब उनके लिये दयाल नहीं रहे? फिर पृष्ठ ३६ धारा ५४ पर तो आपने यह लिखा कि "सुर्त एक अनादि पदार्थ है, अर्थात् यह सदा से है, इसका कोई आदि नहीं, अलबत्ता रचना से पूर्व सब सुर्तें कुल मालिक में लीन थीं जैसा कि कहा है:—

सुन सुर्त तू अपना भेद। तू थी हममें सदा अभेद॥

परन्तु यहाँ यह लिखते हैं कि इन देशों के अन्दर स्थाई रूप से निवास करने वाली सुर्तें भी प्रलय व महा प्रलय के समय अपने देशों के पुरुषों में समा जाती हैं।"

क्या यह परस्पर विरोध नहीं? कुल मालिक में लीन होना और अपने अपने देशों के पुरुषोंमें समा जाना एक बात नहीं हो सकती। और यदि आशय यह है कि चूंकि वह पुरुष कुल मालिक में लीन

होते हैं, अतः उनमें लीन हुई सुर्तें भी कुल मालिक में ही लीन हैं तो इस अवस्था में नई रचना के समय आद चेतन धार से वह पुरुष ज्यों के त्यों निकलने चाहियें। आद चेतन धारमें उनका रचा जाना सत्य नहीं हो सकता। साथ ही यह देश व लोक भी अनादि होंगे, केवल तीन पदार्थ अनादि न रहेंगे।

५१—राधास्वामी भाई कहता है कि न्यून चेतन वाली सुर्तों से आशय माया का है, इसलिये इसका मुक्त होना नहीं कहा है। पृष्ठ ४७ पर साहिब जी महाराज फ़रमाते हैं"—उचित समय आने पर कुल मालिक की शक्ति की धार प्रकट हुई तो उसके प्रभाव से असंख्यात सुर्तें निद्रा, प्रसुप्त अवस्था से जाग्रत अवस्थामें आगईं। परन्तु ऐसी भी असंख्यात सुर्तें थीं जो माया के आवरण के कारण उस समय जाग्रत न हो सकीं। प्रश्न होता है कि उस समय माया कहाँ से आ गई। उस समय तो कुल मालिक के अतिरिक्त कुछ न था? उत्तर यह है, कि माया भी न्यून दर्जे का चेतन द्रव्य ही है। रचना के पूर्व यह द्रव्य भी कुल मालिक के अन्दर लीन था।"

(आर्य)—निस्संदेह माया (प्रकृति) की मुक्ति नहीं कही जा सकती, परन्तु प्रश्न यह है कि वैदिक धर्मी जिसे प्रकृति कहते हैं, उसमें और इस न्यून चेतन जौहर में क्या भेद है? और ब्रह्माण्ड पिण्ड देशों में न्यून चेतन के सदा चक्र लगाने और प्रकृति के कार्य और कारण अवस्था में चक्र लगाने में क्या भेद है? यदि कुछ भेद नहीं है, तो न्यून चेतन की नवीन संज्ञा घड़ने के क्या अर्थ? गुण वही, कर्म वही, परन्तु अपने निरालेपन का आडम्बर दिखाने के लिए, येन केन प्रकारेण टेढ़ेपन से काम लेना इसके अतिरिक्त क्या सिद्ध करता है कि "कुछ तो है जिसकी परदादारी है।" जैसा पृष्ठ ३ धारा दो में स्पष्ट वर्णन हो चुका कि स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति और सुर्तें यह तीन जौहर मनुष्य शरीर में हैं तो फिर स्थूल

और सूक्ष्म प्रकृति के स्थान में न्यून चेतन द्रव्य कहना और उस को सुर्त का विशेष लक्षण बताना केवल पाठकों को चक्कर में डालना है।

रहा टेढ़ा मिसाले नेशे कज़दुम-
इस अजगर को कभी सीधा न पाया।

५२—परन्तु उपरोक्त भाव को सत्य मानने में एक बाधा है; माया को न्यून चेतन द्रव्य कहा है और पिण्ड व ब्रह्माण्ड देश में चक्र लगाने वा स्थायीरूप से निवास करने वाली हैं सुर्तें, और सम्भव है कि इसकी और व्याख्या कर दी जावे, अतः इन सुर्तों के सम्बन्ध में यह प्रश्न ज्यों का त्यों बना है कि इन का सदा पिण्ड व ब्रह्माण्ड देशोंमें चक्र या स्थिर निवास क्यों रहेगा, और इनमें से जो सुर्त शरीर धारण किये राधास्वामी सत्संग में प्रविष्ट हैं उन्हें निज धाम में गति प्राप्त होना तो असम्भव है, अतः उनके साधन करने से क्या लाभ ?

५३—यह प्रश्न भी विचारणीय है, कि तीन प्रकार की सुर्तों में जो परस्पर भेद है, वह स्वाभाविक है, या नैमित्तिक। यदि स्वाभाविक है तो कुल मालिक के साथ तीन प्रकार की सुर्तें, तथा सूक्ष्म व स्थूल प्रकृति अर्थात् छः पदार्थ मानने होंगे या अठारह लोकों के अठारह पुरुष। तीन प्रकार की सुर्तें तथा सूक्ष्म व स्थूल प्रकृति अर्थात सब तेईस पदार्थ अनादि मानने होंगे। और यदि नैमित्तिक है तो सुर्त एक ही प्रकार की होगी, तीन प्रकारकी नहीं। क्योंकि एक ही प्रकार की सुर्तों में अनेक निमित्तों वा कारणों से सुर्तों की अवस्था में नाना प्रकार का भेद हो सकता है।

दूसरा प्रश्न यह है, कि पहले प्रकार की सुर्तों ने तो अब बन्धन में आना नहीं, और मुक्ति उनकी हो नहीं सकती। और तीसरी प्रकार की सुर्तों को मुक्ति कभी मिलनी नहीं। इस अवस्था

में राधास्वामी धाम के लिये केवल दूसरी श्रेणी की ही सुर्तें प्रयत्न करेंगी। परन्तु वह सुर्तें ब्रह्माण्ड व पिण्ड देशों में ब्रह्म पुरुष के आधीन हैं। और उसकी प्राप्ति के लिये चाहिये ओ३म का जप, अष्टांग योग का पालन या वेद का स्वाध्याय और वेदानुकूल आचरण। यह सब कुछ इन भले लोगों ने दिया है छोड़, तो इनका बनेगा क्या? निश्चय कल्पित राधा स्वामी धाम के स्वप्नों ने न इन्हें घरका रहने दिया है और न घाट का। यदि वह चाहेंकि वह क्रमशः ऊपर के लोकों को प्राप्त हों तो प्रथम तो उन्हें वेदादि सत्य शास्त्रों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना और वेदानुकूल आचरण करके दिखाना चाहिये, तब कहीं ब्रह्म और उसके पीछे क्रमशः ऊपरके लोकोंको प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु इस अवस्थामें जो पुरुष स्वयं राधास्वामी पद से नीचे गिर चुके, वह औरों को वहां कैसे पहूँचा सकते हैं। पृष्ठ २४ पर आप स्वयं लिखते हैं "इस समा जाने के व्यवहार को महा प्रलय कहते हैं।" चूँकि इसकी सृष्टि की सामग्री स्वयं निकृष्ट गतिशून्य तथा जड़ है, और इसकी सृष्टि के सब रूप रंग जीवात्मा या सुर्त के ही आश्रय स्थित हैं, इसलिये स्वभावतः उस पुरुष की यही कोशिश है कि कोई सुर्त उसकी सीमा के पार न जाने पावे।" अतः प्रत्येक लोक का पुरुष अपने लोक की सुर्तों की उन्नति के मार्ग में विघ्नकारी है। और सुर्त के लिये ऊपर के लोक में जाना असम्भव है, जबतक कि सुर्त अपने लोक के पुरुष से अधिक शक्तिशाली न हो, अथवा बहुत सी सुर्तें परस्पर में संधि करके उस पुरुष को युद्धमें पराजित न करें।

५४—एक विधि अलबत्ता इस प्रकार उन्नतिकी होसकती है, जो यह है कि चोटी के धाम अर्थात् राधा स्वामी नाम परम पुरुष को मान लिया जाये प्रिन्सिपल और अठारह अन्य स्थानों के पुरुषों को बना दिया जाय वाइसप्रिन्सिपल प्रोफेसरादि। उनकी वार्षिक वा

नियत समय की परीक्षा शैली को लक्ष रखकर उत्तीर्ण, अनुत्तीर्ण होने की मर्यादा मान ली जाये. और इस प्रकार क्रमानुगत उन्नति करते २ राधा स्वामी धाम पहुँचने पर विश्वास किया जावे परन्तु इस विश्वास की दृढ़ता के लिये परमावश्यक होगा कि कुल अठारह श्रेणियोंकी नियमावलि (Prospectus),उनकी पाठविधि, शिक्षा प्रणाली, समय विभाग तथा परीक्षण शैली का पूरा २ ज्ञान हमारे सामने हो। चूँकि ऐसी कोई उत्तम स्कीम इस मत का कोई आचार्य आज तक पेश नहीं कर सका, उल्टी यहां यह कठिनाई है कि शिक्षा व विद्या के विचार मात्र से ही सन्तों का अपमान व तिरस्कार समझा जाता है, शिक्षा का नाम आया नहीं कि राधास्वामी साहिब लठ लेकर उसके पीछे पड़े नहीं कि चली जाय यहां से,

हे विद्या तू बड़ी अविद्या। सन्तन की तैं कदर न जानी॥

अतः कपोल कल्पित लोकों का सन्दिग्ध सा वर्णन अन्धविश्वासी मनुष्यों के बिना किसी विचारवान पुरुष के लिए स्वीकार करने योग्य नहीं है, न इससे किसी की सुर्त का यथार्थ कल्याण हो सकता है न अविद्या और दुःख में वृद्धि होने के बिना इसका और कोई परिणाम हो सकता है।

सर्ग ८

काल पुरुष और ब्रह्म का कर्ता राधास्वामी

५५—प्रथमाध्याय में हमने बताया था, कि राधास्वामी मत की तालीम से "सच्चा मालिक, ब्रह्म, ईश्वर, सब की एक ही सत्ता सिद्ध होती है। उसी को राधास्वामी नाम दिया गया है। हमारा अब भी यही कहना है, कि यथार्थ प्रकाश से इसके बिना कोई

युक्त परिणाम वा सिद्धान्त निकलना असम्भव है। तथापि "राधा स्वामी मत और नास्तिकता" के लेख में इससे भिन्न प्रकार का आशय निकलता है! नास्तिकता के दोष से बचने के वास्ते आप पृष्ठ २६४ पर उत्तर रूप से लिखते हैं, "यहाँ राधास्वामी से मुराद यह स्वरूप स्वामी जी महाराज नहीं हैं। बल्कि कुल मालिक राधा स्वामी दयाल हैं।" कुल रचना इसी एक त्रिलोकी पर खतम नहीं है, जिसमें हमारी पृथ्वी क़ायम है, बल्कि रचना में अनेक त्रिलोकियाँ हैं। और हर त्रिलोकी के जुदा जुदा ब्रह्म व ईश्वर हैं और यह सब ब्रह्म व ईश्वर सच्चे कुल मालिकके पैदा किए हुए हैं।

आप ब्रह्म वा ईश्वर को ही परमात्मा अर्थात कुल मालिक मानते हैं लेकिन पिछले सफ़ों में यह मुफ़स्सल बयान हो चुका है, कि सच्चे मालिक का धाम ब्रह्म पद के बहुत आगे है। इस लिये अगर यह बताया गया कि सच्चे कुल मालिक ने अनेक त्रिलोकियां और त्रिलोकी नाथ पैदा किये, तो क्या गज़ब हो गया?"

धारा २१४ पृष्ठ २५२ में कृष्ण निन्दा के दोष का उत्तर देते हुए राम और कृष्ण तथा रामायण और महाभारत का अलङ्कार के रूप में वर्णन किया गया है यह शब्द विचारणीय हैं—

"चूंकि इन (मन और कृष्ण) को पर ब्रह्म पद से आगे सन्तों के धाम अर्थात् सत्य देश का भेद नहीं मिला इसलिये कृष्ण जी का नाम काल हुआ (११) जब तक इन्सान की सुर्त सत्य देश में रसाई हासिल न करेगी वह काल के दखल अर्थात ब्रह्म की हुकूमत के मातहत रहेगी (१२) इसलिये सतगुरु समझाते हैं, कि तुम कृष्णद्वार यानी परब्रह्म पद से आगे बढ़ो। (१३) आगे चलकर संतों का बतलाया हुआ रास्ता ग्रहण करो, यह रास्ता ऊंची धार अर्थात् ऊंचे मुकाम से आने वाली धार पर मुश्तमिल हैं। (१४) सन्त दया

करके त्रिलोकी के आगे चौथे धाम की खबर देते हैं, सन्त मत की इस्तलाह में इस मुकाम को सत्त नाम पद कहते हैं।

(आर्य)—प्रथम तो राधास्वामी दयाल की सत्ता कल्पना मात्र है। प्रतिज्ञा व शब्द मात्र के बिना इसमें कोई प्रमाण नहीं। दूसरे आप अनेक बार स्वयं लिख चुके हैं, कि यह भिन्न २ नाम केवल एक ही कुल मालिक की दिव्य शक्तियों वा गुणों के नाम हैं। पृष्ठ २०६ काल व दयाल के लेख वाले शब्द ही याद कीजिये कि "कुल मालिक अनन्त व अपार चेतनता, प्रेम व आनन्द का अथाह सागर है। उसके अन्दर बहुत सी दिव्य शक्तियां हैं जिनके जिम्मे रचना सम्बन्धी काम हैं। उन्हे पुरुष कहते है। और इसी अर्थ में कुल मालिक को परम पुरुष कहते हैं। इन पुरुषों मे एक पर ब्रह्म पुरुष है। उसके जिम्मे ब्रह्माण्ड व पिण्ड की रचना की पैदायश व सम्भाल है।" अतः कुल मालिक ने ब्रह्मादि को उत्पन्न नहीं किया न ब्रह्म व ईश्वर अनेक हैं, गुणी गुण के साथ हैं। और शक्ति शक्तिमान के साथ है।

तीसरे—तृतीय भाग पृष्ठ २७२ पर आपने यह भी लिखा है—"कुल मालिक म काल व दयाल अर्थात् उत्पत्ति करना और उत्पत्ति की उलझन से मुक्त रहने के दो भिन्न २ गुण है, तो फिर किसी का यह मान लेना कि सृष्टि से कुल मालिक के इन गुणों का दो पुरुषों के रूप में प्रकाश हो रहा है, और उसका इन दो पुरुषों का काल व दयाल के दो भिन्न २ नाम रखना सनातन धर्मी भाईयों के दिल को क्यों दोभर गुज़रता है।"

इस पर भी यदि आप अनेक ब्रह्म और ईश्वरों का पैदा होना मानते हैं, तो आपको निश्चित रूप में कहना चाहिये, कि कितने ब्रह्म और ईश्वर पैदा हुए? कुल मालिक कौन सा काम स्वयं न कर सकता था, कि जिसके लिये इन्हें पैदा करना पड़ा। तथा यह भ

बताना होगा कि वह कब । कहां, और काहे से पैदा हुये ? क्योंकि जहां उत्पत्ति की घटना का वर्णन होगा, वह एक ऐतिहासिक विषय होगा। और उसको ऐतिहासिक दृष्टियों से सिद्ध कर दिखाना ही मुद्दई का कर्तव्य होगा। और यदि समय, स्थान और कारण आदि किसी का प्रमाण न होगा, तो प्रतिज्ञा केवल एक बड़ हांक देना मात्र ही समझी जावेगी। इसके अतिरिक्त यह मानना कि ब्रह्माण्ड की रचना व सम्भाल ब्रह्म के जिम्मे हैं, आपको इस बात का उत्तरदाता ठैहराता है कि ब्रह्म की कुल मालिक ने अमुक आर्डर व प्रमाण के द्वारा रचना के प्रबन्ध पर नियुक्ति की, और अमुक समय की। उसके कर्तव्य, उन कर्तव्यों को पालन करने के साधन, उसके अधिकार, इन अधिकारों तक उसका सीमित रहना, कर्तव्य के पालन तथा अपने अधिकार के अन्दर रहने पर कुल मालिक से उसे कभी पारितोषिक वा नियत नियम भंग करने पर दण्ड का मिलना आदि कोई बात तो स्पष्ट तौर पर दिखाई होती। इसके अलावह जब एक भी सत्संगी वा आचार्य इस मत में ऐसा मौजूद नहीं, जो ब्रह्मपद या मुक्ति का प्राप्त किये हो अथवा मुक्ति का अधिकारी हो, तो ब्रह्मपद से परे के लोकों का अनुभव किस प्रकार हो सकता है। और ब्रह्मपद से परे के लोकों का वर्णन गप्प व मिथ्या होने के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। जब किसी ने ब्रह्मपद वाले आनन्द को प्राप्त नहीं किया तो उसका यह कहना किस प्रकार माना जा सकता है कि उस आनन्द में कुछ त्रुटि है, जिसकी पूर्ती के लिये ब्रह्म से गुजर कर अधिक आनन्द देने वाली सत्ता का होना अथवा उसकी तलाश आवश्यक है।

५६—काल नाम ब्रह्म का साहिब जी महाराज ने माना है, जो आपके इन शब्दों से प्रकट है—

"ऊपर किसी मज़मून में ज़िक्र आया है कि महा प्रलय होने पर पिण्ड व ब्रह्माण्ड दोनों काल पुरुष में समा जाते है।" यहां प्रश्न होगा, कि काल पुरुष कौन है ? इसका उत्तर साहिब जी महाराज यूँ देते हैं—

"इन पुरुषों में एक परब्रह्म पुरुष है, इसके जिम्मे ब्रह्माण्ड व पिण्ड की रचना को उत्पत्ति और सँभाल है। चूँकि इसको सृष्टि की आयु सीमित है, और समय आने पर इसकी सृष्टि का विनाश हो जाता है, इसलिए उस पुरुष को काल पुरुष भी कहते हैं।"

यहां स्पष्ट स्वीकृत है कि काल नाम भी विशेष गुणों के कारण ब्रह्म का है। क्या इससे स्पष्ट प्रकट नहीं होता, कि ब्रह्म चूँकि अनन्त है और अपार है, इन्द्रियों व मन इत्यादि का विषय न होने से इनकी पहुँच से परे है, उसकी महिमा लेखन कला की सीमा में नहीं आ सकती, इसलिये वह अलख व अगम है। पृथक् लोक अलख, अगम नहीं हैं, और जब यह लोक न रहे तो राधास्वामी का आप ही अभाव हो गया।

५७—आपने राधास्वामी मत की शिक्षा में रूह (आत्मा), परमात्मा या कुलमालिक. सूक्ष्म परमाणु और स्थूल परमाणु को स्वीकार किया है। अगर ब्रह्म इत्यादि को पृथक् मानते तो उनका भी वहां वर्णन करते। सूक्ष्म प्रकृति की दूसरी अवस्था अर्थात् स्थूल का वर्णन हुआ, तो चाहे कुलमालिक की दिव्य शक्तियां या गुण कहें चाहे पृथक् सत्तायें उनके भी नाम अवश्य होना चाहिए। न केवल यह, अनेक अन्य प्रमाणों से विदित होता है, कि एक ही उच्च शक्ति से भिन्न जीव और प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाली अन्य कोई सत्ता नहीं।

ब्रह्म या काल पुरुष के प्रकरण में है, कि "(१) ब्रह्माण्ड व

पिण्ड की सारी सृष्टि जो त्रिगुणात्मक है, इसी पुरुष के आधार पर स्थित है। (२) और उसकी सृष्टि की सामग्री स्वभाव से न्यून गति शून्य अथवा जड़ है, अर्थात् जगत् के सब रूप रंग आत्माओं के आश्रय स्थित हैं।"

इससे सिद्ध है कि सृष्टि का मूलाधार ब्रह्म कार्य जगत के रूप रंग का आश्रय है। आत्मा और तीन गुण वाली जड़ प्रकृति यह सृष्टि के आवश्यक अंग हैं, और ब्रह्म से भिन्न किसी और का जगत् पर शासन नहीं। आपने ब्रह्म से परे की कल्पित सत्ताओं के बिना राधास्वामी मत का ढांचा क़ायम रहने से सर्वथा निराश होकर पेचदार लेख शैलीमें जहां ब्रह्मके गुणोंको पृथक् पुरुष का नाम दिया है, वहां ब्रह्म से गुप्त और प्रकट की दो अवस्था भी जोड़ दी हैं। ब्रह्म व काल पुरुष को अविनाशी मानते हुए भी आपने लिखा है, "लेकिन कुछ मुद्दत जागता है और कुछ मुद्दत सोता है। इसके जागने के समय को इसका दिन और इसके सोने के समय को इसकी रात्री कहते हैं।" आपका आशय शायद यह है कि ब्रह्म सोयेगा तो उसे जगाने वाला कुलमालिक राधास्वामी दयाल भी माना जायेगा, परन्तु कठिनता यह है, कि जब शरीर का आत्मा स्वप्न और सुषुप्ति में भी जागता है, तो जगत् की संभाल वाला ब्रह्म या परमात्मा किस प्रकार महाप्रलय में सो सकता है। और जब इसका नाम कालपुरुष मानते हो, तो क्या पैदाइश और क्या महाप्रलय, दोनों अवस्थाओं में काल का सम्बन्ध हो सकता है। ब्रह्मदिन और ब्रह्मरात्री दोनों में ब्रह्म ज्यों का त्यों है, और वही कालपुरुष है। अतः सोने और जगने का सम्बन्ध कैसा ?

५८—पर ब्रह्म को केवल कालपुरुष ही नहीं कहते, अकाल पुरुष भी कहते हैं। गुरु नानक साहिबके आप प्रमाण देते हैं, परन्तु वह सब से प्रथम तथा प्रसिद्ध वचन में उसे सत्तनाम, कर्ता पुरुष,

पीछे अकाल मूर्त कहा है। चूँकि वह काल के बन्धन से मुक्त है, इस लिए वह अकाल है। फ़ारसी व अरबी में इसे लाज़मान कहा है। अतः ऐसे नामों का प्रकरणानुसार विचाराधीन गुण की दृष्टि से प्रयोग होता है। इससे पृथक पुरुष या ऊँचे नीचे स्थान या पदों का सम्बन्ध नहीं। एक मनुष्य कहता है कि बिना प्रकृति के कुछ नहीं हो सकता, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, समुद्र सब प्रकृति से बने हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं, कि ईश्वर और जीव से इंकार है। दूसरा कहता है, सबसे आवश्यक रचना मे आत्मा है। यदि यह न हो, तो कुल सामग्री को कौन भोगे, और किसके लिए परमात्मा इन्हें रचे, या किसे कर्मफल देवे ? इसका यह तात्पर्य नहीं कि ब्रह्म और जीव कुछ सत्ता नहीं रखते। तीसरा मनुष्य कहता है, कि असली सत्ता तो एक ब्रह्म की है, उसके बिना कुछ नहीं हो सकता, कर्ता न हो तो क्रिया कैसी, और कौन प्रकृति से जगत को रचे, कौन जीवों को कर्मफल दे। अतः ब्रह्मको ही मानना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि जीव और प्रकृति अनावश्यक है। चौथा पुरुष कहता है, ज्ञान ही ज्ञान की महिमा है। बिना ज्ञान के रचना नहीं हो सकती, बिना ज्ञान के मनुष्य कर्म नहीं कर सकता, न इसके बिना सुख हो, न मुक्ति। एक महान पुरुष कहता है, ज्ञान क्या वस्तु है, इसकी रचना तो शब्द कर रहा है। बिना शब्द के इसका प्रकाश नहीं हो सकता, अतः शब्द ही से सृष्टि रची जाती है। इसलिए असल शब्द ही है। जिस प्रकार इनमें से कोई भी ब्यान दूसरे ब्यानों की महत्ता को स्वीकार नहीं करता, उसी प्रकार इनमें से कोई भी ब्यान दूसरे ब्यानों को मिथ्या व निःसार सिद्ध नहीं करता और सबके मिलाने से कहा जा सकता है, कि ईश्वर, जीव, प्रकृति, ज्ञान, शब्द सब आवश्यक हैं। यही हाल काल शब्द का है। आपने अथर्व वेद के कुछ मन्त्रों

के पं० राजाराम वाले अनुवाद के शब्द दिये हैं जिनका भाव यह है, कि काल ने जीव को उत्पन्न किया, काल ने सृष्टि को रचा, काल में सूर्य तपता है, काल में सब जीव हैं, काल में तप है, काल सबका मालिक है, काल ही परमदेव है। परन्तु यह सब हर समय ब्रह्म पुरुष के लिये नहीं लग सकते। समय, अर्थात् भूत भविष्यत और वर्तमान के तीन अंगों वाली कल्पित सत्ता, जिसका कार्य जगत् से सम्बन्ध है, उसे भी काल कहा जाता है। अतः ब्रह्म, सत्य, अलख, अगमादि नामों से प्रकरण अनुकूल जो अर्थ हो, उसका ग्रहण करना चाहिये, अपने कल्पित धाम व पद का नहीं।

५९—मन बहलाव अथवा हंसी आदि की बात चीत वाले लतीफ़ों से भी अनेक अवसरों पर बड़ी सूक्ष्म सचाइयाँ सिद्ध होती हैं। "दीवाना अपने काम में हुशियार है" इस लोकोक्ति के अनुसार एक गवाह का उदाहरण दिया जाता है कि एक पुरुष और स्त्री के परस्पर के अनुचित सम्बन्ध की तहक़ीक़ात में वह सारे सच्चे पते लिखाता है। मकान, समय, दोनों की विद्यमानता, उनका परस्पर की बात चीत आदि सब कुछ बयान करके एक पक्ष का घर पूरा कर चुकता है तो दूसरे पक्ष से लिये हुए टकों का बदला देने की सोचता है, और ज्योंही प्रश्न होता है, अच्छा! इसके पश्चात् क्या देखा? उत्तर देता है, "बस जनाब फिर तो मेरी आँख खुल गई" अब यह शब्द उसकी सारी शहादत को केवल एक स्वप्न के रूप में परिवर्तित कर देते हैं।

यह लतीफ़ा यथार्थ प्रकाश के प्रायः प्रत्येक लेख पर उचित रूप से लागू होता है। हर एक विषय वेद शास्त्र का लिया जाता है। परन्तु शब्दों वा परिभाषाओं का प्रकरण विरुद्ध प्रयोग करने पर भी वैदिक सिद्धान्तों का महत्व इससे छिप नहीं सकता, तो झट

रूस बदल कर आप उस पर संत मत की छाप लगा देते हैं। उदाहरण रूप में "काल दयाल" विषय में आप के ही लेख से वेदोक्त ब्रह्म के गौणिक नामों की महिमा सिद्ध होती है तो आप उसके साथ ऐसे प्रमाण जोड़ने लगते हैं जिनमें काल शब्द समय आदि के लिये प्रयुक्त होता है। और साथ ही सार वचन की एक अयुक्त सी युक्ति लिख कर वैदिक धर्म पर चोट करते हैं।

काल मत वेदान्त का सन्तन कहा बताए।
सत्त नाम सतपुरुष का भेद रहा अलगाए॥

हम कहते हैं वेद में या वेदान्तदर्शन में कहीं कालमत का शब्द दिखाइये? आप कहेंगे यह नाम सन्तों ने रक्खा है। हम कहते हैं, सबसेबड़े सन्त गुरू नानक जी ब्रह्म के लिये एक ओंकार, सत्त नाम, कर्ता पुरुष और अकाल मूर्त कहते हैं, वैदिक धर्म को कहीं काल मत नहीं कहते। और यदि ईश्वर का नाम काल होने से इस धर्म को काल मत कहते हो तो कालरहित होने से इस धर्म को अकाल-धर्म क्यों नहीं कहते और शब्द की महिमा से शब्द मत क्यों सन्तों ने इसका नाम नहीं रक्खा? और यदि वह इसे सन्त मत कह दें तो राधास्वामी मत का अस्तित्व क्या रहेगा। इसी प्रकार सत्तनाम, सत्तपुरुष का भेद अलग कहना भी व्यर्थ है, क्योंकि सत्य नाम, सत्य पुरुष आदि सब शब्द वैदिक धर्मियों के हैं, और उनके अर्थ को वैदिक धर्मियों से भिन्न प्रकार से कथन करना ठीक हो नहीं सकता। राधास्वामी मत वालों ने अपने किसी एक भी नवीन शब्द की रचना नहीं की और ब्रह्म, सत्य नाम, सत्य पुरुष को कभी किसी वैदिक धर्मी ने भिन्न २ पुरुषों के लिये प्रयुक्त नहीं किया। और यदि कोई ऐसा करे तो वह उसी दोष का भागी है जो अनुचित प्रकार से प्राप्त हुई वस्तु की पहचान सम्बन्ध। सभा-

बना को मिटाने के लिये उस पदार्थ के रूप को बदलने वाला मनुष्य करता है।

सर्ग ९—नित्य मुक्ति का प्रलोभन

६०—साहब जी महाराज ने मुक्ति के विषय में बहुत मतभेद प्रगट किया है। आप मुक्ति से पुनरावृत्ति को नहीं मानते। राधा स्वामी तक पहुँचना ही आप के मत में नित्य मुक्ति का प्राप्त करना है। भाग १, पृष्ठ ७, धारा १५ में आप फ़रमाते हैं:-"आला तबक़ों की रूहानी आवाज़ों की मदद से वह (रूह) दर्जा बदर्जा दरमियानी मनज़िल तै करती हुई एक दिन रूहेकाइनात के मरकज़ याना सच्चे कुल मालिक के हुज़ुर में बारयाब हो जाती है। राधा स्वामी मत की यही आख़री मनज़िल है और इस मनज़िल पर पहुंचने ही को परम गति या सच्ची मुक्ति की प्राप्ति कहते हैं। इस मनज़िल पर पहुँचकर किसी रुह (सुर्त) को दोबारा सँसार में नहीं आना पड़ता। यह मुकाम लाफ़ानी है और वहां का क़ियाम भी अबदी है।"

पृष्ठ ३५, धारा ५२ में रचना के तीन बड़े और अठारह छोटे दर्जों का वर्णन करके लिखा है—

"राधा स्वामी धाम निर्मल चेतन देश का चोटी का मुकाम है। चूंकि निर्मल चेतन देश में प्रलय व महाप्रलय का गुज़र नहीं है, इसलिये उसके सब लोक लाफ़ानी यानी अविनाशी हैं। गोया यहां की रचना का आद है अन्त नहीं है। इस देश के किसी मुकाम पर पहुँच जाने पर रूह को अबदी नजात हासिल हो जाती है यानी एक बार पहुँच जाने पर रुह को किसी निचले मुकाम पर

वापस आना नहीं होगा।"

आर्य्य—यह नित्य मुक्ति का शब्द केवल सब्ज़ बाग़ है। अंध-विश्वासी लोग चाहें सो हवाई-महल बनाएं। राधा स्वामी मत की शिक्षा के अनुसार नित्य कहां अनित्य मुक्ति भी किसी राधा स्वामी को मिलनी असंभव है, जैसा कि निम्न लिखित हेतुओं से सिद्ध होता है।

१—राधा स्वामी धाम केवल एक कल्पित एवं अवास्तविक स्थान है। युक्ति प्रमाण शून्य प्रतिज्ञा तथा अन्ध विश्वास के अतिरिक्त इसका कोई अस्तित्व नहीं।

२—यथार्थ प्रकाश मे ही माना हुआ है कि ब्रह्म ही सृष्टि रचता तथा इसकी सम्भाल करता है और ब्रह्म पद की प्राप्ति का नाम मुक्ति है, पर वह मुक्ति नित्य नहीं। हम पूछते हैं क्या अनित्य मुक्ति राधा स्वामियो को मिल चुकी है और नित्य मुक्ति का पद ही बाक़ी है। उत्तर होगा अनित्य मुक्ति भी तो अभी नहीं मिली। हम कहते हैं ऐसी अवस्था में नित्य वा अनित्य मुक्ति की पृथक पृथक कल्पना ही किसी प्रकार नहीं हो सकती।

३—साहिब जी महाराज भाग २, पृष्ठ २५७ पर लिखते हैं:—

अगर किसी मनुष्य को सन्त मत की बात पसन्द ही नहीं तो ज़्यादा से ज़्यादा उसकी यह पोज़िशन होनी चाहिये कि पर ब्रह्म पदसे रसाई हासिल करने तक अपना फ़ैसला मुलतवी रक्खें क्योंकि पर ब्रह्म पद तक तो रास्ता तथा मनज़िलें शामलात हैं और राम, कृष्ण, ब्रह्म, तथा पर ब्रह्म पद को जो हिन्दु शास्त्रों में दरजा दिया गया है उससे सन्त मत को इन्कार नहीं है।"

इससे स्पष्ट है कि नित्य वा अनित्य मुक्ति का झगड़ा व्यर्थ है। पहिले आर्य्यों और राधा स्वामियों या सब हिन्दुओं को ब्रह्म से प्राप्त होने वाली मुक्ति के लिये मिल कर यत्न करना चाहिये।

क्योंकि ब्रह्मपद वाली मुक्ति के पश्चात ही यह जाना जा सकता है कि यह अन्तिम मनजिल है अथवा हम अभी मार्ग में ही हैं। इस मुक्ति तक फ़ैसला स्थगित करने का जो आदेश किया गया है उस पर स्वयं साहब जी महाराज वा उनके सत संगियों को ही आचरण करना चाहिये क्योंकि आर्य्यों और हिन्दुओं का परिमित मुक्ति का सिद्धान्त तो आपके लिये भी समान रूप से आचरणीय हैं। विलक्षणता आपके मन्तव्य में है और वह आपके प्रस्ताव के अनुसार इस समय मुलतवी रखने योग्य है।

४—इसी नियम के अनुसार यह मन्तव्य भी स्थगित होना चाहिये कि राधा स्वामी दयाल की आद चेतन धार में रचना का ज्ञान तथा सामग्री थी इसी के द्वारा ब्रह्म ने रचना की, क्योंकि ब्रह्म का प्रकृति से सृष्टि रचना दोनों पक्षों को स्वीकार है, और उस सामग्री के ब्रह्म में होने अथवा आद चेतन धार से सामग्री ब्रह्म को मिलने की दोनों बातों में से कोई भी मानें, रचना में फ़र्क नहीं पड़ता।

५—ब्रह्म को माना जाता है इस रचना को देख कर अथवा आत्मा में उसका योग द्वारा दर्शन करने से। यदि ऋषि लोग इससे परे कुछ जान नहीं सके और वास्तव में इससे परे कोई सत्ता है तो आर्य्य समाज ऐसा सिद्ध होते ही सत्य को ग्रहण करने के नियमानुसार इसे स्वीकार करेगा। परन्तु राधा स्वामी सत्संगी ब्रह्मपद तक भी नहीं पहुँचे तो उससे परे का परिचय क्या करा सकते हैं और यदि कोई परे पहुँचे भी तो भी इस पृथ्वी के मनुष्यों तक वह इसका कोई सबूत नहीं पहुंचा सकता, कारण यह कि राधा स्वामी निजधाम में पहुंच कर कोई वापस नहीं आता। यह सर्वोच्चधाम तो क्या, निर्मल चेतन देश के किसी निचले स्थान पर पहुंचने का अर्थ भी नित्य मुक्ति की प्राप्ति और लौटने

की असंभवता है। अतः ब्रह्म के लिये जहां इस रचना की, योगी जनों की, मुक्ति से लौटने वाले जीवों तथा राधा स्वामी गुरु सब की साक्षी है वहां राधा स्वामी दयाल के लिये कोई प्रमाण नहीं मिलता।

६—इन सब युक्तियों के विरुद्ध हमारे भाईयों का विश्वास है कि श्रीस्वामी शिवदयालसिंह जी राधा स्वामी दयाल का अवतार थे। हम पूछते हैं, यह आपने कैसे माना, उस दयाल के निज धाम का दर्शन आपने किया नहीं, उसे आप माया से अलग मानते हैं। ब्रह्म लोक से उसे सर्वथा परे मानते हैं ब्रह्म लोक तो कहां, सत्त, अलख, अगम लोकों में भी वह चोटी के निजधाम को छोड़ कर नहीं आता तो यह कैसे माना जा सकता है कि एक दम वह सब १८ लोकों में से निचले और मलीन माया देश पृथ्वी पर उतरे और माया के इतने गिलाफों के अन्दर अपने आप को फंसाए।

७—यह विचार कि श्रीशिवदयालसिंह जी उस चोटी के स्थान वाले परम पुरुष के अवतार हैं, आप में आया कहां से ? कहा जायगा स्वयं उन्होंने घोषणा की ? परन्तु हम पूछते हैं आपने इसे सत्य कैसे माना ? चाहिये तो यह था कि आप इसे बड़ा बोल अथवा एक बड़सी समझ कर ठुकराते, क्योंकि अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना बुद्धिमानों का काम नहीं होता और फिर साधारण सी बड़ाई नहीं अपने आप को ब्रह्म से ऊपर के सत्त, अलख, अगम से भी ऊंचे पद का बताना जैसी महान गप्प पर तो साधारण सा विचार शील पुरुष भी विश्वास नहीं कर सकता।

८—अवतार शब्द का आशय क्या है ? यदि राधा स्वामी साहब ने शरीर धारण किया तो क्या चोटी का स्थान खाली हो गया और यदि विशेष गुण के कारण उनका अवतार कहा जाता

है तो कोई एक वा अधिक गुण भी तो बताए जावें जो यहां के मनुष्यों वा ब्रह्म में नहीं हैं। हमारी सम्मति में राधा स्वामी सतसंगियों का यह विश्वास उ में परले दर्जे का अन्धविश्वास होने का ही प्रमाण है।

९—यदि यह कहा जावे कि वह स्वयं राधा स्वामी न थे हाँ राधा स्वामी धाम से आये हुए जीव थे तोभी नित्य मुक्ति का सिद्धान्त सत्य न हुआ।

१० – जब प्रत्येक स्थान का प्रबन्ध रचना के आद से ही भिन्न भिन्न पुरुषों के आधीन है तो २ अरब साल पीछे १८६१ ई० में ऐसा कौन सा अंधेर हो गया था कि मलीन माया देश की देखभाल के लिए स्वयं कुल मालिक साहब को आना पड़ा। क्या ब्रह्म के प्रबन्ध के विरुद्ध अथवा उसके किसी नियम भंग वा विद्रोह आदि की कोई रिपोर्ट पहुंची थी ? फिर शिवदयाल सिंह जी साहब ने केवल १७ वर्ष पश्चात् ही काल का ग्रास बनना क्यों स्वीकार किया, और क्या १८७८ ई० में उन्हें पुनः मुक्ति मिली थी अथवा वह निज धाम को गये थे इसका किसी राधास्वामी सतसंगी को यथार्थ ज्ञान है वा हो सकता है ? यदि नहीं तो उनके जन्म लेने से राधास्वामी का अवतार धारण करना किस प्रकार माना जासकता है ?'

११—ब्रह्म धाम से ऊपर के लोकों में केवल वह सुर्तें हैं जो माया के लेश से मुक्त हैं, उनमें से भी किसी का कभी मलीन माया देश में आना सिद्ध नहीं होता तो राधास्वामी साहब का अवतार धारण करना कैसे मान लिया ?

१२—जब ब्रह्म पद की प्राप्ति दोनों पक्षों के लिये समान है और उस पद तक पहुंचने के लिये राधास्वामियों के यहां कोई प्रबन्ध नहीं वह राधास्वामी, राधास्वामी नाम पर उछलते हुए न वर्ण धर्म को मानते हैं न आश्रम को, न वेद शास्त्र को और उनकी

रुचि है न अष्टांग योग उन्हें अच्छा लगता है तो ब्रह्म पद तक वह कैसे पहुँच सकता है। यथार्थ विद्या व ज्ञान के बिना जगत का कोई काम ठीक तथा सुखदाई नहीं हो सकता तो ब्रह्म का ज्ञान कैसे हो सकता है और बिना ज्ञान के अर्थात किसी सत्ता के यथार्थ गुण जाने बिना उससे प्रेम अथवा उसकी प्राप्ति के लिये यत्न होना असंभव है यह सत्य है कि यज्ञ, कर्म, संस्कार, वेद पाठ आदि ब्रह्म प्राप्ति के अन्तिम साधन नहीं, तो भी इन मनजिलों को गुजरे, सार और असार की विवेचना किये असार से हट कर सार की ओर चले, तथा साधनों को जाने व पाले बिना, उस तक पहुँचना असंभव है। सार यह कि राधास्वामी धाम कल्पना मात्र है तथा उसका विस्तार वर्तमान अवस्था में सर्वथा असंगत है और ब्रह्म पद राधास्वामियों की दृष्टि में तुच्छ है तो सतसंगी बेचारे रहे किस तरफ़ के ?

१३—तीसरे प्रकार की सुर्तें सदा ब्रह्माण्ड वा पिण्ड देशों में चक्कर लगाती हैं। यदि वह न्यून चेतन अर्थात् माया से भिन्न है तो राधास्वामियों में भी प्रायः वह सुर्तें होंगी और जब उन्होंने सदा यहीं चक्कर लगाना है तो नित्य क्या अनित्य मुक्ति भी उनके लिये असंभव है।

१४—यह भी निर्णय होना चाहिये कि साहब जी महाराज का आत्मा किस प्रकार का है। राधास्वामी का अवतार तो न वह हैं न वह ऐसा दावा करते हैं। पहिली कक्षा की सुर्त भी उनमें नहीं क्योंकि वह सुर्तें माया के लेस से मुक्त हैं और साहब जी महाराज प्रत्यक्ष रूप से माया के लेस में हैं। अधिक से अधिक वह दूसरी प्रकार की सुर्त रखते हैं और माया के लेस का भुगतान करके पहिले ब्रह्म से मुक्ति पा सकते हैं जो अनित्य है अतः उनका अभी से नित्य मुक्ति की दुहाई देनी सामयिक नहीं; अपने अनुयाइयों को

भी इस समय के यथार्थ कर्तव्य से विमुख करके मुक्ति के स्थान में बंधन को दृढ़ करना है।

१५—महाप्रलय में यद्यपि रचना का मसाला कुल मालिक में लीन समझा जाता है पर वास्तव में जो १८ लोकों के १८ पुरुष हैं उनमें से प्रत्येक में अपने २ लोक की सुर्तें वा सामग्री लीन होती हैं और वह पुरुष इस सामग्री समेत रचना के आरम्भ में आद चेतन धारके द्वारा प्रगट होते हैं अतः सुर्तों का सम्बन्ध तो अपने पुरुषों से नित्य है और यह भी लिखा है कि प्रत्येक देश का पुरुष उनको अपने से ऊपर के लोक में जाने नहीं देता, इस दशा में दूसरे प्रकार की सुर्तें भी विशेष कठिनाई में हैं वह यत्न भी करें तो भी ब्रह्म की इच्छा के विरुद्ध अथवा उसका मुक़ाबिला करके परे के लोकों या नित्य मुक्ति तक पहुंच नहीं सकते।

६१—सुर्तों की इन श्रेणियों के विषय में जो लम्बा और पेचीदा बयान दिया गया है इस पर भी सतसंगियों को एतराज करना चाहिए था। बीसियों पृष्ठ जिस बात को पुनः २ दोहरा कर काले किये गये हैं उसका सार केवल इतना है कि सब सुर्तें स्वभाव में समान हैं पर ब्रह्म से सम्बन्ध वाली सुर्तें मुक्त हैं और माया में लीन सुर्तें बन्धन में हैं। जो प्राकृतिक पदार्थों का ईश्वरीय आज्ञा के अनुसार प्रयोग तथा ईश्वर के गुणों का चिन्तन करके उत्तम संस्कारों को प्रबल कर सकता है वह सुखी तथा मुक्ति का अधिकारी है और जितना अधिक एक मनुष्य ज्ञान से दूर होता है उतना ही अधिक दुखी होता तथा नीच योनियों में जाता है।

६२—सुर्त को नित्य मुक्ति तो कहां राधास्वामी मत तो कुल मालक को भी विचित्र प्रकार के बन्धन में डालता है और इसकी वह दुर्गति करता है कि बस चुप ही भली। पहिले तो उसे एक चोटी स्थान में कैद किया और एक देशी बताया, फिर उस रचना और

माया से पृथक बे मुल्क का नवाब बना अलग थलग तथा अविज्ञात स्थान में लटकाया। कहा यह कि उसे रचना व कर्मफल देने के झंजट से बचाया जाता है पर १८ पुरुषों और उनके काम और सामान की देख भाल तथा सम्भाल का सारा भार और चिन्ता उसी पर डाली। कहां अखण्ड एक रस, सर्व-व्यापक, सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान वैदिक ईश्वर और कहां कुनबों में विभक्त, अलख, अगम, सुन्न, महासुन्न, के रूप में परिवर्तित और केन्द्र में लीन होने तथा मुहीत तक फैलने और धारों के रूप में बहने व रचना के प्रबन्ध के लिये १८ पुरुषों की अपेक्षा करने वाला कल्पित राधा स्वामी। कैसे शोक का विषय है कि सर्वत्र व्यापक होने से जो मालक धारों की रवानी और १८ पुरुषों की निग्रानी के कष्ट से बचकर सहज से सारा प्रबन्ध कर सकता है उसे पृथ्वी में रहने के ही अयोग्य बताया गया है यह कह कर कि वह मलीन माया देश है। क्या इस पृथ्वी पर विद्वान सत्यवादी तथा जीवन-मुक्त पुरुष नहीं हैं। क्या योगाभ्यास द्वारा ब्रह्म को साक्षात करने वाले ऋषि इस पृथ्वी लोक में नहीं हुए? यदि हुये हैं और राधा स्वामी सन्त सत गुरु इस समय भी यहां रहते हुए निजधाम को पहुंचे हुए और माया को ठुकराने वाले माने जा सकते हैं तो क्या राधा स्वामी दयाल नाम का कुल मालक ही ऐसा गया गुज़रा है कि वह मलीन माया देश के प्रभाव से बच न सके और उसके स्पर्श मात्र से अज्ञानी और दुखी हो जावे।

६३—और बे सिर पैर की बात देखिये। पृष्ठ ४१ धारा ६८ में आप फ़रमाते हैं:—

"निर्मल चेतन देश के नीचे चूंकि माया की मिलौनी का किसी क़द्र ज़ोर शुरु हो गया, इस लिये नई-नई बातें पैदा होगईं। अव्वल निर्मल चेतन देश तथा ब्रह्माण्ड के दरमियान एक ख़ास

हद्दे फ़ासल काइम हुई जिसे सन्त मत में महसुन्न कहते हैं और दोयम मह सुन्न की वसअत क़ायम होगई।" फिर लिखा है 'रचना का तीसरा दौर जारी होने पर ब्रह्माण्ड व पिण्ड देश के दरमियान ख़ास हद्दे फ़ासल क़ायम हुई जिसे चिदाकाश कहते हैं।"

कौन नहीं जानता, कि जुदा करने वाली हद या तो मानिसिक कल्पना हो सकती हैं या दो पृथक २ जगहों के बीच की मुंडेर दीवार या वाड़ आदि, परन्तु इसी पृष्ठ पर धारा ६९ में आप लिखते हैं कि रचना के पहिले दौर में जो रूहें आद चेतन धार के ज़ोर असर पूर्ण चेतनता को प्राप्त हो सकती थीं, उन्हें तो निर्मल चेतन देश में क़याम मिल गया लेकिन जो माया के गिलाफ़ों की वजह से निर्मल चेतन देश से ख़ारज हुईं इन में से सिर्फ़ ऐसी रूहों को रचना के ब्रह्माण्डों में क़ियाम मिला है जो उन से मुस्त फ़ीद हो सकती है। इनके अलावा अनन्त रूहें जो इन से मुस्तफीद न हो सकती थीं बदस्तूर माया के गिलाफ़ों में लिपटी सो रही हैं, और निर्मल चेतन देश और ब्रह्माण्डों की हद्दे फासल अर्थात् महा सुन्न का मैदान इन से भरा है।"

ऐ लो, हद्दे फ़ासल जिसका नाम रखा था वह अब महासुन्न का विस्तृत क्षेत्र बन गया, परन्तु आगे २ देखिये होना है क्या। आप फ़रमाते हैं।

'हर चन्द मौजूदा रचना के कुल ब्रह्माण्डों व पिण्डों में बेशुमार सुतों का क़याम है लेकिन यह तमाम महासुन्न के अनन्त भंडार के मुक़ाबले में महज़ एकमुट्ठी भर है।"

अर्थात् महासुन्न विस्तृत क्षेत्र ही नहीं रहा, सारे ब्रह्माण्डों व पिण्डों के मुक़ाबले पर सुर्तों का अनन्त भंडार बन गया है, यहां तककि सारे ब्रह्माण्ड समष्टि रूप में भी उसके सामने तुच्छ हैं।

इस पर और विचित्रता यह कि महासुन्न का स्थान ब्रह्म से

और परे है। गिना तो उसे निर्मल चेतन देश में जाता है पर उसमें सुर्तें ऐसी भर रही हैं जो माया के गिलाफ़ों के कारण निर्मल चेतन देश से निकल चुकी हैं और रचना के पिण्डों वा देशों से लाभ भी नहीं पा सकता और इसीलिए पूर्व की भांति माया के गिलाफ़ों में लिपटी सो रही हैं। अब प्रश्न यह है कि यदि संगत का प्रभाव होता है और इस प्रभाव को सत्य मानने से ही सत्संग की आवश्यकता है तो ब्रह्मपद को प्राप्त या मुक्त आत्माएँ जब महासुन्न में पहुँचेंगी कि उन्नति करते २ अलख और अगम लोक और फिर राधास्वामी धाम तक पहुंचें, तो वह महासुन्न वाली निकम्मी तथा उन्नति करने में असमर्थ अनन्त आत्माओं के कुसंग से बचकर आगे जा ही कैसे सकती हैं। पहले तो ब्रह्म धाम का धनी पुरुष अपने आधीन सुर्तों के उन्नति करने में बाधक, और यदि उससे बच निकले तो महासुन्न के इन महादरिद्री सुर्तों की संगत; वही बात हुई कि—

एक मुश्किल से तो मर २ के हुआ था बचना
डालदी अल्लाह रे मेरे कैसी नई।

६४—हमें भय है कि हम पर वास्तविक आशय समझे बिना आक्षेप करने का दोष लगा दिया जायगा क्योंकि इस लेख में विशेष कूटनीति काम करती है। यह मनघड़न्त परिभाषाओं का गोरखधंदा है जिसमें भिन्न २ भावों वा व्याख्याओं की योग्यता हो सकती है। आपके अंध विश्वासी भक्त तो भूल भुलैयां में पड़ कर भी श्रद्धा के वश होकर निर्णय कर सकते हैं कि अवश्य इन शब्दों में अच्छा ही भाव होगा और विपक्षियों के युक्त से युक्त आक्षेपों पर भी इस कहने को गुंजाइश निकल सकती है कि असली तात्पर्य को समझा नहीं गया। "पुत्रो न पुत्रः" का प्रसिद्ध वाक्य ज्योतिषी जी का बड़ा शस्त्र है। बेटी हुई तो कहा

जाता है हमने लिखही तो दिया था कि "पुत्री. न पुत्रः" बेटा हुआ तो जिज्ञासू स्वयं ही ज्योतिषी की महिमा गाता फिरता है परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ न होने पर शिकायत हो तो ज्योतिषी जी की डाँट बनी बनाई है, कि क्या हमने स्पष्ट लिख न दिया था कि "पुत्री न पुत्रः" अर्थात् न बेटा न बेटी। इसी आशय के लिये एक और प्रसिद्ध घटना है कि "गार्ड साहिब को जाट देवता से मखौल की सूझी, टिकट देखने वाले को उसने सिखाया जिसने टिकट देख कर कहा। "यह जनाना टिकट कहां से लिया" (जाट) पैसे तो मरदाने दिये थे, गलती होगी तो बाबू जी की होगी। स्टेशन के निकट पहुंचने पर जाट ने पगड़ी उतार कर बगल में दबाई, चादर ओढ़ घूंघट निकाल लिया। गार्ड और टिकट चेकर ने भी ताड़ लिया और उनके सिखाये हुए टिकट कलक्टर ने उस जाट का टिकट देखते ही कहा—"अरी बुढ़िया! यह टिकट तो मरदाना है तूने कहां से ले लिया" जाट ने आओ देखा न ताओ, चादर उतार पगड़ी सिर पर रख कर बोला "तो मैं और कौन हूँ।"

ठीक यही मखौल साहबजी महाराज के लेख में है। यदि निर्मल चेतन, निर्मल माया, और मलीन माया के देशों को एक दूसरे से ऊपर और दूर दूर अथवा तबके मानकर आक्षेप करो तो कहा जायगा इन शब्दों का यथार्थ आशय भिन्न २ गुणों व अवस्थाओं का है। यदि गुणों के दृष्टिकोण से आक्षेप हो तो भिन्न २ दरजों के भाव को न समझने के दोषी, और यदि उन दरजों को अयुक्त सिद्ध करें तो वैदिक लोक-लोकान्तर का सहारा लेकर यह दोष दिया जायगा कि अपने घर की ही तुम्हें खबर नहीं। हमारा यह भय किसी पहिले व्यवहार पर निर्धारित नहीं; यथार्थ प्रकाश स्वयं यही साक्षी देता है। उदाहरण रूपमें पृष्ठ २५३ पर विचार कीजिये जिसमें सारवचन के प्रमाण के आधार पर विपक्षी आक्षेप

करता है "एक जन्म गुरुभक्ति कर, जन्म दूसरे नाम। जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथेमें निजधाम ॥" वादी कहता हैकि इस जन्ममें धोखा देकर आपने लोगों से भक्ति कराई तो दूसरे जन्म में वह शिकायत करने कैसे आएँगे कि उन्हें भक्ति का फल नहीं मिला, यह निरा-स्वार्थ है। फिर यदि नाम का सम्बन्ध दूसरे जन्म से है तो इसी जन्म में आप इसका उपदेश क्यों देते हैं। फिर तीसरे में मुक्तिपद मिल गया तो चौथे में निज धाम की क्या आवश्यकता रही और अगर यह और धाम है तो उससे आगे कोई धाम नहीं इसमें प्रमाण क्या ?

यह प्रश्न शब्दके एवं प्रत्यक्ष भावको लक्ष्य रखकर किया गया है और अत्यन्त युक्तियुक्त है, पर साहब जी महाराज फ़रमाते हैं:—

"जब किसी शख़्स को महापुरुषों के वचन समझने की अक़ल क़तई हो ही ना और वह अपने आपको बड़ा पंडित समझे और महापुरुषों के वचनों पर तबा आज़माई करे तो सिवाय इस क़िस्म के एतराज़ों के उसके दिमाग़ से दूसरी बातें कैसे उतर सकती हैं।"

यह डांट बताते हुए साहब जी महाराज इस वचन वाले "चार जन्मों" से चार मनज़िलों का आशय बताते हैं। हम इस भाव को युक्त समझते हैं पर अयुक्त विपक्षी का एतराज़ भी नहीं हो सकता। हां साहब जी महाराज का यह डांट बताना अवश्य दोष युक्त है कि आक्षेपकको महापुरुषों के वचन समझने को योग्यता सर्वथा नहीं। हमारी सम्मति में तो महापुरुषों का शब्द लिखना भी आपको इस स्थान पर उचित न था। कुछ ही हो यह स्पष्ट है कि हमारा भय निराधार नहीं, तो भी अपनी ओर से हम यही यत्न करेंगे कि आपको हमें यह सार्टीफ़िकेट देने का कष्ट न उठाना पड़े। और हमें आशा है कि हमारी यह प्रार्थना स्वीकार होगी कि अपने भूतपूर्व महापुरुषों के वचनों के सम्बन्ध में तो आपने किया

सो किया, अपनी महात्ता न्याय पूर्ण सत्यार्थ निर्णय तथा सत्य के ग्रहण करने में ही समझियेगा और सोच समझ कर बताइयेगा कि चार जन्म से चार मन्जिलों का आशय लेने पर भी उपरोक्त शंका कैसे निवृत्त हो सकती है ? मान लीजिये कि जैसे वैदिक धर्मी विद्या द्वारा दूसरा जन्म मानते और द्विजन्मा की उपाधि पाते हैं उसी प्रकार आपके चार जन्मभी इसी जन्म की मनज़िलें हो सकते हैं। परन्तु यह तो विचारिये कि भक्ति और नाम की पहिली दो मनज़िलें गुज़रीं और मुक्ति हो गई तो तीसरा जन्म रहा ही कहां और तीसरा न रहा तो चौथा निज धाम किसने देखा। अतः इस वचन और आपके माने आशय से भी यही सिद्ध होता है कि भक्ति और नाम के कारण मुक्ति मिलती है और चौथे निज धाम वाली बात केवल मिथ्या घढ़न्त वा कपोल कल्पित है।

६५—अन्त में हमारा प्रश्न यह है कि युक्ति प्रमाण शून्य प्रतिज्ञाओं के अतिरिक्त क्या नित्य मुक्ति के विषय में ही आप कोई युक्ति भी दे सकते हैं ? आप कहते हैं क्यों नहीं, युक्ति पृष्ठ ६४ भाग १ में मौजूद है।

"मुक्ति किसी साधन का नतीजा नहीं है। साधन सुर्त को सिर्फ़ मुख़ालिफ़ ताकतों से रिहा दिलाते हैं। यह माना कि साधन महदूद हैं पर मुख़ालिफ़ ताक़त भी तो महदूद है। इसलिये महदूद साधनों से महदूद मुख़ालिफ़ ताक़तों का क़लाक़मा हो जाना ना मुमकिन नहीं होना चाहिये। एक छोटी सी दियासलाई रोशन करके घास फूंस का अज़ीम अंबार जलाया जा सकता है। एक ज़ंग आलूदआईने का बरसों का जमा हुआ ज़ंग १० मिनट पालिश करने से साफ़ किया जा सकता है। जहाँ किसी सुर्त के ऊपर से जगत भोग की आशा का ज़ंग उतर जाता है या जहाँ उन ताक़तों का ज़ोर जो सुर्त का माया या प्रकृति से तअल्लुक़

कराती है, ज़ाइल हो जाता है वह सुर्त आज़ाद होकर ऊँचे रूहानी मंडलों की तरफ़ परवाज़ करती है और जिस सुर्त को कामल रूहानी सफ़ाई हासिल हो चुकी है वह विला शुबह कुल मालिक के हुजूर में बारयाब हो जाती है। सुर्त का जौहर नित्य है ज़ंग अनित्य था, अनित्य साधन से दूर हो गया। सुर्त ज़ंग से आज़ाद अपने हमजिन्स मसाला या जौहर के देश में दाख़िल होकर हमेशा के लिये अपने नित्य जाती ख़वास से परम सत्ता, परम चेतनता, परम आनन्द वगैरह में बरतती है।"

(आर्य्य) जब विरोधी शक्तियों से छूटे बिना सुर्त अपने समान मसाला वा देश में प्रविष्ट नहीं हो सकती और यह छूटना साधन के आधार पर होता है तो मुक्ति को साधन का परिणाम कह देने में आपका क्या हर्ज है ? (२) शास्त्रकार ज्ञान से मुक्ति मानते हैं उस ज्ञान में माया और ब्रह्म दोनों का ज्ञान शामिल है, जब तक दोनों को यथार्थ रूप से समझा न जावे एक को छोड़ने और दूसरे का ग्रहण करने की रुचि नहीं हो सकती। इसी का नाम विद्या और अविद्या दोनों का ज्ञान है। (यजुर्वेद अ० ४०, मं० १४)

विद्यांचाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं, तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

जो मनुष्य विद्या और अविद्या की असलियत को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्म और उपासना के द्वारा मृत्यु को तर जाता है और विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करता है " अब फ़रमाइये आपका साधन मात्र का शब्द क्या अर्थ रखता है और अविद्या या माया के तत्त्वको समझे अथवा सच्चे कर्म, धर्म और उपासना किये बिना मृत्यु या विरोधी शक्तियों से छुटकारा कैसे मिल सकता है। (४) यह प्रचार करना कि—

राधास्वामी मानें न कर्म धर्म री,
राधास्वामी जप तप जानें भर्म री।

और दूसरी ओर अरी विद्या तू बड़ी अविद्या, कहकर विद्या को भी अविद्या जानना या डंडे मार घर से निकालना, जब दोनों के ज्ञान से वंचित करने का निश्चय है तो साधन बाकी कैसे रहे और विरोधी शक्तियां दूर कैसे हुईं और अनित्य मुक्ति का भी अधिकार न रहने, से नित्य मुक्ति के स्वप्न कैसे ? (५) फिर पहले तो आपने कहा मुक्ति साधन का फल नहीं, और अब यह कहा कि "साधन महदूद हैं" अर्थात् मुक्ति परिमित साधनों का फल है। क्या यह परस्पर विरुद्ध नहीं ? (६) छोटी सी दियासलाई रगड़ कर घास के ढेर को जलाना, दस मिनट के पालिश से वर्षों का जंग उतारना या प्रकृति के बन्धन से मुक्त होकर सुत का उन्नति करना की बातें तो सत्य हैं और प्रत्येक मनुष्य अपने मत के सम्बन्धमें ऐसी बातें कह सकता है पर प्रश्न यह है कि दियासलाई, उस की रगड़, उसका रगड़ने वाला, उसका फूँस को लगाना आदि की यथार्थ व्याख्या क्यों नहीं करते ? वह पालिश कौनसा है कहाँ से मिलता है, पालिश करने वाला कौन है ? और पालिश की तुलना में आप नित्य मुक्ति के कौन से साधन लेते हैं ? वह साधन वैदिक कर्म धर्म के अतिरिक्त कुछ हो नहीं सकते, यह स्पष्ट कहने से आप हिचकिचाते क्यों हैं ? (७) इसके अतिरिक्त अपनी मुक्ति की निःसारता पर भी विचार कीजिये। आपने कहने को तो कह दिया कि विरोधी शक्तियां भी परिमित हैं और साधन भी परिमित, अतः परिमित से परिमित उड़ गया। पर श्रीमन ! स्मरण रखिये कि परिमित विरोधी शक्तियों का विजय सुर्त पर इस लिये हुआ था कि सुर्त अल्प है। और साधन भी परिमित इसलिये हैं कि साधक स्वयं परिछिन्न है अतः मुख्य वस्तु अर्थात् सुर्त की

अल्पता के स्वाभाविक गुण को भुला कर सत्संगियों को शब्द जाल में फँसाने से बाज आइये और निश्चय कीजिये कि इस अल्पता के कारण ही अनन्त मुक्ति असंभव है। (८) इसी प्रकार परम सत्ता, परम चेतनता और परम आनन्द के जोरदार शब्दों से रोब जमाने से भी कुछ लाभ नहीं हो सकता। सम्बन्ध यहां है सान्त वा अनन्त का, और रूह को आप सान्त मानते हैं दूसरी ओर जौहर शब्द का यथार्थ आशय न समझ कर आप जिस सत्ता के लिये परम परम की रट लगाते हैं, उसके लिये अनन्त शब्द नहीं लिखते क्योंकि आप इसे भी एकदेशी मानते हैं. इस पर हम पूछते हैं कि जब न मुक्ति पाने वाला अनन्त है, न विरोधी शक्तियां अनन्त हैं, न साधन अनन्त, न मुक्ति देने वाला अनन्त, तो अनन्त या नित्य मोक्ष कहां से फूट निकली ?

सर्ग १०
मुक्ति और पुनरावृत्ति

जहां मुक्ति को नित्य मानने में आपने बड़ी भारी भूल की है वहां मुक्ति से पुनरावृत्ति विषय में आपने और भी अन्याय-पूर्ण व्यवहार किया तथा स्वामी दयानन्द जी के लेख के विरुद्ध निराधार युक्तियां दी हैं। स्वामीजी ने मुक्ति के नित्य होने के विरुद्ध जो युक्तियाँ दी हैं, वह आपने इस प्रकार लिखी हैं:—

(१) वेद में इसका निषेध है। (२) मनुष्य की सामर्थ्य तथा उसके साधन सीमित हैं, अतः उसका फल अनन्त नहीं हो सकता। (३) अनन्त मुक्ति होने पर मुक्ति स्थान में बहुत सा भीड़ भड़क्का हो जायगा क्योंकि वहां आगम (आय) अधिक और

व्यय कुछ भी नही होने से बढ़ती का पारावार नहीं होगा। (४) यदि मुक्ति से कोई भी जीव लौटकर न आवे तो संसार उजाड़ हो जायगा। (५) जैसे कड़वे के बिना मीठे का ज्ञान नहीं होता, ऐसे ही दुःख के बिना सुख का भी क्या लुत्फ़ होगा, अर्थात् यदि किसी को अनन्त मुक्ति मिल गई तो वह सुख का आनन्द भोगने के योग्य ही न रहेगा। (६) यदि ईश्वर सान्त कर्मों का अनन्तफल दे तो उसका न्याय नष्ट हो जाता है। (७) जैसे सेर भर भार उठाने वाले के जिम्मे मन भर बोझ लाद देना अनुचित है ऐसे ही अल्पशक्ति वाले जीव के सिर नित्य मुक्ति का बोझ लाद देना अनुचित है। (८) यदि मुक्ति से आवृत्ति नहीं होती तो ब्रह्म में लय होना डूब मरना ही है। आपने मुक्ति की आयु भी लिखी है वह एक महाकल्प या सृष्टि के ३६००० बार उत्पन्न तथा नष्ट होने की अवधि के बराबर है।

साहबजी महाराज के आक्षेप

पहला आक्षेप

(१) यदि मुक्ति पाकर जीवों को ब्रह्म में रहना है तो तीसरी दलील रद्द हो जाती है क्योंकि ब्रह्म तो अनन्त अपार है उसके अन्दर भीड़ भड़क्का होने का अर्थ क्या ?

(उत्तर) यहां पहिले एक दो बातों का ध्यान प्रतिवादी को दिलाना आवश्यक है। साहबजी महाराज ने एक प्रश्न पर विपत्ती को यह शब्द सुनाये हैं:—

"जब किसी को महान पुरुषों के वचन समझने योग्य अक्ल कतई हो ही ना और वह अपने आप को बड़ा पंडित समझे और महापुरुषों के वचनों पर तबा आज़माई करे तो सिवाय इस किस्म के एतराज़ों के उसके दिमाग़ से दूसरी बातें कैसे उतर सकती हैं।" हम समझते हैं स्वामी जी पर आपने जो एतराज़ किया है यदि

उस पर आपके ही यह शब्द आपकी भेंट किए जायें, तो चाहे हमें इससे कितना भी दुःख हो, होगा यह न्याय का व्यवहार।

दूसरी बात विचारणीय यह है कि स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में ही स्पष्ट रूपेण लिख दिया है कि एतराज़ करने से पूर्व ४ बातों को ध्यानमें रखकर वादी के बचनों को पढ़ना चाहिए। आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति, और तात्पर्य। आपका एतराज़ सिद्ध करता है कि आपने इस आवश्यक बात पर ध्यान ही नहीं दिया।

तीसरी बात यह है कि आपने अपने ही माने हुए सिद्धान्त को ठुकरा दिया है। पृष्ठ ६६, धारा ९५ यथार्थ प्रकाश भाग १ पर आपके यह शब्द हैं:—

"हर किताब, देखने में चन्द इलामात का मजमूआ होती है लेकिन दरअसल मुसन्नफ़ के ख़यालात की मज़हर है। इसी बिना पर कहा जाता है कि किसी शख़्स के शाया शुदा ख़यालात हासल कर लेना एक बात है और इन ख़यालात का समझना दूसरी बात। किसी किताब से मुसन्नफ़ के ख़यालात वही शख़्स हासल कर सकता है जिसके दिमाग़ में किताब में मुन्दर्ज अल्फ़ाज़ पढ़कर मुसन्नफ़ के से ख़यालात दोहराने की क़ाबलियत हो और उसके लिए लाज़मी है कि उसके दिमाग़ की सरज़मीन मुसन्नफ़ के दिमाग़ की सी साफ़ हो वरना मुसन्नफ़ के दिमाग़ में एक बात होगी और नाक़ाबिल ज़ेहनियत वाला शख़्श तसनीफ़ पढ़कर अपने दिल में दूसरे ही ख़यालात क़ायम करेगा।"

हम इन विचारों में १६ आने आप से सहमत हैं। शोक है तो यही कि आपने एतराज़ करते हुए उन्हें स्वयं ही भुला दिया। अस्तु, अब इस आक्षेप का उत्तर सुनिये। आपने स्वामीजी की युक्तियों को पढ़ते हुए निस्सन्देह उनके आशय को ग्रहण नहीं किया। आप यह जानते और मानते हैं कि स्वामी दयानन्द असा-

धारण उच्चकोटि के विद्वान् थे पर आपने इतना भी न सोचा कि ब्रह्म को अनन्त और अपार मानते हुए भी एक ऐसा विद्वान् भीड़ भड़क्का शब्द प्रयुक्त करता है तो अवश्य कुछ कारण होगा। आपका एतराज़ और स्वामीजी की विद्वत्ता दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते। असलियत केवल यह है कि स्वामीजी इन युक्तियों से अपना पक्ष सिद्ध नहीं कर रहे, अन्य मतवादियों का पक्ष खण्डित कर रहे हैं। इन विपक्षियों में से आप सब के सब मुक्ति को स्थान या लोक विशेष से सम्बद्ध कर रहे हैं और मुक्ति को नित्य मानते हैं। समुल्लास १२ में जैनियों का मन्तव्य इस प्रकार लिखा है:—:

"ऊर्ध्व लोक में एक सिद्ध शिला स्थान है स्वर्गपुरी के ऊपरी ४५ लाख योजन लम्बी और उतनी ही पोलो है तथा ८ योजन मोटी है। जैसे मोती का श्वेत हार वा गोदुग्ध है उससे भी उजली है सोने के समान प्रकाशमान और स्फटिक से भी निर्मल है। यह सिद्ध शिला १४ वें लोक की शिखा पर है, और उस सिद्ध शिला के ऊपर शिवपुर धाम, उसमें भी मुक्त पुरुष अधर रहते हैं। यहां जन्म मरण आदि कोई दोष नहीं, और आनन्द करते रहते हैं।"

इसी प्रकार पौराणिक लोग बैकुण्ठ, कैलाश, गोलोक, श्रीपुर; ईसाई चौथे आसमान और यवन मत वाले सातवें आसमान पर मुक्त जीवों का निवास स्थान मानते हैं। स्वामी जी पुनरावृत्ति के सिद्धान्त की सत्यता और नित्य मुक्ति को असत्यता दिखाने के लिए मतवादियों को उन्हीं के मन्तव्यानुसार निरुत्तर करते हैं। यदि आप जैनियों की सिद्धशिला सम्बन्धी [illegible] एक ही टिप्पणी पढ़ लेते तो कभी एतराज़ न करते। [illegible]
"पैंतालीस क्या सिद्धशिला नव्वे लाख योजन भी ल[illegible]
भी जैनियों की मुक्ति बन्धन ही है क्योंकि उनके मु[illegible]
लाख योजन के बाहर गए नहीं कि बन्धन में पड़े। अतः म[illegible]

न्तरों का मुक्ति गृह सीमित है। इसी से स्वामी जी की युक्ति सर्वथा उपयुक्त और आपका आक्षेप असम्बद्ध, अनुपयुक्त एवं निराधार है।

दूसरा आक्षेप

यदि ब्रह्म में लय होना डूब मरना ही है तो जो आयु मुक्ति की आपने निश्चय का है उतने [illegible]ाल को मुक्ति पान भी उतने समय के लिये डूब मरन ही होगा, और मुक्ति का जो लक्षण दुःख से छूट जाना सुख का प्राप्त होना है, मिथ्या समझा जायगा और जब लोगों को यह मालूम होगा कि मुक्ति का अर्थ डूब मरना है तो कौन मनुष्य मुक्ति की इच्छा करेगा?

उत्तर—प्रथम तो उन सब नियमों को इस प्रश्न में भी भुलाया गया है जो हम ने पहिले आक्षेप में स्वामी जी और साहब जी महाराज के शब्द देकर वर्णन किये थे। दूसरे इस प्रश्न से यह भी विदित होता है कि जान बूझ कर भ्रांति फैलाने के दोष के भी आक्षेपक महाशय भागी हैं। न स्वामी जी मुक्ति को डूब मरना मानते हैं न उनका यह भाव है कि मुक्त जीव ब्रह्म में लय हो जाता है, न स्वामी जी की इस युक्ति से दुःख से छूटने और सुख पाने के अर्थ का सम्बन्ध है और न इस युक्ति से मुक्ति के विरुद्ध भावना पैदा होने की सम्भावना है। हां यह शिकायत हमें अवश्य है कि प्रतिवादी ने स्वामी जी के आशय को अन्यथा प्रगट किया है। वास्तविक आशय स्पष्ट है कि यदि मुक्ति से लौटने के वैदिक सिद्धान्त को न म[illegible] इन विचारों [illegible] अमुक प्रकार के परिणाम निकाले जा सकेंगे यही कि [illegible] मंतव्य से इन दोषों का सम्बन्ध नहीं उनके [illegible] विरुद्ध भाव से है। आपकी भ्रांति के निवारण करने के युक्तियों [illegible]लिखित विचार पर्याप्त होंगे।

किया १—एक मनुष्य ५०)रु० मासिक वेतन पर नौकर है। वह

विदेश में अधिक वेतन मिलने की आशा से अफ्रीका में प्रार्थनापत्र भेजता है और वहां उसकी २००) रु० मासिकपर नियुक्ति होती है। वह स्वयं तथा उसके कुटुम्बी व मित्र सब इससे खुश हैं और विदेश के लिये उसकी तैयारी हो जाती है कि एक वयो वृद्ध पूछता है अच्छा बेटा यह तो बताओ वतन को कब लौटोगे? उत्तर मिलता है लौटना कैसा! उनकी तो शर्त ही यह है कि वहीं आबाद रहना होगा। बूढ़ा कहता है बेटा यह वेतन वृद्धि क्या हुई हमारे लिये तो जीते जो आपकी मौत हो गई। अब तो सम्बन्धी व मित्रवर्ग की आंख खुलती हैं वह कहते हैं हमें घर की थोड़ी कमाई अच्छी है। अब साहब जी महाराज बतावें कि जीते जी मौत होने का सम्बंध यहां वतन को न लौटने से है या वेतन वृद्धि से? साधारण बुद्धि का पुरुष भी कहेगा कि घर बार से नित्य वियोग होना अथवा वतन को न लौटना ही मौत है और इसी से यह भी सिद्ध है कि डूब मरना मुक्ति से पुनरावृत्ति न होने से सम्बन्ध रख सकता है लौटने वाली मुक्ति से नहीं। साहब जी का तर्क भी विलक्षण है जिससे पाया जाता है कि यदि २००) के वेतन का नाम मरना है तो ५०) के वेतन का नाम एक बटा चार ¼ मरना है। और यदि ५०) वेतन एक मनुष्य लेता है तो २००) वेतन होने पर वह एक नहीं चार मनुष्य हो जायेगा।

२—वायसराय का अधिकार ५ वर्ष के लिये है। सरकार को भारत के लिये सुगमता से ऐसे युरोपियन मिल जाते हैं जो ५ वर्ष के लिये वतन को छोड़ सकें। परन्तु यही नियुक्ति २५ वष व जीवन भर के लिये हो तो विलायत से अपने एक भाई को विदा करने वाली पार्टी एक प्रकार से उसका अंत्येष्टि संस्कार ही करेगी। फ़ारसी कवि कहता है "शुद गुलामे कि आबे जू आरद, आबे जू आमदो ग़ुलाम बिबुर्द" (नौकर गया कि नहर का पानी लावे पर

नहर का पानी ऐसा आया कि नौकर को बहा लेगया) अतः मुक्ति जहाँ जीवात्मा को मिलने से उसका कल्याण है वहां जीव का मुक्ति की भेंट हो जाना उसकी मौत है या डूब मरना।

तीसरा आक्षेप

स्वामी जी ने महाकल्प की आयु का ब्यौरा भी बताया है तद्-नुसार मुक्ति की आयु ३० नील १० खरब ४० अरब वर्ष ठहरती है। इतने समय के लिये डूब जाना क्या कम है। मनुष्य तो २ मिनट डूबना भी नहीं चाहता।

उत्तर—मुक्ति की यह आयु सर्वथा सत्य है। कोई आक्षेप न होने से इस पर यहाँ न लिख कर आपके "डूब मरना" के शब्द पर विचार होना चाहिये, परंतु इसका भी उत्तर नम्बर दो में आचुका है यहां फिर आप के निराले तर्क पर हंसी आती है कि यदि किसी का पति ६० वर्ष की आयु में मरा और वह विधवा हुई तो समझ लेना चाहिये कि ४५ वर्ष की आयु में वह " तीन बटा चार विधवा हुई थी। वाह ! धन्य हो नैयायिक महाराज !

चौथा आक्षेप

यदि कड़वे के बिना मीठे का स्वाद नहीं आता तो इतने काल का सुख भी सुखदायक नहीं हो सकता चूंकि दुखों की स्मृति भी दुखदाई ही होती है इसलिये मुक्ति अवस्था में दाखिल होते ही दुख की याद भूल जानी चाहिये। यदि स्मृति क़ायम रही तो दुख बना रहा और मुक्ति न हुई और यदि दुखों की याद भूल गई तो सुख का प्राप्त होना व्यर्थ हो गया क्योंकि बिना कड़वे के मीठे का लुत्फ़ नहीं आता और क्या सचमुच मनुष्यों को मीठे का लुत्फ़ तब आने लगता है जब वह कड़वा चख लेता है ? मीठे की क़दर तो अलबत्ता कड़वा चखने के लिये बाधित होने पर आती है परन्तु मीठे क

स्वाद तो कड़वा खाये बिना ही आ जाता है।

उत्तर:—स्वामी जी के शब्द एक सर्वतंत्र सिद्धांत के सूचक हैं परन्तु आप परिमित वा एकदेशी भिन्न २ प्रकार की इन्द्रियों वा विषयों का मुकाबला करते हैं। सिद्धांत यह है कि रूप वा नाम सब सापेक्ष हैं, धूप न हो तो छाया का दर्शन वा नाम ही न रहेगा और रात न हो तो दिन की तमीज़ न होगी। ऐसे ही भला बुरा, मित्र, शत्रु. गुरु शिष्य, राजा प्रजा, विद्या अविद्या, युद्ध शांति, पिता पुत्र, सत्य असत्य, पुरुष स्त्री आदि सब नाम सापेक्ष हैं। किसी अर्थ का दर्शन हो ही नहीं सकता जब तक उसके विरोधी पक्ष का भान न हो। मीठा कहना वा मीठे स्वाद का अनुभव होने का अर्थ ही यह है कि कटु शब्द मौजूद वा कटु स्वाद अनुभव हो चुका हुआ है। संभव है कि आप इस समय कड़वा न खावें और मिष्ट पदार्थ का मिठास का अनुभव करें, परन्तु पूर्व अनुभूत कटुता का संस्कार नष्ट नहीं हुआ। यही हाल दुख और सुख का है। उनका नाम और उनका अनुभव एक दूसरे के अस्तित्व पर निर्भर हैं। दुःख की याद न रहने का तक़ाज़ा भी युक्तियुक्त नहीं। स्मृति वा संस्कार कभी नष्ट नहीं होते। दूसरे प्रबल संस्कारों से वह दब अवश्य जाते हैं। स्मृति के अत्यन्ताभाव के विचार ने आदमी को बड़ी भ्रांति में डाल रक्खा है यदि इसका निवारण हो जाय तो पुनरावृत्ति सम्बंधी आपकी सभी शंकाएँ आप से आप निवृत्त हो जायें। इसके अतिरिक्त दो ग़लतियां अपनी और नोट कर लीजियेगा। एक तो यह है कि आप स्वामीजी का यह आशय समझ रहे हैं कि वह मीठे रसके अनुभव के लिए कड़वी चीज़ का खाना आवश्यक समझते हैं जब कि वास्तव में उनके खाने न खाने का यहां विचार ही नहीं, केवल दो मौजूद और पृथक् २ संस्कारों वा स्वादों का पारस्परिक समवाय सम्बंध जताना है। दूसरी भूल यह है कि आप मुक्ति विषय पर

विचार करते हुए अपने माने हुए नियम को भूल जाते हैं. जब एक ओर मनुष्य का दिन १२ घण्टे का और १२ ही घण्टे की रात और इसके मुक़ाबले पर ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष का ब्रह्म दिन और इतनी ही लम्बी रात पर कोई विवाद नहीं तो मनुष्य के छोटे दिन की दृष्टि से १०० वर्ष की आयु मानते हुए भी ब्रह्मदिन की दृष्टि से जो १०० वर्ष की आयु है और जो मुक्ति की अवधि है उससे कैसे इंकार कर सकते हो। पिण्ड और ब्रह्माण्ड में व्यापक समान नियमों पर जब आप का पूर्ण विश्वास है तो आप १० वर्ष के ब्रह्म दिन वाली मुक्ति की आयु से किसी प्रकार इंकार नहीं कर सकते, न मुक्ति को नित्य कहने का साहस तक ही कर सकते हैं।

पांचवां आक्षेप

यदि परिमित पुरुषार्थ का फल अनन्त नहीं हो सकता तो परिमित पुरुषार्थ के बदले एक लम्बे अरसे का सुख भी नहीं मिल सकता।

(उत्तर) यहां आप अनुपात (तनासब या Ratio) और योग्यता के नियमों को विस्मरण कर रहे हैं और केवल मात्रा की तुलना चाहते हैं अर्थात आपका आशय यह है कि यदि एक रुपय की तोल एक तोला है तो घास जो उससे ख़रीदी जावे वह भी एक तोला होनी चाहिये। डाक्टर ने रोगी को —) का डोज़ (Doze) दिया, एक घण्टे में रोगी अच्छा हो गया उसके पीछे ५० वर्ष जी कर उसने दस लाख रुपया कमाया, आप कहेंगे कहां एक आने का व्यय और एक घण्टे का इलाज और कहां उसकी ५० वर्ष आयु और दस लाख की कमाई, यह सत्य नहीं हो सकता। परन्तु दूसरी ओर आप स्वयं कहते हैं कि साधारण सी दियासलाई रगड़ कर घास का बड़ा ढेर जलाया जा सकता है, और दस मिनट

का पालिश वर्षों के जंगार को दूर कर सकता है, अतः इस आक्षेप का उत्तर तो आपने स्वयं ही दे दिया। तथापि यह संकेत हम भी किये देते हैं कि परिमित समय और अल्प पुरुषार्थ विद्या और बुद्धि के निमित्त से इन ज़ाहरी नपैनों की हद से पार हो जाते हैं। कारण यह कि ज्ञान की शक्ति सब समयों और प्राकृतिक साधनों से सहस्रों वा लक्षों गुणा अधिक श्रेयस्कर एवं मूल्यवान् है। चूँकि उत्तम और सत्य कर्म यथार्थ ज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं और उसी ज्ञान का स्थूल वा क्रियात्मक रूप हैं इसलिए परिमित होने पर भी महान् और विस्तृत काल की आकांक्षा करते हैं। और इसी से इन कर्मों के पश्चात् इतने लम्बे अरसे के सुख का फल किसी बुद्धिमान् के एतराज़ का निशाना नहीं हो सकता।

छटा आक्षेप

यदि युक्ति नं० ६ के अनुसार अन्त वाले कर्मों का अनन्त फल देना ईश्वर के न्याय पर धब्बा लगाएगा, तो ५०–६० वर्ष के पुरुषार्थ के बदले ३१ नील वर्षों से अधिक काल का सुख देना भी ईश्वर के न्याय के लिये लज्जा का कारण ही होगा, (उत्तर) इसका जवाब पूर्णतः उपरोक्त उत्तरमें मौजूद है और योग्यता तथा ज्ञान सुख के नियम का ख्याल करने पर ऐसा प्रत्येक उत्तर निरर्थक सा है। यदि एक सेर अन्न बोया हुआ हज़ारों मन अनाज पैदा कर सकता है, यदि थोड़े समय के बुद्धि पूर्वक एवं ज्ञान युक्त पुरुषार्थ से रेलगाड़ी का आविष्कार करके हजारों वर्षों तक करोड़ों मनुष्यों को लाभ पहुँचाया जा सकता है, यदि दो चार मनुष्यों की व्यापार कुशल बुद्धि के प्रयत्न से उत्तम प्रबन्ध तथा नियमित रूप से जारी हुई कम्पनी अपने समय के और उसके पश्चात् होने वाले लाखों मनुष्योंको आर्थिक लाभ दिये जाती है और आप किसी ऐसे परिणाम पर आक्षेप नहीं कर सकते तो मुक्ति सम्बन्धी काल संख्या पर

आपका आक्षेप निःसार क्यों नहीं। स्वयं साहब जी महाराज के साधारण से परिश्रम से दयाल बाग़ आगरा में जो फ़ैक्टरियां तथा संस्थाएँ जारी हुई हैं उनसे साहब जी महाराज सर्वकाल के लिये जनता को लाभ पहुंचाने की आशा रखते हैं और इसमें कोई सत-संगी न्याय विरुद्ध परिणाम नहीं समझता, तो मुक्ति काल सम्बन्धी आपके आक्षेप में भी कोई वज़न नहीं हो सकता।

सातवाँ आक्षेप

सातवीं युक्ति पर तो नितान्त हँसी आती है। "यदि दुखों से छूट कर सुखों का भोगना बोझ है तो मुक्ति की अवधि में अधिकता होने से बोझ में अधिकता नहीं होती, केवल बोझ उठाने के समय में वृद्धि होती है। क्या स्वामी जी यह फ़रमाना चाहते हैं कि आत्मा केवल एक परिमित समय तक दुख के छुटकारे और सुख के भोग का भार उठा सकती है और वह काल व्यतीत हो जाने के पश्चात् वह दुख से पृथक होतो और सुख का भोग उसको दुखदाई हो जाता है ?"

(उत्तर) निस्सन्देह अल्प जीव के साथ अल्पता प्रत्येक काम और परिणाम में आवश्यक है। कोई वस्तु आपको कितनी भी सुख कर हो वह आप की शक्ति के अनुसार ही आपको सुख दे सकती है। सोना यदि मूल्यवान है तो भी विशेष परिमाण में ही आप उसको उठा सकते हैं। और नेचर की ओर से वह सारे का सारा आज तक किसी एक व्यक्ति के अधिकार में नहीं आया। कई मील लम्बी सोने की कान किसी को दिखाकर आज्ञा दी जावे कि जितना चाहो उठा ले जाओ तो भी वह स्वयं अथवा उसके आदमी वा घोड़े अपनी शक्ति से बढ़कर उठा नहीं सकते। भोजन अथवा मिठाई कितनी भी स्वादिष्ट हो एक पाव या आधा सेर खाया नहीं कि पेट भरा नहीं। अब कोई यह कहे कि स्वादिष्ट पदार्थों को

छोड़ने का अर्थ क्या, जब तक मिले खाते जाओ ? तो कोई इसके लिये तय्यार नहीं हो सकता। स्वयं साहब जी महाराज या तो दस्तर खान उठवा देंगे या विवश हो कर छोड़ भागेंगे। कोई जबरन उनके मुंह मे ठोसना चाहें तो मुंह को बन्द करके उसे जोर से धक्का देकर परे फैंकेंगे। भोजन ही क्या प्रत्येक प्रकार के भोग में अल्प सी मात्रा पर ही मनुष्य की तृप्ति होती और तत्पश्चात उस भोग से मन उचाट होजाता है। निद्रा अत्यन्तावश्यक एव सुखदाई है, परन्तु सदा सोया ही रहने की शिक्षा साहब जी महाराज किसी को नहीं देसकते अत: प्रत्येक प्रकार का सुख भी उतनी ही मात्रा में भोगा जा सकता है जितनी के भोगने वा बरदाश्त करने की शक्ति हो। उससे बढ़ने पर वही सुख दु:खरूप होता है। कुरान सूरत बकर आयत २८६ में पूर्णत: स्वामी जी के आशय की पुष्टि की गई है।

"अल्ला प्रत्येक मनुष्य पर उतना ही भार डालता है जितना वह उठा सकता है, जिसने अच्छे काम किये उसका फल उसी के लिये है और जिसने बुरे काम किये उसका बबाल उसी पर है।" यही सिद्धांत इससे अगली २८७ आयत तथा आल इमरान २९, इन-आम १६४ में है जिससे सिद्ध होता है कि यह एक सर्व तन्त्र सिद्धान्त है कि शुभ कर्मों का फल सुख और बुरे कर्मों का फल दुख, दोनों के लिये बरदाश्त की ताक़त की शर्त है।

आठवां आक्षेप

पहिली युक्ति (वेद में नित्य मुक्ति का निषेध है) के सम्बन्ध में पं० नरदेव जी की पुस्तक आर्य्य समाज का सिद्धान्त में से यह शब्द उद्धृत किये हैं:—

"इसमें सन्देह नहीं कि सर्व दुखों से छूट कर जन्म मरण के बन्धन से रहित होकर ईश्वर आनन्द में मग्न होने का नाम ही

मुक्ति है। इतने अंश में सब दर्शन कार एक मत हैं पर मुक्ति से लौट कर फिर आता है, इस तत्व को केवल स्वामी जी ही मानते हैं, जो लौटना नहीं मानते वे 'न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते' इस श्रुति को प्रमाण में देते हैं। हम को तो आज तक एक प्रमाण नहीं मिला जो स्पष्ट रूप से लौटने की बात करता हो।" (पृष्ठ ६८)

(उत्तर) पं० नरदेव जी शास्त्री का इस विषय में स्वामी जी से मत भेद है वा नहीं और है तो किस अंश में, इस पर विचार ले बैठना प्रकरणविरुद्ध है। पण्डितजीके उपरोक्त शब्दोंसे स्पष्टरूपसे यह भी सिद्ध नहीं होता कि वह स्वयं पुनरावृत्ति को नहीं मानते न वह कोई स्पष्ट युक्ति वा प्रमाण इस सिद्धान्त के विरुद्ध पेश करते हैं। अधिक से अधिक उनकी संशयात्मक अवस्था का परिणाम निकाला जा सकता है और इस अवस्था के होते हुए उनके शब्दों पर वाद विवाद करना अथवा उन्हें प्रमाण कोटि में लेना सर्वथा अनुचित है विशेषतः इसलिये भी कि स्पष्ट प्रमाण न मिलने की शिकायत का आशय यह है कि वह ऐसे प्रमाणों का मिलना अवश्य स्वीकार करते हैं जिनसे उन्हें किसी न किसी हद तक पुनरावृत्तिके सिद्धान्तकी पुष्टिका भान होती है। न केवल यह साहब जी महाराज स्वयं भी इस सिद्धान्त के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं देते अतः विरोध का सर्वथा अभाव और पुष्टि की किसी न किसी अंश में विद्यमानता ही इस आक्षेप की जड़ काटने को पर्याप्त है। इसके उपरान्त "स्पष्ट प्रमाण न मिलना" के शब्द स्वयं असत्य हैं और साहब जी महाराज का उनके आधार पर आक्षेप करना उनकी विचार शक्ति तथा शैली दोनों को दूषित सिद्ध करता है। क्योंकि वेद प्रमाण कोई भी अस्पष्ट नहीं, वेद मंत्रों का कोई शब्द आज तक अस्पष्ट नहीं कहा गया। कोई मनुष्य किसी शब्द के अर्थ वा भाव को पूर्णतः ग्रहण न कर सके और वह कोई निश्चित

परिणाम अपने लिये न निकाल सके, यह तो हो सकता है पर यह प्रतिज्ञा कोई नहीं कर सकता कि उससे अधिक योग्यता के विद्वानों के लिये भी उन शब्दों में विषय को विस्पष्ट करनेकी योग्यता नहीं। रोगी नेत्र सूर्यके सामने चुन्ध्या सकते हैं, पर इससे सूर्यकी किरणों में यथार्थ प्रकाश देने को अयोग्या सिद्ध नहीं होती। फिर

'अब तो आग अपने दाम में मय्याद आ गया'

इस कथन के अनुसार आप स्वयं ही ऋग्वेद १, २४, १—२ का प्रमाण पेश करते हैं जो क्या शब्द की दृष्टि से और क्या अर्थ की दृष्टि से पूर्णतः स्पष्ट सिद्ध हो रहे हैं।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥ अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २ ॥ ऋ० ॥ मं० १। सू० २४। मं० १।२॥

इन शब्दों पर कोई आक्षेप नहीं। स्वामी जी जो अर्थ करते हैं वह भी सर्वथा सरल एवं सुगम है कि वेद ने प्रश्नोत्तर रूप में इनके द्वारा परम देव परमात्मा की ही भक्ति की शिक्षा दी है। इस-लिये कि वही मुक्ति से पुनरावृत्ति की व्यवस्था करता है। पहिले मन्त्र में प्रश्न है कि अमृत वा अनादि (ईश्वर, जीव, प्रकृति) में से कौन हमको पुनः माता पिता के दर्शन कराता है वही जो ऐसा है हमारा उपास्य है। दूसरे मन्त्र में उत्तर दिया है जो सर्वथा स्पष्ट है कि प्रकाशस्वरूप परमात्मा देव ही दोबारा मातापिताके दर्शन कराता है अतः उसी अविनाशी भगवान को उपासना करनी चाहिये।

इस अर्थ में जन्म मरण के निर्विवाद चक्कर का ज्ञान दिया गया है जिसके दो रूप हैं। पिंडमें यह जन्म मृत्युके रूप में प्रकट है और ब्रह्मांड में इसका नाम मुक्ति और बंध है। साहब जी महाराज

मानते हैं कि जो कुछ पिंड के विषय में सत्य है वही ब्रह्मांड के विषय में है और यदि ब्रह्मांड में मुक्ति और बंध का चक्कर न माना जावे अर्थात् मुक्ति का नित्य होना स्वीकार किया जावे तो पिंड सम्बन्धी आवागमन के चक्कर को भी मिथ्या मानना पड़ेगा, जो साहब जी महाराज को स्वीकार नहीं। अतः मुक्ति से बंध का सापेक्ष सम्बंध वैसा ही सत्य है जैसा कि जन्म से मरण का। साहब जी फ़रमाते हैं कि स्वामीजी ने इन दोनों मन्त्रों में आये पुनर्दात शब्द का फ़ाइदा उठाकर इन्हें अपने पक्ष का प्रमाण ठैहराया है। पर जब यह शब्द साफ़ मौजूद है और इसमें स्वामी जी के मन्तव्य को सिद्ध करने की पूरी योग्यता है तो इससे फ़ायदा उठाना न्याय पूर्ण, बुद्धि-मत्ता तथा प्रशंसा के योग्य व्यवहार है नकि दोषयुक्त। दूसरा आक्षेप यह है कि 'अदित्यें' शब्द का अर्थ देव माता भी होता है। निरुक्त, निगम कांड, ४-३-२२-४२ में वेद का एक मन्त्र देकर सिद्ध किया गया है कि यह शब्द देव माता के लिये प्रयुक्त होता है। पर साथ ही आप 'अदिति' के अनेक अर्थ मानते हैं। पृथिवी, परमेश्वर, अक्षर, अखण्डित और देवमाता। चूंकि वेद के यौगिक शब्दों का अर्थ प्रकरण के अनुसार भिन्न २ हो सकता है और देवमाता के अलावा कोई और अर्थ लेने की स्वामी दयानन्द के लिये मनाई नहीं हो सकती, अतः आक्षेप सर्वथा निर्मूल है।

साहब जी महाराज स्वयं दुबधे में हैं। आप कहते हैं, यदि अदिति के अर्थ देवमाता लिये जायें तो मन्त्र का अर्थ स्वामी जी के विरुद्ध हो जाता है। अर्थापत्ती से इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि देवमाता शब्द अदिति के लिये न लिया जावे तो स्वामी जी का अर्थ सर्वथा सत्य है। यह हाल तो मन्त्र के एक शब्द सम्बन्धी मतभेद का है और यदि मन्त्र समष्टिरूप से लिया जावे तो आक्षेप और भी हास्यास्पद है क्योंकि आपके पेश किये अर्थ से और भी

अधिक बल से मुक्तिसे पुनरावृत्तिका सिद्धान्त सिद्ध होता है। आप मन्त्र का अनुवाद इस प्रकार लिखते हैं:—

"देवताओंमें से हम किसका पवित्र नाम धारण करें जो हम को दोबारा देवमाता के पास पहुँचावे।" अब देवमाता के पास पहुंचना केवल मुक्तिका आशय रखता है और चूँकि इस प्रार्थना का आशय यह है कि हमको पुनः मुक्ति प्राप्त हो अतः परिणाम यह है कि पहिले मुक्ति हुई थी जिसके पीछे बन्धन में आना हुआ और अब पुनः मुक्ति की कामना है। इससे स्पष्ट है कि किसी प्रकार भी मन्त्र का अर्थ हो इससे पुनरावृत्ति का सिद्धान्त ही सिद्ध होता है। देवमाता ऐसी स्त्री को भी कह सकते हैं जो देवता पुत्रों को जन्म दे या स्वयं दिव्य गुणयुक्त हो अतः देवमाता तक पहुंचने का अर्थ जहां मुक्ति पाना हो सकता है वहां यह भी हो सकता है कि श्रेष्ठ धर्मात्मा माता हमें प्राप्त हो अर्थात् हम ऐसी माता के गर्भ द्वारा जन्म लें।

६८—यह सिद्ध हो चुका कि स्वामी जी ने जो प्रमाण दिया वह शब्द की दृष्टि सेही स्पष्ट नहीं अर्थ की दृष्टि से भी सर्वथा स्पष्ट है। उसमें किसी प्रकार का सन्देह हो नहीं सकता तो भी साहब जी महाराज और सतसंगियों की मुशकिल को हल करने के लिये हम और भी स्पष्ट प्रमाण देते हैं।

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः॥

जिन महात्माओं ने यज्ञ और निष्काम कर्मो के द्वारा नित्यमुक्त अखण्ड ऐश्वर्य युक्त परमात्मा के मोक्ष रूप समान गुण को धारण किया है हे ऐसी उत्तम धारनावती बुद्धि युक्त ज्ञानियो! मनुष्य सम्बन्धी शरीर को लौट कर फिर हासिल करो ऐसे तुम लोगों का कल्याण हो।

य उदाजन्पितरो गोमय वस्वृतेनाभिनन्दन् परिवत्सरेबलम् ।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥

जिन वेद जानने वालों ने वाणी मय धन उत्तम रीति से प्राप्त किया और सृष्टि नियम ज्ञान के द्वारा सर्वथा निवास योग्य मानव देह में आच्छादक अज्ञान अंधकार को तोड़ा है ऐसे उत्तम शक्ति वाले प्राण शक्ति सम्पन्न महात्माओं ! फिर मानव देह को ग्रहण करो तुम्हारी दीर्घ आयु हो।

य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन्पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥

जिन्होंने ज्ञान पूर्वक नियमाचरण से चराचर के आत्मा प्रभु को दिव्य गुण युक्त मन (हृदय आकाश या ब्रह्मरंधर) में प्राप्त किया और मान प्राप्त करने वाली वेदवाणी का विशेष विस्तार किया है ऐसे पाप वृत्तिनाशक ज्ञान आनन्द युक्त महात्माओं ! फिर से मनुष्य जन्म ग्रहण करो तुम्हारी उत्तम संतती और श्रेष्ठ शिष्य मंडली हो।

अयं नाभावदति वल्गुवो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृ तनरा ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥४॥

ज्ञानवान परमात्मा सब संसार का बन्धु तुम्हारे अन्तःकरण में मनोहर उपदेश करता है। हे देवपुत्रो ! ऋषियो ! परमात्माके इस उपदेश को सुनो। हे उत्तममेधाशक्तिसे सम्पन्न महाआनन्द को प्राप्त हुये महाशयो ! मनुष्य शरीरको ग्रहण करो, उत्तम वेदज्ञान तुम्हें हो

६९—इस प्रकार वेद उपनिषदादिसे अनेक प्रमाण दिये जासकते हैं, परन्तु लेख विस्तारके भयसे अधिक न लिख कर हम पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि हमारे ट्रैक्ट मुक्ति अनित्य है न केवल प्रमाणों का अध्यन करें, पुनरावृत्ति सम्बन्धी अनेक अकाट्य युक्तियों का भी पाठ करके स्वयं विस्तारपूर्वक निर्णय करले कि यथार्थ प्रकाश का लेख पक्षपातादि पर निर्धारित है अथवा युक्तियुक्त आधार पर।

सर्ग ११

हवन यज्ञ सम्बन्धी आक्षेप

७०—तीसरे भागके १५३ से १६६ तकके पृष्ठ हवन यज्ञ सम्बन्धी बहस के अर्पण किए गए हैं। सर्व प्रथम आपके यह रीमार्क हैं:—

"स्वामीजी हवन यज्ञ आदि कर्मों में तो विश्वास रखते थे, परन्तु देवताओं का अस्तित्व न मानते थे, इसलिए उनके लिए यज्ञादि कर्म विषयक विज्ञान का वर्णन करना एक विकट समस्या थी, परन्तु इस विषय में भी उनका साहस वैसा ही बना रहा और उन्होंने अपनी पदार्थविद्याकी मददसे प्रत्येक आक्षेपके लिए उत्तर पूरा कर ही दिया, पर वर्तमान काल की पदार्थ विद्या से अनभिज्ञ होने के कारण उनकी युक्तियों में प्रत्यक्ष त्रुटियां दिखाई देता हैं।"

(आर्य्य) इन शब्दों से हमें विशेष ग्रामीण घटनाओं की स्मृति ताज़ा होती है। विद्या, बुद्धि आदि की दृष्टि से कितनी भी कमज़ोरी क्यों न हो, ग्रामीण पुरुष किसी भी विषय पर टिप्पणी आदि करने से नहीं चूकते और कभी २ उनकी बातें बड़ी रहस्य-पूर्ण होती हैं। पर सब से बढ़िया रहस्ययुक्त वचन एक विशेष व्यक्ति के होते हैं। जिस विषय की कोई व्याख्या न कर सके वह उसके सामने रखा जाता है। जिस अन्दाज़ से यह मनुष्य सभा में बैठकर प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देता है वह शायद चार वेद के ज्ञाता ब्रह्माको भी नसीब न हुआ होगा। यह प्रसिद्ध तुक इन्हीं महानुभाव के लिए घड़ी गई है:—

इसको बूझे लाल बुझक्कड़ और न बूझे कोय।
पांव में चक्की बांध के कोई हिरना कूदा होय॥

विचारशील विद्वान इन गंवारू सभाओं को तुच्छ समझते हैं

और एकाध बात सुन कर ही वह इस प्रकार कह उठेंगे कि "मजलिस नामाकूलों की लाहौल वला लाहौल वला" अतः इसे छोड़ हम साहब जी महाराज के इस वचन पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं कि—"स्वामीजी देवताओं के वुजूदसे मुनकिर थे।"

निश्चय यह बात आपने केवल अपने अनुयाइयों को पूरा बुद्धू समझ कर साहसपूर्वक लिखी है, अन्यथा आप उन देवताओं का नाम लिखते, जिन्हें आप मानते और स्वामी जी नहीं मानते। चौथे अध्याय पहिली धारा में इसका भली भांति उत्तर दिया गया है और स्वामीजी के माने हुए ३३ प्रकार के देवताओं से भिन्न यदि आपके कोई कल्पित देव हैं तो वह केवल विद्वानों में आपकी खिल्ली उड़ाने का ही कारण हो सकते हैं। रहे हवन यज्ञ सम्बन्धी आपके आक्षेप तथा साइन्ससम्बन्धी अज्ञान अथवा उनकी युक्तियों का कमज़ोर होना, इसका निर्णय अगली पंक्तियों में युक्ति युक्त विचार द्वारा किया जाता है।

७१—एतराज़ "क्या कोई मान सकता है कि ख़ुशबूदार, शीरीं और मुकव्वी अश्या के जलाने से हवा और ख़िला का पानी पाक व साफ़ हो जाते हैं? यह ज़रूर है कि बाज़ अशया—लोबान, गूगल वग़ैरा के जलाने से क़ुर्ब हवाई में ख़ुशबू फैल जाती है लेकिन चीनी वग़ैरा शीरीं और बादाम पिस्ता वग़ैरा मुकव्वी अशया जलाने से महज़ बदबू फैलती है।

आर्य्य—आप को विदित है कि आर्य्य समाज तथा स्वामी दयानन्द मानते हैं कि ४ प्रकार के पदार्थों की सामग्री का हवन वायु को शुद्ध करता है और जल के दोषों को भी हटाता है. तब इस प्रश्न का उत्तर तो आ गया कि कौन ऐसा मान सकता है। आप सिख मत को सन्त मत मानते तथा राधा स्वामी मत से उसकी प्रत्यक्ष अनुकूलता कहकर गर्व करते हैं, जब कि सारे भूगोल

भर में कोई से २ मत भी नहीं जिन की कुछ न कुछ बात परस्पर में मिलती न हों। भाई ज्ञान सिंह रचत पन्थ प्रकाश में गुरू गोविन्दसिंह जी के शब्द हैं कि यज्ञ हवन अवश्य करना चाहिये, यह हमारा सार धर्म है। आज कल दुर्भिक्ष पड़ रहा है, महामरी फैल रही है, वर्षा होती नहीं, आर्य्य नर नारी अपना धर्म छोड़ बैठे हैं जिस से सब प्रकार की आपत्तियां उन पर आ रही हैं इसके पश्चात् लिखा है—

हम जब हवन यज्ञ करवैं हैं। खुश हो घन जल बहु वरसै है
पवन हवन तें शुद्ध भये है। रोग शोक सब दूर बये है ॥

अतः माननेवाले सन्त तो आपके सामने हैं। रही बात सुगंध दुर्गन्ध की, इसका उत्तर आप स्वयं दे रहे हैं कि लोबान आदि के जलाने से सुगन्धि फैलती है। यह कहना कि चीनी और बादाम से दुर्गन्ध फैलती है, सत्य नहीं हो सकता भूत क्या। वर्तमान काल के हजारों यज्ञों में मीठी और ताकत देने वाली वस्तुएँ हवन सामग्री में डाली गई, पर कभी एक भी शिकायत दुर्गन्ध की नहीं हुई। दूसरे चीनी और बादाम से स्वामी जी ने मिठास तथा बलवर्धन के गुण वर्णन किये हैं सुगन्धि का इनके साथ सम्बन्ध ही नहीं रक्खा। तीसरे इनसे दुर्गन्ध होना भी असत्य है। पृष्ठ १६० पर आपने स्वयं लिखा है कि वास्तव में न सुगन्ध है और न दुगन्ध। जो गन्ध भाती है उसे मनुष्य सुगन्ध कहता है और ज नहीं भाती उसे दुर्गन्ध कहता है। और सभी लोग प्रत्येक गन्धको पसन्द वा नापसन्द करें ऐसा होता नहीं अतः प्रथम तो मिष्ट और पुष्टि कारक पदार्थों का नाम लेकर इनसे परिणाम सुगन्ध वा दुर्गन्ध का जोड़ना जान बूझ कर भ्रान्ति फैलाने का यत्न करना है और दूसरे यह जानते हुए भी कि लहसन तथा प्याज की गन्ध किसी २ को लुभाती है और किसी को भाता ही नहीं,

मिष्ट और पुष्टिकारक पदार्थों से दुर्गन्ध फैलने का जिकर ले बैठना अपनी आत्मा का हनन करना है।

७२—इन अशिया का धुआँ उड़ कर कुछ ऊँचे तक आसमान में चढ़ जाता है मगर इस से यह नतीजा निकालना कि यह धुआं खिला के पानी को साफ़ कर देता है, महज़ दिल बहलाने की बात है।

आर्य्य—वाह साहब ! अच्छे पदार्थवित सिद्ध हुए। यदि धुआं ऊपर चढ़ गया और वह धुआं पुष्टिकारक, मिष्ट, सुगन्धित एवं स्वास्थ्यवर्धक परमाणुओंका ही संयोग जन्य है और यह ४ प्रकारके पदार्थ पैदा जब होते हैं कि जब वर्षा के द्वारा पृथ्वी में वह परमाणु लौट आते हैं जो धुआं बन कर उड़े थे तब खिला के पानी पर इसका प्रभाव न मानने का अर्थ क्या? परमाणु वायुकी अपेक्षा हल्के होने के कारण ऊपर चढ़ते हैं और भाप के साथ मिले रहते हैं। जब यह भाप पानी का रूप धारण करती है तो प्रत्येक वर्षा बिन्दु अपने समान अवकाशयुक्त वायुसे भारी होनेके कारण पृथ्वी पर आती है। प्रकृति इस उल्टा पल्टी में पदार्थों को शुद्ध करती है जैसे गेहों के ढेर वाले तिनके वा कंकर को छाज के साथ अथवा ढेर को फैलाकर और उन्हें चुन कर प्रथक किया जाता है। दुर्गन्धादि वास्तवमें केवल यह है कि भिन्न २ परमाणु उचित भागसे न्यूनाधिक अवस्था में मिलते हैं। सूर्य्य तथा अग्नि की सहायता से वह सब परमाणु पृथक २ हो जाते हैं तो वर्षा के द्वारा पृथ्वी पर आकर अपने २ बीज की ओर खिंच आते हैं और नई उत्पत्ति करते हैं। भिन्न २ स्थानों के जलवायु के भेद से आशय केवल यह है कि कहीं जलवायुमें विशेष प्रकारके परमाणु अधिक हैं कहीं न्यून। इसी न्यूनाधिक्यके कारण जलवायुको शुद्ध वा अशुद्ध कहा जाता है अतः जब सर्वप्रकारके परमाणु जलमें उचित परिमाणमें सम्मिलितहों जल शुद्ध होता है और जो मनुष्य पदार्थ विद्याका अभिमानी होकर भी

यह परिणाम नहीं निकाल सकता कि वर्षा के जल में मिष्ट और पुष्टिकारकादि पदार्थों के परमाणु उचित भाग में मिलने से जल का शुद्ध होना आवश्यक है, उसका व्यवहार या तो जान बूझकर अन-जान बनने के समान है या उसकी पदार्थविद्या की प्राप्ति केवल वर्षों ही भाड़ झोंकने के समान है।

७३—स्वामीजी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में हवन का प्रभाव दिखाने के लिये दाल में बघार लगाने का जो अति साधारण सा दृष्टान्त दिया है, उस पर भी आप नुमायशी भोलेपन से काम लेते हुए फरमाते हैं, "बघार लगाने से अहले हिन्द को ज़बान के लिये दाल का ज़ायक़ा ज़्यादा खुशगवार हो जाता है मगर महज़ कड़कड़ाते घी की खुशबू से दाल का मुक़व्वी बन जाना ख़ाम ख़्याली है" परन्तु हुज़ूर वाला ! यह आपने नतीजा ही कहाँ से निकाला कि स्वामी जी केवल इस घी की सुगन्धि से दाल को पुष्टिकारक मानते हैं ? क्या घी कहीं उड़ गया है और कोई भी मनुष्य इस बात से इन्कार कर सकता है कि घी के संयोग से दाल पुष्टिकारक हो जाती है। स्वामी जी के यह शब्द आपने स्वयं उद्धृत किये हैं, "दाल वग़ैरा को उमदा बनाने के लिये चमचा में खुशबूदार घी डाल, आग में तपा, ज़रा धुआं सा उठने पर उससे दाल वग़ैरा बघार कर देगची का मुँह बन्द कर चमचा चलाते हैं उस वक्त जो मज़कूरा वाला धुआं की शकल की भाप उठती है वह खुशबूदार सयाल होकर तमाम दाल के अन्दर समा जाती है और उसे खुशबूदार बना देती है और उस से दाल मुकव्वी और लज़ीज़ बन जाती है"। क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि घी भी समस्त दाल में मिल गया है और उसका भाप बनने वाला भाग भी सयाल रूप में दाल में ही मिला हुआ माना है और इससे सुगन्ध, स्वाद और पुष्टि के तीन परिणाम कथन किये हैं। दाल में

केवल सुगन्ध का सम्बन्ध या मेल नहीं; घी का भी मेल हुआ है और जैसे स्वादिष्ट भोजनों में भिन्न २ पदार्थों का विशेष संयोग होता है वैसे ही घी के इस संयोग का प्रभाव दाल के स्वाद पर भी होना आवश्यक है।

७४—इसके अनन्तर आप और ही कुतर्क करते हैं और सिद्ध कर दिखाते हैं कि आपको अपने मत्संगियोंकी मूर्खता, अन्धविश्वास तथा सरलता पर पूर्ण विश्वास है। आप फरमाते हैं, बिलफ़र्ज़ इस अमलसे दाल मुक़व्वी और लज़ीज़ भी बन जाती है तो फिर इससे यह नतीजा क्योंकर निकला कि हवन के ज़रीए कुर्रा हवाई सब किस्म की ख़राबियों से पाक और साफ हो जाता है? आप ज़्यादा से ज़्यादा यह कह सकते हैं कि इस उसूलके मुताबिक कुर्रा हवाई हवन करने से मुकव्वी और लज़ीज़ बन सकता होगा।

आर्य—प्रिय पाठक वृन्द! यथार्थ प्रकाश के लेखक महोदय एक गद्दी के महन्त हैं, वर्तमान तथा भावी लाखों मनुष्यों का ईमान आपके सिर पर है। आप अनेक संस्थाओं के पथ प्रदर्शक हैं। हिज़ होलीनेस His Holiness आपका ख़िताब है। पदार्थविद्या का आपको अभिमान है। आप बी. ए. पास प्रसिद्ध हैं और इसलिये आप इस तुक की मार से भी आप सुरक्षित है कि "एम० ए० बनाके क्यों मेरी मिट्टी पलीद की" तथापि पक्षपात आपको किस रंग में रंगता और कैसे भद्दे कुतर्कका शिकार करता है यह आपके विवादास्पद शब्दोंसे प्रगट है। आप फ़रमाते हैं यदि घीके बघारसे दालको स्वादिष्ट तथा पुष्टिकारक कहते हो तो हवनके द्वारा वायु मंडलको भी लजीज और मुकव्वी कहो, शुद्ध और साफ न कहो। श्रीमानजी! आपकी आज्ञानुसार वायु को अवश्य ही पाक और साफ़ कहना छोड़ देंगे, पर पहिले ज़रा यह तो फ़रमा दीजिये, कि बिना हवन के जो वायु आप अन्दर खींचते हैं उसका स्वाद कैसा है और क्या

आप किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान की वायु को स्वादिष्ट एवं पुष्टिकारक कहा करते हैं अथवा स्वस्थ, स्वच्छ वा शुद्धादि । अतः यदि आपने वायु के लिये स्वयं कभी स्वादु एवं पुष्टिकारक का शब्द प्रयुक्त नहीं किया और यह शब्द आप केवल मुख से खाये जाने वाले भोजन के लिये ही बोला करते हैं । ऐसे ही पुष्प वा इतर को नाक से सूंघ कर आप सुगन्धित ही कहते हैं, स्वादु अथवा पुष्टिकारक नहीं कहते तो हमें भी वायु को स्वादु वा पुष्टिकारक कहने की शिक्षा न दीजिये किन्तु शुद्ध और स्वच्छही कहने दीजिये। स्वादिष्ट तथा पुष्टि कारक शब्द भोजन के ही साथ आते हैं और कोई भी विद्वान इनका प्रयोग वायु के साथ नहीं कर सकता ।

७५—इससे भी अधिक अयुक्त बात यह कही है कि स्वादु और पुष्टि कारक तो हवन वाले वायु को कहो, पर वह भी उसी सीमा तक जहां तक हवन की सुगन्धि पहुंचे न कि बादलों की हद तक ।

(आर्य्य) कृपया वह हद भी बता दीजिये जिससे आगे सुगन्धि नहीं जा सकती और यह भी फ़रमा दीजिये कि जो बुख़ार बादल की हद तक पहुँचते हैं उनमें और सुगन्धि के परमाणुओं में तोल की दृष्टि से क्या निस्बत है ? तथा आपकी नासिका तक जो सुगन्धि फल से पहुंचती है अथवा सारी सुगन्धियां जो आपने आजतक सूंघी हैं, वह कहां चली जाती वा चली गई हैं । यदि उन की नियत सीमा होती तो क्या वह सदा ग्रहण न होती रहतीं ? आप से तो बाईबिल वाला ही अच्छा निकला जो आसमान पर परमेश्वर के रहने और लोबानादि की सुगन्धि उस तक पहुंचने और उसके उसे सूंघनेका पता देता है । आप तो बाईबिल से अपने मत की स्पष्ट अनुकूलता मानने पर भी सुगन्धि को बादलों की हद तक भी पहुँचने नहीं देते । निःसंदेह आपका तर्क भी विचित्र है और

वह साइन्स भी विचित्र है जो सुगन्धि की उस अवस्था को भी तमीज़ नहीं कर सकती जो नासिका के ग्रहण से परे है।

७६—परन्तु आपका अनोखा तर्क इससे भी आगे मार करता है। आप कहते हैं:—दाल में बघार देने के लिये तो घी केवल कड़कड़ाया जाता है और हवन में जलाया जाता है अतः यदि दाल के बघार वाले नियम को ही लक्ष रखना है तो ईश्वर के लिये घी को तेज़ गर्म करने की ही आज्ञा दीजिये। इसको जलाने की मनाई कीजिये, जला हुआ घी तो दाल को भी पुष्टि कारक तथा स्वादिष्ट बनने के स्थान में हानि कारक तथा नीरस बनाता है।

(आर्य्य) क्या ही अच्छा होता कि आप प्रकृति को पहिले इस बात पर राज़ी करते कि जल को आग वा सूर्य की गर्मी में भाप बना कर ऊपर न उड़ा लेजाए, उसे गर्म ही करे या खौलने दे। महामरी या हैज़ा के दिनोंमें जो लोग लोबान या गूगलको आग पर धुकाते या जलाते हैं इसलिये कि उनका धुआं जहां तहां फैल जावे, उन्हें आप कहदें कि बस गर्म करना काफ़ी है जलाओ नहीं; ऐसाही मलमूत्र के परमाणु ऊपर उड़ा ले जाने के स्थान में केवल उन्हें गर्म करने की अनुमति सूर्य को भी दी होती। हज़रत कड़कड़ानेका नाम अपनी जगह है और जलाने का अपनी जगह है। प्रकृति नीम हकीम नहीं कि हल्दी की गट्ठी पर चूहे के पन्सारी होने की लोकोक्ति उस पर लागू हो। वह बरफ भी बनाती है, उसे पानी के रूप में भी बहाती है, गरम पानी के चश्मे भी चलाती है, जौहड़ तालाबादि के जल को सूर्य की किरणों से गर्मी भी पहुंचाती है। उसे वाष्प के रूप में उड़ाती और बादल वा ओलों के रूप में बरसाती भी है। इसी प्रकार घी का भी केवल यही काम नहीं कि आप उससे दाल में बघार ही लगाते रहें। बघार का सम्बन्ध केवल भोजन से है, परन्तु वायु और जल की शुद्धि अर्थात् उन्हें

दोषयुक्त करने वाले कीटाणु या दुर्गन्धि युक्त परमाणुओं का नाश करने के लिए घी का जलाया जाना अत्यावश्यक है, जला हुआ घी बघार के लिए है ही नहीं; न कोई पुरुष बघार के लिए घी को जलाता है तब भोजन की दृष्टि से उसे हानिकारक वा नीरस कहने का अर्थ क्या, यह तो प्रत्येक मनुष्य जानता ही है? अतः यदि कुछ साहस था तो साइन्स का कोई सिद्धान्त पेश करते, जिससे जले हुए घी के परमाणुओं से वायु में दोष युक्त प्रभाव का होना सिद्ध होता या ऐसी मशीन का आविष्कार करते जो जलाने के बिना ही घी को ऊपर ले जाकर बादलों की मालिश करती फिरती कि जीवित प्राणियों के लिए हानिकारक कीटाणु तथा परमाणु का नाश हो सके।

६७—जैसे दाल के बघार की अति साधारण सी बात को ले कर उस पर सर्वथा अयुक्त तथा निःसार टिप्पणी की गई है उसी प्रकार एक और युक्ति की भी व्यर्थ के विस्तार से तथा रंग चढ़ा कर दुर्गति की गई है। स्वामी जी फ़रमाते हैं कि सफ़ाई का काम ईश्वर के प्रबन्ध से भी होता है और मनुष्य के प्रबन्ध से भी सूर्य्य सारे जगत से निरन्तर रसों को खींचता रहता है, पर यदि उसके काम से अन्न अनाज वा सुगन्धि के परमाणु ऊपर जाते हैं तो दोनों प्रकार के परमाणु होने से ख़ालिस उत्तम गुण जलवायु में नहीं हो सकते, मध्यम गुण ही रहते हैं। मनुष्य जाति कद और बल की दृष्टि से पूर्व काल की अपेक्षा से जो बहुत गिर रही है, इसका कारण जलवायुमें पूर्व की अपेक्षा बहुत से विकार होना भी है पर चूँकि वह विकार मनुष्यके पैदा किए हैं, इनका उपाय भी मनुष्य को ही करना चाहिए। ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि दी है और यज्ञ करने की आज्ञा दी है, जिससे स्वास्थ्य सम्बन्धी दोषों का निराकरण होता है, अतः मनुष्य को हवन यज्ञ अवश्य करना

चाहिए। साहब जी महाराज ने सत्संगियों को भ्रान्ति में डालने के लिए विचित्र नीति से इसे कठिन एवं पेचीदा विषय बनाया और अपना दिमाग़ पृथक २ वाक्यों के समझाने में लगाया है। पर हम आपकी इस कूट नीति का नोटिस न लेकर केवल आपके असली पक्ष पर प्रकाश डालते हैं। आप अपने स्वाभावानुसार विशेष प्रतिज्ञा तो यहां भी नहीं करते पर यह ख़्याल डालना चाहते हैं कि स्वास्थ्य विज्ञान कुशल मनुष्यों के कथनानुसार सूर्य का काम वायु और जल की शुद्धि के लिये काफी है। आप कहते हैं "क्या जुगराफ़िया तबई के माहरीन और दुनिया भर के कैमिस्ट महज़ कुन्दा नातराश हैं जो बइस्तस्नाय पहलो किसी क़दर बोछार के बारिश के *पानी को साफ़ शफ़ाफ़ मानते हैं" परन्तु साहबजी महाराज स्वयं मानते* हैं कि हमारे शब्दादि सब सापेक्ष हैं और केवल पृथिवी पर के कूएं तालाब आदि के जल की तुलना से वर्षा के जल को "मुक़त्तर" कहा जाता है। वर्षा का जल जो देहली में बरसता है वह भी मुक़त्तर कहाता है और मरी आदि पर्वत तथा स्विटज़रलैंड देश में बरसने वाला जल भी मुक़त्तर है। पर इन सब जलों में परस्पर में बड़ा अन्तर है। इस से यह परिणाम निकालना सर्वथा युक्तियुक्त है कि जुग़राफिया तबई तथा पदार्थ विद्या में कुशल विद्वान जिस जल को स्वच्छ वा निर्मल कहते हैं उसमें अधिक सफ़ाई हो सकती है। शुद्ध व स्वच्छ कहने का यह अर्थ नहीं कि शुद्धि की अन्तिम पराकाष्ठा हो गई। दूसरी विचारनीय बात यह है कि यदि ईश्वर के उत्पन्न किये खाद्य पदार्थों के होते हुये भी मनुष्य खेती करके अन्न पैदा करता है। ईश्वर के रचे नदी नाले होते हुये भी मनुष्य स्वयं कुएं वा नलके का प्रबन्ध करता है। सूर्य्य के विष्टा आदि के परमाणु ऊपर उड़ा लेजाने का प्रबन्ध होने पर भी मनुष्य टट्टी वा मंगी आदि की सफाई कराता है और क़ुदरती आंधी पर

भरोसा न करके स्वयं झाड़ु लगाता है तो पृथिवी से ऊपर के आकाश में उड़ने वाली वायु और बादल से बरसने वाले पानी की पूर्ण शुद्धि के लिये भी यज्ञ करना मनुष्य का कर्तव्य है।

७८—*मल विष्टा आदि को खेतों में खाद के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसलिये साहब जो महाराज स्वामी जी के मध्यम गुणों वाले विचार पर आश्चर्य करते हैं। आप कहते हैं कि यदि सब लोग हवन यज्ञ भी करदें और गन्दी खाद का व्यवहार भी जारी रहे तो लाभ क्या होगा ?* पर यह प्रश्न इसी युक्ति के अनुसार है कि काजी जी दुबले क्यों हुये शहर के अन्देसे से ? श्रीमान जी ! स्वामी जी तो चाहते हैं कि हवन यज्ञ की राख ही का खाद बने परन्तु यदि ऐसा नहीं होता तो भी इस गन्दी खाद से अधिक हानि न समझिये खेत की खाद के प्रमाणु भी कुछ तो सूर्य उड़ा ले जाता है कुछ पृथिवी के अन्दर अपने सदृश परमाणुओं की ओर खिंच जाते हैं, जिनसे अन्य उपयोगी पौदों की उन्नति में सहायता मिलती है और कुछ मनुष्य की आवश्यकताओं से संबंध रखने वाली उपज के उस भाग में संयुक्त होते हैं जो केवल उपयोगी खाद्य भाग की रक्षा करते हैं जैसे गेहों के पौदे के डन्ठल आदि। और जो गेहोंके दाने हैं उनमें भी छिलकेवाला भाग असली तत्व की रक्षा के लिये है। यह भाग मनुष्य के अन्दर जा कर भी मलादि के रूप में निकल जाता है। दूसरे भागों की तरह मांस, मज्जा, हड्डी, आदि नहीं बनाता। फुजले के रूप में बाहर आकर नेचरकी मशीनरी के द्वारा अनेक अवस्थाओं से गुज़र कर खाद आदि के रूप में वही काम देता है। शुद्ध और अशुद्ध का शब्द भी सापेक्ष है। संयोग विशेष के विपरोत न्यूनाधिक मात्रा में परमाणुओं का संयोग होने से मनुष्य के लिये दुगन्ध पैदा होती है और गिलाजत, नजासत सड़ांड आदि के शब्द उनके लिये प्रयुक्त होते हैं परन्तु वह

अनेक और प्राणियों तथा कीट पतङ्ग के लिये सुगन्धित स्वादिष्ट तथा पुष्टिकारक भोजन अथवा उनका मन भाता खाजा भी होते हैं अतः आप अधिक दूर की चिन्ताओं में न पड़ें और मानवीय आवश्यकताओं तथा उपकारों को लक्ष्य रखकर यज्ञ की महिमा को समझें।

७९—एक और आक्षेप यह है कि चूंकि सब प्राणियों के शरीर ईश्वर ही तैयार करता है और इन प्राणियों के शरीर से ग़लाज़त सृष्टि नियमों के अनुसार ही ख़ारिज होती है अतः इस दुर्गन्ध के लिये मनुष्य का उत्तर दायित्व कैसा ? साथ ही यह ग़लाज़त पौधों के लिये अमृत है।

आर्य्य—यदि न्याय वा तर्क इसी का नाम है तो स्नान करना भी छोड़ दीजिये क्योंकि जो मैल स्नान से दूर करना चाहते हो वह सृष्टि नियम के अनुसार निकलती है। क्षुधानिवारण के लिये रोटी पकाना आदि भी बन्द होना चाहिये क्योंकि यह कानून मनुष्य ने नहीं बनाया कि भोजन पचकर भिन्न २ धातों में बदल जाये। भूख ईश्वरीय नियमों ने पैदा की है अतः ईश्वर आप ही रोटी का भी प्रबन्ध करेगा। मलविष्टा पौदों के लिये अमृत है तो शरीर पर पसीना आदि से जमी हुई मैल भी तो मक्खी आदि के लिये अमृत है अतः नहा कर मैल को दूर करदेना भी मक्खियों पर अत्याचार होगा। अजी साहब ! पहिले बात को तोलो फिर मुँह से बोलो अनाप शनाप का नाम युक्ति नहीं हो सकता ईश्वर ने शरीर दिया, इन्द्रियां दी, बुद्धि दी, उनका शुद्धि तथा उन्नति के लिये साधन दिया अब यह तो मनुष्य का कर्तव्य है कि विद्या और बुद्धि से काम लेकर सब साधनों का सदुपयोग करे और उनसे सुख पावे वा उन्हें सुखदाई बनावे।

८०—धारा १८३, भाग ३ में आपने प्रथम तो सुगन्ध वा

दुर्गन्ध को सापेक्ष शब्द माना है और कहा है कि दुर्गन्ध मनुष्य के लिये हानि कारक तथा घातक ही नहीं होती। हम यह तो मानते हैं कि दुर्गन्ध का घातक होना आवश्यक नहीं पर वह हानि कारक अवश्य होती है, संभव है हमें किसी दुर्गन्ध से होने वाली हानि को अनुभव करने का अभ्यास न रहे अथवा बहुत से हानि कारक पदार्थों में से किसी लाभ विशेष की दृष्टि से अल्प हानि कारक को प्रसन्नता से स्वीकार करें, पर प्रकृति की ओर से सुगन्ध वा दुर्गन्ध की तमीज़ करने वाली नासिका जिससे बेज़ार है उसके हानि कारक होने की साक्षी स्वयं कुदरत का व्यवहार देता है, फ़ीनाइल से वह कीटाणु मरते हैं जो रोग का कारण हैं। इससे कीटाणुओं की संख्या वृद्धि तो बन्द होती है पर उन मरे हुए कीटाणुओं के बेशुमार सूक्ष्म शरीर वायु और जल पर हानि कारक प्रभाव डालते हैं। उन सूक्ष्म लाशों के परमाणु पुनः उनके सूक्ष्म शरीरों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं और फ़ीनाइल के परमाणुओं से भी उन लोगों को सिर के दर्द आदि के रूप में पीड़ा होती है जिन्हें उसकी गन्ध का अभ्यास नहीं, अतः इनमें से किसी बात का भी जो साहब जी महाराज ने विचार नहीं किया, यह आश्चर्य की बात है।

८१—धारा १८३ में आप और भी उलझन पैदा करते हैं आप कहते हैं, कि दुर्गन्ध सड़ांद की अलामत है। सड़ने वाली वस्तु में कीटाणु पैदा होते हैं, वह वायु के झोंकों से उड़ कर मनुष्य के मुख तथा नासिका के द्वार से शरीर में प्रविष्ट होते और रोग पैदा करते हैं। इससे पाया जाता है कि दुर्गन्ध जड़ परमाणुओं का नाम है और कीटाणु जीवित प्राणी हैं। आप कहते हैं फ़ीनाइल कीटाणुओं को मारता है इसलिये नालियों में छिड़का जाता है स्वामी जी के कथनानुसार गंदी नालियों में गुलाब का

अर्क अथवा इतर छिड़का जावे अथवा हैज़ा आदि के दिनों में कोई मकान को फूलों वा हवन की सामग्री की सुगन्धि से महका दे इस आशा से कि मकान रोगकारी कीटाणुओं से रहित होगा तो वह अपनी मूर्खता का फल भोगेगा। सुगन्धि फैलाने से दुर्गंध दब जाती है कीटाणु मरते नहीं यह तो विषैली गैसों से मरते हैं, पर हवन सामग्री में कोई विषैली गैस नहीं।

(आर्य) इस बयान में आपने अपनी ही हर एक बात का खण्डन कर दिया है। आपने मान लिया कि चीज़ों के सड़ने से हवा में दुर्गंध फैलती है। अब फरमाइये इसका इलाज आप क्या तजवीज़ करते हैं। आप कहते हैं, हवन सामग्री कीटाणुओं को तो नहीं मारती। हम कहते हैं, यदि नहीं भी मारती तो भी दुर्गंध का नाश तो आपने मान ही लिया। दुर्गंध से मकान का गर्द वा .गुबार दब जाने की भाँति दुर्गंध से होने वाली हानी से तो रक्षा हो गई। अब लीजिये कीटाणुओं को। तपेदिक के टी, बी को मारने के लिये खिला कर, पिला कर, सुंघा कर वा इन्जंकशन के द्वारा शरीर के अन्दर औषधियाँ पहुँचाई जाती है, नालियों में छिड़का जाने वाला फ़ीनाइल रोगियों को नहीं दिया जाता और औषधियाँ दी जाती हैं। हैज़ा में भी काफ़ूर आदि की संयुक्त औषधियाँ दी जाती हैं। कीटाणु तो क्या, बड़े २ यहां तक कि सर्प की आकृति वाले कीड़े मनुष्य के उदर में पैदा होते हैं तो उन्हें मारने तथा उनके मुर्दा शरीरों को निकालने के लिये अनेक प्रकार की अन्य औषधियां दी जाती हैं। अतः सिद्ध है कि फीनाइल के अलावा शतशः औषधियाँ इन रोगों में काम आती हैं और वह कीटाणुओं को मारती हैं। अतः फ़रमाइये कि स्वामी जी ने हवन सामग्री में जो औषधियों का भाग रख दिया तो कीटाणुओं को नष्ट करने का साधन क्या शेष रह गया? रहा विषैली गैसों का शब्द, सो हवन

से जो कुछ उड़ कर ऊपर जा रहा है वह गैस ही तो है और जब इन औषधियों से मनुष्य के आन्तरिक रोगों के कीटाणु मरते हैं तो हवन वाली गैस को भी घातक वा विषैली गैस आप क्यों न मान लें ? फिर हवन यज्ञ में घृत प्रधान वस्तु है। वह स्वाद और बल का भण्डार है और विष नाशक भी है। कीटाणु तो कहाँ, सर्प का विष भी सांप के काटे को घी पिला कर दूर किया जाता है। पंजाब में बार के लोग नई आबादी से पहिले प्रायः घृत से ही रोग वा विष का नाश करते थे उनका कहना था—

सौ चाचा त इक पिउ, सौ दारू त इक घिउ।

अर्थात् जैसे एक पिता सौ चाचा जितना उपकार करता है वैसे ही एक घी सौ औषधियों का काम देता है, और तो क्या पैत्रिक रोगों तथा दुर्बलताओं का नाश भी घृतके उचित रूपसे प्रयोग करने से होता है। उनमें एक और कहावत है कि—

जो करे घिउ, ना करे माँ ते ना करे पिउ

अर्थात् घी वह कुछ कर दिखाता है जो माता पिता नहीं कर सकते। चूँकि रोग उन कीटाणुओं से पैदा होते हैं जो वायु द्वारा शरीर में प्रविष्ट होते हैं और कीटाणुओं का नाश आपके कथन से ही औषधियों द्वारा सिद्ध होता है अतः जब वही औषधियां सामग्री में और घी जैसी विष नाशक वस्तु हवन यज्ञ में आगई तो आपका घर पूरा होने में कसर क्या रही ?

८२—साहबजी महाराज का कथन है जैसे दाल में बघार, वैसे रोगी को दवाई, अतः घी और दवाई को जलायें क्यों ? अजी साहब ! यही तो आपके पूर्वजों की बुद्धिमत्ता का प्रमाण हैं और इसी पर आप आक्षेप करते हैं। देखिये, एक मनुष्य की चोरी होती है, वह पुलिस में रिपोर्ट लिखाता, तहक़ीक़ात कराता और पुलिस के साथ स्वयं भी भटकता है। पहिले धन गया, फिर और

खर्च हुआ, हर्ज हुआ, कष्ट हुआ, पर यदि पहिले ही सावधानता से काम लिया जाता तो न चोरी होती न कोई कष्ट। यही हाल आपका और आर्य्य समाज का है। आपका पक्ष यह बनता है कि जब दुर्गन्ध फैल चुके कीटाणु वायु से गुजर कर नासिका द्वारा शरीर में घुस चुकें, तब औषधि खिला कर हानिकारक कीटाणुओं का नाश करो। हम कहते हैं ऐसा यत्न करो कि यह कीटाणु वायु के अन्दर ही नष्ट हो जावें मनुष्य शरीर में घुसने का अवसर ही न पावें। यह यत्न ही हवन यज्ञ कहलाता है। इसके कारण अग्नि के द्वारा औषधियों के परमाणु आकाश में सर्वत्र फैलकर रोग कारक कीटाणुओं को नष्ट करते फिरते हैं। अब आप ही बताइये, बुद्धिमत्ता किसमें है, रोगी होकर सर्व प्रकार का कष्ट उठाने में अथवा हवन यज्ञ के द्वारा स्वस्थ, आरोग्य और सुरक्षित रहने में?

८३—साहब जी महाराज! अपनी पदार्थ विद्या पर हर कहीं बड़ा गर्व करते दिखाई देते हैं। हवन यज्ञ सम्बन्धी लेख में भी आप फ़रमाते हैं कि स्वामी जी को सम्भवतः यही मालूम था कि सूर्य्य और फूल आदि सुगन्धित पदार्थों से ही कुदरत के सफ़ाई के क़ानून का सम्बन्ध है। जलवायु पृथ्वी में रहने वाले अनन्त कीटाणु अहर्निश सफ़ाई के काम में लगे हैं, कुत्ते, कव्वे, गधा, चूहे, बिल्लियां, कीड़े मकोड़े, मक्खियां सब कुदरत के जारोब कश हैं, मिट्टी और पानी में अनन्त सूक्ष्म कीटाणु गंदी चीजों की संयुक्त स्थिति में परिवर्तन करते हैं। सूर्य्यकी किरणों तथा गैसों के फैलाओ से जल का भाप बन कर आकाश में जाना, ठोस वस्तुओं के परमाणुओं का बादलों के नीचे वायु मण्डल में फिरना, वर्षा होने पर इन परमाणुओं का जल के साथ नीचे आना, और इनमें से दुर्गन्ध युक्त परमाणुओं का इतना सूक्ष्म होना कि नासिका से ग्रहण न हो सकना और इनसे मनुष्य शरीर को कोई हानि न होना

इन सब बातोंका बयान आपके पदार्थ विज्ञानका बोधक है। प्रोफेसर डन्कन व स्टालिंग कृत A Text Book of Physics के उद्धरण से विदित होता है कि कुदरत ने विषैली गैसों के छिन्न भिन्न करने वाले का स्वयं ही प्रबन्ध कर रखा है। Carbon Dioxide की विषैली गैस के छिन्न भिन्न करने का क्रियात्मक प्रकार दिया है कि 60c.m. लम्बी अमूदी नालीके निचले दसवें भाग में यह गैस और शेष $\frac{9}{10}$ में हवा भरनेसे यह क्रिया २ घण्टे में पूरा हो जाती है। हम इस पर कोई आक्षेप नहीं करते पर प्रश्न यह है कि विवादास्पद विषय के लिये इस विस्तार की क्या आवश्यकता थी? न स्वामी जी ने कहीं यह लिखा कि केवल सूर्य्य और पुष्पादि तक ही कुदरत का सफ़ाई का प्रबन्ध सीमित है न उन्होंने दुर्गन्ध युक्त परमाणुओं को नासिका द्वारा गृहण न हो सकनेवाली अवस्था से इन्कार किया न उन्होंने नेचर में इन्तशार का नियम न होने का कोई संकेत किया, उल्टा उन की पुस्तकों में आपके कहे सारे विषयों का स्पष्ट वर्णन हर कहीं मौजूद है तब व्यर्थ के लम्बे लेखों से समय नष्ट करना बुद्धिमत्ता का काम नहीं हो सकता। श्रीमान्! स्वामी जी ने आपके इस लेख की जड़ पहिले से ही काट रखी है यह कह कर कि सफ़ाई के लिये दो प्रकार के नियम हैं एक ईश्वर कृत दूसरे मनुष्य कृत। आपने जो कुछ लिखा वह ईश्वरीय प्रबन्ध के अन्तर्गत है, उससे बाहर नहीं। और जब इन सब के होते हुए आप मनुष्य कृत प्रबन्ध से इन्कार नहीं करते, वरन् झाड़ देना, मेहतर आदि के द्वारा सफ़ाई कराना, औषधियों के द्वारा रोगोंको दूर करना आदि मनुष्यकृत क्रिया स्वयं नित्य करते कराते हैं तब मनुष्य के हवन यज्ञ करने की क्रिया अनावश्यक कैसे है? सिद्ध तो आपको यह करना था कि वायु में उड़नेवाले दुर्गन्धयुक्त परमाणुओं और कीटाणुओं के लिये मनुष्य ने अमुक

प्रबन्ध कर रखा है और वह इतना काफ़ी है कि हवन यज्ञकी आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु आपने सर्वथा ऐसा नहीं किया अतः जाहिर है कि आप केवल पक्षपात से असंगत बातों की उलझनमें फंसाकर पाठकों को यथार्थ स्थिति समझने से बाज़ रखने का हुनर दिखाना चाहते हैं अन्यथा दिल से आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि वायु और जल की शुद्धि का सर्वोच्च एवं एक मात्र साधन हवन यज्ञ ही है।

८४—साहबजी महाराज कहते हैं—"स्वामीजी खींचातानी की बातें करते हैं जब वह सुगन्धियुक्त परमाणुओं के मिलने से मध्यम गुण होना मानते हैं और यदि ऐसा हो भी तो इसका पौदों तथा अनाज पर क्या प्रभाव? और यदि हो भी तो इसका मनुष्य की शक्ति, बुद्धि, साहस आदि गुणों की उन्नति के रोकने का क्या अर्थ? आज तक तो खाद्यपदार्थों में सत, रज, तम के तीन प्रकार के गुण माने जाते थे, पर यह ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका से ही विदित हुआ है कि वर्षा जल के द्वारा पौदों वा अनाज में बसने वाली सुगन्धि वा दुर्गंधि से भी मनुष्य की मस्तिष्क वा दिमाग़ी शक्तियों पर प्रबल प्रभाव पड़ता है।"

(आर्य) यह भी व्यर्थ की तूल कलामी है। दो भिन्न २ गुणों के मेल से मध्य वर्तीय गुण होने की कौन सी गूढ़ फ़िलामोफ़ी है जो आप जैसे शिक्षित पुरुष की समझ में नहीं आ सकती। और जब आप मानते हैं कि वर्षा जल के साथ दूसरे पदार्थों के सूक्ष्म परमाणु पृथिवी पर आते और बनस्पति आदिकी उत्पत्ति में भाग लेते हैं तो इन मध्यम गुणों के प्रभाव में संशय ही क्या रहा। और जब पैदावार पर प्रभाव पड़ा तो मानवीय शक्तियां जो केवल अन्न अनाज वा फल से पैदा होती हैं कैसे प्रभावित न होंगी, आपने तो स्वयं भाग १ पृष्ठ ३२ पर लिखा है—

"खाने पीने की चीजें जो हमारे प्रयोग में आती हैं, उनका असर हमारे शारीरिक स्वास्थ्य तक ही सीमित नहीं रहता, अपितु हमारे मन वा विचारों तक पहुँचता है। यही कारण है कि इन चीजों के सम्बन्ध में सावधान न रह कर बहुत से परमार्थी अपनी आत्मिक उन्नति के मार्ग में व्यर्थ की रुकावट पैदा कर लेते हैं।"

अब फ़रमाइये खींचातानी स्वामी जी करते हैं, जो बुद्धि तथा वीरता तक ही असर मानते हैं या आप जो आत्मा तक मानते हैं। रहे सत रज तम के तीन गुण इनका जैसा सम्बन्ध भोजन से वैसा ही सुगन्ध वा दुर्गन्ध के परमाणुओं से अतः ऋग्वेदादि भा० भू० पर आक्षेप कैसा ?

८५—इस विषय के अन्तिम भाग में हम पुनः लाल बुझक्कड़ी लीला देखते हैं, लिखा है:—

'पिछले वक्तों में हवन यज्ञ स्वर्ग में रसाई और देवताओं की खुशनुदी के हुसूल के लिये किये जाते थे न कि घरों के जरासीम हलाक करने के लिये। पूजा से खुश होकर देवता यजमान की लौकिक व पारलौकिक दोनों तरह की आरजूयें पूरी करते थे, चूनांचि वेदों में इन आरज़ूओं के मुतअल्लिक ऐसी सैंकड़ों ऋचाएं मौजूद हैं जिनका यज्ञों के मौके पर पाठ किया जाता था और जिन के उच्चारण करने पर उनके मुतअल्लिक देवता प्रगट होते थे और यजमान की इमदाद करते थे।"

आर्य्य—इन देवताओं का नाम, काम, स्थानादि का व्यौरा भी तो दिया होता और यह भी बताया होता कि वह हवन यज्ञ से खुश क्यों होते थे अथवा उन्होंने कभी ऐसी घोषणा की थी ? और यदि आप इसे सत्य मानते हैं तो चलो इसी कारण से हवन करो आर्य्य लोगों की कामनायें पूरी न होंगी तो न सही आपकी तो पूरी

होगी और यदि आप के हवन यज्ञ से देवता प्रगट हो गए और उन्होंने आप की मदद करदी तो हम भी इसी विश्वास से हवन कर लिया करेंगे। परन्तु कृपानिधान! यह तो सोचिये कि यदि आप के कल्पित देवता वास्तव में होते तो वह आर्यों के हवन से भी अवश्य ही प्रगट होते और आर्य्यों को मदद देते। हवन और देवता तो वही हैं चाहे वायुजल की शुद्धि मानकर किया जावे चाहे किसी और भाव से।

क्या कहें साहब जी महाराज तो व्यर्थ ही बौंदलियाई बातों से अपनी हंसाई कराते जाते हैं। क्या वायु और जल देवता नहीं क्या उनकी शुद्धि उनकी प्रसन्नता नहीं और क्या उनकी इस प्रसन्नता से मनुष्यों के स्वास्थ्य तथा बल की वृद्धि होकर लौकिक वा पारलौकिक इच्छायें पूरी नहीं होतीं और इन इच्छाओं की पूर्ती क्या यजमान की मदद नहीं कहला सकती और इससे सर्व प्रकार के सुख की वृद्धि होने पर जगत को स्वर्ग नाम नहीं दिया जा सकता? क्या आर्य्य लोगों के हवन के साथ वेद की ऋचाएं नहीं पढ़ी जातीं और क्या उनका अर्थ या देवता विद्वानों और यजमानों पर प्रगट नहीं होता? अतः बुलाइये तो अपने पदार्थ वेताओं को और उन से पूछिये तो सही कि यथार्थ पक्ष कौनसा है और आप किस बल बूते पर साइन्सदानों की पंक्ति में बैठने का साहस करते हैं?
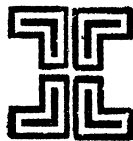
तीसरा अध्याय

वेदादि सत्यशास्त्रों का तिरस्कार

सर्ग १

प्रमाणों की जांच

१—छांदोग्य उपनिषद् प्रपाठक ७ की नारद और सन्त कुमार वाली कथा का वर्णन करके वेद के विरुद्ध साक्षी पेश की है कि इतनी विद्यायें पढ़ने पर भी उनके चित्त में शान्ति नहीं हुई, और ऋग, यजु, साम, अथर्व का अध्ययन मन से रंज व फ़िकर को दूर करने के लिये काफ़ी सिद्ध न हुआ।

आर्य्य—इस प्रमाण में केवल यह बताया गया है कि शब्दमात्र पढ़ने से कल्याण नहीं हो सकता उसका यथार्थ अर्थ जानने से होता है। नारद कहता है मुझे ब्रह्म विद्या पढ़ाईये। सन्त कुमार कहता है, पहिले यह बताओ कि जानते क्या कुछ हो? नारद कहता है मैं ऋग, यजु, साम, अथर्व, इतिहास, पुराण, वेदों का वेद, पितृ कर्म, गणित शास्त्र, भाग्य विज्ञान, निधि ज्ञान, तर्क शास्त्र, नीति शास्त्र, देव विद्या, ब्रह्म विद्या, भूत विद्या, धनुर्विद्या, ज्योतिष विद्या, गंधर्व विद्या पढ़ा हूँ। केवल मन्त्रों को जानता हूं, आत्मा को नहीं जानता

सन्तकुमार कहता है जो कुछ तुम जानते हो नाम वा शब्द मात्र है अतः नाम की उपासना करो अर्थात् शब्द का मनन करके यथार्थ तत्व को समझो।

साहब जी महाराज ने जो पोज़िशन ली है वह मन्त्रके आशय के सर्वथा विरुद्ध है, अर्थात् यह मन्त्र ने वेदों को नाकाफ़ी नहीं कहता, नाम वा शब्द से आगे अर्थ का अनुभव करने की शिक्षा देता है। स्वयं साहब जी भाग ३ पृष्ठ २ पर लिखते हैं कि एक मिस्क़ाल भर अनुभवी इल्म सैकड़ों मन किताबी इल्म से बेहतर है और चूँकि आत्मा से यथार्थ ज्ञान का अनुभव हुए बिना वाह्य अनुभव प्रगट नहीं हो सकता अतः मनुष्य को शब्द का चिन्तन करना ही चाहिये

२—चूँकि सन्त कुमार ने पहिले ही कहा था कि जो कुछ तुम जानते हो मैं तुम्हें उससे आगे बताऊँगा, इसलिये नाम वा शब्द मात्र के आगे अर्थ चिन्तन का ही उपदेश हो सकता है। इसी भाव से इस पाठक में क्रमशः नाम वाणी, मन,संकल्प, चित,ध्यान विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मृति, आशा, प्राण, सत्य, मती, श्रद्धा, निष्ठा, भूमा का वर्णन अति साधारण से प्रश्नोत्तर के रूप में किया गया है, जिससे वैदिक शब्दों का यथार्थ भाव समझने की रुचि और योग्यता आती है। अतः आक्षेप नाम मात्र पढ़ने पर हो सकता है, वेद पर नहीं उसके शब्दों में तो वह अर्थ मौजूद है जो उपासना करने पर जाना जाता है।

३—गुरूडम का ख़ब्त भी विचित्र है,निष्ठा का शब्द देखते ही आपने झट कह दिया, जो निष्ठा वाला होता है गुरू की सेवा करता है और गुरू की सेवा वह करता है जो कर्तव्य परायण होता है। यथार्थ भाव यहां भी यही है कि कर्तव्य पालन का नाम निष्ठा है। परन्तु आप स्वामी शंकराचार्य्य के भाष्य की आड़ में गुरू

शब्द का अनुचित लाभ उठाने से चूके नहीं, वहां शब्द थे

गुरू शुश्रुषाादि तत्प्रत्वं ब्रह्म विज्ञानाम्।

इस प्रमाण के अधिक आवश्यक एवं उपयोगी भाग का तो आपके शब्दों में संकेत मात्र तक नहीं. हाँ गुरू शब्द पेश कर दिया है जिसका इस प्रमाण से कुछ संबन्ध नहीं, यही कारण है कि उपनिषद् कार ने सत्य में अविचल धारणा का शब्द जो निष्ठा के लक्षण में लिखा है उसे आपने छोड़ ही दिया है।

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठतिान कृत्वा निस्तिष्ठति।कृत्वै व निस्तिष्ठति कृति स्त्वेदविजिज्ञासितव्येति। कृति भगवो विजिज्ञास इति।७।२१।१

इसका आशय यह है कि सत्य की प्राप्ति के लिये उपासना आदि कर्म करने का नाम निष्ठा है। कर्म हीन कोरा तर्क करता है और कर्म करने वाला निष्ठा करता है।

४—अतः यह प्रमाण सर्व प्रकार से आक्षेपक की बात का निषेध करता है और वेद की पुष्टि। इसके अतिरिक्त भूमा का व्याख्यान साफ़ बताता है कि परमात्मा ऊपर नीचे इधर उधर सर्वत्र व्यापक है वही सुख का सच्चा भण्डार है, उसे ही कर्ता समझना, उसी में खेलना, उसीमें आनन्द भोगना,उसी में मिलना ही सारी विपत्तियों को दूर तथा शोक से पार करता है। यह वैदिक ईश्वर की महिमा तथा वैदिक धर्म का सार है और चोटी के स्थान पर विराजमान राधास्वामी दयाल के पूरे २ खंडन का ही यह विस्तार है।

५—मुंडक उपनिषद् में शौणक और भाद्वाज की कथा है। परा और अपरा दो विद्याओं का वर्णन है। ऋग, यजु, साम और अथर्व को अपरा में लिखा है, इसका आशय यह लिया गया है कि अपरा विद्या अर्थात् ऋग, यजु, साम, अथर्व ब्रह्म दर्शन में सहायक नहीं।

(आर्य) इन शब्दों में भी पहिली ही ग़लती है, शब्द मात्र या पुस्तक रूप वेद निस्संदेह अपरा विद्या में है पर उसका अर्थ और संबन्ध निश्चय पराविद्यामें है इसलिये उसे ब्रह्मदर्शनमें सहायक मानना किसी प्रकार सत्य नहीं हो सकता। परा विद्या वह है जिससे नाश रहित ब्रह्म की प्राप्ति हो और उस ब्रह्म का साक्षात होता है तप से। "तपसाचीयते ब्रह्म"• ब्रह्म तप से सृष्टि में प्रगट होता है।(१-८) इस तप का अभिप्राय ज्ञान है क्योंकि अगले ही मंत्र में कहा है 'यस्य ज्ञान मयं तप ?" अर्थात उस परमेश्वर का तप ज्ञानमय है। इसी मंत्र में कहा है कि उसी ब्रह्म से वेद और वेद के द्वारा नाम और रूप का प्रकाश होता है इससे स्पष्ट है कि वेद के शब्द अपार विद्या हैं तथा ईश्वरीय ज्ञान के प्रतिनिधि हैं और इनसे यथार्थ ज्ञान को साक्षात करके ब्रह्म प्राप्ति करना परा विद्या है। यदि वेद के विरुद्ध कहना होता तो पराविद्या के देने वाला कोई और साधन मुडक उपनिषद से बताया होता। परन्तु आपने तो खंड २, सं० १२—१२ का यह प्रमाण दिया है।

"उसकी प्राप्ति के लिए उसे एक ऐसे गुरु के पास जाना चाहिए जो श्रोत्रिय (वेदों का विज्ञान रखने वाला) और ब्रह्मनिष्ठ (ब्रह्म में एकाग्र चित्त) हो। जो मनुष्य इस प्रकार अपना मन वासनाओं की मैल से शुद्ध करके और शान्तचित्त होकर यथाविधि गुरु की सेवा में हाज़िर होता है, उसे वह गुरु उस ब्रह्म विद्या का उपदेश फ़रमाते हैं, जिससे उन्होंने स्वयं अविनाशी सत्पुरुष को जाना है। यह एक प्रकार से साहबजी महाराज को अपनी साक्षी है कि ब्रह्म-ज्ञान वही दे सकता है जो वेदों का अनुभव ज्ञान रखता और ब्रह्म का ध्यान करता हो। इससे अब यह विषय स्पष्ट है कि राधा-स्वामी गुरु वेद का अनुभव ज्ञान तो कहां शब्द ज्ञान भी न रखने से न सच्चे गुरु हो सकते हैं न कुल मालिक को जान व जना

सकते हैं।

६—मुण्डक उपनिषद् में यज्ञ आदि उत्तम कर्मों का फल स्वर्ग वा सुख की अवस्था कहा है जिसका शीघ्र ही अन्त हो जाता है। यह उत्तम कर्म हैं और इन का करना आवश्यक है। पर इन्हें श्रेष्ठतम कर्म नहीं कह सकते। अल्पज्ञानी लोग इन यज्ञादि को करते ही अपने आपको उच्च से उच्च पद में समझ लेते तथा इसी में अपना पांडित्य आदि मानते हैं, इसलिए ऋषि कहते हैं कि इन कर्मों के आगे तरक्की करना और ब्रह्म विद्या को पाना चाहिए अतः यह सब कुछ वेद की पूर्ण शिक्षा का प्रमाण है। साहबजी महाराज यह भाव पेश करना चाहते हैं कि वैदिक यज्ञादि फल चन्द रोज़ा हैं अतः ब्राह्मण उन्हें समझें और उन से घृणा करें परन्तु यथार्थ आशय यह है कि उनके फल को असार वा घटिया जान कर उनसे विरक्त हो जावें। माता पिता धन दौलत आदि सब असार हैं इसलिए उनसे वैराग्य करके सार धन को धारण करें उनसे घृणा करने का कहीं संकेत नहीं। गृहस्थादि आश्रमों में सांसारिक पदार्थों के यथार्थ विधि से प्रयोग करने की शिक्षा है, क्योंकि इस प्रकार उन को काम में लाने से स्वास्थ्य तथा बल स्थिर रहता है वर्ताव सबसे उत्तम होता और ज्ञान ध्यान में सफलता तथा अन्त में ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत रुग्न एवं अशान्त अवस्था में असल उद्देश्य की ओर कदम उठ नहीं सकता। अतः गृहस्थ सम्बन्धी काम सब बानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम की सफलता में सहायक हैं बिना यज्ञादि के ब्रह्म प्राप्ति की योग्यता कहां? हां संन्यास रूपी कालिज में पहुंच कर इस यज्ञादि का हाई स्कूल वाला कोर्स छूट जाता है। साहब जी महाराज तथा राधा स्वामी मत के भूतपूर्व आचार्यों का सबसे बड़ा पाप और अपने अन्धविश्वासी सरल हृदय प्रेमी सतसंगियों

की बरबादी का कारण यह है कि सब विद्याओं तथा धर्म कर्म आदि से उनके मनों में घृणा पैदा करके उन्हें यथार्थ उद्देश्य को पहिचानने के अयोग्य कर दिया जाता है जिससे वह राधास्वामी की कल्पित एवं असम्भव सी सत्ता पर नुक्ता चीनी नहीं करसकते। जैसे वह पढ़ते, उपदेश देते लेते दान पुण्य, गुरू सेवा आदि कर्म करते हैं जो यज्ञादि के अन्तर्गत हैं और इनसे साहब जी महाराज उन्हें घृणा नहीं दिलाते। अतः परिणाम यही सिद्ध होता है कि पक्षपात के कारण परस्पर विरुद्ध बातों से भ्रांति फैलाई जारही है।

७—इस पर और विचित्र बात यह है कि इन कर्मों को ही सर्वोच्च समझने वाले मूर्खों के लक्षण जो उपनिषद् में बताये हैं वही अपने सत्संगियों में ठास २ कर भरे जा रहे हैं और उनमें यह अभिमान पैदा होता जाता है कि हमारे पूर्वज हमारी अपेक्षा बहुत अल्पवित थे। वेद में केवल तीन गुण हैं हम उनसे आगे जा रहे हैं। इस अभिमान के कारण वह स्वयं अंधे के पीछे अन्धे की भाँति आत्मिक अधःपतन के गढ़े में गिरे जा रहे हैं पर उपालम्भ औरों को देते हैं। हम कहते हैं जब साहब जी महाराज स्वयं मान और लिख चुके हैं कि ब्रह्म पद तक वैदिक धर्मियों और राधा स्वामियों की सब मनज़िलें शामिलात हैं तब वर्णाश्रम यज्ञ संस्कार के विरुद्ध लिखना और उनसे घृणा दिलाना अपने ही कहे का खण्डन करना नहीं तो क्या है। या तो आप यह सिद्ध करते कि वेद में वर्णाश्रम धर्म या योगाभ्यासादि की शिक्षा नहीं या इनके विरुद्ध न लिखते। कुछ ही हो आप का उपनिषद् वाला यह प्रमाण भी आर्य्यों के यज्ञादि कर्मों को स्वर्ग का और वेद ज्ञान के यथार्थ अनुभव को ब्रह्म प्राप्ति का साधन बताता तथा ब्रह्म पद से परे की आपकी कल्पनाओं को निर्मूल करता है। आपके पेश किये गीता अध्याय ९ श्लोक २०—२१ का भी यही भाव है और इससे मुक्ति

से लौटने का भी प्रबल प्रमाण मिलता है क्योंकि कहा है कि ऐसे कर्मों का फल भोग कर पुनः आवागमन में आते हैं।

८—पृ०१८,भाग १.धारा ३० में केन उपनिषद् खण्ड २ म० ४ का न अनुवाद दिया है न मूल शब्द, केवल पण्डित राजाराम जी की व्याख्या में से कुछ शब्द दे दिये हैं "जैसे सोया हुआ पुरुष अपने आपसे बे खबर होता है उसी तरह हमारा आत्मा अपने आप से बेखबर सोया हुआ है इस बेखबरी को दूर करके अपने आप को पहिचान लेना ही उसका जाग उठना है शुद्ध स्वरूप का ज्ञान मन से नहीं किन्तु आत्मा से ही होता है।"

इन शब्दो को आप अपने सुर्त शब्द अभ्यास की पुष्टि में पेश करते हैं कि इस साधन से धीरे २ आत्मा में पूरी जागृति आती और कुल मालिक का आवरण रहित दर्शन होता है, परन्तु न उपनिषद् कार का राधा स्वामी के जड़ शब्द वाले अभ्यास पर विश्वास है न मन्त्र से उसकी कोई पुष्टि होती है, अपितु प्रकरण यह है कि श्रवण मनन वा निदिध्यासन से ब्रह्म विद्या को प्राप्त होता और मोक्ष पाता है। साहब जी महाराज ने यही यत्न किया है कि ज्ञान प्राप्त करने की मर्यादा को भुलाकर अपनो अज्ञान में फँसाने वाली क्रिया को ही येन केन प्रकारेण फ्रन्ट में लायें। आपने अनुवाद या भाष्यादिके शब्दों को अनेक हिकमतोंसे इस उद्देश्यके लिये आड़ बनाया है परन्तु शब्द अर्थ और भावार्थ सारे प्रमाणों के सब के सामने हैं इसलिये उन्हें सफलता होनो असम्भव है। विवादास्पद प्रमाण के शब्द स्पष्ट हैं:—

प्रतिबोध विदितंमतम मृतत्व हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्याविन्दतेऽमृतम्॥

अर्थात् बार २ के जानने तथा मनन करने से ही ब्रह्म का ज्ञान होता है और मुक्ति मिलती है। आत्मा से बल मिलता है और

ब्रह्म विद्या से अमृत पद प्राप्त होता है। राधास्वामी साधन सर्वथा इसके विपरीत है।

९—धारा ३७ में आपने बहुत से प्रमाण शब्द की महिमा के सम्बन्ध में देकर उनसे अपने पक्ष की पुष्टि करने को यह शब्द लिखे हैं कि "इस शब्द को समझने की योग्यता पैदा करने के साधन को ही सुर्त शब्द अभ्यास कहते हैं।" परन्तु इन प्रमाणों में शब्द वेद ज्ञान का ही नाम है। यदि यह साधन सचमुच इस शब्द को समझने की ही योग्यता देता है तो कोई एक भी सतसंगी तो पेश कीजिये जो इस अभ्यास के द्वारा एक भी वेद मन्त्र को समझ सका हो। इन प्रमाणों के शब्द यह हैं—

(१) पहिले अकेला प्रजापति ही था उसका सर्वस्व वाणी ही था, उसने विचार किया कि मैं वाणी ही को बाहर निकालूँ। वही इस सब (प्रकृति) को प्रकाशित करती जायगी। ऐसा सोच कर उसने वाणी को प्रगट किया (तांड्य ब्राह्मण २-१४ २)

(२) प्रजापति ही यह था, उसका दूसरा वाणी थी, इससे जोड़ा कहाया, उसने गर्भ धारण किया, उसने इन प्रजाओं को उत्पन्न किया और फिर प्रजापति में ही समा गई (काथक संहिता १२-५-२७-१)

(३) वागेव देवाः। शब्द ही देवता है। (श०प० १४-४-३-१३)

(४) वाग्देवः। शब्द एक देवता है। (गोपथ ब्राह्मण २-१०)

(५) वाग्योनिः। शब्द योनि (उत्पत्ति स्थान) है। (ऐत्तरेय ब्राह्मण १--३८)

(६) उसने इच्छा की मेरा दूसरा शरीर उत्पन्न हो तो उसने मन से वाक को पैदा किया और उसके साथ संगत हुआ···तो मृत्यु ने उस की तरफ मुँह खोला, उसने भाँ शब्द उच्चारण किया वही वाणी हुई (बृहदारण्यक १-२-४-५)

(७) मुझमें ही सब देवताओं का बास है। मैं सब देवताओं का पालन पोषण करती हूं। मैं ही सब जगत को हिलाती हूँ। मेरे ही आश्रय से सब कुछ चल रहा है। सब ज्ञान, सब कर्म को मैं ही प्रेरित करती हूं। (ऋग्वेद वाक आरम्भनी सूक्त)

(८) मैं ही समस्त लोकों और देशों को निर्माण करती हूँ। देहों में प्राण के समान और संसार में वायु के समान, सर्वथा विशेष रूप से उत्कृष्ट रूप से व्यापक हो कर रहती हूं और मैं ही सूर्य आदि लोकों से परे और इस पृथ्वी से भी परे अर्थात् इन विकृत पदार्थों से पूर्व काल में विद्यमान रहकर अपनी महिमा अर्थात् महति शक्ति से इतने विशाल स्वरूप में जगत् का बढ़ाकर पूर्ण रीति से प्रगट हो रही है। (ऋग्वेद मंडल १०। सूक्त १२५, अथर्व काण्ड ४, सूक्त ३०)

शब्द की दृष्टि से कौन सी पुस्तक प्रामाणिक है, कौनसा अनुवाद सत्य है, प्रमाणों का यथार्थ आशय क्या है, इनमें से किसी विषय को न लेकर जो भी शब्द आक्षेपक ने दिये हैं उन्हीं से यह सिद्ध होता है कि परमात्मा ने वेद वाणी के द्वारा प्रकृति से जगत् को बनाया और इसी ज्ञान के अनुसार रचना का नियन्त्रण हो रहा है। अतः केवल शब्द मात्र कहने से राधास्वामी मत वाला ज्ञान से सर्वथा शून्य शब्द किस प्रकार कोई सत्य सिद्धान्त माना जा सकता है।

(१०) सार वचन, शब्द २ वचन ९ की यह कड़ियाँ आपने दी हैं—

शब्द ने रची त्रिलोकी सारी, शब्द से फैली माया भारी।
शब्दने अंड ब्रह्माण्ड रचाये, शब्द से सात दीप नौ खंड बनाये।
शब्दने गुण तीनों और प्रजा धारी, शब्दसे धरणा आकाश खड़ा री।
शब्दने जीव और ब्रह्म किया री, शब्दसे चांद और सूर भयारी।

शब्द ने सुन्न महासुन्न संवारी, शब्द ने चौथा लोक करारी।
शब्द ही घट घट का पुकारी, शब्द फिर अलख अगम में न्यारी।
शब्द में खाली कोई न रहा री, शब्द सब ठौर ठिकान भरारी।
शब्द की महिमा क्या कहूं गारी, शब्द को जैसे बने तैसे पारा।

यह बचन ऊपर के प्रमाणों के विषय की पुष्टि करता है और ईश्वरीय तथा आकाश वर्तीय दोनों शब्दों का संकेत करता है। पर आपके साधन वाले जड़ शब्द का इससे सम्बन्ध नहीं, यही कारण है कि आप ने शब्द की रट लगाई है इस को खोला नहीं, अन्यथा बताया तो होता कि कान बन्द कर के आप जो शब्द सुनते हैं उससे त्रिलोकी तथा ब्रह्माण्ड की रचना कैसे होती है।

(११) निम्नलिखित तीन कड़ियों में शब्द अभ्यास का आदेश है।

गुरु अब कहते हेला मारी, शब्द बिन कोई न करे उपकारी।
शब्द में सुर्त लगाकर यारो, शब्द ही चेतन करे उजारी।
शब्द की करनी करो सदारी शब्द बिन खुदी न जाय तुम्हारी।

गुरू पुकार कर कहता है कि बिना शब्द के कोई उपकार नहीं कर सकता, यह आर्य्यसमाज की ही बात है कि शब्द वा ज्ञान के बिना कल्याण नहीं हो सकता। आप तो ज्ञान को मानते ही नहीं आप तो "ज्ञान ध्यान और योग वैरागा-तुच्छ समझ मैंने इनको त्यागा" के शब्द को मानते हैं। दूसरी कड़ी में कहा है कि आत्मा जब शब्द का पूरा मनन करती है तो उसमें ज्ञान का उजाला होता है, ऐसा शब्द केवल वेद का हो सकता है क्योंकि उसी में वह अर्थ है जिसे ज्ञान का चांदना कहते हैं। इसी शब्द की करनी अर्थात् ऋषि शैली के योगाभ्यास द्वारा शब्द का अर्थ साक्षात् करने से खुदी दूर हो सकती है। कान बन्द करके अन्दर का मृदंगादि जैसे शब्द सुनने से आत्मा में प्रकाश नहीं हो सकता क्योंकि वह

शब्द ज्ञान शून्य हैं।

(१२) भाग २ पृष्ठ १०१, धारा १५ में योगशास्त्र के २ सूत्र दिये हैं (१) वीतराग विषयं वाचित्तम् । (१-३७) (२) यथाभिमत ध्यानाद्वा (१-३९) इन से मन को स्थिर करने के लिए सत्गुरु स्वरूप का ध्यान एक उपयोगी साधन बताया है। परन्तु दोनों में से किसी भी सूत्र में सत्गुरु का शब्द नहीं। विषय यहां यह है कि मन किस प्रकार एकाग्र हो सकता है। ३१ वें सूत्र में योग के ५ विघ्न, ३२ वें सूत्र में उनके दूर करने वाले एक तत्त्वाभ्यास का वर्णन करके अगले सूत्रों में कहा कि सुखी से प्रेम दुखी पर दया, धर्मात्मा से प्रसन्न, पापी से उदासीन रहना चाहिये, फिर श्वास को बाहर निकालने, अन्दर रोकने, विषयों से सम्बन्ध रखने वाली प्रवृत्ति, फिर प्रकाशयुक्त बुद्धि से मन के एकाग्र करने का बयान है। अर्थात यह कहा हैकि किसी भी साधन से एकाग्रता मिल सकती है। फिर सूत्र ३७ में कहा कि चाहे इस प्रकार करो, चाहे वीतराग अथवा विषय वासना से विरक्त मनुष्यों के गुणों के चिन्तन से ऐसा करो। अगले सूत्र में स्वप्न वा निन्द्रा के ज्ञान को संकेत करके ३९ वें सूत्र में कहा कि चाहे कोई चीज हो जिसका ख्याल करने से मन लग जावे, सूक्ष्म से सूक्ष्म वा स्थूल से स्थूल उसी से मन को वश में करना चाहिए। अतः सत्गुरु स्वरूप का शब्द विशेष है ही नहीं, न कोई सत्गुरु यथार्थ रूप से उस पद का हो सकता है जिसका संकेत आप सत्संगियों को करते हैं।

१३—छांदोग्योपनिषद् प्र० ६, ख० १४ में कहा कि कोई शत्रु किसी मनुष्य को आंखें बन्द करके दूर देश के उजाड़ स्थान में ला छोड़े और उसकी दुखित अवस्था पर कोई दया करके उसकी आंखें खोले और उसे देश का मार्ग बताए जिससे वह ग्राम २ से पूछता हुआ अपने देश में पहुँच जाए। ऐसे ही आचार्य्यादि के

मेल से मनुष्य सत्य को प्राप्त होता है। इस प्रमाण को राधास्वामी मत के अनुकूल बताया जाता है पर जिस मत में ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग न बताया जाय, ज्ञान, ध्यान, योग और वैराग्य को तुच्छ समझ कर त्यागा जाये, जहां विद्या का नाम अविद्या हो वहां मालक से योग कौन कर सकता है? यथार्थ ज्ञान के बिना सच्चे मालक का पता ही नहीं लग सकता तो उस से मेल कैसा?

१४—सद्गुरु महिमा में मुण्डकोपनिषद् मुण्डक १, खण्ड २, मं० ७, १२ का प्रमाण दिया है जिनमें कर्म से ज्ञान को उत्तम सिद्ध किया है और बताया है कि ब्रह्मज्ञान के लिए, ब्राह्मण हाथ में समिधा लिए ऐसे गुरु के पास जावे जो श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ हो। पर जब राधा स्वामी मत में न कोई श्रोत्रिय है न ब्रह्मनिष्ठ, तो गुरु और सत्गुरु नाम का अधिकारी उस मत में कौन हो सकता है?

१५—श्वेताश्वतर उपनिषद् अध्याय ६ श्लोक २३का अर्थ दिया है कि—"जिस की परमात्मा में परम भक्ति हो और वैसी ही परम भक्ति गुरु में हो ऐसे ही महात्मा को इस उपनिषद् के उपदेश समझ में आवेंगे।" पर गुरुमहाराज तो न उपनिषद् जानें न उसके अर्थ वा उपदेश समझावें तो उनमें परमात्मा की तरह परमभक्ति हो ही किस प्रकार सकती है।

१६—मनु स्मृति के दूसरे अध्याय के बहुत से श्लोकों का अनुवाद दिया है, परन्तु इनमें केवल विद्यार्थियों के लिए पाठशाला आदि के नियम दिए हैं। इन में ११६ वें श्लोक में कहा है कि जो गुरु के बिना सुन सुनाकर वेद सीखते हैं वह वेद के चोर हैं, क्यों कि वेद का यथावत् अर्थ गुरु के बिना नहीं आ सकता और वेद के अनर्थ करने वाला नरक में जाता है।" यह सारे दोष अपने गुरुजनों में हैं वा नहीं यह निर्णय सत्संगी लोग करलें। १५१—

१५३ वें श्लोक में है कि अंगिरा के पुत्र ने अपने चचा को वेद पढ़ाया और उसे बेटा कहा। चचा ने देवताओं से शिकायत की तो उत्तर मिला कि उसने ठीक कहा क्योंकि जिसमें ज्ञान नहीं वह बालक है और जो मन्त्र देता है वह पिता है और चूँकि राधास्वामी मत में बड़ाई के प्रधान कारण अर्थात् विद्या और बुद्धि का कोई गिनती नहीं केवल मानसिक भावों के आधार पर प्रेम भक्ति का शब्द रटा जाता है, इसलिए यह प्रमाण सर्वथा उनके विरुद्ध जाता है।

१७—वेद और उपनिषद् की शिक्षा कहां तक आत्मिक जीवन तथा परोपकार की प्रेरणा करती और संकुचित भाव तथा संकीर्ण हृदय युक्त मनुष्य उनका कैसे दुरुपयोग करते हैं, इसका स्पष्ट उदाहरण भाग ३, धारा ३० से मिलता है। पाठक विचारें।

छांदोग्योपनिषद् का मेधावी उपदेश

इस उपनिषद् के पाँचवें प्रपाठक के चौबीसवें खण्ड का हिन्दी अनुवाद पं० राजाराम जी के शब्दों में इस प्रकार दिया है:—

"अगर कोई इस विद्या को जाने बिना अग्निहोत्र करता है तो वह होम ऐसा है जैसे कोई अंगारों को हटा कर राख में होम करे (१) हां जो इसके सच्चे तात्पर्य को जान कर अग्नि होत्र करता है उसका यह होम अर्थात् अन्न खाना सारे लोकों में, सारे प्राणधारियों में और सारे आत्माओं में हो जाता है। (२) और जैसे सरकंड के ऊपर की रुई अग्नि में डाली हुई जल जाती है उसी प्रकार उसके सारे पाप जल जाते हैं जो अग्नि होत्र के इस सच्चे तात्पर्य को जानता हुआ होम करता है (वा अन्न खाता है)।"

इस अनुवादसे पूर्व संगति लगाते हुए पंडित जी ने कहा है कि वैश्वानरके उपासक के पास जो खाना पहिले पहिल आवे, वह होम

की सामग्री है और उसका मुख में ग्रास डालना होम की आहुति डालना है। प्रिय पाठक वृन्द। जो मनुष्य संकीर्णता को छोड़ कर प्रत्येक क्षण में मनुष्य मात्र के कल्याण का विचार करता है, जिस ने प्राणि मात्र के हित के साथ ही अपने सुख सम्पत तथा अपनी प्रवृत्ति को जोड़ दिया है अर्थात् सच्चा संन्यासी आदि जो निःस्वार्थ भाव से अपनी सारी प्रवृत्तियों को मनुष्य जाति की सेवामें लगाता है वह वैश्वानर का उपासक है। वह जो कुछ खाता है उससे पैदा हुई सारी शक्तियाँ दूसरों के लिये हैं और चूँकि जैसे हवन अपने पराये के पक्षपात के बिना सबको लाभ पहुँचाता है वैसे ही वैश्वानर के उपासक के पेट की भट्टी रूपी अग्नि कुण्ड में भोजन आहुति रूप है. इसलिये उसका खाना भी अग्नि होत्र कहा जाता है। उसके पेट में गया हुआ भोजन उसके परिमित शरीरमें न समझना चाहिये किन्तु वह सारे लोकों, प्राणियों और सारे आत्माओं में होम समझना चाहिये अर्थात वैश्वानर का उपासक सारी रचना का प्रतिनिधि है। अग्नि होत्र का उद्देश्य* भी मनुष्यों को वैश्वानर का उपासक बनाना है। वेद में कहा है "इयं वेदि भुवनस्य नाभिः" हवन वाली वेदि सारे जगत् की नाभि है। जैसे मनुष्य शरीर के अन्दर नाभि के केन्द्र से सब ओर नाड़ियां जाती हैं वैसे ही हवन कुंड से चहुँओर सुगन्धि की लपटें जाती हैं और ऐसे ही सच्चे त्यागी पूर्ण वैरागी विद्वान का आत्मा एक वेदि है जिससे निकट वा दूर के सब लोकों तक का ज्ञान तथा आत्मता का प्रकाश पहुँचता है। प्रातः सायं दोनों समय हवन यज्ञ को कर्तव्य बता कर वैदिक ऋषि यह शिक्षा देते हैं कि इसका असली तात्पर्य्य सारी सृष्टि की सेवा में अपने शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और आत्मा तक को अर्पण कर देना है। हवन करने वाला यदि इस रहस्य को समझता है तो वह अग्नि होत्र की यथार्थ विद्या को जानता है।

और यदि आत्मा का जगत से सम्बन्ध हटाकर स्वार्थ का जीवन व्यतीत करता हुआ मनुष्य अग्नि होत्र करता है तो वह मानो अंगारे हटा कर राख पर हवन करता है अर्थात् परोपकार की अग्नि जिसके आत्मा में नहीं जलती उसे इस बाह्य हवनसे अधिक लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि असल स्पिरिट तो मुर्दा ही रहती है। और जो अग्निहोत्र के इस अध्यात्मिक भाव को समझ गया, वह यह जाहिरी हवन करे चाहे न करे, क्योंकि सर्व साधारण मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये काम करते और इस काम वा प्रयत्नादि में जो दूसरे प्राणियों के सम्बन्ध में पीड़ा देने का पाप लाचारी में होता है, इन पापों का प्रायश्चित्त यह हवन है। यदि स्वार्थ भाव का अभाव है और दूसरे प्राणियों के लिये ही प्रत्येक काम हो रहा है तो इस अवस्था में लाचारी से होने वाले पाप दूसरों को लाभ पहुँचाकर होते हैं अतः वैश्वानर के उपासक का उत्तर दायित्व नहीं रहता।

यथार्थ प्रकाश में घोर अनर्थ

१८—इससे अगले मन्त्र का अनुवाद इन शब्दों में दिया गया है:—

"इसलिये यदि अग्निहोत्रके इस सच्चे तात्पर्यको जानने वाला अपना उच्छिष्ट चांडाल को भी दे देवे तो वह उसके (चांडाल के देह में स्थित) वैश्वानर आत्मा में ही होम होगा। इस पर यह श्लोक है:—"जैसे भूखे बच्चे माता के आस पास बैठ जाते हैं, उसी प्रकार सारे प्राणधारी अग्नि होत्र को उपासते हैं हां अग्नि होत्र को उपासते हैं।" उपनिषद्‌कार के उस आशय को ध्यान में रख कर अब हम साहब जी महाराज की कृपा दृष्टि को पड़ताल करते हैं। आप फ़रमाते हैं:—

"छांदोग्य उपनिषद् एक धर्म पुस्तक है और जब उसके

कर्ता (जो ऋषि माना जाता है) के मन्तव्य के अनुसार ब्रह्म ऋषि महात्माओं का जूठा भोजन चाण्डाल तक के आत्मा पर आत्मिक प्रभाव डालता है (ब्राह्मण आदि उच्चवर्णों वा शुद्ध रहने वाले लोगों का तो कहना ही क्या) तो साधारण हिन्दू भाई की नफ्कुशाई का कहां मौका रह जाता है।"

इसका अर्थ यह है कि इस उच्च उपदेश से लाभ पाने के स्थान में साहब जी महाराज उपनिषद् को स्वार्थ वश होकर कलंकित करते हैं, इसलिये कि वह अपने चेलों को जूठा खिलाने के घोर पाप की पुष्टि उपनिषद् से करना चाहते हैं। उच्छिष्ट का अर्थ बचा हुआ वा शेष भाग स्पष्ट लिखा है पर आप अपने नोट में जूठा भोजन लिखते हैं। शौच के नियम को समझने वाले ऋषि लोग कितना भी भोजन पेश हो अपने अल्प आहार के नियमानुसार ले लेते हैं। वैश्वानर के उपासक को आध सेर दूध चाहिये, पर कोई भक्त दो सेर दूध से भरा लोटा पेश करता है तो वह लोटे को मुँह नहीं लगा देता, अपनी आवश्यकतानुसार गिलासादि में लेकर शेष उसी लोटेमें छोड़ता है और वही उच्छिष्ट है। पहिले तो आपने शेष की जगह जूठा लिखा, फिर यह कूट नीति की कि चाण्डाल को उच्छिष्ट मिले तो वह उसके वैश्वानर आत्मा में भी होम है आशय यह बताया कि चाण्डाल के आत्मा पर आत्मिक प्रभाव पड़ता है,पर यह भाव यथार्थ आशय से सर्वथा भिन्न है जो यह है कि उपासक का उच्छिष्ट किसी अन्य मनुष्य यहां तक कि किसी चण्डाल को भी दिया जावे तो वह भी उसके अपने वैश्वानर आत्मा में ही एक प्रकार का होम है, क्योंकि वह अपने से जुदा किसी को नहीं देखता उसकी दृष्टि में ब्राह्मण व चाण्डाल एक समान हैं अर्थात् उसे ब्राह्मण का पक्षपात नहीं। अतः यहां चाण्डाल पर आत्मिक प्रभाव होने का कोई सम्बन्ध

नहीं केवल वैश्वानर के उपासक के स्वभाव का वर्णन हो रहा है।

अन्तिम श्लोक में भी वैश्वानर, उपासक के उपकार का बयान है जैसे बच्चे माताके इर्द गिर्द बैठते और वह उनके भूखादिके दुख को मिटाती है वैसे ही सब प्राणधारी मानो उस उपासक के गिर्द बैठे हैं अर्थात् वह सारे मनुष्यों का सत्य उपदेश से उपकार करता है। यह उपदेश रूपी महायज्ञ भी उत्तम प्रकार का अग्नि होत्र कहाता है और सारे प्राणी इस अग्नि होत्र से क्रियात्मिक रूप से उपकार पाते हैं।

१५–गीता ४ ३१ का अनुवाद पृष्ट ११६ भाग ३ में लिखा है, "जो लोग यज्ञ का उच्छिष्ट अर्थात् बचा हुआ प्रशाद खाते हैं वह सनातन ब्रह्म का योग प्राप्त करते हैं।"

इन शब्दों को जूठा खिलाने के पक्ष में लिया गया है। हमें आश्चर्य है कि हर कहीं पं० राजा राम जी का टीका देते हुए यहां उनके शब्द नहीं दियेजो यह हैं:–"और यज्ञ के ही बचे हुए अमृत के खाने वाले होकर सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं यज्ञ हीन पुरुष का तो यह लोक नहीं है कहां दूसरा ?

इसका भाव यह है कि आपा मिटाकर ईश्वर भक्ति और जगत् के उपकार रूपी यज्ञ में लगा रहना चाहिये। खान पान तथा निज आवश्यकताओं से भी यज्ञ को मुख्य समझना चाहिये। अग्नि होत्र तथा अतिथि वा वलिवैश्व देव यज्ञ किये बिना भोजन नहीं पाना चाहिये। अतिथि को भोजन कराने तथा परोपकार निमित्त कर्तव्य पालन करने के पश्चात् ही भोजन तथा धन पर अपना अधिकार समझना चाहिये। ऐसे यज्ञ शेष को मनुस्मृति ३-२८५ में अमृत कहा है और यह प्रत्यक्ष है कि परमेश्वर, उसके नियमों तथा उसके रचे जगत् को अपनी व्यक्ति से मुख्य समझने वाले धर्मात्मा ही मोक्ष के अधिकारी हैं अतः जूठादि का

ज़िकर कैसा ?

२०—पृष्ठ १२०, धारा ५१ में आप फ़रमाते है कि अथर्ववेद में तो उच्छिष्ट की महिमा में पूरा सूक्त दिया है (कांड ११ सूक्त ७ के २७ मंत्र) इस सूक्त में आप पृथ्वी, जल, समुन्द्र, चांद, वायु, मृत्यु, प्रजापति सब उच्छिष्ट के आधीन कहते हैं। वेदों की उत्पत्ति उच्छिष्ट से बताई है उच्छिष्ट का अर्थ यज्ञ का शेष है और यह नाम ब्रह्म को दिया है।"

यहां आप के ही शब्दों से आशय स्पष्ट है। जब ब्रह्म का नाम उच्छिष्ट है तो चारों वेद का उच्छिष्ट से ही पैदा होना स्पष्ट है और पृथ्वी आदि सब उसके आधीन हुए। रहा यज्ञ का शेष होना, सो ज़ाहिर है कि प्रलय में ब्रह्म में जीव और प्रकृति लीन थे। यजुर्वेद के अनुसार यह तीन अमृत पाद 'दिवि' नाम रखते हैं, रचना होने पर जीव और प्रकृति से तो सृष्टि रूपी यज्ञ की सामग्री प्रगट हुई और बाकी रहा केवल ईश्वर, उसने सब कुछ इस सामग्री से प्रगट किया अतः बाक़ी वा शेष होने से ईश्वर का नाम उच्छिष्ट है और वही अथर्व वेद के इस सूक्त के २७ मन्त्रों का देवता है। यही व्याख्या अष्टाध्यायी ११-३-२१ के भाष्यमें स्पष्ट रूप से विद्यमान है अतः आप का जूठ का पक्ष तथा आपके असंगत से प्रमाण सब व्यर्थ हैं।

(२१) पृष्ठ १३४, धारा ७१ में राधास्वामी मत के विषय में यह आक्षेप लिखा है कि नींच ऊँच जो भी सेवा हो सब करनी चाहिये। गुरु कुछ भी कहे उसको टालना नहीं, इसको आड़ में क्या व्यभिचार वा कुकर्मों का प्रचार नहीं होता, यह आक्षेप इन २ कड़ियों के आधार पर है—

नाना विधि की सेवा करे, नींच ऊँच जो जो आपड़े।
कोई टैहलमें और न लावे, जो गुरु कहें सो कारकमावे।

साहिब जी महाराज सन्त सतगुरु के विशेष गुणों की दृष्टि से इस आक्षेप को निराधार बताते हैं. पर यह उत्तर आजकल की हजारों घटनाओं, गोकुलिये गुसाइयों के प्रसिद्ध मुक़द्दमे, तथा कलकत्ते के कलजुगी कृष्ण (गोविन्द भवन) के दृष्टान्त से निःसार भी है तथापि हम केवल आपके दिये प्रमाण पर विचार करते हैं. जिसमें अतिथि को नमस्कार, उसका सत्कार तथा आवश्यक बातें पूछने के पश्चात् सत्य उपदेश देने और सत्कारादि को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करने की प्रार्थना है। अनुवाद के इन शब्दों को आपने जिला क़लम से लिखा है—

"हे व्रात्य ! जैसे आपकी आज्ञा हो हम वैसा ही करें,जो चीज़ आपके लिये रुचिकर हो उसके लिये आज्ञा कीजिये। हे व्रात्य ! जैसी आप की इच्छा हो.हम उसी प्रकार आपकी सेवा में तत्पर हैं। हम आपकी आज्ञा पालन करनेमें जोजान से हाज़िर हैं" आप इन शब्दों के आशय को ऊपर की कड़ियोंसे मिलाते हैं, परन्तु यह अन्याय है। पहिले तो अनुवाद के अगले शब्दों का भावार्थ ही और है। वह शब्द यह हैं—

हम आपकी ख़ातिर तवाज़ो वा सोहबत के ज़रिये से इल्म की तरक्की हासिल करें और हमेशा उससे सुख पावें। दूसरे वेद शास्त्र में दृढ़ नियम है कि संन्यासी वा अतिथि किसी स्त्रीके साथ एकान्त तो कहां खुली जगह में भी वार्तालाप तथा दर्शनादि का व्यवहार न करें। तीसरे स्वामी दयानन्द जी ने अनेक बार उपदेश सुनने की अभिलाषी स्त्रियों को कहा कि अपने पतियों को भेजो वह सुनकर तुम्हें समझा देंगे। चौथे ऋषियों. मुनियों का निश्चित सिद्धान्त है कि स्त्री और पुरुष का सामीप्य आग और घी का मेल है। पांचवें सैकड़ों उदाहरण ऐसे मिलते हैं कि बाहर से तो और शब्द सुने गये पर पीछे सिद्ध हुआ कि वास्तव में अनुचित

सम्बन्ध था। छठे वैदिक अतिथि पुरुष हों तो उनका सत्कार पुरुष और स्त्री हों तो स्त्रियां करती हैं, परन्तु आप के मत में पुरुष गुरु को स्त्री चेली के स्नान कराने तथा उबटना लगाने का भी विधान है, जिसे अंध विश्वासी के बिना कोई मान नहीं सकता। सातवें वैदिक अतिथि केवल भिक्षा वा भोजन समय में ही किसी गृहस्थ में जा सकते हैं और किसी जगह अधिक ठहर नहीं सकते अतः इस आदर्श अतिथि सत्कार पर आप के बिना कोई दोष नहीं लगा सकता।

२२—योगदर्शन समाधि पाद सूत्र २४ के सम्बन्धमें पं० राजाराम जी की व्याख्या वाले कुछ शब्द तथा अपना मन माना आशय लेकर आपने यह बताना चाहा है कि कलेश कर्म विपाकादि से जो रहित हो जावे वह ईश्वर है। पण्डित जी ने लिखा कि मोक्ष अवस्था में जीव को भी क्लेशादि का सम्बन्ध नहीं रहता, पर परमात्मा में तीनों काल में क्लेशादि नहीं वह सदा ईश्वर है और सदा मुक्त। इस भेद का ख्याल नहीं किया गया। पंडित जी ने प्रश्नोत्तर रूप से यह भी सिद्ध किया है कि न परमेश्वर के बराबर न उससे बढ़ कर कभी किसी का ऐश्वर्य हो सकता है अतः इस अवस्था में भी जीव ईश्वर नहीं हो सकता। राजा अपने सुपुत्र अथवा किसी कर्मचारी को योग्यता के कारण सत्कार पूर्वक उच्च आसन पर अपने पास बिठाता है। अब सामान वस्त्रादि तथा वाह्य ठाठ वाढादि से दोनों में कोई भेद न हो त भी हुक्म असली राजा का ही चलेगा। लोहा आग में गर्म वा लाल अंगारा है पर सत्ता उसकी पृथक है। इसी प्रकार नैमित्तक गुणों से कोई सत्ता चाहे किसी रूप में दिखाई दे उसकी अपनी निजी स्थिति बराबर क़ाइम रहती है।

२३—मुंडक उपनिषद् ३-१-३ में है कि जब जीवात्मा पर-

मात्मा को साक्षात करता है वह पाप पुण्य को छोड़ निरंजन होकर परम तुल्यता को प्राप्त करता है। इसमें केवल अन्तिम भाग परमं साम्यमुपैति" के विषय में मतभेद है। परम समानता, परम तुल्यता के शब्द से आप भेद का अत्यन्ताभाव लेते हैं पर ऐसा होना सर्वथाता असंभव है। आज तक कोईभी दो वस्तुयें ऐसी नहीं हुई जिनमें कभी भेद का अत्यन्ताभाव हुआ हो अतः परम समानता का आशय वह अधिक से अधिक तुल्यता है जो कोई सी २ सत्ताओं में होनी संभव है। जीवात्मा चेतन होने से सदा ही परमात्मा के समान है। ज्ञान होने से यह समानता बढ़ती है और मुक्ति में अधिक से अधिक समानता होती है जब जीव जन्म मरण से छूट कर परमानन्द भोगता है, पर इससे भेद नहीं मिटता क्योंकि यदि भेद न रहे तो किन २ पदार्थों की परम तुल्यता कही जावे। जीव आनन्द भोगता है तो ईश्वर के सम्बन्ध से। परन्तु ईश्वर बिना किसी और निमित्त के स्वभाव से आनन्द स्वरूप है मुक्त जीव न सृष्टि रचता है न दूसरे जीवों को कर्म फल देता है परन्तु ईश्वर का न्याय नियम निरन्तर चलता रहता है।

२४—मुंडक उपनिषद् (३-२-८) में भी आपको जीव का ब्रह्म बनना ही दिखाई देता है, "जिस प्रकार बहती हुई नदियां समुन्द्र में अस्त हो जाती हैं और अपना नाम वा रूप खो देती है उसी प्रकार ब्रह्म का जानने वाला नाम वा रूप से अलग होकर परे से परे जो दिव्य पुरुष है उसको प्राप्त होता है।" यह शब्द आपके पक्ष का पूर्णतः खण्डन करते हैं और परम तुल्यता का आशय समझाते हैं अर्थात् जीव का आवागमन वाला नाम व रूप का सम्बन्ध नहीं रहता। जैसे साहब जी महाराज या आनन्दस्वरूप जी या सतगुरूका नाम या गोरा काला रंग रूपादि न रहेगा पर आत्मा ज्यों का त्यों होगा। सागर में नदियाँ मिलती हैं तो

गंगा जमनादि नाम नहीं रहता न समुद्रमें उनका कोई पृथक निशान है पर नदी के जल की यथार्थ सत्ता बराबर मौजूद है चाहे मनुष्य उसको समुद्र से पृथक लहर वा उत्तार भाटा के बिना देख न सके।

८५—वेदान्त का सूत्र है "अनु कृतेस्तस्य च" इससे विदित होता है कि मुक्ति में जीव को ईश्वर के सदृश कहने का अर्थ अनुकरण करना है अर्थात् जीव ईश्वर के गुणों को धारण करता है। साहब जो महाराज ईश्वर के धर्मों के धारण करने से जीव और ईश्वर में अभेद मानते हैं पर यदि आपके कुछ चेले आपका पूरा २ अनुकरण करलें तो भी वह सर्वथा आप का स्वरूप या साहब जी महाराज कभी नहीं हो सकते।

धारा ११ पृष्ठ १६५ में अवतार वाद का वर्णन है और जीवात्मा को भी परमात्मा रूपी सूर्य्य की किरण कहा है तथा अवतार को भी। इस विचार को और जगह के लिये छोड़ कर हम यहाँ उस भ्रांति को दूर करते हैं जो आपने ईशोपनिषद् के शान्ति पाठ का प्रमाण देकर फैलाई है।

ओं पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवा विशष्यते॥

पूर्ण है वह और पूर्ण है यह पूर्ण से पूर्ण ही निकलता है और पूर्ण से पूर्ण ही निकाल लेने पर पूर्ण ही बचता है।

आपका आशय यह है कि कुल मालक पूर्ण है उसकी किरण शरीर धार कर अवतार लेती है तो वह भी पूर्ण है और पूर्ण कुल मालक से पूर्ण अवतार व आत्मा निकल २ कर भी वह पूर्ण ही रहता है। अब विद्वान् इस पहेली को हल करें कि सूर्य्य पूर्ण है तो उसकी किरण किस प्रकार पूर्ण है और फिर पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर शेष पूर्ण का पूर्ण कैसे रह सकता है? मनुष्य का शरीर और उसका एक बाल बराबर नहीं हो सकते। न समुद्र और बूंद

एक से पूर्ण है न १० में से १० निकाल लेने पर दस शेष रह सकते हैं। यथार्थ आशय यह है कि ईश्वर पूर्ण है और उसके पूर्ण होने से उसका ऐश्वर्य भी पूर्ण होना आवश्यक है, उसका ऐश्वर्य है जीव और प्रकृति, यह भण्डार भी पूर्ण है। प्रलय में यह सामग्री ईश्वर में लीन हो जाती है। उत्पत्ति समय में यह कार्य्य जगत कहाती है और उस समय भी ईश्वर जो उच्छिष्ट है वा शेष अपनी स्वाभाविक पूर्णता के साथ है।

२६—मुण्डक उपनिषद् का प्रसिद्ध बचन है कि यह आत्मा न उपदेश से मिलता है न बुद्धि से न बहुत सुनने से। हां जिस पर भगवान स्वयं अनुग्रह करता हैं वही उसे पाता है। ऐसे कृपा पात्र मनुष्य पर ईश्वर स्वयं अपने आपको प्रगट करते है। इसका आशय यह बताया है कि आर्य्य लोग जो कोरे ज्ञान से ईश्वर की प्राप्ति मानते हैं असत्य पर हैं और हम जो प्रेम भक्ति पर निर्भर करते हैं सचाई पर हैं। परन्तु न आर्य्य लोग कोरे ज्ञान पर आधार रखते हैं और न राधास्वामीमत वाली भक्ति सच्ची भक्ति या ईश्वर प्राप्ति का हेतु हो सकती है. न उपनिषद् कार का यह आशय है वह तो केवल यह बताना चाहते हैं कि परमात्मा तो स्वयं ही प्रकट है केवल मनुष्य के पात्र बनने की आवश्यकता है और पात्र की अलामत यह है कि वह उपदेश या वेद सुनने या मेधावी बुद्धि—किसीपर अभिमान नहीं करता (न वाणी, कान आदि इन्द्रियों अथवा बुद्धि से कोई उसे ग्रहण कर सकता है) अतः वह भगवान की कृपापर ही सफलता समझता है और वह कृपा भगवान् से अवश्य होती है जब जीव अन्य सब सहारे छोड़कर केवल उसी के समर्पण हो जाता है।

२७—पृष्ठ १८५ व १८६ पर आपने अथर्व वेद कांड ९ सूक्त ९ १० के कुछ मन्त्र दिये हैं कि वेदों में भी पहेलियां और रहस्य हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से हम इसमें कुछ दोष नहीं समझते तो भी उल्टी

बातों के लेख में सारबचन की कुछ कड़ियों के अनुसार जो वेद में पहेलियां बताई हैं यह बात असत्य है। वेद में सब सरल और सीधा उपदेश है। मनुष्योक्त पहेलियों में शब्दों और विचारों को गड़भड़ किया जाता है जैसे

गुरू उल्टी बात बताई, मूरखता ख़ूब सिखाई।

इसे पहेली कहें तो उल्टी बात से आशय उस उपदेश का होगा जो मूर्खों की दृष्टि में झूठ हो। गुरूका उपदेश हो परमेश्वर की शरण लेने का और अज्ञानी मनुष्य रुपया बटोरने में बुद्धिमत्ता समझता हो तो वह परमेश्वर की भक्ति में कमाई छोड़ने वाले को मूर्ख समझेगा। वेद में प्रत्येक मन्त्र में रहस्यपूर्ण पहेलियां हो सकती हैं इसलिये कि मन्त्र के अनेक अर्थ हो सकते हैं। मुख्य अध्यात्मिक अर्थ ईश्वर है उसी मन्त्र को जीव पर लगा सकते हैं मनुष्य पर लगा सकते हैं। प्रकरणानुसार एक विद्वान एक अर्थ लगाता है तो दूसरे सारे अर्थ उसके लिये पहेली हो सकते हैं। जैसे "द्वासुपर्णा० में कहा जाता है कि २ पक्षी मित्र भाव से मिले हुए एक ही वृक्ष पर विराजमान हैं। सुपर्ण का अर्थ है वह जिसकी प्राप्ति से सुख हो और वह सुपर्ण आत्मा का नाम हो सकता है और २ सुपर्ण आत्मा और परमात्मा हो सकते हैं। गुरू और शिष्य भी विशेष प्रकरण में २ सुपर्ण हो सकते हैं। और एक अर्थ लेने पर शेष सारे अर्थ अलंकार वा पहेली का नाम पा सकते हैं पर वास्तव में वह सारे अर्थ मंत्र के शब्दों में हैं। साहब जी महाराज ने अथर्व वेद ९ ९-३ का अर्थ पं० राजाराम जी के शब्दों में इस प्रकार लिखा है। "जो सात इस रथ पर चढ़े। सात घोड़े सात पहियों वाले रथ को खींचते हैं। सात बहिनें इकट्ठी स्तुति करती हैं जहां गौओं के सात नाम रक्खे हुए हैं।" पंडित जी की व्याख्या अथवा प्रकरण के आरम्भ में ७ की संख्या से

अभिप्रेत वस्तुओं का आपने वर्णन नहीं किया अतः बीच के कुछ शब्दों को पहेली समझ लेना उचित नहीं अन्यथा रथ शब्द का अर्थ शरीर भी है जिस में मन, बुद्धि, नेत्र, श्रोत्र, नासिका, वाणी और त्वचा की सात इन्द्रियां हैं। यही सातों, कारण विशेष से ७ बहिनें कही जाती हैं। यही सातों शरीर की गति का कारण हैं, इन्हें रथ के घोड़े कह सकते हैं। उनके सात ही विषय हैं। ज्ञान, विचार, रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श। और इस बात को समझने से मन्त्र को प्रकरण से पृथक् करने पर भी अर्थ स्पष्ट विदित होता है, यह कोई पहेली नहीं रहती। इससे विदित होता है कि परमेश्वर की विचित्र ही महिमा है कि जीवात्मा की शक्तियों का प्रकाश करने वाली उत्तम इन्द्रियां हमारे शरीर में रखी हैं जिन से सात सुखदायी विषयों का ग्रहण करता हुआ मनुष्य अन्त में ज्ञानवान होता और मोक्ष पाता है। इसी प्रकार पूर्व मन्त्र में तीन अग्नियों का संकेत है, सूर्य्य, विद्युत और अग्नि। सूर्य्य की रोशनी के सात रंग हैं इन को भी सात बहिनें कह सकते हैं। ऐसे ही अन्य अनेक गुप्त रहस्य आत्मा को मनन करने पर ज्ञात होंगे, पर सब सीधी बातें होंगी उल्टी नहीं।

विद्वानों के लिये एक यही उदाहरण काफी है, तो भी हम इस से अगले मन्त्र का भी संकेत किए देते हैं। "किसने उसको देखा जब वह पहले जन्म ले रहा था, जहां हड्डी से रहित हुई वह हड्डी वाले को धारती है ? भूमि का प्राण अधर आत्मा कहां है ? कौन यह बात पूछने के लिए जानने वाले के पास पहुंचा।" इसमें भी केवल शाब्दिक अनुवाद को असल विषय से पृथक् करने और उर्दू में अनुवाद की संगति का ख्याल न करने से आशय को समझने में कठिनाई मालूम होती है, अन्यथा वैदिक शब्दों का आशय स्पष्ट है कि विद्वान योगी जनों के पास पहुंचकर

सृष्टि के इस रहस्य को समझना चाहिए कि जीवात्मा हड्डी, नाड़ी नस से रहित, प्रकृति में हड्डी नहीं, पर उससे हड्डी वाला शरीर बना और जीवात्मा ने उसको धारा। ऐसा कारीगर जगत् का चलाने वाला और उसका अन्तर्यामी आत्मा खोजने के योग्य है। अच्छा होता कि विरोध तथा आक्षेप करने के स्थान में साहबजी महाराज किसी विशेष शैली पर पंडितजी के अनुवाद को ही समझने का यत्न करते।

२८—(पृष्ठ १९५, भाग २) वेदों में शर्मनाक बातों के प्रमाण रूप में ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका से उद्धृत किया गया है कि जो मनुष्य अर्थज्ञान सहित वेदों को पढ़ता है उसके सामने विद्या अपना सुन्दर स्वरूप इस प्रकार प्रकाशित करती है जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री भूषण वस्त्रादि से सुशोभित, अपना सौन्दर्य अपने पति को दिखाती है।

स्वामीजी के शब्दोंमें कहीं नंगेपनका वर्णन नहीं, न विषयासक्ति का, सौन्दर्य गृहथाश्रमका भूषण है। वफ़ादार बीबी गृहस्थकी सफलता का प्रधान कारण है। गृहस्थ में पति और पत्नी ही एक दूसरे के सौन्दर्य्य का दर्शन करने के अधिकारी हैं और पतिव्रत स्त्री ऐसे भूषण वा वस्त्र पहिनती है जिससे उसकी स्वाभाविक सुन्दरता में वृद्धि हो। इसका उद्देश्य वर्तमान काल के फ़ैशन वा जगत् दिखावा के स्थान में केवल पति और पत्नी में प्रेम का आकर्षण है जो उत्तम सन्तानोत्पत्ति के लिए परम आवश्यक है। अतः स्वामीजी ने प्रत्येक शब्द जहां गृहस्थ के लिए शिक्षाप्रद लिखा है वहां इस सरल एवं स्पष्ट दृष्टान्त से विद्या सम्बन्धी यथार्थ तत्त्व तक पहुँचने की प्रेरणा की है। इस पवित्र तथा गूढ़ शिक्षा को पढ़ते हुए तो आक्षेपक महोदय को लज्जा आती है। पर स्त्रियों को मर्द गुरु की सेवा की प्रेरणा करते हुए लज्जा नहीं आती। भाई और बहिन के

नामसे, मां और बेटों शब्दकी आड़में, गुरु और शिष्य बनकर, गुरु और चेली नाम रखा कर ऋषियों की आज्ञा तथा वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध नरनारी ने मेल किया, ब्रह्मचर्य सम्बन्धी नियम पालन में प्रमाद से काम लिया, जिसके फल रूप में वह भयंकर परिणाम निकले और बड़े २ कुलों को यह कलंक लगे कि जिनका वर्णन करना दुखदायी है। साहबजी महाराज प्राचीन वैदिक गुरुओं के सदाचार की महिमा के संस्कारों से अनुचित लाभ उठाने के लिए यह जताना चाहते हैं कि गुरुओं के विषय में संदेह न करना चाहिए। परन्तु एक उदाहरण मिल चुकने पर पुनः उसी प्रकार की परीक्षा करना मूर्खता है तो नित्य प्रति की इतनी कुनीतियों से, जो विशेषतः इश्तिहारी गुरुओं में प्रगट हो रही हैं, बुद्धिमानों पर यह सर्मन असर नहीं कर सकता। कुछ ही हो स्वामी दयानन्द अथवा वेद पर इन शब्दों के कारण कुछ दोष नहीं आसकता।

२९—ऋग्वेद मंडल ३ सूक्त ३१ मं० १ के अर्थ में भी आप को शर्मनाक तालीम मालूम होती है।

सूर्य जो पिता के समान है, शफ़क़मे जो उसकी पुत्रीवत् है, किरणरूप वीर्य्य से गर्भ धारण करता है जिससे दिन रूप उसका पुत्र उत्पन्न होता है।

(आर्य्य) सूर्य्योदय से पूर्व सूर्य का प्रकाश आकाश के जिस दूर देश में होता है उसे शफ़क़ कहते हैं और उसके उदय होने पर दिन होता है। शफ़क़ को सूर्य की बेटी और दिन को बेटा कहा गया है। खटकने वाली बात केवल यह शब्द है कि शफ़क़ रूप बेटी में किरण रूप नुतफ़ा से गर्भ धारण करता है। परन्तु पहिले तो यहां केवल सूर्य्य से शफ़क़ और फिर दिन ज़ाहिर होने का बयान है। नुत्फ़ा और गर्भ के शब्द अलङ्कार मात्र हैं। दूसरे बेटी शब्द को नुत्फ़ा आदि के साथ बोला जायेगा तो इससे

केवल स्त्री शक्ति का अभिप्राय होगा। सब स्त्रियों को मा, बहिन या बेटी कहा जाना है और विवाह होने पर आयु की दृष्टिसे पहिले जिसे बहिन या बेटी कहा जाता है उसको पत्नि नाम मिलता है और उसमें गर्भाधान संस्कार होता है अतः लज्जा सम्बन्धी विचार केवल बहिन वा बेटी शब्दके रूढ़ी अर्थमें है। वेदकी यौगिक दृष्टिसे आक्षेप नहीं हो सकता। तीसरे शफ़क़ सूर्य की किरणों का आकाश मण्डल के विशेष भाग से सम्बन्ध हो चुकने के पीछे होता है अतः नुत्फा का प्रवेश वास्तव में आकाश मण्डल के विशेष अन्धकार युक्त भाग में हुआ है शफ़क़ में नहीं।

३०—'नरुक्त अध्याय ४ खण्ड २१ के प्रमाण में यह शब्द पढ़ कर साहब जी को शर्म महसूस होती है कि

"बादल और ज़मीन का भी बाप बेटी का तअल्लुक़ है क्योंकि बादल या पानी से ज़मीन की पैदाइश होती है, इसलिए ज़मीन बमनज़िला उसकी दुख़तर के है बादल उसमें बारां सूरत नुत्फ़ा डालता है।"

इसमें भी दो बातो का बयान है, एक तो पृथ्वी की उत्पत्ति का और दूसरे पृथ्वी से उत्पत्ति होने का। पहली बात तो निर्विवाद है कि जल परमाणु समूह (मेघ) से जल बरसा और उस जल से पृथ्वी बनी. इस कथन से पृथ्वी की उपमा बेटी से होनी चाहिये। फिर पृथ्वी से उत्पत्ति तब होगी जब बादल से वर्षा होगी। अतः वर्षा को वीर्य्य कहना उचित ही है। दूसरे वाक्य में बेटी का तो शब्द ही नहीं फिर शर्म काहे की। क्या साहिब जी महाराज अब पृष्ठ १८९ पर लिखे अपने शब्दों पर विचार करेंगे कि यह शब्द अर्थात्—

गुरु-सम और नहीं कोई रक्षक, कुल कुटंब सब जानो तक्षक।

अवश्य सारवचन का है पर जो अर्थ विपक्षी लगाते हैं और

जिस बात का इस उपदेश की तह में संदेह करते हैं उनकी सियाह-दिली का इज़हार है ?

अब ऊपर के मंत्रों वाले उत्तम वैज्ञानिक नियमों के अन्दर आपने जो संदेह किया इसका नाम क्या आप सफ़ेद दिली रक्खेंगे।

३१—शतपथ १, ३, १, १५ का प्रमाण दिया है कि "पृथ्वी देवों की स्त्री है।" इस पर प्रश्न है, "क्या अनेक मनुष्यों की एक पत्नि हो सकती है ?" पर यहाँ संख्या पर तो बहस ही नहीं केवल भिन्न २ देवताओं से पृथ्वी के भिन्न २ सम्बन्धों का संकेत है, तथा पत्नि (स्त्री) शब्द के यौगिक भाव से भी रूढ़ी भाव का खण्डन होता है। इसके अतिरिक्त अवस्था अनुसार नियोग वा पुनर्विवाह के रूप में अनेक वा एक पति पत्नि का सम्बन्ध हो सकने से भी प्रश्न निरर्थक है।

३२—अथर्व०कां० १२ सूक्त ३, मंत्र ३१ का प्रमाण इन शब्दों में दिया गया है "तपे हुए वह (चावल) दौड़ धूप करते हैं। नाचते हैं, झाग और बहुत सी बूँदों को फैंकते हैं। हे जलो ! तुम चावलों के साथ मिल जाओ, जैसे पति को देखकर ऋतु का लीन अर्थात् मैथुन के लिये।

इस प्रमाण में तपे हुये, चावल नहीं, जल हैं। चावल पकाने के लिये पहिले पानी खौलाया जाता है, उबलते हुये जल में झाग बुलबुला, बूंद और उबाल होने से पानी में जो फुदकना होता है उसमें शिक्षा मिलती है कि पानी की इस अवस्था में चावल उससे मिल कर पकते और मनुष्य का भोजन बनते हैं और जैसे इस अवस्था विशेष में पानी में चावल मिलते और मनुष्य को पुष्टि देते हैं वैसे ही स्त्री ऋतु काल में प्रसन्नता पूर्वक समागम

करके सन्तान उत्पन्न करती है । सार यह कि ऋतु कालादि नियम पालन से ही उत्तम संतान होती है। पर साहब जी महाराज को इसमें शर्म आती है, जब कि वास्तव में सब मनुष्य इसी समागम से पैदा होते हैं और इन ही नियमों से संतान बल युक्त होती है। क्या राधास्वामी मत ऋतु कालादि नियमों के विरुद्ध है ? यदि ऐसा है तो क्या इससे विषयासक्ति तथा व्यभिचार के बिना और परिणाम निकल सकता है।

३४—मूर्ती पूजा विषयमें राधास्वामी मत पर एक आक्षेप तथा मत्था टेकने का उत्तर देते हुए आप कहते हैं कि "हिन्दू अपने बड़ों का मान और धर्म पुस्तकों को नमस्कार करते हैं और आर्य्य लोग नमस्ते कहते हैं जिसका अर्थ है "आपको नमस्कार" यह भी कहते हैं कि वेदों में तो सांपों, कुत्तों, पृथिवी आदि तक को नमस्कार किया गया है। अथर्व वेद १०–४–२३ का अर्थ इसके प्रमाण में पेश किया है, "साँपों में से जो अग्नि से जन्मे, जो औषधियों से जन्मे है जो जलों में उत्पन्न हुई मछलियां होकर आये हैं, जिनका बहु प्रकार से बड़ी २ जातियां हैं उन सर्पों को हम नमस्कार से पूजते हैं !"

(आर्य्य) संसार में प्रत्येक वस्तु कदर करने के योग्य है। ईश्वर उसे उत्पन्न करता है और कोई वस्तु ऐसी नहीं जो काम में न आवे। इसी क़दर का नाम नमस्कार व सत्कार है। यह सत्कार गुण वा अवस्था वा मनुष्य की बुद्धि के अनुसार होता है और यह झुकने का ही आशय नहीं रखता, प्रयोग वा व्यवहार के विस्तृत अर्थ से इसका सम्बन्ध है, पिता पुत्र को नमस्कार करे तो यह उसके उपकारादि के लिये कृतज्ञता का प्रकाश है। पुत्र को पिता नमस्ते कहे तो यह प्रेमादि के भाव का प्रकाश है। ऐसे ही मित्र की नमस्ते सन्मान वा प्रेम की सूचक है और शत्रु की नमस्ते यथा-

योग्य बर्ताव की। सर्प को नमस्ते कहने के साथ लाठी उसके सिर पर मारी जा सकती है ताकि वह किसी मनुष्य को डंक न मारने पावे। अतः मत्था टेकने के मुक़ाबिले पर नमस्ते की आड़ लेने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। रही ऊपर के शब्दों से वेद विषय में भ्रांति फैलने की संभावना, इसके लिये हम मूल मंत्र और उसका यथार्थ अर्थ आपकी भेंट करते हैं।

ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा मिथुन आबभूव।
येषां जातानि बहुधा मुहान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसाविधेम॥

इस मन्त्र में सारे पापों, बुरी बातों, दूषित विचारों या दुखदाई मनुष्य पशु आदि सबका सफ़ाया करके शारीरिक, मानसिक आत्मिक सर्व प्रकार की नीरोगता तथा बल को उन्नत करने का शिक्षा दी गई है। प्रचलित संस्कृत में अही सांप को कहते हैं परंतु वेद में अज्ञान व दुख के सारे कारणों को अही कहा है हम अपने अनेक लेखों में सिद्ध कर चुके हैं कि बाइबिल प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का संग्रह है और भाषान्तरों में अनुवाद होते २ उसमें अनेक सिद्धान्त सम्बन्धी दोष आ गये हैं। यह अही शब्द इसका प्रबल प्रमाण है। हव्वा को बहकाने वाला सांप इसी अही शब्द का स्थानापन्न है। यदि वास्तव में साँप होता तो अवश्य हव्वा को डसता या हव्वा पत्थर से उसे कुचलती। सांप ने जो बहकाया वह शैतान का काम कहा जाता है। कुरान में उसे अबलीस भी लिखा है। मुक़ाशफ़ात नाम पुस्तक में मेकाईल और अजदहे का युद्ध लिखते हुए कहा है कि यह अजदहा वही है जिसे बादल, अबलीस वा शैतान कहा है। यह साक्षी इस बात की है कि एक 'ही अहि' शब्द के भिन्न २ स्थानों पर भिन्न २ अर्थ दे दिये हैं प्रकरण का ध्यान नहीं रक्खा गया जिससे यथार्थ आशय बदल गया है। वैसे दुखदाई वा पापी मनुष्य की प्रायः सर्प से अब भी उपमा दी जाती है। फ़ारसी

कवि सादीके एक प्रसिद्ध वचनमें कहा है कि गर्भवती स्त्रियाँ सांप जनें तो नालाइक पुत्र जननेसे यह अच्छा है। सार यह कि मंत्र में जो 'अही नाम' शब्द है उसके अर्थ का सम्बन्ध रींगने और डंक मारने वाले सर्पसे ही नहीं दुखदाई तथा हिंसक मनुष्य पशु और बुरे संस्कारादि सबसे इसके अर्थ का सम्बन्ध है। और इनको नमस्कार करने का आशय उन्हे निर्मूल करने की ओर ध्यान आकर्षित करना है। अगले शब्दों में इन खराबियों की व्याख्या है। अग्निजा उन सब बुराइयों वा दुखोंका नामहै जो आगके जलाने अथवा बिजलीके गिरने या अग्नि नाम ज्ञानियों के अभिमान वा स्वार्थ वश होने से होती है। ओषधिजा नाम उन दोषों वा रोगों का है जो ओषधियों वा भोजनादि से नियम भँग होने की अवस्था में होते हैं। अतः अनेक प्रकार के जो अहि हैं उनको प्रमाद रहित होकर निर्मूल करने का आशय इस नमस्कार शब्दमें है।

३४—अथर्व ११-२-३० नमः है रुद्र के शोर करने वालों को बिन सूक्त के खाने वालों को, बड़े मुँह वाले कुत्तों को यह मैंने नमस्कार किया है। (आर्य्य) रुद्रस्यै लवकारेभ्यो० इस मन्त्र में शोर करने वा रात को भौंकने वाले, नींद में विघ्न कारक, ऊँची २ अवाज और बड़े २ मुँह वाले कुत्तों की आवश्यकता न रहे इस उद्देश्य से दुखनाशक रुद्र परमात्मा को नमस्कार है। भावार्थ यह कि चोर डाकू आदि का मनुष्य जाति में सवथा अभाव हो, जिनके कारणकुत्ते वा पहरा देने वाले रखे जाते हैं। इससे अगले मन्त्र का अर्थ लिखा है:—

नमः है तेरी बलकारों वाली सेनाओं को,
नमः है तेरी बाल—बालियों को।
नमः है नमस्कार की गई गौओं को,
नमः है मिलकर आनन्द मनातियों को॥

नमः हो हे देव! तेरी सेनाओं को।
हमारे लिये स्वस्ति हो हमारे लिये अभय हो॥

(आर्य्य) साधारण से विचार पर विदित होता है कि जैसे प्रजा की रक्षार्थ राजा सेना रखता है वैसे जीव रूप प्रजा की सर्व प्रकार की रक्षा के लिये परमेश्वर की अनेक सेनाएँ हैं। मन्त्र में एक शब्द है "घोषिणीभ्य:"—घोषणा करने वाली। वायु का वेग, वृक्षों की सायें सायें, बिजली की कड़क, बादल की गरज के अलावा, सत्योपदेशकों का ईश्वराज्ञा का सुनाते फिरना, सब भिन्न२ सेनाओं की भिन्न२ घोषणायें हैं किरणरूप सेनादल बाह्य रोगों से, ज्ञानको सेना आन्तरिक रोगोंसे बचाती हैं। बालवालियां जिस शब्द के लिए हैं वह है "केशिनीभ्य:" निरुक्त १२-२५ में इससे प्रकाशयुक्त किरणों का अर्थ लिया गया है। परमात्मा की इन सेनाओं से मनुष्यों को स्वास्थ्य तथा निर्भयता की प्राप्ति होती है और इसके लिए वह नमस्कार करते हैं इत्यादि। इस प्रकार के अनेक प्रमाणों से मत्था टेकना के भाव से इस उत्तर का कुछ सम्बन्ध नहीं रहता।

३५—धारा १७१ में कुल मालक को चेतनता का अपारसिंध और ब्रह्म को इस का अंश लिखा है। परन्तु, हम सिद्ध कर आये हैं कि कुलमालक वास्तव में ब्रह्म ही है। आपकी भूल का प्रत्यक्ष प्रमाण आपके ही पेश किए गीता अध्याय १०, श्लोक ४१—४२ से मिलता है।

"दुनिया में जो कुछ भी शानदार, खूबसूरत और ताक़तवर है वह सब मेरे ही तेज के अंश से उपजी हुई समझो। लेकिन ऐ अर्जुन, इस तफ़सीलके जानने से तुझे क्या फ़ायदा? इस कुल जगत् को तो सिर्फ़ मेरे एक अंश ने व्याप कर थाम रखा है।"

यदि ब्रह्म नाम एक अंश का है तो कुल मालक को इन अंशों में विभक्त किसने किया और क्या कृष्णजी जो कुल जगत को

अपने एक अंश में मानते हैं कुल मालक हैं। आपके कथन से भी यही सिद्ध होता है और कृष्ण जी के साथ राधा शब्द का प्रयोग होने से उन्हें राधा स्वामी कहना भी सार्थक होता है। अतः कल्पित सत्ता के स्थान में क्यों न राधा स्वामी लोग भी कृष्णभक्त बन जायें। वेद में पुरुष नाम उस ब्रह्म का है जिसमें जीव, कारण प्रकृति और कार्य्य जगतहैं और भौतिक जगत एक पाद होने से उसका अंश है।

३६—ऋ० १०—९० – ३ यः यजु० पुरुष सूक्त मं० २—३ का अर्थ यह लिखा है:—

"गुजश्ता आइन्दा मौजूदा जिस कदर काइनात है उस सबको उसी पुरुष की महिमा का निशान समझना चाहिए और उसकी अजमत इस पर महदूद नहीं बल्कि उससे भी ज्यादा है। सारे भूत उसका एक पाद हैं तीन पाद वाला उसका अमर स्वरूप द्यु में है।

यहां भी तीनों कालों और सब लोकों की रचना को पुरुष का एक पाद कहा है और तीन पाद को अमृत अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति तो अमृत (अनादि) हैं और कार्य्य जगत् एक पाद नाश सहित है। अतः ब्रह्म के अंश वाली कोई और सत्ता नहीं वैदिक पुरुष ही है।

३७—अपनी सृष्टि,उत्पत्ति संबंधी फ़िलासोफ़ी विषयक आक्षेप का उत्तर देते हुए आप खिज जाते हैं और आक्षेपक को सुनाते हैं कि एतराज तो एक नादान बच्चा भी कर सकता है जिसका जवाब बड़े २ अक़लमन्द भी नहीं दे सकते, लेकिन सचमुच तहक़ीक़ की ख़ाहिश होतो किसी माहिरके पास पहुंचना चाहिए और अगर उसे फ़ुरसत न हो तो इस फ़ल्सफ़े की कुतब का मुताला होना चाहिये, जैसे रिसाला अमृत वग़ैरा। इसके पश्चात् आप फ़रमाते हैं, अगर

महज़ ऐतराज़ से ही गर्ज़ है तो लो हम भी करते हैं" यह कह कर आप बृहदारण्यक उपनिषद् के कुछ वाक्यों का अनुवाद देकर धारा १८० में लिखते हैं:—

"क्या अच्छा साइन्टीफ़िक बयान है, अव्वल आदमी पैदा हुये और उनसे जानवर, घोड़े, गधे वग़ैरा। ऐसा समझने वाले विद्वान् भला सन्त मत की बातों को क्यों मन्जूर करने लगे हैं। मगर वह आत्मा था या शरारत का पुतला और आत्मा से यहां मतलब परमात्मा से हो तो है।

(आर्य्य) निस्सन्देह यदि उपनिषद् को समझने वाले, आप जैसे ही कलजुगी ऋषि होंगे तो परमात्मा के लिये ऐसे अपशब्दों का प्रयोग होगा ही। परन्तु यदि यह शब्द केवल आपके दिमाग़ी फ़तूर का ही परिणाम हों तो आपको क्या ख़िताब मिलना चाहिये। उपनिषद्कार ने उत्पत्ति से पूर्व परमात्मा की विद्यमानता बताई और जैसे जीवात्मा के लिये अपने अस्तित्व का ज्ञान होने के लिये अहङ्कार माना जाता है वैसे ही रचना करने वाले परमात्मा के अस्तित्व के लिये "अहमस्मि" शब्द का सम्बन्ध आवश्यक है। तदनन्तर रचना का उद्देश्य बताना था कहा जा सकता है कि अकेला होने से, डर होने के कारण उसने रचना की होगी पर जब दूसरा परमेश्वर था ही नहीं तो डर कैसा? अतः यह विचार तो है निर्मूल। हां अकेला खुश नहीं होता दूसरों के होने से हरएक को मदद और खुशी मिलती है या दूसरे को सहायता देने से खुशी होती है। परमात्मा स्वभावतः निरपेक्ष है पर उसकी सम्पत्ति से जीवों का उपकार हो तभी उसकी सफलता है। इस लिये उसने दूसरे अर्थात् रचना की इच्छा की। इस कथन के पीछे उपनिषद्-कार के शब्दों का यह अनुवाद चलता है:—

"वह इतना बड़ा था जितना कि दोनों इकट्ठे हुये स्त्रीपुरुष होते

हैं। उसने अपने इस ही शरीर को २ प्रकार से तक़सीम किया, इससे पति और पत्नि हुये। उस स्त्री ने ख्याल किया, कैसे वह मुझे अपने से ही जन्म देकर संगत होता है मैं छिप जाऊँ वह गऊ हुई दूसरा सांड बन गया और उसके साथ संगत हुआ, उससे गायें उत्पन्न हुईं, तब वह घोड़ी बन गई दूसरा घोड़ा बन गया। वह गधी बन गई दूसरा गधा बन गया और उसके साथ संगत हुआ, इत्यादि।" अब साहब जी महाराज की बुद्धिमता देखिये। मनुस्मृति आदि में तो अंड वा ब्रह्मांड शब्द आता है वह स्त्री-पुरुष के मिले हुये शरीर से उपमा पा रहा है। उससे जो २ भाग हुये उन्हें पति पत्नि कहा है पर वास्तव में यह नर, मादा या पुलिंग स्त्रीलिंग है और दो शक्तियों का संकेत है व्यक्तियों का नहीं और इसीलिये आपने जो यह मख़ौल उड़ाया है कि पहिले मनुष्य पैदा हुये और पीछे घोड़े आदि, यह केवल अपनी विचार शैली को दूषित सिद्ध किया है। कुरान सूरानिसा आयत १ में हैं कि ऐ मनुष्यों! भरोसा रखो उस अपने रब पर जिसने तुम्हें एक ही कारण से पैदा किया। उससे उसने "ज़ौज" अर्थात् नर मादा के जोड़े उत्पन्न किये और उनसे "रिजालन कसीरंन निसाअन" बहुत से पुरुष स्त्री फैलाये। स्वयं साहब जी महाराज ने कहीं Positive और Negative दो शक्तियों का वर्णन किया है कहीं स्त्री पुरुष शक्ति का अतः पति पत्नि का शब्द नर और मादा के लिये हैं इसी जोड़े की दो शक्तियों का वर्णन उपनिषद्कार ने सब प्राणियों में दिखाने को एक ओर गौ, घोड़ी, गधी आदि लिखे तो दूसरी ओर सांड घोड़ा गधा आदि। सारांश यह हैकि शैतान है तो और शरारत का पुतला है तो, आक्षेपकके अपने अन्दर है उपनिषद् वा परमात्मा से उसका सम्बन्ध नहीं।

पृष्ठ २२३ पर आपने स्वयं नर और मादा का ही अर्थ लिया

है अतः ऐतराज़ हो नहीं सकता।

ऋग्वेद १०-१२९ के ७ मंत्र स्वामी जी ने सृष्टि उत्पत्ति विद्या विषय में दिये हैं। १ व ७ का अर्थ भी लिखा है जिनमें से केवल सातवें पर ही विचार करने की आवश्यकता है। उसका आप ने यह अर्थ लिखा है "जिससे यह सृष्टि हुई आया उसने खुद इस सब को रचा या नहीं रचा? यह बात वह जो परमदेवम (सब से ऊँचे आकाश) में मुक़ीम रहकर सृष्टि की निगहदाश्त करता है ठीक २ जानता होगा और मुमकिन है वह न जानता हो।" अब यह अर्थ कि परमदेव जानता होगा और संभव है वह न जानता हो किस प्रकार सत्य हो सकता है। यदि जगत् कर्ता के विषय में ही संदेह हो कि शायद उसे सृष्टि विषय का ज्ञान न हो तो फिर उसका इल्हाम मानने और उसे सर्वज्ञ कहने के क्या अर्थ? छटे मंत्र में प्रश्न था कि कौन जानता है कि सृष्टि कहां से निकली, मनुष्य तो सृष्टि होने के पीछे पैदा हुए, इसलिए उन्हें इसका ज़ाती ज्ञान न हो सकता अतः अगले मन्त्र में इसका उत्तर दिया गया जो स्वामी दयानन्द लिखित अर्थ से स्पष्ट तथा सर्वथा सत्य है कि परमेश्वर ही इसका कर्ता है बनाये तो वह नाश करे तो वह, वही सबसे महान, आकाशवत सर्वत्र व्यापक है मनुष्य चाहे उसे जाने या न जाने। जानेगा तो सुख पायेगा अन्यथा नहीं।"

३८—एक भ्रान्ति वेद विषय में अनेक स्थानों पर फैलाई गई है कि वेद में बस तीन गुण वाली प्रकृति के गुणों का वर्णन है। पृष्ठ २४३ पर भगवद्गीता, २. ४५—४६ का अनुवाद प्रमाण रूप में लिखा है—

हे अर्जुन! वेदों के अन्दर तीन गुणों वाले विषय का वर्णन है तुझे उनके पार जाना चाहिये। तुझे द्वन्दों से आज़ाद, सदा

सात्विकी वृत्ति वाला, धन ऐश्वर्य की उलझन से लापरवाह और आत्मवान बनना चाहिये। सच्चे ब्रह्म ज्ञानी के लिये वेद वही हैसियत रखते हैं जो किसी पानी से लबरेज़ वसीअ मुक़ाम के मुक़ाबले में पानी से भरे हुए गढे या कूयें की होती है। परन्तु इसमें कहां तक सचाई और ज़मीर का लिहाज़ रक्खा गया है, यह आपके पेश किये श्लोक ४५ में प्रगट है। "मूर्ख लोग वेदों के शब्द पकड़ कर लनतरानियां करते हैं और कहते हैं कि वेदों में बयान किये हुए फलों के सिवाय मनुष्य और कुछ हासल नहीं कर सकता" भावार्थ यह कि वेदार्थ का जिन्हों ने योग अवस्था में साक्षात् नहीं किया, वह अपने विचार के अनुसार इस प्रकार की अयुक्त बातें कहते हैं। अतः उनके तीन गुण ही मान बैठना आदि मूर्खों की बातें हैं। और उनके प्रमाण के आधार पर कोई व्यवस्था देना भी किसी बुद्धिमान् का काम नहीं हो सकता। आश्चर्य यह है कि और सब जगह तो आपने पण्डित राजाराम जी वाला अनुवाद दिया है पर यहां मालूम नहीं किस छिपे रुस्तम का सहारा लिया है। पं० राजाराम जी तो लिखते हैं कि यह अज्ञानी पुरुषों का काम है कि साधारण कर्मों वा फलों को वेदों का अन्तिम लक्ष्य समझ बैठते हैं। ४२—४४ श्लोक के भाष्य में वह लिखते हैं। "वेद का परम तात्पर्य यह है कि मनुष्य निष्काम हो कर अपने कर्तव्य को पाले जैसा कि यजुर्वेद में कहा है—

"बनिये न बन कर (निष्काम भाव से कर्म करते हुए) जो पुरुष जागे हुए हैं वह उस पद को हृदय में प्राप्त करते हैं जो विष्णु का परम पद है।" पण्डित जी यह भी फ़रमाते हैं कि एक दम निष्काम कर्म की ऊँचाई पर पहुँचा नहीं जा सकता, इसलिये पहिले साधारण सांसारिक कर्मों की मनज़िल में चलते हैं। इसके अति-

रिक्त वेद में सर्वत्र आत्मा, परमात्मा और मुक्ति विषय का वर्णन है और साहब जी महाराज स्वयं अपनी पुस्तकों में इसी आशय के प्रमाण देते हैं तब केवल तीन गुणों तक उन्हें सीमित कहना अपने ही आत्मा का हनन करने के बिना कुछ अर्थ नहीं रखता।

४०—गीता २-५३ का आप यह अनुवाद लिखते हैं—"वेद वाक्यों से घबराई हुई तेरी बुद्धि जब समाधि-वृत्ति में स्थिर और निश्चल होगी अर्थात् वेदों की बातों से जो तेरा मन भ्रम रहा है जब यह एकाग्र होकर स्थिर हो जायगा तब तुम्हें योग अवस्था प्राप्त होगी सारवचनमें यह है 'सन्त पुकारें भेद वेद पशु मानें नाहीं' इस पर एतराज़ हुआ तो श्लोक आपने वेद पशु शब्द के सम्बन्ध में पेश कर दिया। पर यदि विषय यह होता कि बिना समझे वेदों का पढ़ या मान रहे हैं तो वेद पशु कहना ठीक भी होता। सार वचन में तो वेदानुयाइयों को वेद पशु कहा है जो एक प्रकार की गाली है। कुछ ही हो गीता के श्लोक से यह निश्चय नहीं होता कि वेदानुयाइयों की ओर यहां संकेत है अथवा उसपर चलने वालोंकी ओर हां साधारण अर्थों और समाधिमें साक्षात् किये अर्थों की तुलना अवश्य की गई है कि साधारण विचार से तत्त्वार्थ का भान नहीं होता जिससे जिज्ञासु में घबराहट होती है पर जब एकाग्र चित्त होकर समाधि में विचार करता है तो उसको यथार्थ अर्थ का ज्ञान होता है।

४१—(गीता अ० ९ श्लोक २०) "तीन के वेदों जानने वाले, सोम रस के पीने वाले पापों से पाक व साफ़ लोग यज्ञों से मेरी प्रस्तिश करके मुझसे स्वर्ग में पहुंचाये जाने के लिये मेरी प्रार्थनायें करते हैं और देवताओं के राजा (इन्द्र) के लोक में रसाई हासल करके स्वर्ग में देवताओं के भोगों का आनन्द लेते हैं" इस प्रमाण से आप सिद्ध करते हैं कि प्राचीन काल में यज्ञ देवताओं की

प्रसन्नता के लिये किया जाता था। पर दिव्य गुणयुक्त अग्निवायु वा रुद्र, वसु आदि ३३ देवता वा विद्वान पुरुषों का आपको ख्याल नहीं, केवल मूर्खों को बहकाने तथा निर्मूल से आक्षेप किये जाने के लिये आप मिथ्या एवं कल्पित देवताओं का संकेत करते हैं परन्तु इस प्रमाण में इन कल्पित देवताओं की तुष्टि का भी वर्णन नहीं केवल फल का बयान है कि तीन वेदों को जानने और हवन यज्ञ करने वाले मनुष्यों को स्वर्ग में वह भोग मिलते हैं जो देवताओं को मिलने चाहिये।

४२—गीता अ० ४ श्लोक २५, ३२, ३३, ३४ का अनुवाद दिया है।

"अब मुख़्तलिफ़ क़िस्मों के यज्ञों का हाल सुनो, बाज़ योगी (जिनका कर्म योग में अक़ीदा है) यज्ञ करके देवताओं ही का पूजन करते हैं और बाज़ योगी ब्रह्म अग्नि में यज्ञ ही की आहुति डालकर यज्ञ करते है। (२५) ऐ अर्जुन इस तरह वेदोंमें बहुत सी क़िस्मों के यज्ञों का बयान है, मगर ग़ौर करो कि इन सब का कर्म ही से ज़हूर होता है यह बात समझ लेने से तुम्हें नजात हासिल हो जायगी। (३२) ऐ अर्जुन! ऐसे यज्ञों से जिनमें संसार के पदार्थों की आहुति डाली जाती है ज्ञान यज्ञ अफ़ज़ल है क्योंकि तमाम कर्म ज्ञान में समाप्त होते हैं। (३३) लेकिन यह ज्ञान तुम्हें तत्व दर्शी ज्ञानी पुरुषों से हासिल हो सकता है और उसके हासिल करने के लिये तुम्हें उनके क़दमों में गिरना, जिज्ञासा करना, और उनकी सेवा में लगना होगा। (३४) यह प्रमाण भी आपने इसलिये पेश किया है कि हवन का उद्देश्य देवताओं की तृप्ति सिद्ध हो, पर इसमें इसका रंचक मात्र भी संकेत नहीं, हाँ वैदिक सिद्धान्त का पूरा मण्डन और राधास्वामी मत का पूरा खण्डन किया गया गया है। हम पहिले बता आये हैं कि यज्ञ

अनेक प्रकार का है। प्रत्येक काम अर्थात् हवन करना, वैश्वानर के उपासक को भोजन कराना, विद्या दान, धर्म उपदेशादि सब यज्ञ हैं और सबसे उत्तम ज्ञान यज्ञ है। श्रेष्ठतम कर्म ईश्वर से योग प्राप्त करना है जो तत्व ज्ञानी योगी पुरुषों के ही भाग में है। यही पुरुष सच्चा उपदेश देते, यही सेवा श्रद्धा के पात्र हैं न वेदज्ञान शून्य गुरू डम के ढोंगी मनुष्यों का कुछ बना सकते हैं न कल्पित देवताओंकी तुष्टि का यहाँ कोई संकेत है।

४३—मंडकोपनिषद् १—२ पं० राजाराम जी वाला अनुवाद दिया है:—

"यह सत्य है कि ऋषियोंने वेद के मन्त्रों में जो कर्म देखे हैं वह त्रैता (ऋग यजु साम) तीन प्रकार के मन्त्रों में अनेक प्रकार से फैले हुये हैं उनपर तुम नियम से आचरण करो। हे सचाईसे प्यार करने वालो ! यह तुम्हारा रास्ता है जो पुण्य के लोक में लेजाता है (१) जब अग्नि के प्रदीप्त होने पर लाट खेलती है तब आज्यभाग की दो आहुतियों के बिना आहुतियां देनी चाहिये, (२) जिसका अग्निहोत्र बिनादर्श पौर्णमास्य, चातुर मास्य और आग्रहण के हैं। अतिथियों से वर्जित है, बराबर जारी नहीं रहता, बिना वैश्वदेव के हैं वा विधि से नहीं किया जाता, वह उसके तीनों लोक को नष्ट कर देता है। (३) काले रङ्ग की भयङ्कर, मन की तरह वेग वाली निहायत सुर्ख़, धूएँ के रङ्ग वाली, चंगारियों वाली यह लाटें चारों तरफ़ खेलती हुई सात जिह्वा कहलाती हैं (४) जब यह चमक रही हों तो ठीक समय पर आहुतियां देता हुआ जो यज्ञमान कर्म को पूरा करता है उसको यह सूर्यकी किरणें लेकरवहाँ लेजाती हैं जहां देवताओं का एक मालिक रहता है। (५) आओ आओ यह ऐसे कहती हुई वह चमकती हुई आहुतियां यज्ञमानको सूर्य की किरणों के जरिए उठा ले जाती हैं या प्यारी बानी बोलती हुई और

उसकी स्तुति करती हुई, यह तुम्हारा पवित्र ब्रह्मलोक है जिसको तुमने अपने पवित्र कर्मों से प्राप्त किया है।" इन प्रमाणों से भी आपका अपना पक्ष खंडित होता है। सिद्ध तो करनी थी देवताओं की तृप्ति, पर प्रमाण देते हैं आप एक सच्चे मालक ब्रह्म की प्रसन्नता का। साथ ही अग्निहोत्र के दृश्य का जहां चित्र खींचकर इसमें उत्साह दिलाया है, वहां सारे नेक कर्म रूपी यज्ञों का संकेत भी स्पष्ट किया है क्योंकि अन्त में कहा है कि श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा यजमान उस प्रकार उच्च अवस्था को पहुंचता है जैसे सूर्य की किरणें परमाणुओं को ऊपर उठा ले जाती हैं। इसी अवस्था को ब्रह्मलोक की प्राप्ति कहा है। अतः सारा कथन वैदिक सिद्धान्त की पुष्टि करता और उसके विपरीत का खण्डन।

४४—भाग ३ पृष्ठ २४१ छांदोग्योपनिषद् २—१३ का प्रमाण देकर स्वार्थियों की ओर से मिलावट कहा है। हमें शोक है कि एक अति पवित्र शिक्षा देने वाले मन्त्र के विषय में अपने अज्ञान वा स्वार्थके कारण आपने भयंकर भ्रान्ति फैलाई है। मन्त्र यह है—

स य एवमेतद् वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते, सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति। महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न कांचन परिहरेत्तद् व्रतम् ॥२॥

साहब जी महाराज ने इसका अनुवाद यह दिया है:—

वामदेव्य सामामिथुन (जोड़े) में परोया हुआ है (१) जो इस प्रकार वामदेव्य को मिथुन मे परोया हुआ मानता है, वह मैथुनी (जोड़े वाला) होता है, विरह के दुख का भागी नहीं होता। मिथुन से प्रजा वाला होता है, सारी आयु को पहुँचता है, उज्ज्वल जीना जीता है। महान होता है प्रजाओं से, पशुओं से, और महान कीर्ति से। इस उपासना का यह व्रत है कि किसी औरत को न छोड़े। (२) भाष्यकार का आशय यह है कि किसी भी स्त्री

से विवाह हो, उसे छोड़ना न चाहिए, पर साहबजी महाराज इसे अत्यन्त घृणित भाव में लेते हैं। कुछ ही हो यह इस प्रमाण से सिद्ध है कि न तो आप को धर्म ग्रन्थों का ज्ञान है, न आप धर्म चर्चा में सावधानी से काम ले सकते हैं। इस से पूर्व मन्त्र में विवाह के आवश्यक अंगों, वर-कन्या की प्रतिज्ञाओं तथा गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्व का वर्णन है। पहिले हिंकार का विषय दिया है अर्थात् निमन्त्रणादि का, फिर प्रस्ताव अर्थात् उपस्थित सभा के सामने वर और कन्या की प्रतिज्ञाओं का. तीसरा नियम उद्गीथ अर्थात दोनों का सहवास, चौथा नियम है प्रतिहार अर्थात् समागम और पांचवां नियम है निधन अर्थात् प्रेमपूर्वक निर्वाह, छटा नियम है आयु भर परस्पर का हितचिन्तन। इतनी बातें कहकर ईश्वराज्ञा के अनुसार पति पत्नी का धर्म में प्रवृत्त रहना आवश्यक बताया और इस दूसरे मन्त्र में कहा कि जो मनुष्य इस वाम देव्य साम को भली प्रकार जानता है, वह वीर्य्यवान्, पूर्णायु वाली सन्तान और सफल जीवन वाला होता है। पशु, धन, यश, कीर्ति आदि से पूरित रहता है। ऐसा पुरुष कभी स्त्री को न छोड़े। यह उसका व्रत है। कतिपय टीकाकार "न परिहरेत्" का अर्थ इस उपदेश में लेते हैं कि किसी स्त्री का अपहरण न करे (जैसे रावण ने सीता का किया) कहां तक लिखें गागर में सागर की भांति यह गृहस्थ धर्म के लिए अत्यन्त उत्तम उपदेश हैं, पर साहबजी महाराज अपने पक्षपातादि दोषों से चांद पर थूकने का पाप करके अपने आप को कलंकित करते हैं। आप के शब्दों में परस्पर विरोध भी प्रत्यक्ष है क्योंकि जो दुराचारी किसी स्त्री को न छोड़े वह न सन्तान युक्त हो सकता है, न पूरी आयु वाला।

४५—बृहदारण्यक उपनिषद ६-४ का यह अनुवाद दिया है:—
"और जो यह चाहे कि मेरे पुत्र पंडित, नामवर, सभा

में जाने वाला, सब की भलाई में शरीक होने वाला (Public man) लोगों के दिलपसन्द वाणी बोलने वाला पैदा हो, जो सारे वेदों को जाने और पूरी उमर भोगे तो वह (खाविंद बीबी दोनों) जवान बछड़े या उमर रसीदा सांड के गोश्त व चावलों से तय्यार किया हुआ मान्सोदन (पुलाओ) घी डालकर खायें। ऐसा करने से वह ऐसी औलाद पैदा करने के काबिल हो जायेंगे।"

यह अनुवाद देकर आप फरमाते हैं कि "आर्य्यसमाजी पंडित मांसौदन के अर्थ बदल कर जान छुड़ाना चाहते हैं, मगर उपनिषद् में न सिर्फ लफ्ज़ मांसौदन जो कि मांस (गोश्त) व ओदन (पकाया हुआ चावल) का मुरक्कब है, दर्ज है, बल्कि औक्षण (जवान बछड़े) का और आर्षभ (सन रसीदा सांड) का भी मुस्तामल है, इसलिए सरीहन किसी दूसरे अर्थ लगाने की गुंजाइश नहीं।"

(आर्य्य) निम्न लिखित बातों का विचार करने से स्पष्ट हो जायगा कि आर्य पण्डित पीछा छुड़ाने के लिये मांसौदन के अर्थ बदलते हैं या आप के पेश किये अर्थ ग़लत हैं तथा दूसरे अर्थों की गुंजाइश न होने का विचार पक्षपात के कारण है वा सचाई के। (१) यह प्रमाण वेद का तो है नहीं, उपनिषद् का है और वह भी आपके कथनानुसार मिलावट है तो आर्यसमाज का तो पीछा छूट गया। न माँस और चावल वाले पुलाओ का वेद में विधान है न आर्यसमाज पर आप वाले अर्थ से दोष आसकता है। तथापि परतः प्रमाण उपनिषद् पर भी यह दोषारोपित नहीं हो सकता (२) असल मन्त्र यह है—

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिंगमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान्वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयित

या औक्ष्णेण वा ऽर्षभेण वा

इसका यथार्थ अनुवाद यह है—जो यह चाहें कि हमारा पुत्र बहुत बड़ा विद्वान् , प्रसिद्ध वक्ता, मधुरभाषी, चारों वेदों का ज्ञाता तथा बड़ी आयु वाला हो वह उक्ष वा ऋषभ नाम बूटियों के रस चावल में पकाकर खाया करें। (३) देखना यह है कि विवादास्पद शब्दों का अर्थ जवान, बूढ़ा सांड आदि हैं जैसा कि आपने लिखा है अथवा यह बूटियों के नाम हैं जैसा कि हमने लिखा है। सो यदि मांस का इनमें संकेत होता तो उक्ष वा ऋषभ दो शब्द न होते। एक ही शब्द जाति के लिये आ सकता था विशेषत: इसलिये कि जवान और बूढ़ा दोनों का वर्णन आप करते हैं। साथ ही "औक्षेणवाऽऽर्षभेणवा" का अर्थ है कि चाहे उक्ष का चाहे ऋषभ का, इससे एक जाति नहीं दो पृथक २ वस्तु सिद्ध होती हैं। इनसे पहिले तीन चार मन्त्रों में भी यही विषय है। गोरे रंग के एक वेद के विद्वान् १०० वर्ष आयु वाले पुत्र की कामना पर दूध में चावल पका घी डाल कर खावें। कपिल रङ्ग, भूरी आंखों वाला, २ वेदों का ज्ञाता पूर्ण आयु वाला पुत्र चाहें तो चावल पका दही और घी मिलाकर खाने की शिक्षा है इत्यादि, सारे प्रकरण में कहीं मांस का विधान नहीं। तीन वेद तक के लिये दही, घी, चावल, तिल आदि है तो केवल चौथे वेद के सम्बन्ध में मांस का विधान कैसा ? यह मात्र आर्यों के अहिंसा के सत्य सिद्धान्त के भी विरुद्ध है, विशेषत: बैल वा बछड़े के सम्बन्ध में तो कोई ऋषि स्वप्न में भी ऐसा विचार नहीं कर सकता। इस प्रकरण में सन्तान के स्वास्थ्य, बल तथा विद्या प्राप्ति सम्बंधी सफलता का वर्णन है और स्वास्थ्य, बल, आयु आदि आयुर्वेद का विषय है अत: इन शब्दों के यथार्थ अर्थ का पता आयुर्वेद से ही चल सकता है। सो आयुर्वेद के प्रामाणिक पुस्तक चरक सुश्रुत और निघंटु से जीवक

और ऋषभक नाम औषधियों के सिद्ध होते हैं। मदनपाल निघंटु में उन औषधियों का नाम ऋषभक है जो बल बढ़ाती है। भावप्रकाश में लिखा है कि बैल के सींग का सा आकार होने के कारण उन्हें ऋषभक, उक्षा आदि नाम दिये हैं। उक्षा के लिये बलिया का शब्द आता है। इस विषय का विस्तृत वर्णन हमारी नकलोचन विश्वेश्वर नामकी पुस्तक की भूमिका में है। वहां अनेक प्रमाणों से चरक और सुश्रुत के अनुसार यह नाम बूटियों के ही सिद्ध किये हैं तथा मांस शब्द के अनेक अर्थ और प्रयोग दिये हैं और उपनिषद् के इस प्रमाण में तो विशेष रूप से कोई भी संभावना नहीं कि बैल वा बछड़े का अर्थ लिया जावे।

ऋग्वेद सूक्त २४, मन्त्र १ को पहिले भाग में आपने इस उद्देश्य से पेश किया था कि स्वामी जी का इन्हें पुनरावृत्ति पर लगाना ठीक नहीं सो इसका उत्तर तो उसी विषय में दिया है परन्तु तीसरे भाग में आप फ़रमाते हैं कि इस सूक्त का ऋषि शुनःशेप लिखा है और ऐतरेय ब्राह्मण में इसका वर्णन इस प्रकार है कि एक राजा हरिश्चन्द्र के यहां वरुण देवता के वरदान से सन्तान हुई पर राजा ने जो पहिला पुत्र वरुण देवता के समर्पण करने की प्रतिज्ञा की थी पूरी न की। बालक बड़ा हुआ तो राजा ने उसे यह सब वृत्तान्त बताया। राजकुमार ने बलिदान होने से इन्कार किया और जंगल को भाग गया। वहां उसने अजीगर्त ऋषि को जो दरिद्रता के कारण बहुत दुःखी था इस पर राज़ी कर लिया कि अपना पुत्र सौ रुपया लेकर बलिदान करादे। अजीगर्त, उस का मंझला बेटा शुनःशेप और राजकुमार तीनों राजा के पास आये, राजा ने वरुण देवता को अपने पुत्र के बदले अजीगर्तके पुत्रकी कुरबानी लेने पर राज़ी कर लिया। शुनःशेप की बलीका यज्ञ होने लगा तो किसीको साहस न हुआ कि उसे कुर्बानी की लकड़ी से बांधे तब अजीगर्त ने और सौ रुपया लेकर यह काम स्वीकार किया फिर क़तल कौन

करे इस समस्या का भी हल न हुआ तो तीसरा सौ रुपया देकर उसे इस काम पर भी राज़ी किया गया और वह अपने पुत्र को क़तल करने को बढ़ा उस समय बालक ने घबरा कर परमेश्वर से प्रार्थना की कि—

"हे प्रजापति ! कृपा करके बताओ कि सारे देवताओं में से हम किस एक पवित्र देवता का नाम धारण करें जो हमको पुनः महान अदिति के पास पहुंचादे ताकि हमें पिता और माता के दर्शन हों। प्रजापति ने जवाब दिया कि अग्नि देवता का नाम जपो। इस पर उसने अग्नि की स्तुति की और कहा, अग्नि का जो देवताओं में मुख्य है पवित्र नाम धारण करना चाहिये वह हमको पुनः अदिति के पास पहुंचा देगा माता और पिता का दर्शन करने के लिये इत्यादि।

(आर्य्य) शुनःशेप शब्द का अर्थ क्या है इसका अथवा ऊपर की कथा के किसी आशय का ख्याल न करते हुए हम पूछते हैं कि यदि शुनःशेप नाम की ऐतिहासिक व्यक्ति ने यह प्रार्थना की तो इससे शुनःशेप सा अज्ञानी बालक इस मंत्र को बनाने वाला तो न हुआ। आपने स्वयं लिखा है कि अन्त में विश्वामित्र ऋषि की शिक्षा पर आचरण करके लड़का बच गया, और तब विश्वामित्र ऋषि से विद्या प्राप्त करके वह बड़ा ऋषि बना। साहब जी महाराज एक स्थान पर कहते हैं कि इस सूक्त के १२ व १३ मंत्र में जो शुनः शेप शब्द है वह यही शुनःशेप ऋषि है पर एक तो यह परस्पर विरुद्ध बात है। प्रार्थना करने का आशय यह है कि मंत्र पहिले मौजूद था और इस मंत्र का ऋषि शुनः शेप होना यह बताता है कि उसने यह मंत्र रचा। पर जब यह कहा जाता है कि उसने इस प्रार्थना के पीछे बच जाने पर शिक्षा पाई तब मंत्र रचने का विचार और भी असत्य हुआ अतः

आपका पक्ष सर्व प्रकार से असत्य है। यह शुनःशेप यदि वही अजीगर्त ऋषि का पुत्र हो तो ऐसे निर्दयी पिता के हाथों परमेश्वर के दरबार में पनाह मांगता हुआ कभी यह प्रार्थना न करता कि पुनः माता और पिता के दर्शन कराओ। साथ ही धन के लोभ से जो अपने पुत्र की हत्या करने को उद्यत है वह अजीगर्त ऋषि कैसे हो सकता है। वरुण नाम परमेश्वर का है उससे ही प्रजा सन्तान तथा धन मनुष्यों को मिलता है अतः मुख्य रूप से सब कुछ उसी के अर्पण रहना चाहिये। वही माता पिता के द्वारा सन्तान का पालन कराता है। क्या इस आवागमन में और क्या मुक्ति से लौटने पर यह शिक्षा तो ली जा सकती है और इस प्रकार के गुणों से वही ईश्वर स्तुति के योग्य है, यह माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त साहब जी महाराज वाली कथा से यह भी विदित होता है कि वेद के जहां आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिकादि अनेक प्रकार के अर्थ हो सकते हैं वहां मानवीय इतिहास से भी उसके अर्थ का सम्बन्ध युक्त रूप से हो सकता है और यह वेद के महत्व का प्रमाण है न कि इसके ऐतिहासिक पुस्तक होने का।

सर्ग २

युक्ति आदि की जांच

साहब जी महाराज फ़रमाते हैं कि "सतसंग मंडल में से अनेक पुरुष वेदों का मान करने वाले हिन्दु परिवारों से संबन्ध रखते हैं तथा वेद स्वयं हमारे पूर्वजों की पवित्र यादगार है और हमारे देशवासी उन्हें विशेष मान की दृष्टि से देखते हैं, इस लिये वेदों का सन्मान करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। परन्तु इस

रौशनी और तहक़ीक़ात के ज़माने में आज सतसंगी प्रत्येक विषय के आन्तरिक तत्व तक पहुंचने की चेष्टा करता है अतः वेदादि की असल शिक्षा जानने के लिये हम अंग्रेज़ी और हिन्दी तर्जुमे लेते हैं और गहरा गोता लगाने पर हमें दो बातें विदित होती हैं (१) उनके उपदेश राधा स्वामी दयाल के उपदेश से बहुत कुछ अनुकूलता रखते हैं और (२ देश और काल की अवस्थाओं के प्रभाव तथा अल्प बुद्धि मित्रों और कालेमन युक्त शत्रुओं ने मिलावटें करदी हैं, इन कारणों से सतसंगी का वेद मुक़द्दस की हर बात पर विश्वास करना असंभव है। धारा १०, पृष्ठ १२, भाग३

(आर्य्य) हम आपको धन्यवाद देते हैं कि आप अपने वैदिक धर्मी चेलों के मानसिक भावों का सत्कार करते हैं वा पूर्वजों और देश वासियों का आदर, परन्तु सतसंगी और विषय के आन्तरिक तत्त्व तक पहुंचने की चेष्टा यह दो बातें मेल नहीं खातीं। यदि यह विचार इस योग्य रहते तो आपको यथार्थ प्रकाश लिखने का साहस ही न होता न इसकी आवश्यकता रहती। पहिले वह तहक़ीक़ात करते राधास्वामी दयाल की और यह निश्चय करके कि यह तो निरा पोलपाल है अपने असली धर्म में सन्तुष्ट रहते और चचलता से आपके या किसी और के बहकाने में न आते। रही बात आपकी वेद सम्बन्धी तहक़ीक़ात की, यह भी केवल हँसी की बात है। आप उद्देश्य तो ज़ाहिर करते हैं वेद की असल शिक्षा की जाँच, पर गहरा गोता लगाते हैं अंग्रेजी और हिन्दी टीकाओं में, यही बात आपकी तहक़ीक़ात के निःसार होने का प्रबल प्रमाण है। वेद को आप समझ नहीं सकते, संस्कृत का आपको अभ्यास नहीं, भाष्यों को आप ठीक नहीं मानते, महीधर और सायण के अर्थ दूषित होने के आप प्रमाण देते हैं, स्वामी दयानन्द के भाष्य का आपके विचारानुसार आशय ही समझा नहीं जा सकता, तब

तहक़ीक़ात का साहस कैसा और उसका आधार क्या ? तथा इस अनोखी तहक़ीक़ात के दो नतीजे भी विचित्र हैं। प्रथम यह कि वैदिक उपदेश राधास्वामी दयाल के उपदेश से प्रत्यक्ष अनुकूलता रखता है। पर यह व्यवस्था तो आप सब मतों के विषय में देते हैं और चूँकि सारे मतों का आदि स्रोत एक है इसलिये मिलावटों को छोड़ कर सचाई सब में वही होनी चाहिये और राधास्वामी मत में कुछ सच्ची बातें हों तो यह साधारण सी बात है। दूसरी बात भी सर्वथा अयुक्त है। दूषित भाष्यों को पढ़कर वेद की किसी बात पर विश्वास होने को असंभव समझ बैठना बुद्धिमत्ता नहीं है। असंभव तो कहाँ किसी सच्चे भाष्य की प्रतीक्षा करते हुये आप वेद पर कोई शंका करने के भी अधिकारी नहीं, हाँ अपनी अन्तिम राय को Reserve रख सकते हैं। परन्तु यथार्थ अनुवाद किसी मनुष्य कृत पुस्तक का भी किसी मनुष्य भाषा में होना असंभव है न किसी लेखक वा अनुवादक का ज्ञान पूर्ण रूप से एक हो सकता है न कोई सी दो भाषाओं में अर्थ और सम्बन्ध की दृष्टि से पूर्ण तुल्यता हो सकती है। इसके अतिरिक्त वेद के प्रकाशक परमेश्वर और वेद के टीका वा भाष्यकार किसी मनुष्य में ज्ञान की दृष्टि से समुद्र और बून्द वाला अन्तर आप स्वयं मानते हैं और भाषा विज्ञान की दृष्टि से मनुष्यकृत भाषायें वैदिक शब्दों के विस्तृत अर्थ और सम्बन्ध को ज़ाहिर करने में सर्वथा असमर्थ हैं। अतः न तो किसी पहिले भाष्य के आधार पर वेद पर दोष आता है न किसी भावी भाष्य के आधार पर ऐसा होना युक्त हो सकता है और न अपनी वर्तमान अवस्था मे आप अच्छे बुरे भाष्य की तमीज़ कर सकते हैं ! इसका प्रमाण यह है कि आपने स्वयं अनेक स्थानों पर अपने आप तथा अन्य सतसंगियों को इस बात के लिये असमर्थ एवं अयोग्य लिखा है कि किसी मन्त्र के अर्थ के विषय में निश्चित

व्यवस्था दे सकें कि वह सत्य है वा असत्य। आप यह भी मान चुके हैं कि वेद का यथार्थ अर्थ योगी पुरुषों पर समाधि में प्रत्यक्ष होता है और वही अवस्था हैं जब हृदयकी गाँठ खुलती और संशय निवृत्त होते हैं अतः जान बूझ कर भाष्यादि के आधार पर वेद विषय में भ्रांति फैलाना सत्य प्रिय पुरुष का काम नहीं हो सकता। रही बात मिलावट की, सो न तो आप अपनी इस अवस्थामें इस पर सम्मति स्थिर करने के अधिकारी हैं न स्पष्ट प्रतिज्ञा करने पर भी युक्ति प्रमाण से उसे सिद्ध करने में असफल होकर आप यह व्यवस्था दे सकते हैं। मूल को आप समझते नहीं; भाष्य आपके विचारानुसार अभी कोई अच्छा हुआ नहीं तो मिलावट आपने कैसे मानी ?

धारा ११ भाग तीन में लिखा है कि "किसी सन्तको वेद निन्दक करार देना उचित नहीं। सन्तों की सम्मति वेद के विरुद्ध हुई तो इसका उत्तरदायित्व या तो सायण, महीधर के दूषित भाष्यों पर, स्वामी दयानन्द कृत भाष्य के सरल न होने पर या यथार्थ अर्थ के अभी तक विचाराधीन होने पर अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों और पुराणोंकी कथाओं पर है" परन्तु जो मूर्ख सन्त वा अन्य पुरुष स्वयं वेद को समझने में असमर्थ तथा सत्यासत्य अर्थ का निर्णय करने के अयोग्य हो उसका वेद के विरुद्ध कहना केवल व्यर्थ का प्रलाप मात्र है। दूषित भाष्य उसे वाधित नहीं करते कि हमारे आधार पर वेद की निन्दा करते फिरो। न Ignorance is no excuse के कथनानुसार अज्ञान के उज्र से कोई दुख से छूट सकता है। अतः साहब जी महाराज एक तो अज्ञानियों का साहस बढ़ाने के दोषी हैं और दूसरे स्वयं भी उन्हीं का सा व्यवहार करके वेद निन्दक भी कहला सकते हैं। धारा सं० १२ में लिखा है कि वेद के विरुद्ध अधिक से अधिक सन्त यह कहते हैं कि वेद में तीन

गुणों तक का ही वर्णन है अतः सच्ची भक्ति के लिये उसका भरोसा कैसा ? परन्तु वेद सम्बन्धी अपनी अज्ञता, सच्चे वेद भाष्य का अभाव, तथा वेद में सच्चा आत्म ज्ञान होने को अनेक स्थानों पर स्वीकार करने के साथ ही मूर्ख, अनपढ़ अथवा पेटार्थी सन्त का यह कहना आप सत्य कैसे मान सकते हैं कि वेद में तीन गुणों तक का ही विषय है। सब ऋषि मुनि जो वेद को अनन्त ज्ञान का प्रतिनिधि मानते हैं उन्हें छोड़ कर ज्ञान हीन सन्तों पर विश्वास करने के अन्दर आपका जो स्वार्थ एवं कुटिलता पूर्ण यह भाव काम कर रहा है वह किसी विचारशील से छिपा नहीं. कि आप स्वयं गुरू बने हुए वेदादि की निन्दा करके अंध विश्वासी मनुष्यों को अपनी शरण में लाना चाहते हैं। श्रीमान् जी वेद को न जानने से आपका तीन गुणों के ही ज्ञान से शून्य होना सिद्ध है तब उनसे परे का हाल बताने का आडम्बर कैसा ? धारा १८ भाग ३ में कहा है कि सतसंगी वेदों को न मानने में इसलिये सच्चाई पर हैं कि मनु २, १६ में वेद के मिथ्या अर्थ लगाने वाले को नर्क गामी लिखा है। शाखाओं के पाठ तथा भाष्य में प्रत्यक्ष अन्तर है अतः जिम्मेवार लोगों से भूलें हुई, उन्होंने तो वेद को ईश्वरोक्त मान कर उन्हें समझने तथा समझाने का यत्न किया, पर फल यह मिला कि पाठ भेद तथा अर्थ न समझने से सब के सब नर्क में गये।

(आर्य्य) पहले तो मनु स्मृति के श्लोक के अर्थ में भेद है, फिर मिथ्या अर्थ लगाने वाले नर्क गामी हैं, इससे किसी दूसरे से भिन्न प्रकार के अर्थ लगाने वाले को तो नर्क गामी नहीं लिखा, शाखा वेद नहीं अतः तत्सम्बन्धी पाठ भेद जो मनुष्यकृत है वेद पर असर नहीं डाल सकता। वेद में अनन्त ज्ञान है प्रकरणानुसार उस के मन्त्र के अर्थ हो सकते हैं अतः अर्थ का भेद कोई दोष नहीं हां मिथ्या अर्थ का नाम अज्ञान है जो निर्विवाद रूप से दुःख वा नर्क

का कारण है। राधास्वामी गुरू तथा उनके अनेक चेले मजहब परमार्थ या ज्ञान के निश्चित सत्य सिद्धान्तों के विरुद्ध झूठी शिक्षा फैला रहे हैं। वैदिक शब्द न बोलने की त्रुटि के अतिरिक्त वह मिथ्या अर्थ वाले दोष के भागी हैं। वेद से परे होने में भलाई तो कहां यथार्थ ज्ञान के अधिक से अधिक परे जाते हुए वह अपने तथा दूसरे साथियों के लिए घोर नर्क की स्थापना कर रहे हैं। शाखा भाग में पाठ भेद होना योग्यता का प्रमाण है कि मूल वेद के शब्दों के अर्थ को समझकर कहीं २ एक शब्द का दूसरा पर्याय-वाची शब्द रखा गया। और अर्थ भेद से भी योग्यता सिद्ध होती है कि भेड़िया धसान से काम न लेकर स्वतन्त्र विचार किया तथा प्रकरण की दृष्टि से साहस पूर्वक भिन्न अर्थ लगाये गये। अतः शाखा के पाठ व अर्थ भेद का संकेत करके ऋषि मुनियों के नर्काधिकारी होने के विचार से आप सत्संगयों को स्वयं घोर नर्क का मार्ग दिखा रहे हैं।

भाग ३ धारा ३१ में आप तीन प्रकार के वेद पर अपनी श्रद्धा का प्रकाश करते हैं। पुस्तक रूप, अक्षर रूप तथा ज्ञान रूप। साथ ही फ़रमाते हैं कि बिना तीसरे प्रकार का मान करने के प्रथम २ प्रकार का मान करना व्यर्थ है पर तीसरे प्रकार की क़दर तभी हो सकती है जब वैदिक शब्दों के आन्तरिक अर्थ मालूम हो सकें।

(आर्य्य) आर्य्य समाज जैसा अनेक स्थानों पर वर्णन हुआ, शब्द मात्र को अपरा विद्या में मानता है और शब्द अर्थ और सम्बन्ध को ज्ञान वा परा विद्या। ऊपर के कथन से आपका इसी सिद्धान्त पर विश्वास सिद्ध होता है पर पेच आप यह डालते हैं कि इनकी कदर तब होगी जब आन्तरिक अर्थ की तहक़ीक होगी। हम कहते हैं कदर और मान पहिले होगा तभी मनुष्य उनके अर्थ

के लिये योगाभ्यास करेगा। मानने या न मानने और कदर करने या न करने पर अर्थ का आधार नहीं वह तो वैदिक शब्द के साथ नित्य सम्बन्ध रखता है, मनुष्य को तो केवल उसका दर्शन करना है। ईश्वर और वेद के सच्चे भक्त ऋषियों ने तप किया, उनके आत्म नेत्र खुले और उन्होंने दर्शन किया। दुर्भाग्यवश जिन लोगों ने आप पर विश्वास कर रक्खा है उन्हें आप भ्रान्ति फैला कर वेदार्थ का दर्शन करने से रोकने के लिये हाथ पैर मार रहे हैं यह पट्टी पढ़ा कर कि अर्थ विदित हों तब वेद को मानना। पर (१) आप स्वयं मानते हैं कि अर्थ का साक्षात् योगियों को समाधि अवस्था में होता है। (२) वर्तमान भाषाओं में अपनी २ बुद्धि के अनुसार जो भाष्यादि द्वारा अर्थ का प्रकाश किया जा सकता है उसकी दृष्टि से भी आप अनेक उदाहरण देकर वेद को सब मनुष्यों के मानने के योग्य ऋषियों का सीधा मार्ग लिख चुके हैं और (३) अर्थ यहां अनुवाद वा भाषान्तर के पर्याय शब्द का नाम नहीं, उस यथार्थ तत्त्वज्ञान का नाम है जिसकी ओर शब्द संकेत करता है और जिसे कान सुन वा नेत्र देख नहीं सकते अर्थात जो आत्मा का ही विषय है। अतः कृपानिधान; इन बेचारों को गुरूडम का विष पिलाकर अपने स्वार्थ के लिये बलिदान करने से बाज़ आइये। इनको हत्या करने के स्थान में उन्हें श्रद्धा पूर्वक वेद-उपदेश सुनने तथा वेदार्थ का दर्शन करने में प्रवृत्त तथा यत्नशील होने दीजिये।

स्वामी जी ने लिखा कि सर्व प्रथम जिस ऋषि ने जिस मंत्र का अर्थ देखा और प्रकाशित भी किया उसका नाम स्मृति के रूप में उस मंत्र के साथ लिखा गया, अर्थात वह मन्त्र कर्ता नहीं, उसके अर्थ का दर्शक तथा प्रकाशक है। इस पर २२ धारा में आप लिखते हैं कि प्रचलित शैली के अनुसार सर्वत्र लेखक का

नाम पुस्तक के साथ आता है अनुवादक का नहीं, हम पूछते हैं यदि ऋषियों ने यह मंत्र रचे तो वह ईश्वरीय ज्ञान कौनसा है जिसे पाकर ऋषियों में ऐसे मंत्र रचने की योग्यता प्राप्त हुई ? दूसरे ऐसा मानने पर आवश्यक होगा कि वेद मंत्र भिन्न २ कालों में और भिन्न २ लोगों से रचे गये हों और वेद का वर्तमान प्रकार का संग्रह पीछे किसी काल में हुआ हो अर्थात जैसा चौथे गुरू के समय में अनेक भक्तों की वाणी को मिलाकर ग्रन्थ साहब का बीड़ बांधा गया अथवा जैसे किसी समय में Old Testament को ३९ और New Testament को ४ पुस्तक तथा पत्रादि बाइबल के रूप में संग्रहीत हुये वैसे ही वेद भी एकत्रित किये गये होंगे। पर इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं। तीसरे ऋषियों के नाम के साथ उनके स्थानादि का भी पता दिया जाता चौथे मंत्रों में भाषा भेद भी होता, पांचवें उनमें यौगिक शब्दों का भी गुण न होता क्योंकि अल्पज्ञ मनुष्य के शब्दों में अनन्त ज्ञान नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य सब एक स्वर होकर व्यवस्था देता है और निरुक्त स्पष्ट कहता है कि ऋषि मंत्र द्रष्टा को कहते हैं अतः सिद्धान्त युक्ति, प्रमाण, इतिहास सर्व प्रकार से स्वामी जी का कथन सत्य तथा आप का आक्षेप निर्मूल है।

साहब जी महाराज का यह कथन भी निराधार है कि स्वामी जी के मतानुसार उन ऋषियों को भी पूर्ण ज्ञान न मिला था इस लिए कि ईश्वर ने प्रत्येक को गिन्ती के ही मन्त्रों के अर्थ बताये। स्वामी जी जहां शब्द, अर्थ और सम्बन्ध के रूप में परमात्मा से पूर्ण ज्ञान के प्रकाश होने को स्वीकार करते हैं वहां उन्होंने यह कहीं नहीं लिखा न यह किसी भी प्रकार से युक्त हो सकता है कि प्रत्येक ऋषि को वही का वही पूर्ण ज्ञान मिले। साधारण अनुभव

की बात है कि सरकार योग्य व्यक्तियों द्वारा पहले क़ानून को यथा-संभव सर्वांगपूर्ण बनवाती अथवा उस की पूर्ति में यत्नशील रहती है। और पीछे जज वकील और साधारण लोग आवश्यकता वा अवस्था तथा अपनी योग्यता के अनुसार काम में लाते हैं। ताज़ी-रातेहिन्द सरकार ने बनवाई पर बड़े से बड़े क़ानून जानने वाला वकील भी अपनी सारी आयु में केवल कुछेक ही धाराओं पर विस्तृत विचार करने तथा उनके यथार्थ भाव को समझने का अवसर पा सकता है इसका यह भाव नहीं कि शेष सब धाराओं का उसे ज्ञान नहीं। इसी प्रकार वेद ज्ञान तो पूर्ण रूप से आदिम आर्य्यों पर प्रकाशित हुआ पर वह तथा उनके पीछे होने वाले ऋषि अवस्था, आवश्यकता तथा योग्यता विशेष के अनुसार समाधि में उनका विचार तथा अर्थ का साक्षात् करते रहे। जिस धारा के अधीन किसी वकील के पास कभी मुक़द्दमा आया ही नहीं उसे उसपर विशेष रूप से विचार करने तथा उसके आन्त-रिक तत्वों को जज साहब के सामने रखने का अवसर ही कैसे मिल सकता है। अतः ईश्वर कुछ मन्त्रोंके ही अर्थ नहीं देता। सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक भगवान् की ओर से वेद ज्ञान सर्वदा सबके लिये है पर आत्मारूपी नेत्र ज्ञानरूपी सूर्य्य की किरणों को अपनी शक्ति भर ही ग्रहण कर सकती है।

साहब जी महाराज कहते हैं कि बहुत से मन्त्रों के यथार्थ अर्थ का साक्षात् करने मे उन मन्त्रों के साथ स्वामीजी का नाम लिखाजाना चाहिये। पुराने ऋषियों वाले अर्थ ही गुम हैं तो उनके नामों की स्मृति का क्या फल ? परन्तु पहले तो वेद के अर्थ न कभी गुम हुए न हो सकते हैं वह सदा वहीं के वहीं हैं भेद केवल आत्मा की योग्यता में है। दूसरे ऋषिकृत अर्थ भी गुम नहीं कहे जा सकते हैं वह ब्राह्मण ग्रन्थों आदि में मौजूद हैं और उनके

आधार पर स्वामी दयानन्द भाष्य कर रहे हैं। स्वामी दयानन्द समाधि में मन्त्रार्थ का दर्शन करने वाले ऋषि हैं । परन्तु उनकी इस योग्यता के अन्दर वह संकेत वा संस्कार है जो प्राचीन ऋषियों के पुरुषार्थ का फल हैं। स्वामी जी को तो समाधि से वह अर्थ सच्चे मालूम हुए इसलिए उन्होंने उनके विषय में साक्षी दे दी। और यह घोषणा की कि ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त ऋषियों के सिद्धान्तों को मैं सत्य मानता हूँ। यही भाव कुरान की कई आयतों में है। सूरा सिजदा आयत २ में है—"निश्चय दयालु और न्याय-कारी परमेश्वर से ज्ञान की पुस्तक का प्रकाश हुआ उसकी कुछ आयतों की व्याख्या हम अरबी कुरान के रूप में विद्वानों के पेश करते हैं। इस प्रकार की आयतें बहुत सी हैं और इसके साथ ही हर कहीं यह जिक्र है कि यह कुरान उस सबकी तसदीक़ करता है जो पहले नबियों (ऋषियों) पर नाज़िल हुआ। अतः पहले ऋषियों का नाम उड़ाने का प्रस्ताव तो निराधार है। हां स्वामी दयानन्द का नाम लिखने वाली बात पहिले ही पूरी हो रही है। वेद भाष्य के टाइटल पर तथा वेद भाष्य के अन्दर उपयोगी स्थानों पर स्वामी जी का नाम बराबर छप रहा है।

साहब जी महाराज फ़रमाते हैं—दुजुनतोष न्याय से यदि स्वामी जी का फ़रमाना दुरुस्त भी है तो मानना होगा कि वेद मन्त्रों के केवल वही अर्थ सत्य है जो परमात्मा ने आदि सृष्टि में विशेष ऋषियों पर प्रगट किए और चूँकि उन ऋषियों की कोई पुस्तक दुनिया में मौजूद नहीं है इसलिए जबतक यह सिद्ध न हो जाये कि अमुक अर्थ उन ऋषियों के किसी जान-कार वा शिष्य से प्राप्त हुए हैं वह केवल घड़न्त मात्र होंगे।

(आर्य्य) मानना क्या होगा आदि में ज्ञान ईश्वर से मिलने के लिए आवश्यक है कि वेद मन्त्रों के साथ उनका यथार्थ अर्थ

भी मिले। रही उन ऋषियों की कोई रचना, इसका उत्तर यह है कि वर्तमान प्रकार की काग़ज़ादि वाली रचना का नियम तो उस समय के ऋषियों पर लागू हो नहीं सकता क्योंकि ऐसे पुस्तक मनुष्य के मस्तिष्क वा स्मरण शक्ति के दोष का परिणाम हैं जो आदि ऋषियों में थे ही नहीं। कान से सुनना और वानी से कहना ही उस समय हो सकता था और वही कुछ हुआ है वेद का नाम ही श्रुति है। रहा इस समय उनकी किसी पुस्तक का मौजूद होना इसका उत्तर आपको भली प्रकार विदित है। धारा ३१ में आपने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के यह शब्द उद्धृत किये हैं—

"क़दीम आचार्य्यों की की हुई तफ़सीर को ज़ाहिर किया जाता है जो क़दीम आर्य्यों अर्थात् ब्रह्मा से लेकर याज्ञ वल्क्य, वात्स्यायन और जैमिनि तक ऋषियों ने एतरेय और शतपथ वग़ैरह तफ़सीरें लिखी हैं नीज़ पाणिनी, पातंजलि और यासक वग़ैरह ऋषि लोग जो वेदों के मज़ामीन की तशरीह वेदांग के नाम से कर चुके हैं, नोज़ जैमिनी वग़ैरह ऋषियों ने जो वेदों के उपांग वा छः शास्त्र लिखे हैं और जो उपवेद और वेदों की शाखायें बनाई जा चुकी हैं उन्हीं से इन्तख़ाब करके सच्चे अर्थों को ज़ाहिर किया जाता है कोई नई बात अज़ ख़ुद अपनी तरफ़ से नहीं लिखी जाती।"

इससे पाया जाता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ, वेदांग, उपांगादि सब इन ऋषियों और उनके शिष्यों की रचना हैं और जहां उनके आधार पर प्रत्येक काल में योग्य पुरुष उत्तम भाष्य तैयार कर सकते हैं वहां वेद के शब्दों का नित्य अर्थ से सम्बन्ध है और सच्चे योगी हर समय उसके ज्यों के त्यों दर्शन कर सकते हैं अतः वेद न शब्द की दृष्टि से लुप्त हो सकता है न अर्थ की दृष्टि से। वेद का दावा ही यह है कि वह न मरता है न पुराना होता है।

"पश्य देव काव्यं न जीर्यति न ममार" स्वामीजी ने उन ऋषियों और उनके शिष्यों के आधार पर भाष्य किया। योगी होने से वेद मंत्रों के ऋषिकृत भाष्यों को तसदीक़ और केवल संस्कृत जानने वाले पण्डितों के ऋषि शैली के विरुद्ध किये गये भाष्यों का निषेध किया. अतः आप के ही कथन से स्वामी जी वाले अर्थ किसी भी प्रकार से उनके मन घड़न्त सिद्ध नहीं हो सकते।

ऊपर के एतराज़ के अनुसार प्राचीन ग्रन्थों के अनुकूल होना ही भाष्य के गौरव का कारण हो सकता है पर यह शर्त पूरी हुई तो आप फ़रमाते हैं—इस से ज़ाहिर है कि स्वामी दयानन्द ने अपने भाष्य में कोई नई या खास मुस्तनद बात नहीं लिखी क्योंकि परमात्मा से उन्हें कोई विशेष प्रेरणा नहीं हुइ। हम कहते हैं परमात्मा की ख़ास प्रेरणा आपके विचारानुसार कैसी होनी चाहिये। क्या सत्यासत्य दोनों प्रकार के अर्थ को भली भांति समझना असत्य से हट कर सत्य अर्थ की ओर जाना और साहसपूर्वक सत्यार्थ का प्रकाश करना जिस प्रेरणा से हुआ वह परमात्मा से भिन्न किसी और की थी। आप कहते हैं कि ऐतरेय शतपथादि ग्रन्थ तो महाभारत के अथवा उसके पीछे के समय में रचे गये हैं; पर यदि यह सत्य भी हो तो क्या किसी ग्रन्थ के पीछे रचाजाने मात्र से उसका विषय कदीम नहीं माना जा सकता। स्वामी दयानन्द का भाष्य आज छपता है और आप पांच हज़ार से अधिक वर्षों की पहिली पुस्तकों के आधार के कारण उनके अर्थों को नवीन नहीं कह सकते तो विवादास्पद विषय से काल का क्या सम्बन्ध? परन्तु यहां तो काल का बहाना करके आप ने यह जताना चाहा था कि आदि काल वाले अर्थों से स्वामी जी को सहायता नहीं मिली आगे लिख दिया कि ब्राह्मण-ग्रन्थों में यदि हूबहू आदि काल वाले अर्थ हों और स्वामी जी ने उनका पूरा

अनुकरण किया हो तो अलबत्ता उनका भाष्य मुलहम क़रार पा सकता है।" इससे स्पष्ट है कि पहिले तो आप की कोई स्थिर सम्मति है ही नहीं केवल ख़याली घोड़ दौड़ से काम ले रहे हैं। दूसरे आपको यह भी पता नहीं कि कोई भी ऋषि कृत भाष्य आर्य लोगों से इलहामी भाष्य नहीं माना जाता। आप एक ओर तो एक भाष्य को असत्य समझते हैं और दूसरी ओर उसे इलहामी कहते हैं जब कि इलहाम वाले अर्थ केवल आत्मा पर ही प्रत्यक्ष होते हैं। ऋषियों द्वारा प्रकाशित भाष्य उनके अनुकूल तो हो सकते हैं स्वयं ईश्वरोक्त नहीं हो सकते। अब और देखिये। साहब जी महाराज कहते हैं कि—

चूंकि स्वामी जी ब्राह्मण ग्रन्थों को मनुष्य कृत मानते हैं इस लिये वह उनको ईश्वरोक्त तथा वेदों के बराबर नहीं मानते। यह बयान आप स्वामी जी के भाष्य पर दोषारोपण करने के लिये लिखते हैं परन्तु इससे आपकी एक और भूल पाई जाती है कि आपने स्वामी जी के सब से मुख्य और सब से अधिक प्रसिद्ध मन्तव्य को ही नहीं समझा। वेद स्वतः प्रमाण है उससे भिन्न सब ऋषिकृत ग्रन्थ वेदानुकूल होने से प्रमाण माने जा सकते हैं। अतः क्या ब्राह्मण ग्रन्थ, वेदांग, उपांग और क्या स्वामी जी कृत ग्रन्थ सबके विषय में वेद की बराबरी का मुतालबा हो ही नहीं सकता अनुकूलता की शर्त हो सकती है। पं० भगवद्दत जी कृत

History of vedic litereture के प्रमाण दिये हैं कि उनमें ११३१ शाखाओं के पृथक् पृथक् ब्राह्मण थे उन में से अनेकों के नष्ट तथा पाठ भ्रष्ट होने का, कुछेक मे मिलावट होने का तथा संशोधन का यत्न न होने का वर्णन है। यह भी बयान है कि यास-काचार्य्य के निरुक्त के अलावा कई और निरुक्त तथा निघंटु भी थें और यासक के समय में वेद में याज्ञक, ऐतिहासिक ब्रह्मवादी तथा

नास्तिकमत भी था ।

(आर्य्य) इस प्रकार के सारे लेख सर्वथा व्यर्थ तथा निष्प्रयोजन हैं। एक ही विषय पर आज सैंकड़ों पुस्तक लिखी जाती हैं। एक ही पुस्तक के अनेक अनुवादक हो सकते हैं। कुरान वा बाइबल के अनेक टीका वा भाष्य भिन्न २ देशों में व भाषाओं में हैं इससे असली विषय या कुरानादि के सम्बन्ध में कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता और ऐसे ही वेद सारे ऋषि कृत भाष्यों और ग्रन्थों से ऊपर स्वतन्त्र स्थिति रखता और स्वतः प्रमाण कहाता है।

चौथा अध्याय

महर्षि दयानन्द पर एतराज़ों की बौछार

सर्ग १—देवता

१—(पृष्ठ ४३। धा० ६०। भाग १)

"स्वामी जी देवताओं के अस्तित्व को न मानते थे।"

(आर्य्य) यह शब्द स्वामी जी और आर्य्य समाज के संबंध में अनेक स्थानों पर लिखे गये हैं। परन्तु शोक है कि किसी एक स्थान पर भी इन शब्दों से कोई युक्ति युक्त आक्षेप अथवा भाव सिद्ध नहीं होता। यदि इसके उत्तर में हम प्रमाण देने लगें तो संभव है शतशः पृष्ठ भी इसके लिये पर्याप्त न हों और यह भी संभावना है कि ऐसा करने से हम पर भी यह दोष लगाया जाये कि यदि वादी ने कोई फ़ाश ग़लती की तो प्रतिवादी को तो समय नष्ट करने से बचना चाहिए था। इसलिये हम केवल इस संकेत को ही काफी समझते हैं कि यह आक्षेप उस स्वामी दयानन्द पर किया गया है जो अपनी पुस्तकों में सहस्रों बार देव, देवता, महादेवादि शब्दों का प्रयोग करता है। जो मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव, का प्रमाण देकर माता, पिता, आचार्य और अतिथि को देवता मानता है। जो वेद के प्रमाण से अग्नि,

वायु, चन्द्र, सूर्य्यादि को देवता बताता है। जो ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, और इन्द्र और प्रजापति के ३३ कोटि के देव और परमात्मा को महादेव कहता है। परन्तु आखिर कोई कारण ? केवल यह कि पुनरावृत्ति विषय में ऋग्वेद मंडल १ सू० २४, मं० १ के शब्द देवस्य और अमृतानां के अर्थ स्वामी जी "नाश रहित पदार्थों में वर्तमान देव" करते हैं। प्रथम तो देव शब्द अनुवाद में आया हुआ है और मूल में भी मौजूद है अतः आक्षेप निर्मूल है और दूसरे नाश रहित पदार्थ का आशय भी अमृत देवता ही है। वह अमृत अथवा नाश रहित पदार्थ ईश्वर, जीव वा प्रकृति हैं। पदार्थ न कहें तो इन्हें तीन देव कह सकते हैं। स्वामी जी ने तो देव शब्द का सम्बन्ध अत्यन्त विस्तृत अर्थ से किया है। कोई विषय यहां तक कि कोई भी शब्द वा वाक्य जिससे दिव्य गुण का सम्बन्ध हो देव कहाता है। वेद मंत्रों में जिस विषय का वर्णन है उसे भी मंत्र का देवता कहते हैं। इस विषय में एक और बहकी बात लिखी गई है कि जब सारे लोक नश्वर हैं तो नाश रहित पदार्थ कहाँ रहेंगे। हम नहीं समझते जब अनेक स्थानों पर साहब जी महाराज स्वयं लिख चुके हैं कि महा प्रलय में भी सारे पदार्थ कारण रूप में, अपने २ लोक के पुरुषों में लीन होंगे और वह पुरुष कुल मालक में और आर्य्य समाज भी मानता है कि यह जगत् नाशवान कार्य अवस्था में ब्रह्म में है और नाश रहित अमृत या कारण अवस्था में भी उसी में लीन होता है। तब सर्वथा बौदलिया कर निरर्थक प्रश्न करने के बिना इसका क्या अर्थ हो सकता है।

सर्ग २— न मुक्ति का अनुभव न उसकी इच्छा

२—स्वामी दयानन्द ने मुक्ति से पुनरावृत्ति की नवीन बात इसलिये निकाली है कि न उनको मुक्त अवस्था का अनुभव था न

मुक्ति की अधिक इच्छा थी। वह सच्चे देश भक्त थे, जगत को नित्य मानते थे। सांसारिक अधिकार, ऐश्वर्यादि को महत्व देते थे और तजरुबे के आधार पर समझते थे कि मुक्ति का प्रेम भारत वासियों को संसार युद्ध में नाकाम कर रहा है। यदि उन्हें मुक्ति की इच्छा होती तो जिज्ञासु रूप में दूसरे मजहबी पेशवाओं से इसकी तहक़ीक़ात करते।"......यहां नहीं आप एक उच्चकोटी के लेखक के अन्दाज में निम्न लिखित भाव प्रगट करते हैं। "भारत वर्ष की दुर्दशा देख कर और उसके लिये मिथ्या मजहबी शिक्षा को जिम्मेदार गरदान कर उन्होंने प्रचलित साम्प्रदायिक विचारों पर दाएँ बाएँ और आगे पीछे से कुल्हाड़ी चलाना शुरू कर दिया और इस गर्म जोशी में एक सख्त चोट मुक्ति के सिद्धान्त को भी आ गई।"

(आर्य्य) हम वेद उपनिषद् और स्वयं साहब जी के शब्दों तथा अकाट्य युक्तियों से मुक्ति की अनित्यता को एक अटल सिद्धांत सिद्ध कर चुके हैं। अतः पुनरावृत्ति को नई बात कहना सर्वथा असत्य है। यदि उनमें मुक्ति की इच्छा वा अनुभव का अभाव होता तो आप का घरबार का त्याग, अमर जीवन के नुसखे की तलाश में सरगरदानी, सर्वस्व त्याग और ब्रह्मचर्य व्रत का धारण, प्रकृति पूजा का खंडन, ब्रह्मचर्य तथा जितेन्द्रियता का मंडन योगाभ्यास की शिक्षा तथा अष्टांग योग पर आचरण करने का अपूर्व प्रयत्न, इत्यादि २ किसी भी विषय का आपके जीवन से सम्बन्ध न होता। वह देश भक्त थे, उससे बढ़कर संसार भक्त और उससे बढ़कर ईश्वर और वेद भक्त थे। और जिस अर्थ में उनकी देश भक्ति ली जा सकती है वह मुक्ति का ही एक बाह्य एवं स्थूल चिन्ह है। जीवात्मा के दुःख से छूटने का नाम मुक्ति है तो देश वासियों का मनुष्यकृत मतों की दासता से छूटना भी मुक्ति है।

वर्तमान पोलिटीकल आंन्दोलन के साथ आप उनकी देश भक्ति को मिला दें तो हमारा इसमें अत्यन्त विरोध है। परन्तु इसका साधारण उद्देश्य भी देश के लिये एक प्रकार की मुक्ति ही है। अतः मुक्ति की इच्छा अथवा इसका अनुभव महर्षि दयानन्द से किसी प्रकार अलग नहीं हो सकता। कोई चांद पर थूके अथवा पक्षपात से काम ले यह जुदाबात है। यथार्थ रूप से ऐसा होना असंभव है। ईश्वर करे साहब जी महाराज यथार्थ ज्ञान तथा आत्मता की उच्च शिखर पर पहुंचें परन्तु वर्तमान अवस्था में राधास्वामी मत की गद्दी, इसके फण्ड, इसके इस्टीटयूशन, दयाल बाग़ की फ़ैक्टरियां और कारखाने, रात दिन इनको भिन्न भिन्न प्रकार के आन्दोलन में गलंतान कर रहे हैं और वह दयानन्द जैसे योगी और सच्चे त्यागी विद्वान के सम्बन्ध में यथार्थ सम्मति प्रकाशित करने की अवस्था में नहीं हैं। साहब जी महाराज वेद शास्त्र के मर्म से भिज्ञ नहीं हो सकते। वह न प्रचलित संस्कृतके विद्वान हैं न वैदिक संस्कृत के और न योग शास्त्र प्रतिपादित योग के आठ अङ्गों के अभ्यासी यहाँ तक कि वह पं० राजारामजी, पं० नरदेवजी शास्त्रीके साधारण विषयों में भी मुंह को ताकने पर बाधित हैं और संस्थादि के जाल में बुरी तरहफँस रहे हैं अतःवह स्वयं मुक्तिके अनुभवी वा इच्छुक नहीं माने जा सकते। वह श्री शिवदयाल सिंह जी को गुरू मानते और उनकी वह महिमा गाते हैं कि कोई क्या गाएगा। अन्त मता सो गता की प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार मनुष्य की आन्तरिक अवस्था तथा भावी गति का उन भावनाओं से ज्ञान होता है जो प्राणत्यागते समय उससे ज़ाहिर होती हैं। आपके परम गुरु श्री शिवदयालसिंह जी तो ऐसे समय में चेलियों के वियोग संबंधी शब्द सुनने सुनाने में लगे हैं और उन्हें तसल्ली देते हैं कि घबराओ नहीं, तुम्हें शीघ्र बुलायेंगे। दूसरी ओर स्वामी दयानन्द सा बाल

ब्रह्मचारी और योगी, सारे बन्धनों से विरक्त भाव धारण किए, मृत्यु का हृदय से स्वागत करता है तथा सारी ऐषणाओं से ऊपर उठकर "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।" का उच्चारण करता है, जिस से सिद्ध है कि जड़ जगत् का बन्धन उसके अन्तरात्मा से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। कहां मृत्यु के समय चेलियों की चिन्ता, जो केवल सांसारिक मोह के अन्तर्गत है, और कहां ईश्वर इच्छा पर न्यौछावर होना जो केवल मुक्ति का पेश खैमा है।

३—साहबजी फ़रमाते हैं—"यदि स्वामी दयानन्द को मुक्ति की इच्छा होती तो जिज्ञासा भाव से दूसरे मज़हबी पेशवाओं से इसकी तहक़ीकात करते" परन्तु प्रश्न यह है कि जो कष्ट स्वामीजी ने पहाड़ों और जंगलों के कठिन से कठिन मार्गों में घूम कर तथा बड़े से बड़े योगियों की सेवा में उपस्थित रहकर विद्याध्ययनादि के लिए उठाया उससे उनके जिज्ञासा भाव में क्या कोई संदेह रह जाता है। रही बात दूसरे मतों की, आप ही फरमाइये, कौनसा मत मुक्ति विषय में पूरा संतोष करा सकता था, क्या आपने उनमें से किसी की इस विषय में जांच की, यदि की तो अब बताते क्यों नहीं, और नहीं की तो स्वामीजी पर आक्षेप कैसा? फिर आपकी पुस्तकों में तो सारे मतों का खण्डन ही खण्डन है तो स्वामीजी को इस प्रकार की अनुमति देना उचित हो कैसे हो सकती है। सार वचन, बचन ३ शब्द १ में यह कड़ियां हैं:—

राम न जाना कृष्ण न जाना, तुमको मेरे प्यारे राधास्वामी। ७३
सीता रुक्मन और पटरानी, सुने न मेरे प्यारे राधास्वामी। ७४
ईसा मूसा मरियम मानी, चूके मेरे प्यारे राधा स्वामी। ७५
कुतब, पैग़म्बर गौस रबानी, मिले न मेरे प्यारे राधा स्वामी ७६
हिन्दु मुसलमान क्या जानी, सो मेरे प्यारे राधा स्वामी। ७८

सार बचन पृष्ठ १५६ में हैं:—

क्या दादू क्या नानक पंथी, क्या कबीर क्या पलटू संगी।
सब मिल कर 'तिरलोकी' टेका, वक्त गुरु का खोज न नेका।

इन कड़ियों में न केवल हिन्दू, मुसलमान, ईसाई मतों की निन्दा है, जिन्हें संत मत का प्रचारक कहा जाता है, यहां तक कि कबीर को भी पुराने धर्म का अनुयायी और राधा स्वामी वक्त गुरु से विमुख बनाया है।

४—यहां हम निवेदन करते हैं कि साहबजी महाराज पुनः अपनी स्थिति पर विचार करें। यह सत्य है कि आप को बनी बनाई गद्दी मिल गई है और आपने अपनी संस्थादि से इस गद्दी की कीर्ति बढ़ाई तथा अपने विचारानुसार सफलता पायी है। साहब जी महाराज और (His Holiness) हिज़ होलीनैस के लकब और खताब का गौरव भी आपको मिल रहा है। परन्तु फलदार शाखा झुक जाती है, इस लोकप्रसिद्ध वचन के अनुसार आप को अभिमान से बचने का पूरा ध्यान रखना चाहिए। संस्थाओं का चलाना और यथार्थ प्रकाश के द्वारा मजहबी वादविवाद के लिए साहस करना वास्तव में आर्य्य समाज के प्रभाव का ही परिणाम है। दूसरी ओर उदार आर्य्य जाति अपने अज़ीज़ों की सदा से नाज़ बरदारी करती आई है, और सब कुछ सुनने वा सहन करने की अभ्यासी हो चुकी है। तथापि आप जैसे विचारशील पुरुष को उन सिद्धान्तों और महानपुरुषों पर आक्रमण करने में पूरी सावधानता से काम लेना चाहिये जिन पर आर्य्य जाति उचित रूप से गर्व कर सकता है। लेखनी का तीक्ष्ण शस्त्र आपने हाथ में लिया और आपे से बाहर होकर अथवा उन्मत्त की सी अवस्था में न केवल जगत् भर के सर्व प्रकार के बन्धन काटने का उपाय करने वाले अपने ही मुहसिन दयानन्द पर हाथ साफ़ करना चाहा है, अपने आन्दोलन की गर्मजोशी में वैदिक धर्म के मुक्ति विषयक सत्य

एवं अटल सिद्धान्त पर भी भारी चोट लगाई है। और "उल्टा चोर कोतवाल को डाटे" के अनुसार यथाथ वक्ता दयानन्द पर अन्यायपूर्ण दोषारोपण किया है।

५—स्वामी दयानन्द पर किये गए आक्रमण के सम्बन्ध में आप खेद का प्रकाश भी किए जाते हैं और उसी आक्रमण को दोहराये भी जाते हैं। आप लिखते हैं:—

"इन शब्दों का लेखक दुख के साथ अनुभव करता है कि ऊपर की पंक्तियों में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ अप्रिय शब्द लिखे गये हैं।" इस खेद प्रकाश के साथ आप अपने लेख को प्रमाणित एवं युक्त कहते हुए अधिक बल के साथ उसी दोष को दोहराते हैं कि महाशय लक्ष्मण आर्य्योपदेशक द्वारा प्रकाशित जीवन चरित्र के पृष्ठ ९०५, ९०६ पर निम्नलिखित शब्द हैं:—

"आप ने कमल नैन जी से कहा कि शरीर का अब कुछ भरोसा नहीं। न जाने किस वक्त छूट जावे और मैं इस काम के लिये फिर दोबारा भी जन्म लूंगा और उस समय जो मेरे विरुद्ध हुये हैं वह भी सब शान्त हो जायेंगे आर्य्य समाजों की उन्नति से भी बड़ी सहायता मिलेगी मैं उस समय वेद का शेष भाष्य भी कर दूंगा।"

इन शब्दों से साहबजी महाराज परिणाम निकालते हैं कि स्वामी जीको मुक्ति की कदर न थी। परन्तु इन से यह स्वत: सिद्ध है कि स्वामी जो शरीर को असार समझते और सदाचार के उद्धार, वेद भाष्य की पूर्ति तथा विरोधियों को शान्त एवं संकलित करने के इच्छुक थे और यह बातें मनुष्य मात्र की मुक्ति की बुनियाद हैं अत: साहब जी महाराज का कथन प्रत्यक्ष रूपेण असत्य है। जो पुरुष अपने सजातियों के पतन का ज्ञान पाकर अपनी सारी शक्ति से उनके उत्थान पर कटिबद्ध हो जाता है दुखों से छूटने का अभि-

लाषी और इसी के लिये यत्नशील है ; निःसन्देह मुक्ति का महत्व वही पहिचानता है। वेद के भाष्य वेद के विचार और वेद के प्रचार की लगन का भाव बिना मुक्ति की क़दर वा इच्छा के पैदा ही नहीं हो सकता।

६—कृष्ण जी का प्रसिद्ध वचन है:—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं॥

इसका आशय यह लिया जाता है कि जब २ धर्म लुप्त प्राय हो जाता है तब २ मैं शरीर धारण करता हूं। स्वामी जी वेदविरुद्ध होने से इसे नहीं मानते तो भी इसकी युक्त व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि धर्मात्मा कृष्ण धर्म की रक्षा, श्रेष्ठ पुरुषों को सहायता और पापियों को निर्मूल करने की इच्छा रखते थे क्योंकि धर्मात्मा पुरुषों का तन मन धन "परोपकाराय सतां विभूतयः" के अनुसार दूसरों के उपकार के काम में ही आता है। हमारी सम्मति में यह पर्याप्त से भी अधिक प्रबल उत्तर साहब जी महाराज के आक्रमण का है स्वामी जी के यह शब्द ज़ाहिर करते हैं और जीवन चरित्र वाले शब्द भी कि उनमें धर्म रक्षा के लिये असाधारण जोश और जज़बा था और वह चाहते थे कि इस जन्म में रही सही कसर धर्म प्रचार की वह अगले जन्म में पूरी कर सकें। और चूंकि वैशेषिक दर्शन में धर्म का लक्षण यह दिया है कि वह अभ्युदय से आगे निःश्रेय अर्थात मुक्ति का हेतु है अतः विवादास्पद शब्द केवल मुक्ति की इच्छा और सन्मान के भाव की ही उपज है।

७—गीता अध्याय ८ श्लोक ९ का केवल निम्नलिखित अर्थ पेश किया है:—

"जिस २ भाव वा रूप को स्मरण करता हुआ जीव अन्त में शरीर को छोड़ता है सदा उसी की चाह से रंगा हुआ वह खास

उसी भाव या रूप में प्राप्त होता है।" हम "अन्त मतासोगता" के अल्प एवं प्रसिद्ध वाक्य में इस आशय को बन्द पाते हैं। साहब जी महाराज पुनः जन्म लेकर वेद का शेष भाष्य पूरा करने के शब्दों के आधार पर लिखते हैं कि इस से वह मुक्ति के अभिलाषी प्रतीत नहीं होते। परन्तु प्रथम तो दूसरे लोगों के कथनानुसार लिखे गये जीवन चरित्रों के हाल सिद्धान्त रूप से वादविवाद का विषय नहीं बन सकते। दूसरे यदि इन शब्दों को बहस में लाया ही जाय तो भी इन से मुक्ति की प्रबल इच्छा सिद्ध होती है अर्थात् न केवल अपने आपको वह सारी मानव जाती को मुक्ति का आनन्द मिलने की कामना करते हैं। तीसरे यह शब्द आपके शरीर त्याग से बहुत पहिले के हैं। और ठीक अन्त समय के वह शब्द जिन पर गीता का श्लोक यथार्थ रूप से लागू हो सकता है यह हैं कि "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" इससे सिद्ध है कि न आर्य्य समाज, न वेद भाष्य, व प्रचार, न मुक्ति किन्तु ईश्वर इच्छा का विस्तृत अर्थ और सम्बन्ध युक्त शब्द आपके मुख से उच्चारण होता है जिसमें उच्चतम भाव अन्तिम प्राकाष्ठा तक पाये जाते हैं और सिद्ध होता है कि ईश्वर ही आपका अन्तिम ध्येय और एक मात्र अभीष्ट है अतः आप की गति ईश्वर के साथ ही सम्बद्ध है और यही यथार्थ मुक्ति है।

८—साहब जी महाराज एक पग और आगे चलते और लिखते हैं:—

"यह दुरुस्त है कि रीफ़ार्मर देश भक्त और बड़े उपकारी होते हैं और व्याकरण के पंडित बड़े विद्वान होते हैं लेकिन अगर उनका रास्ता दक्षिण को जाता है तो कुल मालिक के प्रेमियों का उत्तर को जाता है।" खूब स्वामी जी क्या सब सुधारकों पर दयादृष्टि होती है और मुक्ति की इच्छा कहां स्वामी जी कुल मालिक का प्रेम तक

नहीं रखते। न केवल यह आपके शब्दों का भाव यह भी है कि कुल मालिकके प्रेमियों का परोपकार सुधार देश सेवा या व्याकरण आदि से सम्बन्ध नहीं हो सकता या सुधार, परोपकार और विद्वता उन गुणों के सर्वथा विरुद्ध हैं जो भक्तों में होते हैं परन्तु इन सब के उत्तर में स्वयं साहब जी महाराज की जात और आपके शब्द ही पर्याप्त होंगे। प्रथम तो आपने अपनी पुस्तक में बीसियों जगह व्याकरणी पण्डितों और सुधारकों अथवा परोपकारी विद्वानों के प्रमाणों से सहायता ली और उनकी शिक्षा को कुल मालक के प्रेमियों की शिक्षा के अनुसार जाहिर किया है। द्वितीय आप ने अपने सुधार सम्बन्धी कामों और संस्थाओं को कुल मालक की ही सेवा जाहिर किया है, आपने राधा स्वामी सत्-संग वाले लेख में बड़े फ़ख्र के साथ अपनी संस्थाओं का ब्यौरा दिया है। (१) इन्टरमिडिएट कालिज तथा हाई स्कूल (२) जनाना हाई स्कूल (३) टैकनाकल कालिज (४) कारखाना माडल इन्डस्ट्रीज़ ५) लैदर वर्किंग स्कूल (६) डेरी (७) सरण आश्रम (८) कारखाना अंग्रेजी चर्म (९) हाई स्कूल तिमरनी (१०) रहट गांम हास्पीटल। आप फ़रमाते हैं यह अदारात राधा स्वामी सतसंग सभा के आधीन हैं आठ नौ लाख सालाना खर्च है सभा का अपना खज़ाना है सरकार से भी ग्रांट मिलती है। हमारा प्रश्न है कि यह काम सुधार, देशभक्ति, परोपकार और विद्योन्नति के हैं वा कुल मालक के प्रेम के ? महर्षि दयानन्द मुक्ति के एक मात्र साधन अर्थात यथार्थ ज्ञान के लिये पुनः जन्म लेने की कामना करता है। परन्तु आपके जारी किये सारे काम केवल पेट पूजा अथवा संसार के भोगों में सफलता दिलाने के लिये हैं और आपके कथनानुसार ऐसे काम करने वालों का रास्ता दक्षिण को जाता है तो कुल मालिक के प्रेमियों का उत्तर को। अब फरमाइये आप का दोनों में से कौनसा मार्ग माना जाय ?

९—स्वामी जी तो आगामी जन्म को भी वेद भाष्य की पूर्ति तथा शान्ति और प्रेम पूर्ण ऐक्य के अर्पण करने का विचार प्रगट करते है। आप उसके विपरीत केवल पेट पूजा के साधन प्राप्त करने वाले कामों पर बल दे रहे हैं यह जानते हुये भी कि कुत्ते बिल्ले यहां तक कि विष्टा के कीड़े तक को पालने का भी कुल मालक ने प्रबन्ध कर रखा है। न केवल यह पृष्ठ ७६ पर जो आपकी प्रार्थना है उसका भाव भी आपको कुल मालक के प्रेम से वंचित सिद्ध करता है। वह प्रार्थना यह है "हुजुर राधा स्वामी दयाल के चरणों में इल्तह हुआ है कि हमें तौफीक दें कि हम दिल खोलकर उनके प्यारे बच्चों का सेवा कर सकें" क्या अब साहब जी महाराज कारण बतावेंगे कि क्यों स्वामी दयानन्द का वेद भाष्य आदि तो कुल मालक का प्रेम नहीं और आपका लैदर वर्क स्कूल आदि कुल मालक के बच्चों की सेवा और उसका सच्चा प्रेम है ?

१०—इसी ७६ पृष्ठ पर आप के यह शब्द और भी आपके विरुद्ध जाते हैं—

"हम बखूबी समझते हैं कि मनुष्य का काम पेट भरना और बच्चे पैदा करके मरजाना ही नहीं। हम यह भी जानते हैं कि कुल मालिक किसी की सेवा का मुहताज नहीं है जो कुल जगत् का पिता माता और पालन करता है, उसकी कोई मनुष्य क्या सेवा कर सकता है ? उसके भक्तों की सेवा करके ही कोई मनुष्य उस की रिजा और दया प्राप्त करसकता है। अतः जो मनुष्य कुलमालक से प्रीति करता है चाहे वह सत्संगी है चाहे कोई और, हिन्दू मुसलमान, ईसाई वा जैन, हमे दिल वा जान से प्रिय हैं। हमारे नजदीक उनकी सेवा कुलमालक की ही सेवा है।

हम समझते हैं साहबजी महाराज को अपनी गद्दी के लिए

सत्संगियों की भी दिलजोई बड़ाई तथा परोत्साहनादि करनी पड़ती है, जैसा कि तीसरे भाग के २ पहिले लेखों सत्संगी और बेचारा सत्संगी से स्पष्ट है। गवर्नमेंट से ग्रांट लेने के लिये सरकारी कर्मचारियों को भी सन्तुष्ट रखना पड़ता है और आर्यसमाजी आलोचकों को अपने विरुद्ध आलोचना से रोकने के लिए सिख, मुसलमान हिन्दू आदि में सर्व प्रिय बनने के साधन भी धारण करने पड़ते हैं यही कारण है कि आपने तीसरे भाग में यवन, सिख तथा अन्य मतवादियों की एक प्रकार से चापलूसी और हिमायत की है और ऊपर के उद्धरण में राधास्वामी हिन्दू मुसलमान जैन, ईसाई तक की सेवा को भी कुल मालक की सेवा और उन्हें अपने प्यारे कहा है। चलो इतना भो अच्छा है कि मतों को राधा स्वामी सत्संगियों की दृष्टि में घृणित बनाने के स्थान में उन्हें कहीं अपना प्यारा भी तो माना है, परन्तु इस का श्रेय या तो स्वामी दयानन्द को है या आर्य्यसमाज को। न उनकी आलोचना से बचाव की आवश्यकता होती, न दूसरे मतों के सहायक वायुमण्डल की आयोजना होती। आपको सर्वप्रियता आपका ख्याति, आपको सर्वप्रकार की उन्नति सब हमारे लिए हर्ष का कारण है। आप और संस्था खोलें, मनुष्यमात्र की सेवा करें, कुल मालक आप पर और भी दयाल हों। हमारे लिये आंखा सुख कलेजेठण्डक वाली बात है, परन्तु इस प्रश्न के लिए हम अवश्य ही आज्ञा चाहेंगे कि स्वामी दयानन्द ने मनुष्य जाति के कल्याण के लिए आर्य्य समाज को बनाया। सब मतवादियों को एक सत्य धर्म के झण्डे तले जमा करने को निरन्तर दौरे किए, लैक्चर दिए, सब मतों के विद्वानों से पूर्णविद्यायुक्त शास्त्रार्थ किए, अत्यन्त योग्यतापूर्ण पुस्तक रचे, परोपकारिणी सभा को बनाया, वेद का भाष्य किया इत्यादि—यह सब काम तो एक मालक के प्रेम के

विपरीत मार्ग पर हैं और आपकी संस्थायें जो केवल कुछ मनुष्यों को पेट की पूजा की सामग्री प्राप्त करने की योग्यता देती है। वह कुल मालक की सेवा हैं यह क्यों ?

११—स्वामीजी के विवादास्पद शब्दों से एक और परिणाम निकाला गया है। यह शब्द कि 'मैं आरम्भ किए हुए काम के लिए पुनः भी जन्म लूँगा।" इस भाव में लिए गए हैं कि स्वामीजी अपने से इतर किसी मनुष्य को भारत के सुधार के योग्य न समझते थे। प्रेमीजन सब काम करता हुआ भी अपने आप को तुच्छ और कुल मालक को ही कर्त्ता व हर्त्ता समझता है।' मालूम नहीं साहबजी महाराज इतने दूर के अर्थ लेने म क्यों मग़ज़पच्ची कर रहे हैं। स्वामी जी तो इतना परिश्रम और पुरुषार्थ और प्रचार करते हुए भी फ़रमाते हैं कि "मैं केवल ईश्वरीय धर्म का प्रचार करता हूँ। कोई पूछे तुम्हारा धर्म क्या है ? तुम कहो "वेद"। अपने सारे भाषणों तथा लेखों के विषय में व्यवस्था देते है कि "मेरा कहना तभी तक मानने के योग्य है जब तक वह वेदानुकूल वा युक्ति युक्त हो। आपके निरभिमान होने का कितना प्रबल प्रमाण है कि आप फरमाते हैं"मुझे ऋषि महर्षि क्या कहते हो यदि मैं गौतम कणाद के समय में होता तो मेरी गणना साधारण विद्वानों में होती। लाहौर समाज के भद्र पुरुष स्वामी जी के लिए विशेष उपाधि का प्रस्ताव करते हैं कि आपको आर्य्यसमाज का मुरब्बी या हादी माना जाय। आप कहते हैं, "मुझे इस शब्द से गुरुपन की गन्ध आती है।" इस पर कहा जाता है, अच्छा परम सहायक कहने में तो कोई आपत्ति नहीं ? स्वामीजी कहते हैं "मुझे परम सहायक कहोगे तो उस जगत् गुरु जगदीश परमसहायक को क्या कहोगे।" सार यह है कि साधारण सहायकों की सूची में नाम लिखाने के बिना स्वामी जी कुछ स्वीकार नहीं करते, तब अपने आप को तुच्छ और

परमेश्वर को ही कर्त्ता हर्त्ता समझने वाली मांग तो पहले ही पूरी है, साहबजी महाराज ने व्यर्थ ही कष्ट किया । रहा अपने बिना किसी को सुधार के योग्य न समझना, उसके लिए स्वामी जी के जीवन चरित्र से ही आप की प्रबल इच्छा यह विदित होती है कि ईश्वर करे मेरी तरह उपदेशक लोग सर्वत्र पहुँचकर सुधार करें । आपने संन्यास आश्रम का गौरव ही इसी में बताया कि सब संन्यासी ब्रह्म अर्पण हुए, अतिथि रूप से मनुष्य मात्र का सुधार करते हुए विचरें । आपने सांख्यदर्शन का सूत्र देकर सिद्धान्त ही यह बताया कि जब जब उत्तम आत्मोपदेशक सच्चे धर्म का प्रचार करते हैं, सर्वप्रकार के सुख की उन्नति होती है, और जब भी सत्योपदेश में कमी होती अथवा स्वार्थी या पाखण्डी लोग गुरु बन बैठते हैं अंध-परम्परा चलती और दुख बढ़ता है यदि वह किसी और को सुधार के योग्य न समझते तो आर्य्य समाज क्यों बनाते और क्यों उस पर सत्संग और वेद प्रचार का भार डालते ? क्यों परोपकारिणी सभा बनाते और उसके लिए यह फ़र्ज़ लगाते कि उनके प्रेस और पुस्तकादि की आय का वेद वेदांग तथा उपदेशक रखकर देश देशान्तर में धर्म प्रचार कराने और अनाथ रक्षा में व्यय करे ।

१३—एक फ़िकरा स्वामीजी के विषय में और भी लिखा है, जो आपके पक्ष का ही खण्डन करता है:—

"पचास वर्ष गुज़र गए और अभी स्वामीजी के दोबारा जगत् में आने की कोई ख़बर नहीं ।" अच्छा आक्षेप किया । सिद्ध तो करना था यह कि न उन्हें मुक्ति की इच्छा थी न उन्हें मिली, पर इस प्रश्न में उस युक्ति का संकेत करते हैं जिससे उनके जन्म होने का निषेध और अवश्य मुक्त होना सिद्ध होता है ।

सर्ग ३
गीता का शब्द सर्वधर्म

१३—य० प्र० भाग ३ पृष्ठ ३५—३६ पर आपने बताया है कि अवस्थायें अनुकूल न होने के कारण अकेले स्वामीजी पूरी तहक़ीक़ात कर ही न सकते थे, अतः वह सब प्रश्नों के शास्त्रोक्त उत्तर दे ही कैसे सकते थे ? उन्होंने कभी समयानुसार और कभी जो मौके पर सूझा, ज़बान पर लाकर उत्तर दे दिया। उदाहरण—रामगोपाल वैश्य ने मिरज़ापुर में प्रश्न किया कि गीता की कई टीकायें पढ़ीं पर निम्नलिखित श्लोक के विषय में संशय निवृत्त न हुआ।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

स्वामीजी ने कहा कि इस वार्तिक से "शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्" व के आगे अ रहा उसको तद्रूप हो गया वह शब्द धर्म ही रहा परन्तु वास्तव में अधर्म ही है। अर्थ अधर्म होगा। वह बहुत प्रसन्न हुआ, और इसका प्रमाण पूछने लगा। स्वामीजी ने २—३ श्रुतियों के प्रमाण दिए।" साहबजी महाराज को आश्चर्य है कि 'किसी आर्य्यसमाजी वा अन्य पंडितने ऐसी टीका नहीं की, और यदि सर्वधर्मान् का अर्थ अधर्म किया जावे तो न केवल इस श्लोक पर गीता के सारे उपदेश पर पानी फिर जाता है।"

(आर्य्य) आपको इस श्लोक के विशेषार्थ पर आश्चर्य होता है और हमें आपके इस विचार पर आश्चर्य होता है कि उस समय की अवस्थानुसार अकेले स्वामीजी तहक़ीक़ात न कर सकते थे।

स्वामीजी द्वारा रचित ग्रन्थ, उनका वेदभाष्य, आर्य्यसमाज की स्थापना, उस समय के बड़े से बड़े पंडितों और सारे मतों के विद्वानों से सफलतापूर्वक किए गए बड़े बड़े शास्त्रार्थ इत्यादि सब घटनायें तो जगत् भर मे आपकी सफल तहक़ीक़ात की धाक बिठा चुके, और आप अभी तक क़यास ही दौड़ा रहे हैं। यदि आप आर्य्य या दूसरे सत्संगियों की सहायता के बिना यथार्थ प्रकाश जैसी भ्रान्तिपूर्ण मिथ्या एवं निराधार शंकाओं वा आक्षेपों से युक्त पुस्तक भी अकेले नहीं लिख सकते तो क्या स्वामी दयानन्द का सूर्यवत् प्रकाशमान अन्वेषण कार्य्य भी शंकास्पद होसकता है। आपके लेख से सिद्ध होता है कि आप बड़े नीतिनिपुण और मौका पहिचानने वाले हैं तथा दूसरों के वचनों को अपने विचार वा मन्तव्य के सांचे में ढालने का अभ्यास भी बहुत रखते हैं, और इसी लिए संस्कृत की कहावत—"लोकः स्वतां पश्यति" या अंग्रेज़ी के वाक्य "The world is a reflex of our mind." (जगत हमारे मन का प्रतिबिम्ब है) के अनुसार आपको स्वामीजी में यह गुण दिखाई देते हैं। तथापि आपने जो उदाहरण दिया है उससे उन सारे दोषों का प्रतिवाद होता है जो आपने स्वामीजी पर लगाये हैं। स्वामीजी ने गीता के श्लोक के साथ भी कोई खींचातानी वा असंगत व्याख्या का व्यवहार नहीं किया। एक प्रबल नियम बताया, वेद से उसका प्रत्यक्ष प्रयोग दिखाया और उसी के आधार पर गीता के इस श्लोक के सम्बन्ध में जिज्ञासु को वह संतोष दिलाया कि सारी टीकाओं से निवृत्त न होने वाली शंका दूर हो गई। आप कह सकते हैं कि मौके पर उन्हें यह सूझा, इसलिए यह कह दिया। परन्तु उत्तरपक्षी कहतेही वह कुछ है जो उन्हें उस समय सूझता है। देखना केवल यह होता है कि कौनसी सूझ सत्य एवं युक्त है। स्वामीजी का उत्तर न केवल सत्य और युक्त और सन्तोषजनक

है, वेद की महिमा का परिचय भी पूरा न कराता है। निश्चय वेद वाले नियम संस्कृत साहित्य पर लागू किए जायें तो सारे मतभेद दूर हो सकते हैं। उदाहरण के लिए इसी श्लोक के उन अनुवादों को लीजिए जो आप ने यह दर्शाने को पेश किए हैं कि किसी और टीकाकार ने यहां अधर्म शब्द नहीं माना। लोकमान्य तिलक की गीता रहस्य हिन्दी में है—सब धर्मों को छोड़कर तू मेरी शरण में आजा। श्रीमती ऐनीबैसेण्ट की टीका में है:—

"Abandoning all duties come unto me alone for shelter.'

पं० आर्यमुनि जी—"वेद विरोधी सब धर्मों को छोड़कर मेरी एक वैदिक धर्म रूपी शरण को प्राप्त हो।"

पं० राजाराम जी—सारे धर्मों को त्याग कर अकेली मेरी शरण ले।

शंकराचार्य्य जी ने यह भाव लिया है कि कर्म सारे त्याग कर केवल परमात्मज्ञान मे तत्पर हो।

रामानुज जी यह आशय लेते हैं कर्मों में आसक्ति और फल को त्याग कर केवल ईश्वर परायण हो।

श्रीमाधव ने लिखा है कि धर्म के त्याग से अभिप्राय फल के त्याग से है।

साहबजी महाराज कहते हैं कि और किसी ने अधर्म शब्द नहीं कहा परन्तु आप यह नहीं सोचते कि किसी विद्वान ने इस वार्तिक पर आज तक आक्षेप भी नहीं किया, जिसका प्रयोग स्वामीजी ने किया है। और इसके अलावा सब टीकाओं में जो एक ही शब्द के भिन्न२ अर्थ लिखे हैं उसका आप कोई नोटिस नहीं लेते स्वयं आप कोई पक्ष नहीं लेते कि अमुक अर्थ सत्य है और अमुक असत्य तथा अमुक कारण से। ऐसी दशा में केवल स्वामीजी

के अधर्म शब्द पर ही आक्षेप करना और तअज्जुब ज़ाहिर करके ही सत्संगियों को भ्रान्ति में डालना किस प्रकार उचित हो सकता है। आप तो न दावा पेश करते हैं न कोई युक्ति प्रमाण, और जो दूसरों के भिन्न २ अर्थ आप पेश करते हैं, उन सब का भाव भी वास्तव में वही निकलता है जो स्वामीजी लेते हैं अर्थात् "अधर्म"। गीता रहस्य में यदि सब धर्मों को छोड़ने का उपदेश है तो निश्चय वह धर्म वही होगे जो उस अवसर पर अधर्म संज्ञामें आते थे,क्योंकि धर्म अपने यथार्थ अर्थ की दृष्टि से कभी त्याज्य नहीं होसकता। अर्जुन तो बन्धुवर्ग के प्रेम और अपने कुल के वृद्धों के सम्बन्ध में अपने कर्त्तव्य का विचार उपस्थित करता है, कृष्ण जी भी उसे धर्म शब्द के अन्तर्गत ही मानते हैं परन्तु युद्ध के समय धर्मरक्षा के लिए क्षात्र धर्म का निष्पक्ष रूप से पालन करना सब से अधिक आवश्यक है इसलिए उस समय के मुख्य धर्म की अपेक्षा से दूसरे कर्त्तव्य गौण, त्याज्य और अधर्म हैं।

श्रीमती ऐनी बैसेण्ट वाला अनुवाद भी अन्य सारे कर्तव्यों को छुड़ाने, से उपरोक्त युक्ति के अनुसार उन्हें अधर्म के अन्तर्गत बताता है।

पं० आर्य्यमुनि वाला अनुवाद वेद विरोधी कर्मों को त्यागने का उपदेश देता है और वेद विरोधी धर्म स्पष्टतः अधर्म हैं।

पं० राजाराम की टीका भी प्रभुशरण की तुलना से सब अन्य धर्मों को त्याज्य (अधर्म) बताती है।

शंकराचार्य्य जी तो केवल ब्रह्मज्ञान को ही यथार्थ धर्म मानते हैं, अतः शेष सारे कार्य उनके नज़दीक अधर्म हैं।

रामानुज कर्मों में आसक्ति और फल त्याग का ख्याल दिलाते हैं। अर्जुन उस समय मोह आदि में आसक्त हो रहा है अतः यह अधर्म त्यागने ही योग्य है।

माधवजी फल त्याग का अर्थ लेते हैं, इसलिए कि अर्जुन बुरे परिणामों का चिन्तन करके हिम्मत हार रहा है और चूँकि मुख्य धर्म निष्काम कर्म का उपदेश देता है और फल की आशा से काम करने में स्वार्थ रूपी अधर्म का सम्बन्ध बताता है, अतः यह भी स्वामी जी के ही अनुकूल है।

कहां तक लिखा जाय स्वामी जी का वैदिक शैली पर किया गया अर्थ सर्व प्रकार से सत्य, व्यापक, युक्त एवं रहस्यपूर्ण है और सब टीकाकारों की सूझ के मुकाबले में आप की सूझ, आपकी श्रद्धा और सत्कार के योग्य विद्या सम्बन्धी कुशलता और योगाभ्यास पर निर्धारित है और यदि दूसरे विद्वानों को भी स्वामीजी वाला नियम सूझता तो टीकाओं में भेद न होता। रहा यह आक्षेप कि "सारे अधर्म छोड़ने पर पाप से बचाने के कुछ अर्थ ही नहीं रहते" प्रथम तो यह आप के पेश किए सारे अनुवादों पर अधिक बल से लागू होता है। दूसरे यह सर्वथा अयुक्त और असम्बद्ध सा है, कारण यह कि जीव का अधर्म को छोड़ना और ईश्वर का उसे पाप वा दुःख से बचाना दोनों एक साथ वर्णन होते हैं और परस्पर में समवाय सम्बन्ध रखते हैं। अतः उचित यही है कि अपनी भूल को स्वीकार और उसका प्रायश्चित कीजिए कि "मैं दोष औरों को देता था कुसूर अपना निकल आया।"

———

सर्ग ४—सम्वत भेद
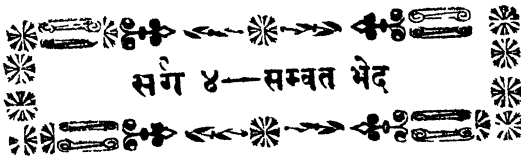
१४—भाग ३, पृष्ठ ३९, धारा ४२ में लिखा है कि पाश्चात्य विद्वान जो सृष्टि की आयु ५—७ हजार वर्ष मानते थे उनका मुख बन्द करने

को स्वामीजी ने ऋग्वेदादि भा० भू० में लिखा है कि सं० १८७६ में सृष्टि को उत्पन्न हुए १९६०८५२९७६ वर्ष हुए। परन्तु भूमिका के अनुवादक ने इस हिसाब को असत्य ठैहराया कि स्वामीजी सात संधियों की अवधि (१२०९६००० वर्ष) जमा करने भूल गए अतः सं० १८७६ में सृष्टि की आयु १९७०९४८९७६ वर्ष थी।

(आर्य्य) इस आक्षेप का आधार भी साहबजी महाराज की अपनी भूल है। वास्तव में इन वर्षों की गणना २ प्रकार से हो सकती है और होती भी २ ही प्रकार से आई है। एक गणना तो वर्तमान कल्प के प्रारम्भ से होती है और दूसरी मनुष्योत्पत्ति वा वेद के प्रकाश समय से। वेदादि सत्य शास्त्रों में जो सृष्टि उत्पत्ति का प्रारम्भ परमेश्वर में ईक्षण होने और ब्रह्म रात्रि समाप्त होकर ब्रह्म दिन शुरु होने अथवा आकाश की तमीज होकर वायु के प्रकट होने से किया जाता है, वह तो है वर्तमान कल्प का आदि। उस के पश्चात क्रमशः वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वनस्पति और मनुष्य की उत्पत्ति होती है और सृष्टि के विकाश की अन्तिम अवस्था में अर्थात मनुष्योत्पत्ति के समय वेद का प्रकाश होना है और कल्प के आद और वेद के प्रकाश के अन्तर में सात संधियाँ अर्थात १२०९६००० वर्ष का समय लगता है। अतः कल्प वा सृष्टि सम्वत में तो यह काल गिना जाना चाहिये और सृष्टि अथवा वैदिक सम्वत में शामिल न होना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने कैसी सावधानता पूर्ण काम किया है इसका प्रमाण इस से मिलता है कि चूंकि आपका विषय वेदोत्पत्ति था अतः वह संधियों वाला समय जो वायु, अग्नि, जलादि की उत्पत्ति का है उसमें शामिल नहीं किया। ऐसे दूरदर्शी, सूक्ष्मदर्शी, तत्व वेता अन्वे-शक के लेख पर यथार्थ आक्षेप कर सकना खाला जी का घर नहीं। और साहब जी महाराज यदि भली भान्ति विचार करेंगे तो

अपनी भूल पर स्वयं पश्चाताप करेंगे और दोनों सम्वतों की गणना का समझ कर स्वयं ही इस लोकोक्ति का अर्थ जान लेंगे कि

लेखा ज्यों का त्यों और कुन्बा डूबा क्यों

सर्ग ५—गौ का उपकार

१५—गौ करुणानिधि में स्वामी जी ने हिसाब लगाकर बताया है कि एक गौ के द्वारा चार लाख दस हज़ार चार सौ चालीस मनुष्यों का एक समय का भोजन प्राप्त होता है। इस पर आक्षेप किया गया है कि "यदि यह हिसाब दुरुस्त है तो हिन्दुस्तान में दूध, घी की कमी क्यों हो और डेरियां क्यों १२ महीने मातमी लिबास में मलबूस नज़र आयें।" यहां कुछ डेरियों और गौशालाओं का आन्तरिक पोल खुले तो साहब जी महाराज की आंखें खुल जाएं। परन्तु आक्षेप का आधार एक और ही ग़लती है। साहब जी का दृष्टि कोण तो हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानी डेरियों तक ही सीमित है और स्वामी जी को मानव जाति और संसार भर की गौ जाति लक्ष्य है। अतः अपने दृष्टि कोण की संकीर्णता को दूर करदें तो आप स्वयं अपनी भूल को स्वीकार करेंगे और बोल उठेंगे कि जब अनेक देशों में ४०-४० सेर दूध देने वाली और आपकी ही डेरी में एसी गौएं मौजूद हैं तो स्वामी जी ने जो २ से २० सेर तक प्रति गौके दूध की कल्पना करके लेखा लगाया है वह सर्वथा युक्ति और तनिक भी अत्युक्ति का उसमें दख़ल नहीं है।

सर्ग ६—आदि काल के युवा मनुष्य

स्वामी जी ने कहा आदि काल (अमैथुनी सृष्टि) में अनेक युवा मनुष्य उत्पन्न हुए। इस पर साहब जा महाराज कहते हैं कि "ऐसा है तो उनको गिज़ा बहम पहुंचाने को ईश्वर ने फलों से लदे हुए पेड़ या लैहलहाते हुए अनाजों से पुर खेत भी तय्यार रखे होंगे और तामीर मकान और आग जलाने के लिये खुशक पेड़ चीर या काट कर जमा कर दिये होंगे अगर ऐसा न हुआ होगा तो मनुष्यों ने गिज़ा व हिफ़ाज़त के लिये बड़ा शोर मचाया होगा।"

(आर्य्य) निःसंदेह मनुष्य को उत्पन्न करने से पहिले परमेश्वर ने उसके खाने के लिये अन्न और फल बड़ी भारी मात्रा में पैदा कर रखे थे और वेदादि सत्य शास्त्रों में सर्वत्र सृष्टि उत्पत्ति के प्रकरण में बनस्पति की उत्पत्ति के पीछे वीर्य्य और वीर्य्य से मनुष्योत्पत्ति मानी गई है और जब वृक्षादि के पैदा होने के बहुत काल पीछे मनुष्य पैदा हुए तो उस समय तक बहुत से गिरे और सूखे हुए वृक्षों की लकड़ी की विद्यमानता भी अवश्य ही थी अतः शोर और गुल मचाने की किसी को लेश मात्र भी आवश्यकता न हो सकती थी। आप यह पक्ष तो लेते नहीं कि अनेक नहीं एक पैदा हुआ न यह कि जवान नहीं बच्चे या बूढ़े पैदा हुए। केवल यह कहदेते हैं कि स्वामी जी की युक्ति कमज़ोर है। अच्छा साहब कमज़ोर सही पर आपने कौनसी प्रबल युक्ति दी अथवा कौनसा निश्चित दावा भी पेश किया। ज़रा सारे राधा स्वामी साहित्य की पड़ताल करके बताइये तो सही कि मनुष्य की उत्पत्ति कैसे हुई ? एक या अनेक ? बच्चे या जवान ? और उनको परवरिश का क्या प्रबन्ध था ? कुछ नहीं केवल गोल माल करके आपकी

सारी पुस्तकें लिखीं हैं जिससे यथार्थ ज्ञान कुछ भी किसी के पल्ले नहीं पड़ सकता।

भाग २ पृष्ठ २१९ पर आपके यह शब्द हैं:—"रचना से पूर्व सुर्तें गुप्त रूप थीं और रचना का अमल जारी होकर भिन्न २ लोक क़ायम होने पर उनमें निवास करने के योग्य सुर्तें प्रकट रूप से उनमें मुक़ीम हो गईं।" हम पूछते हैं कि सुर्तें प्रगट रूप से किस प्रकार मुक़ीम हो सकती हैं? क्या वह उस समय नज़र आने लग गई थीं? कदापि नहीं। आंखों वाले मनुष्य ही पैदा न हुए थे तो नज़र किसे आईं और आज तक प्रगट रूप से सुर्त किसी ने देखी ही नहीं तो उस समय प्रगट रूप कैसे हुआ। और भिन्न २ लोकों में मुक़ीम होने का क्या आशय? सुर्त का निवास तो शरीर में होता है। अनेक स्थानों पर आपने पिंड देशों का वर्णन किया है और इससे आशय शरीरों का ही लिया है। परन्तु वह शरीर किस अवस्था में और कहां हुआ कहीं कुछ पता नहीं दिया। ग़िज़ा और हिफ़ाज़त की बाबत जो भद्दा सा एतराज किया उससे भी आपके मत की साधारण सी बातों से भी अनभिज्ञता विदित होती है। क्या अब तक अनेक बनों में फलदार वृक्ष मौजूद नहीं और क्या सारा जगत लकड़ी के टालों से ईंधन खरीद रहा है? जब कुदरत की तरफ़ से सारे जगत में अनेक फल अब भी मनुष्यों को मिल रहे हैं और अब भी सारे लकड़ी के गोदामों में कुदरत के ही भंडार से लकड़ी पहुंच रही है तो आदि काल के सम्बन्ध में ऐसा प्रश्न किस प्रकार युक्त हो सकता है?

१७—इसी विषय में एक और भी भद्दा सा एतराज़ मौजूद है "यह जान कर कमाल रंज होता है कि जब कि एक दम जवान इन्सान पैदा किये जा सकते हैं तो ईश्वर ने उस कायदे को मुल-तवी वा मुस्तरद करके मैथुनी सृष्टि का क़ायदा क्यों क़ायम किया

और नाहक करोड़ों मरदों वा औरतों को हजारों मुशकिलों और मुसीबतों का मुतहम्मल बनाया।"

(आर्य्य) क्या हमको इसके मुकाबले पर यह पूछने की आज्ञा दी जायगी कि राधा स्वामी ने यह क्या अन्धेर किया कि एक आद चेतनधार के द्वारा रचना के तीन बड़े विस्तृत और ८ छोटे लोक और उनको संभाल करने वाले ब्रह्म अलख अगम आदि १८ धनी पुरुष तो पैदा कर दिये पर साधारण से मनुष्यों वा पशुओं की उत्पत्ति के लिये असंख्यात मनुष्यों वा पशुओं के जोड़ों पर अनगिनत कठिनाइयों वा आपत्तियों का भार डाला। शोक है कि साहब जी महाराज एक भी युक्ति युक्त प्रश्न नहीं कर सके। आप यह मानते है कि संसार की रचना जीवों के लिये है। जीव वा जौहर आप वही मानते हैं जो कुल मालक का है तब जीवधारी मनुष्यों को अपनी शक्ति के अनुसार क्यों रचना के काम में भाग वा अवसर नहीं दिया जाता और उनके कर्मफल मिलने के तरीकों और उन तरीकों के प्रयोग करने में उसे शामिल नहीं किया जाता। सृष्टि में प्रायः नियम ही यही है कि पहिले प्रत्येक विषय में कुदरत या प्रकृति का कार्य्य होता है पीछे मनुष्यकृत कार्य्य। लकड़ी प्राकृतिक और मेज़ कृतृम। जायदाद बाप की जड़ी पर पीछे सब हवाले पुत्र के। रचना सब ईश्वर की और भोगे उसे मनुष्य। रही बात मैथुनी सृष्टि और स्त्री पुरुषों की मुसीबतों की यह भी आपके समझने के लिये यत्न न करने का परिणाम है अन्यथा मौलिक सिद्धान्त अमैथुनी सृष्टि में भी वही है जो मैथुनि का है। रज और वीर्य्य की उत्पत्ति होती है वनस्पति से और इन के मेल से मानवीय शरीर रूपी मकान का बुनियादी पत्थर रखा जाता है। जैसे बीज में अपने अनुकूल परमाणु पृथिवी में से खींचने का गुण है और वह इन परमाणुओं तथा अन्य आवश्यक

जलादि पदार्थों के परमाणुओं से धीरे धीरे बढ़ता हुआ वृक्ष का रूप धारण करता है वैसे ही वीर्य्य रूपी बीज के आकर्षण से रुद्र, मांस, हड्डी आदि धातों के परमाणु माता के शरीर के अन्दर की नालियों के द्वारा पहुंच कर शरीर की तय्यारी का कारण बनते हैं इस सारे कारखाने की अद्भुत मशीनरी आदि कुदरती है और अग्नि, वायु, जल, पृथिवी के परमाणु तथा बीज वाली आकर्षण शक्ति भी सब कुदरती साधन हैं। मनुष्य तो अभी तक इस रहस्य को समझ ही नहीं सका। अतः उत्पत्ति का अमल तो अब भी कुदरती है भेद केवल मौके का है। हरारत जो मनुष्य के शरीर में जठराग्नि के नाम से बनस्पति को हज़म करती और उसके भिन्न २ प्रकार के परमाणुओं को भिन्न २ धातों के रूप में परिणत करती है, नेचर में मौजूद थी। बनस्पति और दूसरे तत्व भी थे उनके परस्पर के नियमबद्ध संघर्ष के परिणाम में रज और वीर्य्य की उत्पत्ति और उनका मेल आदि सृष्टि में और भूमिरूपी गर्भाशय में हुआ और पीछे माता के गर्भाशय वाले स्थान में मेल होने लगा और इस स्थान परिवर्तन का मूल कारणशरीर के अंकुर वा नन्हे २ शरीरों की सर्वोत्तम प्रकार की रक्षा भी थी और कर्मफल का नियम भी। माता के सुरक्षित गर्भाशय के स्थान में खुले मैदान में रज और वीर्य्य का मेल और शरीर पालन की मर्यादा जारी हो तो यौवन तक पहुँचना तो कहां नौ मास तक भी अल्प सा शरीर तय्यार न हो पाए, कि अनेक प्रकार की आपत्तियों से वह बिन खिले ही मुरझा जाय अतः सिद्धांत रूप से मैथुनी वा अमैथुनी का कोई भेद नहीं। रही बच्चे जनने की तकलीफ़ादि, यह ईश्वरीय प्रबंध से नहीं मनुष्य के कर्मों का फल है। जैसे मलादि का त्याग स्वस्थ मनुष्य सुगमता से करता है वैसे ही सर्वथा कष्टरहित विधि से पुत्र के उत्पन्न होने का प्रबन्ध भी नेचर ने कर रखा है। यदि कष्ट होना

है, तो यह नियम विरुद्ध भोगों से पैदा हुई बीमारी निर्बलता और नाज़ुक मिज़ाजी का फलरूप है। और जैसे अन्य अनेक दण्ड मिल रहे हैं यह भी नियम भंग के कारण एक प्रकार का दण्ड ही है। साहब जी महाराज के मन पर बाईबल का यह विषय प्रभाव डाल रहा है कि सांप के बहकाने से आदम और हव्वा ने निषिद्ध वृक्ष का फल खाया तो आज्ञा भंग होने के कारण ख़ुदाने उन्हें शाप वा दण्ड दिया। उसी शाप का एक अंग यह था कि हव्वा (स्त्री जाति) के लिए ज़चगी के दर्द से चिल्लाना लाज़मी हो गया। हमारा निवेदन यह है कि आप इस कथन के यथार्थ भाव को समझें और सांप की जगह मन (नफ़्स इम्मारा) के आधीन वर्जित भोग के फलरूप में इस ज़चगी की पीड़ा को जानें। आज कल की भयंकर विषयासक्ति से बचे हुए जन समुदायों की स्त्रियां अब भी बहुत हद तक इन कष्टों से मुक्त हैं।

सर्ग ७—धर्म और मज़हब

मुकम्मल जीवन चरित्र महर्षि दयानन्द के पृष्ठ ७६९ से स्वामीजी और मौलवी अबदुलरहमान की बात चीत नकल की है और स्वामी जी ने जो यह कहा कि मैं किसी मज़हब और मज़हबी किताब को नहीं मानता, धर्म और ज्ञान की पुस्तक वेद को मानता हूँ और साथ ही यह कि मज़हब में पक्षपात का सम्बन्ध रहता है, साहब जी महाराज इसपर कहते हैं कि क्या इस मुकालमा से यह परिणाम निकाल लेने की आज्ञा होगी कि वैदिक धर्म का कोई मज़हब नहीं है और आर्य्यसमाज कोई सोसाइटी नहीं है और दुनिया में जितनी मज़हबी जमायतें इस समय मौजूद

हैं या आइन्दा क़ायम होंगी सब की सब मुतअस्सब हैं और होंगी।

(आर्य्य) लोग तो जो समझना था मुद्दतों से समझ चुके और आप अभी तक नतीजे ही निकाल रहे हैं। हम कहते हैं नतीजा क्या, सिद्धान्त ही यह है कि न वैदिक धर्म कोई मज़हब है और न कोई मज़हब कभी पक्षपात से बच सकता है। रही आर्य्य समाज, यह भी यथार्थ रूप में मज़हबी जमाअत नहीं है धर्म सभा के भाव से क़ायम हुई थी परन्तु वर्तमान अवस्थाओं और सम्बन्धों की दृष्टि से कांग्रेसादि पोलिटिकल सभाओं के मुक़ाबले पर इसे मज़हबी जमाअत का सापेक्ष शब्द देना अनुचित नहीं हो सकता। यदि सब मनुष्य संगठन विशेषके पक्षपात सामयिक नीति, स्थानीय आवश्यकता वा संकीर्णता से ऊपर उठ सकें तो वह सब सार्वजनिक एवं व्यापक सत्य धर्म के अनुयायी हो जावेंगे और ज्योंही सार्वजनिक धर्म व्यक्तिगत अथवा देश वा काल विशेष सम्बन्धी संकुचित भावों से प्रभावित होगा पक्षपातादि का राज्य होगा और धर्म का शब्द असंगत होगा।

सर्ग ८—जीव और ब्रह्म

(जीवन चरित्र, पृष्ठ ६२७-६२८) निरमले साधु ईश्वरीसिंह और स्वामी जी में जो परस्पर में वार्तालाप हुआ उसमें स्वामी जी ने कहा जीव और ब्रह्म में भेद और अभेद कहना दोनों पक्ष सत्य हैं। आकाश से हमारी कुटिया पृथक् नहीं पर कुटिया आकाश भी नहीं। इस पर आक्षेप होता है कि इस प्रकार का विश्वास पूर्ण एवं अन्तिम निश्चय नहीं हो सकता। हम कहते हैं देवदत्त और यज्ञदत्त

दोनों दो शरीर और एक जान हैं, इस कहने से क्या स्पष्ट विदित नहीं होता कि मन से तो उनका पूरा मेल है पर शरीर उनके पृथक् हैं। ऐसे ही जीव और ब्रह्म भी चेतन होने वा कभी पृथक न होने से अभिन्न हैं पर सत्ताएँ दो होने से उनका भेद है। भिन्न २ दृष्टि कोण से दोनों कथनों के सत्य होने में संदेह नहीं हो सकता। साहबजी महाराज यह भी संकेत करते हैं कि ईश्वर सिंह के श्रुति प्रमाण के मुक़ाबले पर यह पोज़ीशन ली गई। हम इसे ओछा हमला समझते हैं क्योंकि स्वामी जी के दोनों बयानों की असलियत एक है।

स्वामी शंकराचार्य के जीव ब्रह्मकी एकता मानने के विषय में स्वामी जी ने लिखा है कि "यदि यह उनका निज मत था तो अच्छा न था और यदि जैनियों के खण्डन के लिए इस मत का स्वीकार किया तो कुछ अच्छा है।" इस पर प्रश्न किया है कि "क्या सचमुच दूसरों के मत का खण्डन करने के लिए जो चाहें मानने की इजाज़त है" हमारा उत्तर यह है कि सब अवस्थाओं में यथार्थ पक्ष कोही मानना आवश्यक है यही स्वामी जी का उसूल था और यही आर्य्यसमाज मानता है कि सर्वदा सत्य को ग्रहण और असत्य को त्याग करने पर उद्यत रहना चाहिए। परन्तु स्वामी जी के इन शब्दों और आपके एतराज़ में संगति नहीं बैठती। किसी काम की आज्ञा देना और बात है और किये गए काम पर सम्मति प्रगट करना और आज्ञा देकर काम कराने से किसे से मौलिक उत्तरदायित्व दूर हो जाता है और सम्मति देने से कर्ता को उत्तरदाता गरदान कर कर्म अनुसार एक प्रकार का फल दिया जाता है। जैसे साहिब जी महाराज एक सत्संगी को आज्ञा देते हैं कि चोरी के दण्ड से बचने के लिए पुलिस को रिश्वत दे दो। सत्संगी तदनुसार आचरण करता है तो साहब जी महाराज तो उसपर

कोई दोषारोपण कर नहीं सकते। और दूसरा सत्संगी उसे ताना देता है तो वह साहब जी महाराज का प्रमाण देकर उसे चुप करा लेता है पर यदि वह स्वयं रिश्वत दे तो साहब जी महाराज और दूसरे उससे उत्तर मांगते और उसे अनेक उपालम्भ सुनने पड़ते हैं। और यदि साहब जी महाराज यह कहदें कि चलो क़ैद और जुर्माने के मुक़ाबले पर तो रिश्वत देकर बच जाना अच्छा ही है तो इसका यह अर्थ नहीं कि आप सारे सत्संगियों को आज्ञा देते हैं कि चोरियां किया करो और रिश्वत देकर बच जाया करो।

सर्ग ९—हरिकथा

(जीवन चरित्र पृष्ठ ५१०) किसी ने प्रश्न किया कि रंडियों का नाच गाना और तमाशा होता है तो लोग सारी २ रात बैठते हैं बिलकुल नींद नहीं आती परन्तु ईश्वर कथा में थोड़ी ही देर के पीछे निद्रा आने लगती है स्वामी जी ने कहा हरिकथा मखमल के नरम बिछौनों की मानिन्द है उसपर नींद न आवे तो कहाँ आवे और रण्डी का नाचादि कांटों वाली भूमि के समान है उस पर भला निद्रा कहां ? इस पर साहब जी ने जो टिप्पणी की है उसे पढ़कर हमें विवश होकर कहना पड़ता है कि "वाए बर हाले सत्संगियां" (बेचारे सत्संगियों के हाल पर रोना आता है)

गर हमीं मकतब अस्तोई मुल्ला, कारेतिफ़लां तमाम ख़ाहद शुद

अर्थात् यदि यही मकतब और यही मुल्ला साहब हैं तो लड़को का काम तमाम होने में संदेह ही क्या है। क्या मानिन्द, मानिन्द का शब्द स्पष्ट रूप से लिखा होने पर भी साहब जी महाराज दृष्टान्त को

सचमुच यथार्थ घटना से जुदा तमीज़ नहीं कर सकते ? आप फ़रमाते हैं "यदि यह युक्ति सत्य हो तो सभी हरिकथा सुनने वाले सदा स्वप्नावस्था में रहते होंगे। और आर्य्य भाई साप्ताहिक सत्संगों में आद से अन्त तक सुख की नींद सोते होंगे। साहब जी महाराज ! यदि अर्थापत्ती इसी का नाम है तो आपको क्या अधिकार है कि "त्यागी कृष्ण लबार" के सम्बन्ध में लम्बे २ उदहरण और व्याख्याओं से कृष्ण से मन का आशय लेने को कहे। यदि आपका इस्तदलाल या शब्दकी प्रयोगशैली यही है तो "गुरु सम और नहीं कोई रक्षक कुल कुटुम्ब सब जानो तक्षक" के यह अर्थ क्यों सत्य नहीं किसत संगियों के कुटुम्बी काले नाग हैं और वह दूसरों को और उन्हें डंग मारते हैं। यदि यही शैली अर्थ लगाने को है तो सार बचन नज़म हिन्दी बचन ३ के इन शब्दों से क्यों सतसंगिनों की अवस्था पर सतसंगियों का संदेह न हो ?

मैं प्यारी प्यारे राधास्वामी का मुख देखूं नैन निहार।
" " फिर त्यागा कुल परिवार।
" " लज्या जगदई निवार
" " मिले अब मेरे दिलदार
" " डारिया उन पर तन मन वार
" " करूं मैं गुरु सग बहुत प्यार

यदि यही शैली अर्थ लगाने की है तो राधा स्वामी के किस सत संगी को हौसला हो सकता है कि निम्नलिखित कड़ियां पढ़ कर भी अपनी बहु बेटी को सत संग में जाने दे।

राधा स्वामी जिस पर मेहर करें री
राधा स्वामी उसको पकड़ धरें री॥

आपने और भी अयुक्त सी टिप्पणी लिखी हैं। परन्तु जब आशय स्पष्ट केवल यह है कि ईश्वर कथा से चित्त को शान्ति

आती है और नाचतमाशा देखने से विषय वासना वा चित्त की चंचलता बढ़ती है और इस आशय को साधारण पुरुष भी भली भांति समझते हैं तो अधिक लिखने की आवश्यकता ही क्या है।

सर्ग १० —साहब जी महाराज और भूत प्रेत

जीवन चरित्र पृष्ठ ६७६ 'एक वैश्य जो एक नौजवान को साथ लाए कि इसे आसेब का खलल है हरचन्द इलाज किया फ़ायदा न हुआ। स्वामी जी ने इस पर अफ़सोस किया कि इलम और अक़ल रखते हुए तुम ऐसा मानते हो यह बिलकुल झूठ और मूर्खता है इत्यादि।" साहब जी महाराज लिखे पढ़े बल्कि ग्रेजुएट हैं साइन्स पढ़े हैं परन्तु स्वामी जी का इस विषय में भी निषेध करते हैं और तीन प्रमाण उपनिषद् के देते हैं (१) बृहदारण्यक अध्याय ३ ब्राह्मण ३) इसका पूरा अर्थ तो यह है कि—

"लाह्य के पुत्र भुज्यु ने प्रश्न किया कि हे याज्ञवल्क्य एक वार हम ऋत्वज होकर मद्रदेश में विचरते हुये कपिगोत्रोत्पन्न पतंजल नामक ब्राह्मण के घर आए उसकी एक कन्या साम गान करने वाले वेद वेता विद्वान की शिष्या थी। उस गन्धर्व को हमने पूछा आप कौन हैं। उत्तर मिला मैं अङ्गिरा गोत्रोत्पन्न सुधन्वा नाम ब्राह्मण हूँ फिर उस से हमने लोक लोकान्तरों की सीमा का प्रश्न करके यह पूछा कि अश्वमेध करने वालों को क्या गति होती है। सो हे याज्ञवल्क्य। वही प्रश्न आप से है कि अश्वमेध करने वालों की क्या गति होती है।"

साहब जी महाराज इस मंत्र के गन्धर्व शब्द से जिन्न भूत का

अभिप्राय लेते हैं। परन्तु कहां उपनिषदों का ब्राह्मज्ञान और कहां साहब जी महाराज की जिन्न भूत विद्या का भ्रम जाल। एक उच्च कोटि के विद्वान ने सत्य कहा था कि भूत प्रेत का विचार सर्वथा अविद्या का फल है परन्तु बालकपन में जो संस्कार माता ने डाला था उसका यह प्रभाव है कि अब तक अन्धेरे में और शमशानादि के पास से गुजरते हुए खौफ़ छा जाता है। अनुमान ऐसा ही कोई कारण है जो गन्धर्व शब्द पढ़ते हो आप को जिन्न भूत का स्मरण कराता है अन्यथा जो अधूरा सा तर्जुमा आपने पण्डित राजाराम जी का दिया है उसमें भी जिन्न भूत का नाम मात्र तक नहीं है। उपनिषद् में शब्द है "गन्धर्व गृहीता "आपने इसे गन्धर्व से पकड़ी हुई समझकर गवांरों की परिभाषाको अपना पथ प्रदर्शक बनाया है, कि अमुक स्त्री वा पुरुष को गन्धर्व चिमट गया है। पर यहां तो नियत बुरी न होने पर भूत प्रेत का संकेत मात्र तक नहीं हो सकता वैदिक साहित्य में साम गान करने वाले ब्राह्मण की गन्धर्व संज्ञा है। फिर वह गन्धर्व अपना नाम व पता बताता है कि मैं अंगिरा का पुत्र सुधन्वा हूँ ग्रहीता शब्द का अर्थ है ग्रहण वा स्वीकार किया गया। विवाह संस्कार में बधु की तरफसे जल, आसन, मधुपर्क जो कुछ दिया जाता है वर कहता है 'गृह्णामि', मैं ग्रहण करता हूँ कन्यादान के समय पति पत्नी के लिये वेदारम्भ संस्कार में भी गुरु बालकके लिये कहता है ग्रहण करता हूँ और स्त्री पति को, 'कन्या वर की, शिष्या गुरु की ग्रहीता कही जाती हैं। राधा स्वामी सत संग के सब स्त्री पुरुषों को साहब जी महाराज ने अनुयायी, शिष्य वा चेला के रूप में ग्रहण कर रखा है इस अवस्था में जिन्न भूत का कल्पना या चिमटना वा पकड़ना आदि के शब्द किसी ग्रेजुएट और फिर साहब जी महाराज की ज़बान वा क़लम से निकलें तो हम इसके बिना और क्या परिणाम निकाल सकते हैं कि आप अपनी सफ-

लता इसी में समझते हैं कि मत संगियों को भ्रमजाल में फंसाये रक्खें।

२३—दूसरा प्रमाण बृहदारण्यक उपनिषद् अध्याय ३ ब्राह्मण ७ का है इसका यथार्थ एवं स्पष्ट अर्थ यह है—

' अरुण के पुत्र उद्दालक ने प्रश्न किया कि हे याज्ञवल्क्य ! हम मद्र देश में निवास करते हुए कपि गोत्रोत्पन्न पतंजल नामक ब्राह्मण के घर वेद का अध्ययन करते थे, उसकी स्त्री एक गन्धर्व की शिष्या थी। हमने उस गन्धर्व से पूछा कि तू कौन है उसने उत्तर दिया कि मैं अथर्वा का पुत्र कबन्ध नामक गन्धर्व हूं। उस गन्धर्व ने पतंजल तथा अन्य सब याज्ञिकों से पूछा कि क्या आप लोग उस सूत्रात्मा को जानते हैं जिसमें सब लोकलोकान्तर सूत्र मे मणकों की भांति पुरोये हुये हैं। पतजल ने कहा कि मैं नहीं जानता। फिर गन्धर्व ने पूछा कि आप उस अन्तर्यामी को जानते हैं जो सब लोक लोकान्तरों का नियमन करने वाला है। पतंजल ने कहा कि नहीं। फिर उस गन्धर्व ने कहा कि हे याज्ञिक लोगो जो उस सूत्रात्मा तथा अन्तर्यामी को जानता है वही ब्रह्मवित, लोकवित, देववित भूतवित, आत्मवित, औरसर्ववित होता है। यह कहकर उसने सूत्रात्मा तथा अन्तर्यामी का जो व्याख्यान किया उसको हे याज्ञ वल्क्य मैं तुम्हें सुनाता हूँ।"

इससे जाहिर है कि उन दिनों विशेष विद्वान् तथा शिक्षक लोग गुरु वा मास्टर की जगह गन्धर्व की उपाधि रखते थे और जो कुछ ऊपर के दोनों प्रमाणोंसे पता चलता है यह है कि कपिगोत्री ब्राह्मणों की कन्यायें वा स्त्रियां भी बड़े २ विद्वानों से शिक्षा पाती थीं और उन शिक्षा देने वाले गन्धर्वों के पास दूर २ से लोग उपदेश लेने आते थे और वह अति विद्वत्तापूर्ण रीति से सूक्ष्म विषयों पर व्याख्यान करते थे। इसके विपरीत साहब जी महाराज फ़रमाते हैं कि

इस अध्याय के ब्राह्मण ७ म :क दूसरे ब्राह्मण उद्दालक आरुणि ने इस घटना के प्रथम प्रमाण में प्रतिपादित जिन्न भूत का आसेव होने को अपनी आंखों देखी घटना कहा है। वाह महाराज ! धन्य हैं आप और धन्य हैं आपका यथार्थ प्रकाश।

२४—तीसरा प्रमाण—

बृहदारण्यक अध्याय ६ ब्राह्मण ४ मं० १९ का है इसमें पहिले तो पति पत्नि दोनों को उपदेश है कि प्रातः काल स्थाली पाक की विधि से आज्य का संस्कार करके चरु सहित घृत द्वारा इन वाक्यों से हवन करे, "अग्नये स्वाहा" 'अनुमतये स्वाहा' देवायसवित्रे सत्यप्रसवाय स्वाहा" यह तीन आहुति देकर फिर स्विष्टकृत आहुति दे। तत्पश्चात् जो स्थाली में चरु शेष रहे उसको प्रथम पति खाय और पश्चात पत्नी को दे फिर हस्त प्रक्षालन तथा शुद्ध जल से आचमन करके उदकपात्र भर अपनी स्त्रीके ऊपर तीन बार जल छिड़ककर परमात्मासे प्रार्थना करे कि हे परमात्मन आप हम दोनोंको प्रसन्न रक्खें।

इस में कहीं गंधर्व का शब्द भी नहीं है, परन्तु साहबजी महाराज इसका यह अनुवाद लिखते हैं:—औलाद के ख्वाहिशमन्द मर्द को चाहिए कि हाथ धोकर पानी का बर्तन पानी से भरे और वह पानी तीन बार अपनी औरत पर छिड़के और यह मन्त्र पढ़े, हे विश्वावसो गंधर्व ! तू मेरी इस औरत के पाससे उठ और किसी दूसरी नौजवान औरत को जो अपने खाविंद के साथ विलास कर रही हो तलाश कर इत्यादि"। यहां "विश्वावसो" का शब्द ही साहब जी महाराज के पक्ष का प्रबल खण्डन करता है, जो विश्व अर्थात् सकल जगतमें वास करता है वह "विश्वावसो" है यह जिन्न भूत का नाम कैसे हो सकता है और उससे यह सम्बोधन कैसे किया जा सकता है, अतः सर्वव्यापक परमात्मा से प्रार्थना के बिना इसका कुछ आशय नहीं हो सकता। भूत प्रेत के सम्बन्ध में तीन

प्रमाण आपने अथर्ववेद काण्ड ११ सूक्त ८ म० १५—१७ के दिए हैं परन्तु न मूल मन्त्र दिए हैं न यह पता दिया है कि जो उर्दू अनुवाद आपने दिया है वह कहां से लिया है न इन तीन मन्त्रों का आप के पेश किए अर्थ में कोई भी सम्बन्ध है। अतः उन पर यहां कुछ नहीं लिखा जा सकता।

सर्ग ११ —स्वामीजी का योग साधन

२५—इस विषय में स्वामीजी के स्वरचित जीवन चरित्र के आधार पर मुकम्मल जीवन चरित्र से ८—९ पृष्ठ का लम्बा उद्धरण दिया गया है। कहीं फ़ुट नोट में कहीं साथ के साथ टिप्पणी दी गई है। आक्षेप विशेष कोई किया नहीं न आप कर सकते थे क्योंकि अभी तक आपको न पतञ्जलि मुनिकृत योगदर्शन प्रतिपादित योगसाधन का अनुभव है न योगदर्शन के कुछ सूत्रों के पं० राजारामजी वाली टीका के बिना आपने योगदर्शन पर अधिक विचार किया है और न आप न्यौली कर्मादि तथा योग साधन में भी तमीज़ कर सके हैं। इस विषय के अन्त में पृष्ठ ६५ पर आपने गुरु अर्जुन साहब का यह प्रमाण पेश किया है।

न्योली कर्म किये बहु आसन, जैनमार्ग संजम अते साधन।
निमख निमख कर सरीर कटावे, तो भी हौ मैं मैल न जावे॥

सुखमनि गौड़ी महल्ला ५

अर्थात् मनुष्य न्योली करे वा आसन अथवा जैन मत वाले संजम वा साधन कितने ही करे चाहे थोड़ा २ करके शरीर का ही अन्त करदे तो भी मन वाली अहंकार की मैल दूर न होगी।

साहबजी महाराज ने अपने जाने इस प्रमाण से स्वामीजी

वाले योग साधन का बड़ा खण्डन किया है, परन्तु आप को इतना भी ज्ञान नहीं कि स्वामीजी इस प्रकार की सारी क्रियाओं का योग साधन से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं समझते। न्योली, नेती, धोती कर्म से विशेष अवस्था में वह विशेष लाभ मान सकते हैं। न्योली कर्म से उन्होंने अपने अन्दर से विष निकाला। पं० सुन्दरलाल का दिमाग़ी रोग उन्होंने नेती, धोती और न्योली कर्म सिखाकर दूर किया। परन्तु ईश्वर प्राप्ति के लिए वह इन साधनों को कोई महत्व नहीं देते। अतः यह आक्षेप सिद्ध करता है कि स्वामी जी के योग साधन के यथार्थ आशय को समझा ही नहीं गया।

२६—योगियों की तलाश में स्वामीजीने जो दौड़ धूप की तथा जिन २ योगियों से मिले उनके वृत्तान्त में आता है कि—(१) स्वामीजी योग विद्या में प्रवीण योगानन्द स्वामी के पास योगविद्या पढ़ने लगे और इस क्रिया की सारी प्रारम्भिक पुस्तकें पढ़ कर अभ्यास आरम्भ किया। (२) ज्वालानन्दपुरी, विद्यानन्दपुरी आदि योगियों से योग विद्या की चर्चा करते और योग साधन में प्रवृत्त रहते थे। (३) इन महानुभावों ने जाते हुए कहा कि एक मास पश्चात् अहमदाबाद आना, वहां योगसाधन के सब गूढ़ तत्व तथा विधि आदि अच्छी तरह समझावेंगे। स्वामीजी का कथन है कि इन महात्मा योगियों ने मुझे योगसाधन के गूढ़तम सिद्धान्त जता कर निहाल कर दिया। पूर्ण योग विद्या तथा इसका साधन मुझ पर स्पष्ट रूप से प्रगट होगया। निस्संदेह उन्होंने मुझ पर बड़ी कृपा की और मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। (४) आबू पर्वत को नर्वदा भिवानी गिरी चोटी पर उन से भी अधिक योग्य योगी पाये (५) १८५५ ई० के हरिद्वार कुम्भ के अवसर पर चण्डी पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करते रहे। फिर ऋषिकेश में योगियों और संन्यासियों के साथ योग का साधन जारी रखा और उनकी

विद्वत्ता से लाभ उठाते रहे। (६) ओखी मठके महन्त ने आपको अपना चेला बनाकर लाखों की आय का मालक बन जाने का प्रलोभन दिया। जिसे आपने यह कह कर ठुकरा दिया कि यह लोभ होता तो घर पर क्या धनकी कमी थी। जिस वस्तुके लिए गृह का त्याग किया, उसका यहां नाम निशान तक नहीं पाता। न आप में से किसी की उधर रुचि है। महन्त के प्रश्न पर आपने फ़रमाया, मैं सत्यविद्या, मोक्ष तथा योग का अभिलाषी हूँ। जब तक यह कामना पूरी न होगी मैं निरन्तर अपने देशवासियों के कल्याण में यत्नशील रहूँगा, जो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। (६) रामपुरी में स्वामीजी रामगिरि के पास ठहरे। यह एक प्रसिद्ध शुद्ध हृदय भक्त थे, पर स्वामीजी ने एकान्त में बातचीत करके समझ लिया कि योग विद्या का इन्हें अति अल्प अभ्यास है, तथा मुझे जिस वस्तु की तलाश है, वह इनके पास नहीं। (८) द्रोणसागर में एक बार आपको आत्महत्या का ख्याल आया, परन्तु साथ ही यह सूझा कि ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् ही शरीर का त्यागना अच्छा है। (९) आगरा के अनेक भद्रपुरुषों को आपने योगविद्या पढ़ाई तथा इसकी क्रियात्मक विधियां समझायीं। रक्तविकार तथा पाचन सम्बन्धी रोगों की चिकित्सा आप स्वयं कर लिया करते थे। एक बार उन्हें कुछ फोड़ा फुंसी की शिकायत होगई तो जमना में खड़े होकर न्योली कर्म किया। आपने यह कर्म नर्बदा के तट पर एक कनफटे योगी के पास बहुत दिन ठहरकर बड़े परिश्रम से सीखा था। (१०) रायबहादुर पं० सुन्दरलाल को दिमाग़ी रोग था, स्वामी जी ने उन्हें न्योली, नेती और धोती कर्म सिखाया, जिससे वह अच्छे हो गए, परन्तु आगरा से चलते समय अपने चेलों से यह साधन छुड़वा दिया कि तुम गृहस्थी हो, ख़ुराक नहीं पा सकते, असावधानता तथा कुपथ का भय है। अतः योगाभ्यास का छोड़

देना उचित है. ऐसा न हो कि हमारी अनुपस्थिति में भूल करो और कोई रोग हो जावे।

२७—साहबजी महाराज उपरोक्त वचनों पर फुटनोट में अनेक प्रकार के रीमार्क देते हैं, जिनसे स्वामी दयानन्द का पूर्ण योगी होना असत्य सिद्ध हो। आप यह भी मानते हैं कि श्रद्धा तथा पक्षपात से भी अनुयायी लोग अत्युक्ति करते हैं और यह भी भली प्रकार समझते हैं कि पक्षपाती लोग सत्यबात को स्वीकार नहीं करते, वरन् व्यर्थ के आक्षेप करते हैं। इस अवस्था में न स्तुति का वज़न है न निन्दा का। वैज्ञानिक सिद्धान्त अथवा इलहामी पुस्तक पर तो युक्ति प्रमाण आदि देकर बहस हो सकती है. परन्तु अविद्यमान व्यक्ति सम्बन्धी भिन्न २ समस्याओं की जांच किस प्रकार हो सकती है। मत भेद है स्वामी जी की योग विद्या वा योगाभ्यास के सम्बन्ध में, पर इसका ज्ञान था स्वामी जी को। अभ्यासादि विषयक योग्यता चर्म दृष्टि से दिखाई दे नहीं सकती। स्वामी जी अब मौजूद नहीं और हम में से कोई पक्ष न अन्तर्यामी है न किसी व्यक्तिगत कर्म के आन्तरिक तत्व को जान सकता है। साथ ही विचार है योगाभ्यास विषय में, जिसे वादी स्वयं न जानता न करता है अतः आक्षेप सर्वथा निराधार है। केवल सत्यासत्य निर्णय के साधनों से अनभिज्ञ लोगों में स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में सन्देह तथा विरोध भाव पैदा करने के लिये झूठा लेख लिखा जा रहा है, इस प्रयोजन से कि न वह स्वामी जी के लेख को गौरव दें न उस पर मनन करें और न अपना परदा फ़ाश हो।

२८—परन्तु अपने इस दूषित भाव में साहब जी महाराज कभी सफलता नहीं पा सकते। वह स्वयं अपने सम्बन्ध में यह मनवाना चाहते हैं कि मैं ही सन्त सतगुरु तथा चोटी के राधा स्वामी धाम तक रसाई रखता हूँ परन्तु स्वामी दयानन्द कहीं डींग नहीं

हांकता कि मैं पूर्ण योगी हूं। वह यह बताना है कि मैं पूर्ण योगियों से मिला उन से इस सम्बन्ध में गूढ़तम बातें सीखीं। उनके क्रियात्मिक रूप में अभ्यास करने का प्रमाण भी मिलता है और दूसरों को योग विद्या सिखाने का भी। आपने निःस्वार्थ निष्काम सेवाभाव, विघ्नों तथा प्रतिकूल अवस्थाओं के होते हुये भी सत्य का दर्शन, और इसका प्रचार, वेद भाष्य, निर्भयता, सत्य प्रायणता, सदाचार, पूर्ण वैराग्य, निन्दा स्तुति से बेपरवाही, सच्चे परोपकार, शारीरिक बल आत्मिकबल, सहनशीलता आदि गुणकर्म में विशेष प्रकार का कमाल दिखाया जो केवल सर्व श्रेष्ठ गुणों के भंडार उस परमात्मा के ही योग का फल हो सकता है इसलिये उन्हें पूर्णयोगी कहने में कोई दोष नहीं हो सकता और इस पर एतराज करना केवल ईर्षा द्वेष वा पक्षपात के ही कारण हो सकता है।

२९—पृष्ठ ६२ पर मेरठ में बाबू छेदीलाल गुमाशता कम्सरेट के हां जो घटना हुई वह अवश्य विचारणीय है। जो इस प्रकार है कि वार्तालाप करते हुये स्काट साहब ने कहा कि महाराज! सुना है। स्वामी शंकराचार्य अपने आत्मा को अपने शरीर से निकाल कर दूसरे शरीर में प्रविष्ट कर देते थे। स्वामी जी बोले! इतना तो हम भी कर सकते थे कि अपने शरीर से सारी जीवन शक्ति खींच कर शरीर के एक भाग में जमा कर दें, इस प्रकार कि शेष सारा शरीर मरा हुआ मालूम हो। अभ्यास छोड़े देर हुई तो भी अब जो कहें यह क्रिया दिखा सकता हूँ यह भी कहा कि मैंने केवल अपने बचाव के लिये योग करने से दूसरों को सहायता देना और सत्य मार्ग दिखाना अच्छा समझा है और इसी लिये अभ्यास छोड़ा है परन्तु जब मैं मध्यम दर्जे का अभ्यासी भी सारी जीवन शक्ति को शरीर के एक भाग में जमा कर सकता हूं तो एक पग ही आगे बढ़ाने पर दूसरे शरीर में आत्मा को प्रविष्ट करना असंभव प्रतीत

नहीं होता। (मुं० जी० च० म० लक्ष्मण पृष्ठ ६५६)

इस वृत्तान्त के भाग विशेष से स्वामी जी के पूर्ण योगी होने का निषेध किया जाता है, पर इससे वास्तव में निम्न प्रकार के परिणाम निकलते हैं:—

(१) योग विद्या तथा योगाभ्यास की बारीकियां बेशुमार हैं। जिस प्रकार जड़ जगत् सम्बन्धी अनन्त विद्यायें हैं और उनके समझने के लिये व्याख्या करने वाली अनेक पुस्तक आदि हैं वैसे ही योगाभ्यास तथा आत्मविद्यादि इनसे भी अधिक विस्तार रखती हैं (२) मृत्यु से पूर्व भी योगी पुरुष का आत्मा शरीर से कुछ काल के लिये सम्बन्ध छोड़ सकता है। (३ स्वामी दयानन्द सावधानतापूर्वक तथा अत्युक्ति आदि के दोष से बचकर बातचीत करते थे। अपने अनुभव तथा योग्यता से बढ़कर उन्होंने न कभी दावा किया न कोई सब्ज़ बाग़ दिखाया। (४) अत्युक्ति आदि को छोड़ कर स्पष्ट कहा कि मैंने चिरकाल से अभ्यास छोड़ रखा है यह आप के सत्यवादी होने का प्रमाण है। (५) अभ्यास छोड़ने का कारण आप यह बताते हैं कि मेरे सामने २ काम थे एक तो योगाभ्यास करके मोक्ष पाना और दूसरा सर्व साधारण को सत्यमार्ग दिखाना, मैंने इनमें से दूसरे को अधिक अच्छा समझा (६) साहब जी महाराज इस कथन से यह समझते हैं किस्वामी जी ने स्वयं अपनेपूर्ण योगी होने का खण्डन किया है परन्तु आशय इससे सर्वथा विरुद्ध है। ज्ञान और आनन्द का भण्डार परमात्मा अपना सर्वस्व अपनी जीव रूपी प्रजा के उपकार में लगा रहा है तब उसके दर्शन करने वाले सच्चे और पूर्ण योगी में दूसरों के बन्धन काटने तथा उनको मोक्ष मार्ग पर चलाने का भाव अवश्य जागना चाहिये। सम्भव है कि किसी कारण से सच्चे योगी को दूसरों की अवस्था का ज्ञान न हो और वह अपने लिये मुक्ति प्राप्त होने में यत्नशील

रहे परन्तु चहुं ओर अविद्या तथा दुख की विद्यमानता को जानता हुआ पूर्णयोगी कभी यह नहीं कह सकता कि "तुमको पराई क्या पड़ी अपनी नबेड़ तू (७) अपने आपको स्वामी जी मध्यम कक्षा का अभ्यासी भी स्पष्ट रूप से कहते हैं इससे भी आपका पूर्णयोगी न होना सिद्ध नहीं होता। एक एम० ए० पास इस बात में स्वतंत्र है कि वह पुस्तक पाठके स्थान में अपनी अवस्था के अनुसार किसी विशेष विद्या सम्बन्धी व्यवहार में लग जावे और अपने ज्ञान में आई अनेक विद्याओं को प्रयोग में न ला सके। इसी प्रकार पूर्ण-योगी चाहे परमेश्वर के गुणों के चिन्तन में लगकर उसकी प्राप्ति में ही मग्न रहे। चाहे वेद के शब्दों के अनन्त अर्थों वा विद्याओं का यथार्थ ज्ञान पावे चाहे जड़ वस्तुओं के इन्द्रियों से ग्रहण होने योग्य विषयों के स्थान में उनका तत्त्वज्ञान प्राप्त करे और चाहे अपने अनुभव के आधार पर अपने सजातियों को उसी मार्ग का उपदेश दे और उसे कांटों से साफ करे मध्यम योगी कहने का आशय यह है कि उन सच्चे योगियों को आप अधिक उत्तम समझते हैं जो अधिकसमय तथा काल के लिये अभ्यास करते रहे हैं। योग सम्बन्धी कुशलता का यथार्थोद्देश्य आत्मा के स्वभाव को ज्ञान मय बनाना है अतः समय वा काल सम्बन्धी न्यूनाधिक्य गौण विषय है और "मध्यम दर्जे का अभ्यासी" कहने से पूर्ण योगी शब्द के विरुद्ध प्रभाव नहीं पड़ता।

हमने इस विषय पर साधारण सा विचार कर दिया है तथापि व्यक्तिगत विषय सर्वतन्त्र सिद्धान्त की जगह नहीं ले सकते। ईश्वर के न्यायनियम के अनुसार सब को कर्मफल मिलता है और स्वामी दयानन्द को भी अवश्य मिला। परन्तु इसका न साहब जी को ज्ञान है न ईश्वरीय न्याय तथा आत्माओं की यथार्थ अवस्था और उन को मिले हुये कर्म फल का किसी मनुष्य कृत इतिहास में

उल्लेख हो सकता है। अतः इन विषयों से आपको बचना ही श्रेयस्कर होता।

३०—स्वामीजी के अन्त के शिक्षा प्रद शब्दों से आपने लाभ नहीं पाया जो यह हैं:—"बाक़ी रहा यह कि शंकराचार्य महाराज ने ऐसा किया, यह ऐतिहासिक घटना है, मेरा ज़ाती इल्म इस बारे में कुछ नहीं हो सकता।" इन शब्दों से स्वामीजी केवल सर्वतन्त्र सिद्धान्तों के प्रचारक तथा व्यक्तिगत विचारों को गौण समझने वाले सिद्ध होते हैं। जीव ब्रह्मकी एकता वा भिन्नता सर्वतन्त्र सिद्धान्त है और शंकराचार्य्य का कर्म ऐतिहासिक घटना, जिसका स्वामीजी को ज़ाती इल्म ही नहीं हो सकता। अतः वह प्रबल युक्ति प्रमाण देकर प्रथम विषय पर बहस करने का कोई अवसर नहीं चूकते, पर व्यक्तिगत विषय में सम्मति तक नहीं देते। इसके विपरीत साहबजी महाराज व्यक्तिगत घटनाओं तथा अपने ज्ञान वा अनुभव से बाहर के विषयों पर बिना विचारे लिख देते है। आप फ़रमाते हैं:—

"अभ्यास छोड़ना किसी कारण से दिल उचाट हो जाने का परिणाम हो सकता है और पूर्ण योगी बनने के लिए आत्मदर्शन तक पहुँचना आवश्यक है। सो अभ्यास छोड़ने की वजह तो स्वामीजी ने साफ़ २ पहिले ही बतादी और आत्मदर्शन की मंज़िल तक न पहुँचने का दावा आप कर नहीं सकते। मूर्ख अनपढ़ सत्संगी का कान बन्द करके घूँ घूँ सुनने का भाव तो आप आत्मदर्शन समझलें, पर स्वामी दयानन्द के योग से कभी आत्मदर्शन का सम्बन्ध न हो, यह है वह ज़ेहनियत जो पक्षपात की अन्तिम पराकाष्ठा तक पहुँची हुई कही जा सकती हैं।

३१—पृष्ठ ८६७ मु० जी० च० से आप यह घटना पेश करते हैं:-

"महाराणा साहब उदयपुर ने सवाल किया कि जब मूर्ति पूजा

को आप मानते नहीं तो ध्यान किस का करें। स्वामीजी ने कहा कि कोई चीज़ मान कर ध्यान नहीं करना चाहिए। ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वसृष्टिकर्त्ता, सर्वनियन्ता, सर्वपालक अनन्त ब्रह्माण्डों का स्वामी इत्यादि है। ऐसो २ उसकी महिमा का स्मरण करके अपने चित्त में उसका ध्यान करना चाहिये। और उसकी अपार महिमा का वर्णन करना, संसार के उपकार में चित्त की वृत्ति लगाने की प्रार्थना करना यह ध्यान है" धारा ७४ में लिखा है शरीर त्यागने से ए ६ वर्ष पूर्व जो यह तरीका बताया इससे आपकी ध्यान की विधि का बोध होता है, पर क्या पतंजलि महाराज ने योगदर्शन में ध्यान का यही तरीका बताया है।"

(आर्य्य) साहबजी महाराज की तर्कना भी क्या ही विलक्षण है, यदि महाराणा साहब को मूर्ति के स्थान में ईश्वर गुण चिन्तन का उपदेश दिया जाता है तो आप समझ लेते हैं, बस यही योग के सातवें अंग ध्यान की व्याख्या है, परन्तु न प्रश्न योगाभ्यास के विषय का, न संकेत सातवें अङ्ग ध्यान की ओर, केवल ख्याल का याद करने के भाव मात्र से ध्यान का शब्द यहां है। विद्वानों वा योगियों वाला या मूर्ति के द्वारा ईश्वर का किये जाने वाला ध्यान यहां अभिप्रेत नहीं। स्वामी जी ने भी इसी साधारण आशय की दृष्टि से उत्तर दिया है। रोग, रोगी तथा अवस्था विशेष से नुसखे भिन्न २ होते हैं। एक ही नुसखे का अन्धा धुन्ध प्रयोग किये जाना मूर्खता है। अतः ध्यान शब्द का जान बूझ कर प्रकरण विरुद्ध भाव बताना और उस पर एतराज़ करना सर्वथा अनुप्युक्त है।

३२—रहा हाशिया वाला रीढ़ की हड्डी वाला नोट, यह भी आप की अदूर दर्शिता का प्रमाण है। रीढ़ की हड्डी अथवा किसी अन्य स्थान पर ध्यान लगाना भी सातवां अंग नहीं वास्तविक भाव धारणा नाम छटे अंग का है। संध्या के मनसा परिक्रमा मंत्रों, में पूर्व

पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर नीचे सब ओर मन को घुमाया जाता और ईश्वर के भिन्न २ गुणों का भिन्न २ दृष्टान्तों से चिन्तन करके मन पर उस भगवान की अपार महिमा को अंकित किया जाता है जिससे मन नम्र और शान्त होकर आत्मा के वश होता है और जैसे राजा के हो पहुँचकर मिलने वाला घोड़े को कीले से बांध कर स्वयं अन्दर जाता है वैसा ही आत्मा ईश्वर के योग के लिए मन को धारणा के द्वारा टिका कर आप परमात्मा का ध्यान करता है। अतः स्वयं समझने का यत्न करना चाहिए दूसरों को अक़ल मारने का उपाय न कीजिए।

सर्ग १२—राधास्वामी तथा अन्य मत

३३—भाग, ३ ६५ से ७९ तक के पृष्ठों में दूसरे मतों की वकालत करके राधा स्वामी मत की लोक प्रियता तथा अपनी प्रसिद्धि आदि की वृद्धि की चेष्टा की गई है। इस विषय में मुख्य विचारणीय बात यह थी कि पहिले अपने मत की पुस्तकों से दूसरे मतों की निन्दा दूर कराते। जब आप किसी मत को सत्य नहीं मानते, और सब का खण्डन आपकी पुस्तकों में मौजूद है तो इस प्रकार की चापलूसी से आप को क्या लाभ मिल सकता है? देखिए आपके यहां क्या २ लिखा है।

(१) ब्रह्मा को जब कबीर साहब ने समझाया और उस को शौक़ हुआ कि सत्पुरुष का खोज करूं, मगर कालने बहका दिया।

(२) जो गुरु नानक के घर में हैं उनका यह हाल है कि ग्रन्थ साहब का पोटबांध कर रख दिया है और आरती उतारते हैं और डंडौत करते हैं।

(३) ब्रह्मा से आद लेके जितने देवता हैं और राम कृष्ण से आद लेकर जितने अवतार हुए हैं उन सबका दर्जा सन्तों से नीचा है और सन्तों का दर्जा सब से ऊँचा है।

(४) यह सब कामदार और वज़ीर हैं और सन्त पादशाह है। ८, ३४।

(५) वेद से आद लेके जितने शास्त्र हैं और षटदर्शन हैं और जितना पसारा इस लोक का है, सब नाश होंगे। एक सन्त बचेंगे और सेवक बचेंगे। ४, ६४।

(६) हज़ारों ब्रह्मा, हज़ारों गोरख, हज़ारों नाथ और हज़ारों पैग़म्बर तृष्णा की अग्नि म जल रहे हैं क्योंकि इनको सत्गुरु नहीं मिले, यह आप चौरासी के चक्कर से नहीं बचे, औरों को क्या बचावेंगे। यह सब निगुरे हैं। ४०, १५६।

(७) बाज़ ग्रन्थ वग़ैरा की टेक में बँधे हैं और उसी को गुरु मानते हैं। अब ग़ौर करना चाहिए कि ग्रन्थ को गुरु मानने से क्या फ़ायदा ? ग्रन्थ तो जड़ है उसकी कोई सेवा नहीं हो सकती।

(८) पांचों शास्त्रों का दोष तो वेदान्त ने निकाला और फिर वेदान्त का दोष अब सन्त सत्गुरु निकालते हैं। ४५, ८१

(९) इसी सबब से सन्तों का वचन और बानी वेद और शास्त्र और कुरान और पुराणपर फ़ाइक़ हैं यानी उनसे ऊँची हैं।

(१०) ग्रन्थ और पोथियों में जो नाम लिखा है उसके पढ़ने और जप करने से कुछ हासिल नहीं होता, नाम का रस्ता साध के संग से प्राप्त होगा। ८४, २५६

(११) राधास्वामी नाम कुल और सच्चे मालक का नाम है जो ईश्वर और परमेश्वर और ब्रह्म और पारब्रह्म, और आत्मा परमात्मा, ख़ुदा और निर्वाण पद सब का निज करता है। (राधा स्वामी मत संदेश पृष्ठ १, धा० २)

(१२) सन्तों की महिमा बहुत भारी है और ख़ुदा और परमेश्वर दोनो को पैदा करने वाले सन्त हैं, और उनकी गति को दोनों नहीं जान सकते। (सारवचन हदायत नामा पृष्ठ ४०९)

(१३) सार वचन में अनेक स्थानों में मतमतान्तरों का खण्डन लिखा है, देखिए—

१ भक्ति सुनाई सबसे न्यारी, वेद कतेब न ताहि विचारी। पृ० -
२ जोगी ज्ञानी मर्म न जाना, अस मेरे प्यारे राधा स्वामी। १७
३ ब्रह्मा विष्णु महेश भुलानी सो मेरे प्यारे राधा स्वामी। ,,
४ गौर सावित्री लछमी न जानी, गति मेरे प्यारे राधास्वामी। ,,
५ शेष गनेश कुरम अज्ञानी, जस मेरे प्यारे राधा स्वामी। ,,
६ ऋषि मुनि नारदादि भटकानी, वाह मेरे प्यारे राधास्वामी।,,
सनकादिक पित्रादिक न जानी सो मेरे प्यारे राधास्वामी। १८
देवी देव रहे पछतानी, अस मेरे प्यारे राधा स्वामी। ,,
ईश्वर परमेश्वर भरमानी, कया मेरे प्यारे राधा स्वामी। ,,
वेद किताब पुराण निदानी, मत मेरे प्यारे राधा स्वामी। ,,
अल्ला खुदा रसूल न मानी, अस मेरे प्यारे राधास्वामी। ,,
इन भी भेद नहीं पहचानी, जस मेरे प्यारे राधा स्वामी। ,,
गंगा जमना सार न जानी, सो मेरे प्यारे राधास्वामी। ,,
तीरथ वरत जक लिपटानी, हे मेरे प्यारे राधास्वामी। ,,
राम न जाना कृष्ण न जाना तुमको मेरे प्यारे राधास्वामी। ,,
सीता रुकमनि और पटरानी, सुन न मेरे प्यारे राधास्वामी। २३
ईसा मूसा मरियम मानी, चूके मेरे प्यारे राधा स्वामी। ,,
कुलकर और सुरा देवी रानी, पाये न मेरे प्यारे राधास्वामी।,,
कुतब पैग़म्बर ग़ौस रब्बानी, मिले न मेरे प्यारे राधा स्वामी। ,,
हिन्दू मुसलमान क्या जानी, सो मेरे प्यारे राधा स्वामी। ,,
नहीं आतम परमातम धामी, जहां मेरे प्यारे राधास्वामी। ,,
षट शास्तर नहीं आदि पुरानी, जहां मेरे प्यारे राधास्वामी। ,,
पंडित भेष न शेख पहचानी, सो मेरे प्यारे राधा स्वामी। ,,
राधास्वामी गिनें न ब्रह्मज्ञानरी, राधास्वामी थापें न जोगध्यानरी। ५६

राधास्वामी मानें न रामकृष्णारी, राधास्वामी माने न ब्रह्माविष्णुरी,,
राधास्वामी पूजें न शिव गनेशरी, राधास्वामी पूजें न गौरशंकरी ।,,
राधास्वामी मानें न कर्म धर्मरी, राधास्वामी जपतप मानें भर्मरी,,
राधास्वामी मानें न तीरथ व्रतरी,राधास्वामी मानें न शास्त्रसिमृतरी
राधास्वामी बुतपूजा न धाररी,राधास्वामी पित्रपूजा न काररी ५७
राधास्वामी ज़ात न पांत रखरी, राधास्वामी हिंदु न तुर्क गहैंरी,,
राधास्वामी वर्ण आश्रम न गायेंरी,राधास्वामी मिथ्याधर्म सुनायेंरी
राधास्वामी वेद किताब उड़ायेंरी रा० स्वा० मसजिद बांगछुड़ायेंरी
राधास्वामी काबान हज्ज करायेंरी,रा०स्वा० कुरां न वज़ीफ़ा पढ़ायेंरी
राधास्वामी की है प्रथममंज़िलरी, सो सब मत सिद्धांत समझरी
राधास्वामी पहिली मंज़िल कहीरी, सब मतका सिद्धांत वहीरी ,,
कोटिन जन्म रहे कोई काशी, वेद पाठ और तीरथवासी । १४७
जप तप संजम बहु विधि करई, भेष बनावे विद्या पढ़ई । ,,
पिछलों की जो धारें टेका, जिनको कभी आंख नहीं देखा । ,,
पोथिनमें सुनी उनकीमहिमा, टेक बांध मन सबका भरमा । ,,
अब इनको जो कोई समझावे, टेक छोड़ते जीव सा जावे । ,,
कोई शिव और कोई विष्णुकी, कोई राम और कोई कृष्णकी ।,,
कोई देवी कोई गंगा जमना, कोई मूरत कोई चारों धामो । ,,
कोई मथुरा कोई टक मुरारी, मदन मोहन कोई कुञ्ज बिहारी । ,,
कोई गोकुल कोई बलभाचारी कोई कंठो माया गल धारी । ,,
कोई आचार कोई संध्या तर्पण, कोई गायत्री कर समरपण । ,,
कोई गीता कोई भागवत पढ़ंते, कथा पुराण नम से सुनंते । १४८
क्या दादू क्या नानक पंथी, क्या कबीर क्या पलटू संतो । ,,
सब मिल करतं पिछली टेका, वक्त गुरु का खोज न नेका । ,,
जो साधन थे पिछले जुगके, सो कलजुग में किए प्रमाण । १७५
मूरख प्राणी मन सैलानी, सो अटकें जल और पाषाण । ,,

बुद्धिमान अभिमानी जो नर, विद्या नारि के हुए गुलाम । ,,
बाक़ी जीव बीच के जितने, ना मूरख ना अति बुद्धिमान । ,,
जप तप व्रत संजम बहु धोखे, पंच अग्नि में जले निदान । ,,
भटक २ भटकाया सब जग, कोई न लगाया ठौर ठिकान । ,,
वेद शास्त्र और स्मृत पुराना, पढ़ना इनका विरथा जान । १७३
पंडित भेष पेट के मारे, वह संतन पर करते तान । ,,
वह चौरासी चक्कर मारें, फिर फिर गिरते चारों खान । ,,
पिछले जुग की विद्या पढ़ते, कोई न्याय वेदान्त बखान । ,,
वेद पुराण शास्त्र परमाना, दे दे जीवन अधिक भुलाया । ४३६
बहुतक जीव बंधे श्रुत स्मृत, संत वचन परतीत न लाया ४३७
फिर फिर मांगें वेद प्रमाना, उन उस घर को नेत सुनाया । ,,
जब नहिं वेद वेद का करता, तब का भेद संत गुहराया । ,,
उस घर मर्म वेद नहिं जानें, फिर क्योंकर परमान सुनाया । ,,
संत बिना कोई मर्म न जाने, वेद कुतेब कहां से लाया । ४३८
वह तो तीन गुनन में बरते, काल बचन कानून सुनाया । ,,
वह दयाल पद कोई न पावे, निरगुण सरगुण चक्कर खावे । ४४०
और मतं सब काल पसारे, हिंदू मुसलमान सब सारे । ४४७
जैनी और अंगरेज़ बिचारे, ईसा पारसनाथ पुकारे । ,,
वह ईसा को बेटा मानें वह तीर्थंकर उनको मानें । ,,
यह तो बात सही मैं मानूं, पर इसमें इक भेद बखानूं । ,,
तिरलोकी का नाथ जो कहिए, ईसा उसका बेटा लहिए । ,,
तीरथंकर भी उसको जाना, नाम निरंजन कहें निरबाना । ४५८
पद निरबान कहें हैं जैनी, उनके मत की सब हम चीन्हा । ,,
राम ब्रह्म हिंदु कर बोले, अल्ला खुदा मुसलमां तोले । ,,
खुद खुदाय का मर्म न जाना, राम ब्रह्मका नाम छिपाना ,,
राम ब्रह्मतं वह पद आगे, चौथा लोक सन्त जहां लागे । ,,

राधा स्वामी कहत बुझाई, त्यागो कृष्ण (काल) लबार । ४२०
सन्त धाम इन भेद न पराया, काल हुआ यह कृष्ण मुरार । ४१९
यहही हाल तुम राम विचारो, दोनों हैं इकनार । ,,
राम कृष्ण दोऊ जग में आये, काल धरा अवतार । ,,
राधा स्वामी कह समझावें, कृष्ण राम दोनों तज डार । ४२१
दस औतार काल के जाना, सब ही मे तुम गहो किनार । ,,

सन्त पुकारें भेद वेद पशु माने नाहीं.
अब क्या करें उपाय जाव पड़े सब भ्रम में ।
लोक वेद में जो पड़े नाग पांव डस खायें ।
जन्म २ दुख में रहें रोवें और चिल्लायें ।

षट शास्त्र और चारों वेदा, यह सन्तन ने किये निषेधा ।
बानी अपनी जुदो बनाई, मूर्ख इनमें विधि मिलाई ।
वेद पुरान क़ुरान न जानें, वह गति अगम अथाया । १०
जोत निरंजन मर्म न जाना, अक्षर लग सब पार लहाया ।११
ज्ञानी जोगी सब थक बैठे, वह पद किन्ह न पाया । १२
ब्रह्मा विष्णु महादेव गोरख, इन को माया लुभाया ।

सर्ग १३—स्वामी जी का खंडनात्मक कार्य्य

३४—साहब जी महाराज अपनी तथा अन्य सब मतों की ओर से की गई स्वामी जी की निन्दा का तो ख़याल ही नहीं करते हां स्वामी जी की सद्भाव पूर्ण सच्ची आलोचना को जिसका यथार्थ नाम स्तुति है, बुरा बताते हैं । भूमिका में आप स्वयं लिखते हैं कि "त्वारीख़ बतलाती है कि हमेशा से यह दस्तूर चला आया है कि महापुरुषों ने अपनी तालीम का आम प्रचार करते वक्त खंडन

व मण्डन दोनों से काम लिया क्योंकि उनकी दिली आर्जू यह थी कि सर्व साधारण प्रचलित ग़लतियों से भिन्न होकर इन से बचें और अपने अन्तिम लक्ष्य के सत्य मार्ग पर चलें। यह सत्य है कि उनके इस प्रकार के उचित एवं हितकर खंडन से अनेक मूर्ख दुखी हुए और उन्हें अपने मत का शत्रु समझने लगे परन्तु वास्तव में महापुरुषों की कभी यह इच्छा न थी न आगे होगी कि किसी का दिल नाहक दुखायें।"

३५ क्या यह आश्चर्य जनक बात नहीं कि ऊपर के शब्द लिखने वाला पुरुष महर्षि दयानन्द के खण्डनात्मक कार्य्य पर दोष दे अथवा अन्य मतों का झोली चूक बन कर आर्य समाज के विरुद्ध उन्हें शैह देवे।

(१) स्वामी जी कहते हैं खाली नाम स्मरण से फल नहीं होता मिसरी २ कहने से मुँह मीठा और नीम २ कहने से कड़वा नहीं होता। आप फ़रमाते हैं अर्थ को समझो और उसके अनुसार आचरण करो। जैसे ईश्वर न्यायकारी है तो जैसे वह पक्षपात रहित होकर न्याय करता है ऐसे ही तुम भी कभी अन्याय का व्यवहार न करो इस प्रकार एक नाम से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है। साहब जी महाराज फ़रमाते हैं यह विधि ईश्वर गुणों के चिन्तन की है, नाम स्मरण की नहीं। इन शब्दों से आप अपने ही कथन का खंडन करते हैं। प्रथमाध्याय में हम सिद्ध कर चुके हैं कि आप नाम और नामी के सम्बन्ध को मानते हैं और नामी की यथार्थ स्थिति उसके गुणों में बन्द है अतः नाम से जो गुण ज़ाहिर होता है उसका सम्बन्ध विद्या, बुद्धि, क्रिया, सर्वप्रकार से स्वामी जी नाम स्मरण के साथ जोड़ते हैं और नाम का स्मरण तथा गुणों का चिन्तवन जब एक ही भाव रखते हैं तो आक्षेप कैसा ?

(२) आप कहते हैं ऐसा है तो पातंजल महाराज ने नाम के जप

पर क्यों जोर दिया है हम कहते हैं उनका भी वही आशय है जो स्वामी जी का है आप स्वयं "तज्जपस्तदर्थ भावनं" के सिद्धान्त को मानते हैं।

(३) श्वेताश्वतर उपनिषद् वाले प्रमाण का भी यही भाव है।

"अपनी देह को नीचे की अरणी और ओ३म् को ऊपर की अरणी बनाकर ध्यान की रगड़के बार २ करने से छिपी हुई आग की तरह परम ज्योति का दर्शन करो। अरणी अकेली से आग नहीं निकलती दो की रगड़ से निकलती है ऐसे ही मन में ओ३म के अर्थ सहित जप और चिन्तवन की रगड़ से आत्मा में ज्ञान रूपी अग्नि प्रचण्ड होता है और परमात्मा का दर्शन होता है।"

३६—गुरु नानक साहब सम्बन्धी स्वामीजी के शब्दों की आड़ में आपने आर्यों और सिक्खों को हानी नहीं पहुंचाई अपनी नियत पर परदा पड़ सकने को असम्भव कर दिया है। रास्ते में जो ईंट गिर पड़ी थी उसे उठाकर एक पक्ष के माथे पर मारा है। स्वामी जी ने गुरु साहब की बहुत प्रशंसा की। केवल इस विचार से कि निर्दोष निर्भ्रान्त एवं पूर्ण केवल एक परमात्मा है और उसी सच्चे ईश्वर की भक्ति आदि सब का कर्तव्य है, उन्होंने मनुष्य गुरुओं के नश्वर तथा भ्रांत होने का वर्णन कर दिया। स्वामी जी के किसो शब्द को यदि कोई आर्य्य वा सिख सत्य न माने या संदिग्ध सा समझे तो इससे आर्य समाज पर क्या असर पड़ सकता है विशेषतः जब आर्य्य पुरुष गुरु जी के गुण गाते तथा आपको भरी सभाओं में धर्म रक्षक तक कहते हैं। हम स्वयं अनेक पुस्तकों में आपकी सरल वाणी में धर्म के गूढ़ रहस्य पाकर आप के अनुभवी ज्ञान की अनेक पुस्तकों में प्रशंसा करते आ रहे हैं अतः शुद्ध भाव पूर्ण आलोचक को केवल सिद्धान्त सम्बन्धी आलोचना तक ही अपनी सम्मति को सीमित रखना चाहिये। यदि किसी शब्द पर

किसी को मिला था तो वह हो चुका। इस समय हमारे मन्द भाग्य से अथवा सृष्टि नियमानुसार दोनों महापुरुष हमारे बीच में नहीं हैं और हम सब इस विषय को दूर गुजरकर चुके अतः सोई कला जगाने की यह चेष्टा आप के लेख पर ही कलंक है।

सर्ग—१४, वैदिक धर्म ही सन्त मत है

२७—सन्त मत के नाम से बड़ी भ्रांति फैलाई जाती है मानों सन्त मत वैदिकधर्म का विरोधी है। 'साधकी महिमा वेद न जाने' इस प्रकारके वचनोंमें साध शब्दसे यह आशय नहीं होसकता कि योगादि सिद्धियों वाले साधु जो आन्तरिक अनुभव से ज्ञान का दर्शन करने वाले हैं, वह शब्द मात्र वेद से लाभ नहीं पा सकते। उपनिषद् के कथनानुसार वह अपरा विद्या में हैं। परन्तु स्वार्थान्ध मनुष्य इस प्रकार के वचनों से अपनी प्रयोजन सिद्धि करते और सन्तमत को पृथक तथा ऊंचा मत कहते हैं। न तो इनके पास सन्त मत का कोई पृथक ग्रन्थ है न परम्परागत सन्त मत के सिद्धान्तों का पता दिया जाता है सन्तमत के नाम से प्रायः परस्पर विरुद्ध बातें यह लोग पेश करते हैं पर हमारा कथन यह है कि वैदिक धर्म ही सच्चा सन्तमत है। राधा स्वामी लोग गुरु नानक और कबीर साहिब को सन्त मानते हैं पर आप ही कहते हैं कि

क्या नानक क्या दादु पंथी क्या कबीर क्या पल्टु सन्ती।
सब मिल करते पिछली टेका वक्त गुरु का खोज न नका॥

अर्थात् नानक कबीर आदि कोई मानने के योग्य नहीं क्योंकि यह सब पिछली टेक अर्थात् पुराने धर्म पर हैं। न केवल यह संतों की वाणी भी उन्हें ऐसा ही सिद्ध करती है यहां सब से बड़े सन्त

गुरु नानक साहब के अनेक प्रमाण हम पेश करते हैं।

(१ वेदों में नाम उत्तम सो सुने नाहीं फिरें ज्यों बेतालियां। कहो नानक जिन सच तज्यो कूड़ लागो तिन जन्म जुये हारियां॥

(२) असंख ग्रन्थ मुख वेद पाठ (३) पाताला पाताल लख आकाशां आकाश ओड़क २ भाल थके वेद कहन इक बात (४) सुनिये जोग जुगत तन भेद। सुनिये स्मृत शासत वेद॥ (५) एक ओंकार वेद निर्मय (६) चखा चार वेद जिन स जे चारे खानी चार जुगां (७) दीपक बले अंधेरो जाय वेद पाठ मत पापां खाय, (८) चार पुकारें तू ना माने, खटवो एका एक बखाने। (९) सन्तसभा मिल करो बखान-स्मृत शासत वेद पुराण। (१०)बाचे वेद न विचारे आप डुब्बे क्यों पितरा तारें (११) सन्त सभा की निन्दा करते डूबे सब अज्ञान, शास्त्र वेद की विधि नहीं जानी व्यापे मन की मान (१२) वेद शास्त्र को तरन न लागा तत्त जोग न पछाने (१३) शास्त्र वेद स्मृति सिर तेरा सृष्टि चरन समानी (१४ वेद बखान करत साधु जन, भाग हीन समझे नाहीं खल, (१५) हरिजीओ हंकार न भावे वेद कूक्की सुनावे (१६) वेद कतेब कहो मत झूठें झूठा जो न विचारे (१७) शास्त्र वेद सोध सोध देख मुनि नारद बचन पुकारे, (१८) दीन दुना प्रथम होय भार अथर्वन थम खलोता (भाई गुरद स (१९) वेद अर्थदान बाहरे जे कोय कर्म करे निस सिर ग़ज़ब शैतान दा रब्बन ढोई दे (२०) घोखे शास्त्र वेद सब आन न कथत कोई (२१) वेद पुकारे वाचिये बानी ब्रह्म व्यास (२२) भाईरे गुरु बिन ज्ञान न होई पूछे ब्रह्म नारदे वेदव्यासे कोई (२३) अथर्ववेद पठ्यंग सकल पाप नठ्यंग (२४) ऋग्वेद पठ्यंग सकल पाप नठ्यंग (२५) वेद की रीत को त्याग करे न क्रिया को मान सो सिख सदावे (२६) वेद शास्त्र गुरु वाक को धारे और व्याध सम सगरी टारे (२७) देवे खबर खुदायहो वेद कतेब सुनाय (२८) चार कतेब

कुदरती मन्ने पवे कबूल (२९) चार कतेबां सोध के आपे पाक रसूल (३०) मन अल्ला दे कौल नूं मन्न कतेबां चार, अरबा अनासर मन्न तूं जो चार अल्ला दे यार।

३१—इस प्रकार के सारे वचन सिद्ध करते हैं कि गुरु नानक साहब तथा आपके अनुयायी वैदिक धर्म को ही मानने वाले हैं।

३२—गुरु साहब आर्यों की भाँति सत्य को सर्वदा एक रस मानते हैं।

सच्च पुराना ना थिये नाम न मैला होय,
सच्च उगे सब कोई सब थक रहे खलोय।

३३—यह केवल इस वेद वाक्य का आशय है कि:—

पश्य देव काव्यं न जीर्यति न ममार

३४—स्वामी दयानन्द की तरह गुरुजी भी एक धर्म को सब मतों में व्यापक मानते हैं।

नौ सौ नदी निनानवें मिले समुन्दर जाय,
सत समुन्दर ओहिया नदियां अन्त न पाय।

न केवल सच्चे सन्त सब वेदादि सत्य शास्त्रों के भक्त हैं, कोई भी सन्त ऐसा नहीं हुआ, जो राधा स्वामी को मानता या कभी इस नाम तक का भी रवादार रहा हो। हां वैदिकधर्मियों के ओ३म् ईश्वर, परमेश्वर, हरि, राम, कृष्ण, ब्रह्म, पर ब्रह्म, भगवान, सीताराम, त्रिलोकीनाथ, प्रभु अथवा साहिब, साईं, अल्ला, ख़ुदा आदि शब्द ही बोलते वा लिखते आये हैं देखिए:—

कबीर साहिब—आदि नाम निज मूल है और मन्त्र सब डार।
कहे कबीर निज नाम बिन बूडमुआ संसार॥
सुमिरन मे सुख होति है सुमरिन से दुख जाय।
कहे कबीर सुमरिन किए साईं माहिं समाय॥

रैदास साहिब—रैदास कहै जा के हृदै रहे रैन दिन राम।

सो भगता भगवन्त सम क्रोध न व्यापै काम ॥
रैदास रात न सोइया, दिवस न करिये स्वाद ।
अहिनिसि हरि जो सुमिरिये छांड़ि सकलप्रतिवाद ॥
गु० तुलसीदास—राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
दादूदयाल साहिब—दादू राम संभालि ले जब लग सुखी शरीर ।
फिर पाछे पछितहिगा जब लग मन धरै न धीर ॥
मेरे संसा को नहीं जीवन मरन का राम ।
सुपनै ही जनि वीसरै सुख हिरदे हरि नाम ॥
बाबा मलूकदास जी—जीवहुँ ते प्यारे अधिक लागें मोहि राम,
बिन हरि नाम नहिं मुझे और किसी से काम ।
साहिब मेरा सिर खड़ा पलक पलक सुधि लेई ।
जबही गुरु किरपा करें तबहि राम कछु देई ॥
सुन्दरदास सा०—सुन्दर सतगुरु मिहर करि निकट बतायो राम ।
जहां तहां भटकत फिरैं काहे को बे काम ॥
धरनीदास जी—धरनी धोख न लाइये कब हीं अपनी ओर ।
प्रभु सों प्रीति निबाहिये जीवन है जग थोर ।
यारी साहिबजी—नैनन आगे देखिए तेज पुञ्ज जगदीश ।
बाहर भीतर रमि रह्यो सो धरि राखो सीस ॥
दरिया साहिब—दरिया नाम है निरमला पूरण ब्रह्म अगाध ।
कहे सुने सुख ना लहै, सुमिरै पावै स्वाद ॥
दरिया हरि किरपा करी बिरहा दिया पठाय ॥
दूलनदास जी—नाम पुकारत रामजी लागहिं भक्त गुहारि ।
दूलन नाम सनेह को गहि रहु डोरि संभारि ॥
राम राम दुइ अच्छरै, रटै निरन्तर कोई ।
दूलन दीपक बरि उठै, मन परतीत जो होई ॥

बुल्ला साहब—आठ पहर चौंसठ घरी जप बुल्लो धर ध्यान।
नहिं जानो कौनी घरी आइ मिलैं भगवान॥

केशोदास जी—पंच तत्त गुन तीन के पिंजर घड़े अनन्त।
मन पंछी सो एक है पार ब्रह्म को तंत॥

चरनदासजी—आदि पुरुष किरपा करौ सब औगुन छुटि जाहिं।
साध होन लच्छन मिलें चरन कमल की छाँहिं॥
तुम्हरी सक्ति अपार है लीला को नहिं अन्त।
चरनदास यौं कहत है ऐसे तुम भगवंत॥
यह सिर नवै तो राम कूं नाहीं गिरियो टूट।
आन देव नहिं परसिये यह तन जावो छूट॥

बुल्लेशाह—बुल्ला होर ने गलड़ियां इक अल्ला अल्लादी गल्ल।
कुज रौला पाया आलमां कुज काग़ज़ां पाया झल्ल॥
बुल्ला आसिक हायों रब्बदा गुलामन होई लाख।
लोग काफ़र काफ़र आखदे तूं आहो आहो आख।
बुल्ला अच्छे दिन तां पिच्छे गए, जब हर किया न हेत।
अब पछतावा क्या करें जब चिड़ियां चुग लिया खेत॥

सहजोबाईजी—सील छिमा संतोष गहि पांचों इन्द्रीजीत।
राम नाम ले सहजिया मुक्ति होन की रीत॥
सहजो भज हरि नामकूं तजो जगत सनेह।
अपना तो कोई है नहीं अपनी सगी न देह॥

दयाबाईजी-जै जै परमानन्द प्रभु परम पुरुष अभिराम।
अन्तरजामी कृपानिधि दया करत परनाम।
राम नाम के लेत ही पातक झरैं अनेक।
रे मन हरि के नाम की राखो मन में टेक॥

ग़रीबदासजी—दिल के अन्दर देहरी तहां मिले भगवान
सोहिब तेरी साहिबी कैसी जानी जाय॥

त्रिसरेनु में झीन है नैनों रहा समाय।
अनन्त कोटि ब्रह्मण्ड का रचनहार जगदीस॥
ऐसा सूक्ष्म रूप धरि आन विराजा सीस।
गुलाल जी–ओअकार समाइलो जोत सरूपी नाम।
जिन यह ब्रह्म विचारलौ सोई गुरु हमार॥
पलटू जी–राम नाम जेहि मुखन तें पलटु होय प्रकास।
तिन के पद वंदन करौं वे साहिब में दास॥
तुलसी जी–जो तिरलोकीनाथ की माया है बलवान
सो सिद्धि सिध सब कहें आप रूप भगवान॥

यदि पुस्तक वृद्धि का भय न होता तो सब सन्तों की बानी से राधा स्वामी मत की शिक्षा का पूरा खण्डन दिखाया जाता तथापि ऊपर के प्रमाण मुख्य बात के प्रबल प्रमाण हैं।

सर्ग १५ — जैन, इसाई और इसलाम

३९— जैनियों के विषय में स्वामी जी के एक दो वाक्य उद्धृत किये गये हैं पर ग़लती कोई नहीं बताई गई। ईसाई मत के विषय में स्वामी जी के इन शब्दों पर आक्षेप किया है कि "मसीह ने जो यह कहा कि तोबा किये और बच्चों की मानिन्द बने बिना आसमान की बादशाहतमे दाखिल न हो सकोगे" यह दोष युक्त है। साहबजी महाराज छोटे बच्चों के शब्द से मासूम या निष्पाप का भाव लेते हैं, और स्वामी जो का आशय यह है कि विद्या तथा विचार शून्य बाल बुद्धि लोग असम्भव सी वा अयुक्त बातोंको मान लेते हैं। पर निष्पाप होने पर भी विद्या सम्बन्धी न्यूनता दूर नहीं होती और

मनुष्यकृत मतों को विद्या तथा बुद्धि के दोष से ही माना है अतः स्वामी जी का रिमार्क युक्त एवं सत्य है।

४०—स्वामी जी ने बाइबल पर एक एतराज़ किया है कि सितारे तो अनेक लोक है उनका वा फ़ौजों के गिरजाने का वर्णन सत्य नहीं और चूंकि ईसा बढ़ई पुत्र था संभव है वह बढ़ई पेशा रहा हो साथ ही लोग अशिक्षित थे अतः उसका ऐसा लिखना और लोगों का इसे मान लेना साधारण सी बात है। साहब जो बिना फ़ीस के वकालत करते हैं कि बढ़ई के घर जन्म लेने से उन का बढ़ई का काम करना माना नहीं जा सकता। परन्तु नबी बनने से पूर्व उनके किसी और काम करने का पता नहीं देते, दूसरे खानदानी काम कम करने का अनुमान प्रायः प्रत्येक मनुष्य के विषय में हो सकता है। तीसरे स्वामी जी के शब्दों से केवल ऐसी संभावना पाई जाती है अतः इस पर वाद-विवाद ले बैठना विचार शून्यता का परिणाम है।

४१—बाइबल में पहिला शब्द है 'इब्तिदा' वैदिक सिद्धान्त के अनुसार कार्य्य जगत का आद होता है परन्तु हर प्रलय के पश्चात अर्थात वर्तमान सृष्टि से पहिले भी बार बार उत्पत्ति हुई है। परन्तु बाइबल से यह पता नहीं चलता इस लिये स्वामी जो कहते हैं ऐसी अपूर्ण तथा सन्दिग्ध शिक्षा युक्त पुस्तक को ईश्वरोक्त मानता और पूर्ण, निभ्रन्ति वेदमत को न मानता अनुचित है। इस युक्तियुक्त कथन पर भी साहब जी फ़रमाते हैं कि क्या वेदानुयायी ही ईश्वरीय रचना का हाल जानते है। हम कहते है, निःसंदेह ऐसा ही है। न मनुष्योत्पत्ति के विषय में वैदिक धर्मी अनभिज्ञ हैं न प्रवाह से अनादि रचना के सम्बन्ध में। ऐसा ही यह कहना भी ठीक नहीं „ एक व्यक्ति के उत्तर न दे सकने से ईसाई मत मिथ्या हो हो सकता, हम कहते हैं कि स्वामी जी के

शब्दों का व्यक्ति से सम्बन्ध ही नहीं आप में हिम्मत है तो किसी और से ही यह निश्चय करवा दीजिये कि बाईबल उत्पत्ति के प्रवाह को मानती है।

४२—हज़रत मसीह के जन्म सम्बन्धी आक्षेप के विषय में कहा है कि यदि आदि सृष्टि में हज़ारों मनुष्य माता पिता के बिना उत्पन्न हो सकते हैं तो एक बालक के पिता के बिना पैदा होने में क्या आपत्ति हो सकती है, हम कहते हैं बिना माता पिता के तो हज़ारों लाखों हुये उस समय जब माता पिता न थे और बिना बाप के पैदा हुआ केवल एक, वह भी उस समय जब प्रत्यक्ष रूप से पिता से पैदा होने का नियम निर्विवाद रूप से प्रचलित है और इस नियम के विरुद्ध कोई उदाहरण बाईवल की युक्ति में नहीं मिलता। प्रथम तो बाईवल से ही पिता का प्रमाण भी मिलता है और दूसरे स्वामी जी रज और वीर्य्य के मेल के असली नियम का अमैथुनी सृष्टि में भी अभाव कहीं नहीं कहते अतः नियम दोनों में एक है। आदि काल में भूमि का गर्भाशय है और इस समय माता के उदर में वह गर्भाशय सुरक्षित है। जब पूर्वकाल में भी 'अन्नाद रेत' अर्थात् अन्न से वीर्य्य और 'रेतसः पुरुषः' अर्थात वीर्य्य से मनुष्य के पैदा होने का नियम है तो बिना बाप के पैदा होना न आदि काल में हुआ न अब हो सकता है।

४३—दीन इसलाम सम्बन्धी पहिला आक्षेप स्वामी जी की आलोचना पर है कि जब वेद में सब प्रथम ब्रह्म का ओ३म् नाम है तो क़ुरान की बिस्मिल्ला पर एतराज़ कैसा? परन्तु आक्षेप अल्लाह के नाम पर है ही नहीं, बल्कि इस पर है कि "शुरू करता हूँ साथ नाम अल्ला के" इन शब्दों से आरम्भ करने वाला मनुष्य सिद्ध होता है, जो सर्व प्रथम अल्ला का नाम लेता है। यह उपदेश नहीं दिया गया कि हे मनुष्यो! तुम आरम्भ में अल्ला का नाम

लिया करो, न जैसा कि स्वामी जी कहते हैं, यह लिखा है कि मनुष्यों को उपदेश देने के लिये आरंभ किया जाता है अतः अति उत्तम काम करने और खुदा का नाम लेकर शुरू करने पर भी यह शब्द खुदा की ओर से नहीं। आप वैसे भी इसी शैली का सम्बन्ध बताते हैं परन्तु भाष्यादि के शब्दों से परिणाम निकालना और मूल मंत्र पर विचार न कर सकना आप पर ही दोष लगाता है। इस के अतिरिक्त आप वाला आशय इस बिस्मिल्ला के पश्चात आई हुई सुराफ़ातहकी इन दो आयतों से पूरा होता है "अल्हम्दु-लिल्ला हेरब्बिल आलमीन अर्रहमानिर्रहीम।" जब इन में अल्ला, रहमान और रहीम के शब्द मौजूद हैं तो पहिली बिस्मिल्ला निश्चय अनावश्यक थी। इस हेतु से एक और पुनरुक्ति दोष भी सिद्ध है तथा आप की वकालत व्यर्थ है।

४४—आदम को सिजदा न करने पर शैतान के साथ जो ख़ुदा का वाद-विवाद हुआ, उस पर स्वामी जी ने कहा शैतान ने यह बातें ख़ुदा से सीखी होंगीं। साहब जी उत्तर देते हैं श्वेता श्वतरोपनिषद् में भी तो कहा है कि "महेश्वर याने माया का मालक माया का पसारा फैलाता है और जीव बेचारा माया के सामान में बंधता या फैलता है। आप गीता अध्याय १८ श्लोक ६१ का इशारा भी देते है कि ईश्वर अपनी माया से सब को घुमा रहा है मानो यह सब जीव कुम्हार के चक्रपर चढ़े है। परन्तु कृपानिधान! यह 'मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त वाली बात है। कोई मुस-लमान माया और शैतान को एक नहीं मानता। उपनिषद् वाली माया तो है प्रकृति और गीता के इस श्लोक वाले माया शब्द का अर्थ ईश्वरीय ज्ञान या कर्मसम्बन्धीन्याय नियम तथा प्रकृति दोनों हैं अतः माया और शैतान का मेल कैसा? रहा यह कहना कि हज़ारों लाखों मनुष्य एक से एक बढ़ कर पाप करते हैं और ब्रह्म वा

पार ब्रह्म को जाहिरा कुछ पेश नहीं जाती, इस का उत्तर आप के शब्दों से ही मिलता है कि ज़ाहिर तो ऐसा होता है कि ब्रह्म की पेश नहीं जाती परन्तु बुद्धिमान जानते हैं कि वास्तव में पापी अवश्य ही दंड पाते और इस में सर्वथा विवश है।

४५—बहिश्त सम्बन्धी स्वामी जी के एतराज़ पर आप फ़रमाते हैं कि ब्रह्मलोक में भी तो स्त्रियों की विद्यमानता पाई जाती है। छांदोग्योपनिषद् प्रपाठक ८ खण्ड १२ में लिखा है कि ब्रह्म लोक में पहुँचकर मनुष्य का आत्मा निर्मल हो जाता है और परम ज्योति को प्राप्त होकर अपने असली रूप में प्रगट होता है वहां वह उस शरीर को जिसमें वह जन्मा था स्मरण करता हुआ स्त्रियोंके, यानों के, विज्ञातियों के साथ हंसता खेलता और आनन्द भोगता हुआ विचरता है" इस मंत्र में आपने घोर अनर्थ किया है कि 'नोपजन्म' में जो नकार था उसका अर्थ छोड़ कर याद न करता हुआ की जगह याद करता हुआ' लिख दिया है और अपने पाप के आधार पर दोष उपनिषद् को दिया है। परन्तु वास्तव में यहां शरीर धारी जीवात्मा के सारे सांसारिक सम्बन्धों को भूल जाने और शरीर रहित होकर आनन्दपूर्वक विचरने को मोक्ष का लक्षण बताया गया है

अथर्व वेद के जिन मन्त्रों के विषय में इस लेख में भ्रांति फैलाई गई है उन पर अन्यथा विस्तार पूर्वक विचार किया गया है यहांवह बताना पर्याप्त होगा कि "इन्द्र उनका शशन नहीं जलाता" इससे सांसारिक काम भोगकी शक्तिका संकेत नहीं किन्तु स्वाभाविक प्रेमपूर्ण पवित्र शक्ति अभिप्रेत है जो कारण शरीर अर्थात् स्थूल शरीर रहित आत्मा का 'स्वाभाविक गुण है जो कभी नष्ट नहीं होता।

४६—स्वामी जी .कुरान के इस कथन पर ऐतराज़ करते हैं कि

"अल्ला आफ़ताब को मशरिक से लाता है तू मग़रब से ले आ।" आशय इससे यह है कि मशरक़ और मग़रब कोई स्वतन्त्र तथा पृथक् स्थान नहीं। परन्तु साहब जी ने समझ लिया कि सूरज के आने जाने पर एतराज़ है और इसलिये आप छांदोग्य ३—६—४ का प्रमाण देते हैं। परन्तु उसमें आना जाना का शब्द ही नहीं। पूर्व से उदय और पश्चिम में अस्त लिखा है और इससे सूर्य्य के गुप्त वा प्रगट होने का तात्पर्य है दूसरा प्रमाण यजु० ३३। ४३ का है जो स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भा० भू० में दिया है। इसके दो अनुवाद दिये हैं। एक तो पं० जयदेव शर्मा के यह शब्द हैं कि:—

"सूर्य्य आकर्षण करने वाले लोक समूह के साथ भ्रमण करता हुआ नाशवान प्राणियों और अविनाशी तत्त्वों को अपने २ स्थान पर स्थिर करता है और तेजस्वी स्वरूप से सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ जाता है दूसरे स्वामी दयानन्द के शब्द दिये हैं कि "सब लोकों को दिखाता हुआ प्रकाशमान सूर्य्य देव अविनाशी आकाशादि और मरणधर्मा प्राणिमात्र को अपने २ प्रदेश में स्थापित करता हुआ उदयअस्त समय में आता जाता है". परन्तु इन दोनों में से किसी का भाव एक से दूसरे स्थान तक जाने आने का नहीं। पहिले का अर्थ यह है कि सूर्य्य सब लोकों को प्रकाशित किये जाता है तथा वह आकर्षण युक्त लोकों के साथ भ्रमण किये जाता है। वर्तमान रहने का शब्द स्थानान्तर जाने को स्पष्ट करता है। स्वामी जी के तर्जुमे में तो उदय अस्त समय में आने जाने के शब्द और भी स्पष्ट हैं अर्थात् देशान्तर नहीं समयान्तर गति है कि वहीं का वहीं रहते हुये एक समय उदय और एक समय अस्त होना कहा जाता है।

४७—स्वामी जी का एतराज है कि क़ुरान आसमान से पानी

उतारने का ज़िक्र करता है पर ज़मीन से पानी चढ़ाने का नहीं करता है साहब जी यह वकालत करते हैं कि गैस रूप में पानी पहले आसमान में ही था अतः एतराज़ ठीक नहीं। हम कहते हैं यदि आदि सृष्टि का प्रकरण होता तो साहब जी के शब्दों में कुछ सार होता पर इस कथन में यह दोष है कि तब तो ज़मीन बनी नहीं थी उसने पानी उतारा कहां ? यदि साहब जी और जगह में आसमान पर पानी चढ़ने का वर्णन दिखाते तो बात बन जाती। वर्तमान अवस्था में तो स्वामी जी का एतराज़ सर्वथा युक्ति युक्त है क्योंकि पानी के ऊपर जाने और नीचे आने की दोनों बातों का सब प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं।

४८—'पहाड़ इसलिये रखे गए कि ज़मीन हिल न सके' इसमें स्वामीजी इसलिये दोष देते हैं कि ज़मीन अपने महवर के गिर्द भी घूमती है, सूर्य्य के गिर्द भी और भूंचाल में भी हिलती है। साहब जी महाराज लाल बुझक्कड़ के रूप में फ़रमाते हैं कि—"ख़ुश्क ज़मीन (Cruit) पिघले हुए मसाले पर तैरती है। यदि पहाड़ न हों तो दिन रात ज़लज़ले आते रहें। पहाड़ों के भार ने सूखी ज़मीन को पिघले हुए मसाले की सतह पर ठहरा रखा है। परन्तु यह तो वही बात है कि पृथ्वी शेषनाग पर है तो शेषनाग काहे पर है अथवा पृथ्वी बैल के सिर पर है तो बैल काहे पर है अर्थात् पिघले हुए मसाले पर ज़मीन तैरती है तो वह पिघला हुआ मसाला किस आधार पर है। फिर ज़मीन तैरती है तो उस पर बोझल पहाड़ रखने से तो वह डूबेगी। पिघला हुआ मसाला दबाव पड़ने से किनारों की तरफ़ पिचक कर मार करेगा या पहाड़, ज़मीन और वह मसाला सब नीचे ही नीचे गिरते हुए न जानें किस खड्डु में गिरें और चकनाचूर हों। अतः पिघले हुए या किसी और मसाले पर ज़मीन के तैरने या ठहरने वाली बात आकर्षण सिद्धांत

के यथार्थ आशय को न जानने का परिणाम है।

सर्ग १६—जयपुर में शैवमत का प्रचार
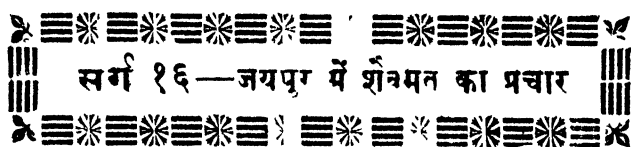
४९—स्वामी जी के जीवन चरित्र से जयपुर में वैष्णव सम्प्रदाय के खण्डन और शैवमत के मण्डन वाली बात उद्धृत की है जिसमें महाराज ने भी शैवमत को ग्रहण किया था और स्वामी जी ने हज़ारों को रुद्राक्ष मालायें अपने हाथ से दी थीं यहां तक कि हाथी घोड़े के गले में भी माला पड़ी। साहब जी की इस पर यह चोट है कि मूर्ति पूजा से घृणा हो चुकने और स्वामी बृजानन्द से दीक्षा पा चुकने के पीछे यह घटना हुई। पर इस से सिद्ध होता है तो केवल यह कि मनुष्य ठोकर खा खाकर संभलता है। संस्कार, सम्बन्ध तथा अवस्थायें प्रायः मनुष्य पर अपना प्रभाव डाल लेती हैं। स्वामीजी आप इन ठोकरों का वर्णन करते हैं। भंग का, हुक्का का, तथा जयपुर की घटना का पता भी जनता को आपके स्वरचित चरित्र से ही लगा। पर जब उन्होंने इन दोषों को बड़ी वीरता से दूर कर दिखाया और असत्य के त्याग का नियम पालन किया तो आक्षेपकों की कलमें तो टूट चुकीं, ज़बानें तो बन्द हो चुकीं और काग़ज़ तो फट चुके। जयपुर वाली बात को भी स्वामी जी ने कितना बुरा समझा और कहां तक आपने इससे सत्य का ग्रहण करने का भाव प्रकाश किया, इस का पता इससे लगता है कि अमरीका के स्काट और मैडम ब्लैवटस्की तथा थियोसाफ़ीकल सोसाइटी को वेद पर विश्वास न होने के कारण जब आपने पृथक करना चाहा तो नीतिनिपुण लोगों ने कहा, आर्य्यसमाज

के लिए बुरा प्रभाव पड़ेगा, अतः आप नीति से काम लें। स्वामीजी ने कहा—"अब मैं तुम्हारी बात न मानूंगा। पालिसी करना धर्म विरुद्ध है। आगे जयपुर में हमने कुछ महाशयों की प्रेरणा पर वैष्णव के मुकाबले में शैव मत को अच्छा सिद्ध किया तो वहां सब मनुष्यों तथा राज घर के हाथी घोड़ों तक को रुद्राक्ष पहिनाये गये। अब तक पुराना कोई २ आदमी मिलता है और रुद्राक्ष दिखाकर चिड़ाता है कि यह वही है जिसके गुण आपने गाये थे।" सो अब तो हम कदापि धर्म के मुकाबले में पालिसी का दखल न होने देंगे और ख़ालिस सत्य ही कहेंगे" अतः इससे अधिक हमें उत्तर में कहने की आवश्यता नहीं।

जो दोष उसे मालूम हुआ कर हिम्मत उसने ख़ुद छोड़ा।
तब तेरी नियत क्यों बिगड़ी जो उस पर ही इसरार करे॥

सर्ग १७—मांस विषय सम्बन्धी एतराज़

५०—(साहब जी) सत्यार्थ प्रकाश संस्करण १ पृष्ठ ३०१-३०२ पर लिखा है कि हवन में आहुति देने के पीछे मांस खाया जा सकता है।

(आर्य) यह सर्वथा असत्य है। स्वामी जी ने कहीं ऐसी शिक्षा नहीं दी एक दो सम्प्रदायों ने वेद विरुद्ध जो मर्यादा चलाई उसका वर्णन करके स्वामी जी ने उसका अपनी ओर से खण्डन अवश्य किया है।

५१—(साहब जी) संस्कार विधि १८७७ ई० पृष्ठ ४३ पर अन्न प्राशन संस्कार के समय बच्चों को तीतर का शोरबा देने की आज्ञा दी गई है।

(आर्य्य) स्वामी जी ने कहीं यह शिक्षा नहीं दी। किसी अन्य मतके प्रमाणमें कोई वेद विरुद्ध भाव का शब्द हो तो उसे स्वामीजी का सिद्धान्त मानना केवल मूर्खता की बात है। वह विज्ञापन देकर स्पष्ट कह गये हैं कि मेरी पुस्तकों में जो अन्य ग्रन्थों के प्रमाण हैं वह उन ग्रन्थों का मत जताने को हैं उनमें से वेदानुकूल का मैं साक्षीवत प्रमाण करता हूँ और वेद विरुद्ध का अप्रमाण। स्वामी जी अपने शब्दों में हर कहीं मांस भक्षण का प्रबल खण्डन करते हैं अतः एतराज़ निरर्थक है।

५६—(साहब जी) र० ब० मूलराज का कहना है कि मैंने सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे एडीशन के हाशिये पर कुछ सतरें देखी थीं और मुन्शी समर्थदास की चिट्ठी में भी एक फ़िकरा पढ़ा था कि मैं मांस के पक्ष में लिखी हुई पंक्तियों को सत्यार्थ प्रकाश में छापना उचित नहीं समझता।

(आर्य्य) र० ब० मूलराज तथा एक और भद्र पुरुष ने आज से ४५ वर्ष पूर्व जो भ्रांति फैलाकर समाज में फूट डलवाई थी उस पर पूरा आन्दोलन हो कर सारे शंकाओं की निवृत्ति करदी गई थी अतः पुराने एतराज़ चुराकर दर्ज करना अत्यन्त दोष युक्त है। फिर यदि वह शब्द ही दिये जाते तो भी उन पर कुछ विचार होता हम बलपूर्वक कहते हैं, कि किसी भी पुस्तक व लेख से स्वामी जी का कोई शब्द आज तक नहीं दिखाया गया जिससे कहो स्वामी जी की निज सम्मति कभी भी मांस के पक्ष में सिद्ध हो। आपने ही एस० डी० शर्मा की जो चिट्ठी पेश की है उससे स्पष्टतः मांस का खण्डन सिद्ध होता है। देखिये उसके शब्द:—

"यवन मत ईसाई धर्म का पुत्र और ईसाई धर्म बौद्ध धर्म का पुत्र है और बौद्ध धर्म उस क्रूरता (वैदिकी हिन्सा हिन्सा न भवति) के जो यज्ञ तथा वेद के नाम से निरपराध पशुओं पर की

जाती थी आदर्श विरुद्ध हैं।"इस से स्वामी जी यज्ञ में भी निर-पराध पशुओं को मारने का पूरा २ विरोध करते हैं।

५३—स० प्र० प्रथम संस्करण से आप जो प्रमाण देते हैं, उसमें भक्ष्य और अभक्ष्य दो प्रकार के लिखे हैं (१) वैद्यक की दृष्टि से जैसे ग्राम का सूकर और मुरग़ा गंदे मलादि खाने से अभक्ष्य हैं। इस शास्त्र में देश काल वस्तु अपने शरीर की प्रकृति के अनु-कूल और बल बुद्धि प्राक्रम तथा नीरोगता बढ़ाने वाले पदार्थ भक्ष्य हैं। दूसरे धर्मशास्त्र की रीति से मद्य अभक्ष्य तथा मनुष्यों के उप-कारक पशुओं का मांस तथा विना होम के अन्न और मांस अभक्ष्य हैं।" अन्तिम शब्दों से यह आशय लिया जाता है कि स्वामी जी होम में आहुति देने के पीछे मांस भक्षण की आज्ञा देते हैं परन्तु शब्दों के परस्पर के सम्बन्ध को समझने पर साफ़ पाया जाता है कि यह स्वामी जी का सिद्धान्त नहीं। संस्कृत पुस्तकों में भक्ष्य और अभक्ष्य के २ प्रकार जिस प्रकार लिखे हैं उसका संकेत आप ने कर दिया है कि वैद्यक शास्त्र में शरीर के स्वास्थ्यादि को लक्ष्य रखा गया है और धर्मशास्त्र में मनुष्य के उपकार को।

५४—इसके पीछे स्वामी जी प्रश्नोत्तर के रूप में इस विषय को स्पष्ट करते हैं कि वास्तव में उपकार की दृष्टि से ही मांस भक्षण का त्याग करना चाहिये यह कहना कि दूसरे को पीड़ा होने के कारण मांस निषिद्ध है सत्य नहीं क्योंकि पीड़ा से तो कोई बच नहीं सकता। मक्खी को भोजन से उड़ाने पर भी पीड़ा होती है। पीड़ावाद का निषेध करते हुये जो युक्ति आदि दी हैं उनसे पूर्वा-पर को न समझने वाले स्वामी जी को मांस के पक्ष में कहते हैं पर स्वामी जी इसके पीछे उन्हीं युक्तियो के बल पर उपकार वाद का मण्डन करके सिद्ध करते हैं कि वास्तव में मांस भक्षण इस लिये निषिद्ध है कि उन पशुओं से मनुष्यों का बड़ा २ उपकार होता है।

साथ ही आप अपना मन्तव्य इस प्रकार वर्णन करते हैं:—

"मनुष्य लोगों को यह चाहिये कि गाय, भैंस, बैल, छेरी, भेड़ और ऊंट आदिक पशुओं को कभी न मारें क्योंकि इन ही से सब मनुष्यों की आजीविका चलती है जितने दुग्धादिक पदार्थ होते हैं वे सब उत्तम ही होते हैं और एक पशु से बहुत आजीविका मनुष्यों की होती है। मारने से जहां सौ मनुष्य तृप्त होते हैं उस गाय आदि पशुओं के बीच में से एक गाय की रक्षा से १० हज़ार मनुष्य की रक्षा हो सकती है इससे इन पशुओं को कभी न मारना चाहिये।"

क्या इन शब्दों को पढ़ने वाला कोई भी बुद्धिमान मनुष्य स्वामी जी के मन्तव्य विषय में कोई शंका कर सकता है।

५५—न केवल यह स्वामी जी उस सत्यार्थ प्रकाश में सिद्ध करते हैं कि जिन लोगों ने होम करके मांस की आज्ञा दी उनको भी परोपकार ही लक्ष्य था। मांस भक्षी लोगों के पंजे से छुड़ाने के लिये हीउन्होंने नीति से काम लेकर मांस की आज्ञा दी पर हवन की शर्त लगाकर उसे अति संकुचित भाव दिया। फिर बलिदान के लिये जो नर बैल या बंध्या गाय का विधान किया इसका भी आशय यह था कि नरबल एक का बलिदान होने से अधिक को हानि न होगी क्योंकि एक बैल कितनी ही गौओं को गर्भवती कर सकता है। और बंध्या गौ से भी उपकार नहीं होता इसलिये उसकी बली से भी हानि कम होगी।

५६—सार यह कि जितना अधिक स्वामी जी के पहिले सत्यार्थ प्रकाश वाले लेख पर विचार होता है उतना ही दृढ़ निश्चय होता है कि स्वामी जी जहां किसी अवस्था में मांस भक्षण का विधान नहीं करते वहां जिन लोगों ने पशु यज्ञ का विधान किया उन्हें भी नीति विशेष से पशुओं की रक्षा तथा मनुष्य का उपकार ही लक्ष्य था, यह भी सिद्ध करते हैं।

५७—न केवल इस प्रकरण में अन्य अनेक स्थानों में भी मांस भक्षण का निषेध पहिले सत्यार्थ प्रकाश में है। अष्टांग योग में पहिला अङ्ग यम है और पांच यमों में सर्व प्रथम अहिंसा है। धर्म का लक्षण अहिंसा आदि लिखा है। राजा तक को १८ व्यसनों से बचने का उपदेश दिया और पहिला व्यसन शिकार को लिखा। यह भी लिखा कि गौ भैंस छेरी बैल ऊंट गधा आदि किसी पशु को राजा न कभी मारे न मरवाये क्योंकि दुग्ध घृत अन्न आदिक तथा मनुष्य का सब व्यवहार इन्हीं से चलता है। ११ वें समुल्लास में भी यही उपदेश है। एक गऊ के द्वारा लाख मनुष्यों का उपकार हिसाब लगा कर दिखाया गया है और पशु रक्षा के लिये चरागाह आदि का यथोचित प्रबन्ध रखने की पूरी ताकीद की है। न केवल यह चारवाक, जैनादि के वेद सम्बन्धी आक्षेप पर विचार करते हुये अपनी सम्मति इन स्पष्ट शब्दों में दी है कि "यज्ञ में पशु को मारने से स्वर्ग में जाता है यह बात किसी मूर्ख के मुख से सुन ली होगी ऐसी बात वेद में कहीं नहीं लिखी।"

५८—मांस विषय में टीढ़ी गढ़वाल की घटना दी गई है कि एक ब्रह्मण ने स्वामी जी की ज़ियाफ़त की परन्तु स्वामी जी उसके हां गोश्त पकता देख कर लौट आए तथा वार्तालाप करते हुये कहा:—

"आप मांस भक्षी हैं मेरे योग्य तो केवल फल आदि है। मांस खाना तो दूर रहा मुझे तो इस के देखने से ही रोग हो जाता है।" इस घटना से मांस विषय सम्बन्धी सारी शंकाएं निर्मूल हो जाती हैं पर इस के मुकाबले पर आप दूसरी घटना पेश करते हैं जिस में स्वामी जी ने चाकू से शव को चीरा और उस की जांच की थी। हम नहीं समझते कि मांस भक्षण के विरुद्ध भाव

और मनुष्य शरीर सम्बन्धो वैज्ञानिक विचार किस प्रकार एक तराजू पर तोले जा सकते हैं।

——

सर्ग १८—कहां जात कर्म संस्कार और कहां नाम स्मरण

५९—स्वामी जी ने कोरे नाम स्मरण का जो खंडन किया है, उसके विरुद्ध साहब जी जात कर्म संस्कार की विधि का प्रमाण देते हैं कि नवजात पुत्र के कान में वेदोसि कहना और शहद को सिलाई से जबान पर ओ३म् लिखना यह दोनों बातें बच्चे के लिये निरर्थक हैं। परन्तु इन २ बातों का नाम स्मरण के प्रकरण से क्या सम्बन्ध ? सन्तान को पूर्ण धर्मात्मा बनाने और मनुष्य शरीर की सफलता के लिये वेदज्ञान अति क्या एक मात्र आवश्यक साधन है और इस सफलता का अन्तिम प्रकाष्ठा ओ३म् की प्राप्ति है। जन्म लेते ही इन २ के सम्बन्ध में संस्कार डालना सफलता की आधार शिला रखना है। बच्चा निःसंदेह उस समय ज्ञान नहीं रखता, परन्तु जन्म लेते ही उस की शिक्षा का आरम्भ होना आवश्यक है और उस शिक्षा का वेद और ओ३म् के साथ जोड़ा जाना उस से भी अधिक आवश्यक है। अतः वह सुने तो ओ३म् और बोले तो वेद या उस की पवित्र और मीठी वाणी, इस का आरम्भ माता पिता ही इस संस्कार में कराते हैं। क्या ही अच्छा होता कि आप संस्कार विज्ञान को जान कर यह आक्षेप करने से बाज़ रहते। ख़्वाजा हसननज़ामी साहब 'कुरान आसान क़ायदा' में लिखते हैं। रसूल साहब के व्यवहार से भी यही सिद्ध होता है कि कान की शिक्षा आंख की शिक्षा से मुख्य है। हुजूर नव जात बालक के दाएं कान में अज़ान कहते थे और बाएं में तकबीर,

मानो पैदा होते ही कान की शिक्षा शुरू करदी जाती थी।" कान को आंख पर प्रधानता मिलना तो असत्य है, पर पैदा होते ही शिक्षा का आरम्भ होना मुहम्मद साहब के व्यवहार से भी सिद्ध है।

६०—नाम स्मरण 'विषय में एक और बात गायत्री जाप की है। मु० जी० च० में है कि ल० जगन्नाथ रईस फ़र्रुख़ाबाद के यज्ञोपवीत के अवसर पर ११ ब्राह्मण ।।) प्रति दिन पर ११-११ हज़ार गायत्री जप करते रहे। पहिले तो स्वामी जी अर्थ सहित जप के पक्षपाती और यदि बिना अर्थ के जप हुआ तो स्वामी जी न आप करने वाले न दूसरों को दक्षिणा देने वाले और हिन्दुओं में संस्कारादि पर जपादि कराने का रिवाज बहुत है अतः स्वामी जी पर आक्षेप कैसा ?

——

सर्ग १९—वेद विषय में स्वामी जी का मन्तव्य

६१—(एतराज़) वेद के सम्बन्ध में स्वामी जी परस्पर विरुद्ध बयान देते हैं। साथ ही ब्राह्मो समाज का सा मन्तव्य रखते हैं अर्थात सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भा० भू० में वेद चार संहिताओं को माना है। वेद के शब्दों को सत्य और ईश्वर के ज्ञान में सर्वदा क़ाइम माना है, परन्तु स्वामी कल्याण आनन्द के प्रश्नों के उत्तर में अप्रकाशित पत्र में लिखा है कि वेद काग़ज़ पर अंकित स्याही या कपड़े की जिल्द का नाम नहीं, विज्ञान का है। ज्ञान का अनन्त अथवा अथाह समुद्र काग़ज़ के कूज़े में बन्द नहीं हो सकता। वेद सत्य विद्या की पुस्तक है, इस का अर्थ

यही है कि ऋषियों के संचित अनुभव से लाभ तथा सत्य का अन्वेषण करना, किसी व्यक्ति वा पुस्तक विशेष की दासता ने ही मानव समाज में गुलामी का भाव घुसा दिया है।। विश्व परिचय (ज्ञान) और समस्त संसार का इतिहास सच्चा वेद भाष्य है और संसार सब से बड़ा शास्त्र है । यह अन्तिम शब्द कि संसार सब से बड़ा शास्त्र है ब्रह्मो समाज के कहे गये है और फ़ारसी के इस बचन में इस आशय को बन्द किया गया है कि—

चश्मे दारी व आलम दर नज़रस्त
दीगरत्रि मुआल्लिम व किताबत बायद ।

आंख तुझे मिली है और सृष्टि तेरे सामने है अतः अन्य गुरू या पुस्तक की क्या आवश्यक्ता है।(आर्य्य) न स्वामीजी के कथनमें परस्पर विरोध है न इस पत्र मे ब्रह्मो समाज का पक्ष सिद्ध होता है केवल आप की समझ का फेर है। पहिले वेद और वैदिक शब्द अनित्य कहे गये तो काग़ज़ स्याही अनित्य पदार्थों से उसे पृथक करने का आशय भी उस की नित्यता ही है, (२) शब्द अर्थ और सम्बन्ध नाम ज्ञान का अनन्त, अथाह अपार सागर कहा तो काग़ज़ वाली किताब में उसे परिमित समझने का भी निषेध किया है (३) एक जगह वेद को सत्य विद्याओं का पुस्तक कहा तो दूसरी जगह में भी उस आत्मा में अनुभव होने वाला ऋषियों का संचित अनुभव ही कहा। (४) इसीसे लाभ पाना या सत्य की खोज करना अभीष्ट है (५) किसी व्यक्ति वा पुस्तक की दासता से बुद्धि तथा आत्मा सम्बन्धी स्वतन्त्रता नष्ट होती है। (६) प्रत्यक्ष जगत तथा जो कुछ इस पर बीता, यह सब वेद का भाष्य है अर्थात् रचना का नियन्त्रण सर्वदा वेद के अटल नियमों के आधार पर होता है। (७) संसार सब से बड़ा शास्त्र है, तो वेद के क्रियात्मक प्रकाश से है। यदि वेद न हो तो संसार रूपी

शास्त्र की रचना ही न हो सके अतः ब्रह्म समाज वाली पोज़ीशन कहां रही। वह तो नेचर वा संसार को स्वतन्त्र शास्त्र मानते हैं वेद का भाष्य नहीं मानते ?

६२—ब्रह्मोसमाजी राय बहादुर भोलानाथ के जीवन चरित्र से यह शब्द नक़ल किये हैं कि स्वामीजी को भोलानाथ ने कहा कि वेद को ईश्वर प्रणीत कहना बुद्धिमानों के सामने व्यर्थ है इस का उत्तर स्वामीजी ने यह दिया कि ऐसा न कहें तो लोग अपने साथ कैसे मिलें. और अपनी गाड़ी चले कैसे ? हम नहीं समझते कि किसी विरोधी मनुष्य के शब्दों का स्वामी जी के विरुद्ध किस प्रकार प्रामाणिक माना जा सकता है. विशेषतः उन शब्दों को जो उस विरोधी के मरने के पश्चात् उसके नाम से कोई और व्यक्ति जोड़ता है। स्वामीजी की पुस्तकें, उनके भाषण, उनके लेख सब के सब सिद्ध करते हैं कि वह वेद को ईश्वरीय ज्ञान तथा अत्यन्त श्रद्धाका पात्र समझते थे। मनुष्यमात्र का एकमात्र तथा सर्वदा उसे ही सच्चा धर्म बताया। देहली दरबार के अवसर पर परस्पर में संगठित होकर धर्म की रक्षा करने के प्रस्ताव को सब नेताओं ने स्वीकार किया पर वेद को ईश्वरोक्त मानने से एक दो के हिचकिचाने को स्वामी जी ने अच्छा न समझा और यह प्रस्ताव कार्यरूप में परिणत न हुआ अतः वेद पर स्वामीजी का अटल विश्वास होने के विरुद्ध व्यर्थ को गप्प हांकने से हासिल क्या ?

६३—एक एतराज़ यह है कि एक ओर तो स्वामी जी वेद को ईश्वरोक्त कहते हैं और दूसरी ओर रेलगाड़ीकी थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी तो आप वेद के ऊपर बैठ गये, ऐतराज़ हुआ तो कह दिया मैं काग़ज़ पर बैठा हूँ इससे वेद का निरादर नहीं होता। इस से सिद्ध है कि स्वामी जी यथार्थ स्थिति को लक्ष्य रखते थे भावुकता को नहीं। वह मुंडकोपनिषद्के भाव के अनुसार काग़ज़ो

वेद को अपरा विद्या में ही समझते थे।

यह कहना कि हिंदुओं का आर्यसमाज की ओर खींचने के लिये स्वामी जी ने वेद को ईश्वरोक्त कहा, सर्वथा असत्य है। स्वामी जी पालिसी को धर्म विरुद्ध समझते थे यदि वह ऐसी नीति करते तो थियोसाफ़ीकल सुसाइटी से सम्बन्ध क्यों तोड़ते।

सर्ग २०—हिन्दी भाष्य भी न समझ सके

६४—साहबजी महाराज ऐतराज तो करते हैं स्वामीजी पर परन्तु विद्वानों को इससे आपकी योग्यता की पोल मालूम होती है। वेद भाष्य के नमूने दिखाते हुए तो आपने अति स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है कि आप स्वामी जी के हिन्दी भाष्य को भी समझ नहीं सके।

(यजु० ८, ३१) हे विविध प्रकार से प्रशंसा करने योग्य विद्वान् गृहस्थ लोगो ! तुम जिस गृहस्थ के घर में सवर्ण उत्तम रूप, दिव्य गुण, स्वभाव व प्रत्येक काम करने की रीति को प्राप्त हो वह अच्छे प्रकार वाली और पृथ्वी की पालना करने वाली मनुष्य की सेवा के योग्य है।"

इस सरल, सुगम, अनुवाद का आशय स्पष्ट है कि मनुष्य मात्र की सच्ची सेवा की योग्यता वाले की पहचान क्या है, जिस गृहस्थी के घर में अपने वर्ण के उत्तम रूप के अनुसार उत्तम गुण, स्वभाव तथा यथार्थ विधि से प्रत्येक काम होता है, वह ही ईश्वरीय प्रजा से सेवा का पात्र है। इसलिये कि एक तो वह अपने आचरण से वाणी या विद्या या ज्ञान को सार्थक बनाता है और

दूसरे पृथ्वी से पैदा हुए सारे पदार्थों का वह सदुपयोग करता है न केवल गृहस्थ को आपने वर्ण के उत्तम और आदर्श रूप का उपदेश दिया है, उस प्रकारके प्रबन्धकी भी शिक्षा दीगई है जिससे आदर्श गुण कर्म और स्वभाव हों। ब्राह्मण के घर में ब्राह्मण वर्ण के गुण कर्मादि के विरुद्ध कोई हरकत न हो इत्यादि।

यह शिक्षा सब प्रकार की स्तुति के योग्य गृहस्थियों को दी गई है जिससे पहिचान करने वालों की योग्यता भी ज़ाहिर है।

३—(यजु. ६-१४) हे शिष्य ! मैं विविध शिक्षाओं से तेरी जिससे बोलता है उस वाणी को शुद्ध अर्थात् सत्य धर्मानुकल करता हूं तेरे जिस नेत्र से देखता है उस नेत्र को शुद्ध करता हूं तेरी जिससे नाड़ी आदि बांधे जाते हैं उस नाभि को पवित्र करता हूँ तेरे जिससे मूतरोत्सर्ग आदि किये जाते हैं उस लिंग को पवित्र करता हूं तेरे जिससे रक्षा की जाती है उस गुहेन्द्र को पवित्र करता हूँ समस्त व्यवहारों को पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूँ।" तथा गुरु पत्नी पक्ष में सर्वत्र करती हूँ यही योजना करनी चाहिये।

इस मन्त्र में भी अति सरल एवं स्पष्ट शिक्षा है कि पुरुष गुरू बालकों को और स्त्री गुरू कन्याओं को सर्व प्रकार की पवित्रता की शिक्षा दें। वाणी, नेत्र, नाभि, लिंग, गुदादि, तथा सब व्यवहारों को शुद्ध, पवित्र और धर्म के अनुकूल करना सर्वोच्च शिक्षा है और यही गुरू लोगों का कर्तव्य है। 'विविध शिक्षाओं' का शब्द बताता है कि नाना प्रकार से गुरू जन अपने शिष्यों में भलाई और पवित्रता के भाव पैदा करें।

४—ऋग, ३, ५२, १४। ऐ आलम ! आपके ग़ैर आर्य्य क़ौम बसने वाले गांवोंमें गौओं से दूध वग़ैरा को नहीं दोहते और न दिन को दूध गर्म करते हैं वे क्या करते हैं और क्या करेंगे और आप अच्छे घराने के लिये जो अच्छे घराने का (शरीफ) मुझको

मिलता है उसकी दौलत को सब तरह से क़बूल कीजिये और ऐ शरीफ़ दौलत मन्द ! हम लोगों से कम ताक़तो जिस में हो उसको अलैहदा रखिये।

इस मन्त्र में प्रत्यक्ष रूप से विद्वान मनुष्य तथा धनवान गृहस्थी के परस्पर के सम्बन्ध का वर्णन किया है। अतिथि विद्वानों की आर्य्य गृहस्थों में ही सेवा हो सकती है। दूसरे लोग न गौयें रखें न दूध दोहें न अतिथियों के आने पर उनका गर्म दूधादि से सत्कार हो। अतः आर्य्य गृहस्थ विद्वानों से इस प्रकार कहते हैं कि आप हम लोगों को सेवा शुश्रुषा भेंटादि को स्वीकार करें और विद्वान लोग उन्हें वह जतावें कि हमें किसी ऐसे प्रलोभन में न फंसाओ जिस से हम में कमज़ोरियां पैदा हों। साहब जी महाराज स्वयं कबीर का वचन पेश करते हैं।

शिष्य को ऐसा चाहिये गुरू को सरवस दे। गुरू को ऐसा चाहिये-शिष्य से कछु न ले। अतः यहां आर्य्य गृहस्थों को उपदेश है कि अतिथि की सेवा तथा मान प्रतिष्ठा करें और गुरू को यह कि लोभादि से बचे तथा मान प्रतिष्ठा में अत्युक्ति न हो जिससे कि विद्वानों में अभिमानादि का दोष पैदा न हो।

५—यजु० १७, ६५। ऐ वीरो ! तुम बिजली से अत्यन्त सुख और पात्र में पकाये हुये चावल दाल तरकारी कढ़ी आदि भोजन को हाथों में धारण किये हुए आक्रमण करो। साहब जी हैरान हैं कि कढ़ी चावलादि को हाथ में पकड़ कर आक्रमण वा युद्ध कैसे हो सकता है परन्तु युद्धा। में थाल कौलादि की अपेक्षा न करके हाथों में खाना लेकर [illegible]ाह कर लेने का व्यवहार प्रायः सब क्षत्रिय करते हैं। पकाने का काम तो वर्तन में ही कहा है पर खाने का काम हाथों में लेकर किया जा सकता है। ऐसी साधारण बात को भी साहब जी समझ न सके, यह निस्संदेह आश्चर्य जनक बात है।

६—यजु० ११, ३३। हे राजन ! जैसे रक्षक विद्वान का पवित्र शिष्य सुखदायक अग्नि आदि पदार्थों को प्राप्त हुआ वेदार्थ जानने द्वारा तर्क वितर्क के साथ सम्पूर्ण विद्याओं का वेत्ता जिस सूर्य्य के समान शत्रुओं को मारने और शत्रुओं के नगरों को नष्ट करने वाले आपको तेजस्वी करता है वैसे उन आपको सब विद्वान लोग विद्या और धन से उन्नति युक्ति करें।"

इसमें राजा को सम्बोधन करके यह शिक्षा दी है कि वह विद्वानों से केवल शत्रुओं को मारने और उनको नष्ट करने में ही सहायता न ले, उनसे विद्या तथा शील में उन्नति देने वाली शिक्षा भी ले। प्रथम तो यह बताया कि विद्वान मनुष्य ही रक्षक कहा जा सकता है इसलिये कि उससे विद्याध्ययन करके ही ब्राह्मण वर्ण पाने वाला मनुष्य सत्य और धर्म की रक्षा कर सकता है। क्षत्रिय वर्ण की योग्यता वाला राज की और वैश्य धन की रक्षा करताहै। ऐसा विद्वान ही अपने शिष्य को वह योग्यता देता है कि वह वेद के यथार्थ आशय को समझे और अंधा धुन्ध नहीं भली प्रकार सोच समझ और ठोक बजा कर अनेक मत विद्याओं को जाने और अग्नि आदि पदार्थों का तत्त्व ज्ञान पाये। राजा के लिये ऐसे अस्त्र शस्त्रों का आविष्कार करे कि तेजस्वी सूर्य्य को भांति वह शत्रुओं तथा उनके नगरोंको पराजय करे। पर यह तो है शत्रुओंके सम्बन्ध में, वैसे राजा और प्रजा को विद्या तथा सभ्यतादि के लिये सारे विद्वानों के सहयोग की आवश्यक्ता है।

७—ऋग० १०, ४०, २। हे स्त्री पुरुषो ! जैसे देवर को विधवा और विवाहिता स्त्री अपने पति को समान स्थान शय्या में एकत्र होकर सन्तानोत्पत्ति को सब प्रकार से उत्पन्न करती है वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष कहाँ रात्रि और कहां दिनमें बसे थे ? कहां पदार्थों की प्राप्ति की ? और किस समय कहाँ वास करते थे ? तुम्हारा शयन

स्थान कहाँ है ? तथा कौन वा किस देश के रहने वाले हो ? स० प्र० स० ४।

इस मन्त्र के सम्बन्ध में भी यह नहीं कहा कि किस शब्द की आपको समझ नहीं आई या औरों को नहीं आसकती। एक ओर देवर और विधवा का शब्द है और दूसरी ओर विवाहित पुरुष स्त्री का। दोनों का उद्देश्य सन्तानोत्पत्ती है और परस्पर में भली प्रकार जांच कर लेने की शिक्षा है। अर्थात् निवास स्थान, काम, कमाई, संगतादि विषयों की जाँच हो। इस से सिद्ध है कि पहिले तो विवाह और नियोग दोनोंमें यह न्याय है कि कंवारे और कवारीका विवाह हो और विधवा और देवरका नियोग। दूसरा यह कि यह सम्बन्ध विषय भोग के लिये नहीं सन्तानोत्पत्ति के लिये है। तीसरे यह कि देख भाल कर सम्बन्ध हो जिस से दुराचार कभी न होने पावे। जो लोग नियोग से दुराचार का भाव लेते हैं उन्हें विदित हो कि दुराचार में कोई नियम नहीं होता किसी भी अवस्था के स्त्री पुरुष का मेल हो सकता है पर नियोग में विवाह के से नियम हैं। सरकार में जो नाम, पिता का नाम, जाति आदि लिख लेने का तरीक़ा रक्खा है यह अनेक जुर्मों से लोगों को रोकता है। कलकत्ता की रंडियों के यहां एक बार रजिस्टर रक्खे गये कि उनके यहां आने वालों का इसी प्रकार का Form of Declaration भरा जाया करे। परिणाम यह हुआ कि सबने उनके यहां जाना बन्द कर दिया। इस घटना से सिद्ध है कि उस नियोग का दुराचार से कुछ सम्बन्ध नहीं जो इससे भी अधिक जांच करके किया जाने का विधान है।

८—एक आक्षेप यह है कि स्वामी जी ने एक ही मन्त्र के भिन्न २ स्थानों पर भिन्न २ अर्थ किये हैं। यह तो आप मानते हैं कि प्रकरणानुसार अर्थ का भेद हो सकता है पर एक ही मन्त्र

के एक ही विषय में भूमिका में अर्थ और हैं और भाष्य में और इस पर आप का विशेष एतराज़ है। तार विद्या सम्बन्धी मन्त्र का वर्णन दूसरी जगह आ चुका है 'यजु० ३३, ४३ का अर्थ भाष्य मे यह है।

हे मनुष्यो! जो रमणीय स्वरूप से, आकर्षण से परस्पर सम्बद्ध, लोक मात्र के साथ अपने भ्रमण की आवृत्ति करता हुआ सब लोकों को देखता हुआ प्रकाशमान सूर्यदेव, जल वायु, अविनाशी आकाश आदि और मरण धर्मा प्राणी मात्र को अपने २ देश में स्थापित करता हुआ उदय अस्त समय में आता जाता है, वह ईश्वर का बनाया सूर्य लोक है।" यही मन्त्र अध्याय ३४ में २१ वां मन्त्र है वहां इसके यह अर्थ हैं—

"हे विद्वान्! आप जो आकर्षित हुये लोक समूह के साथ वर्तमान, निरन्तर नाश रहित कारण और नाश सहित कार्य को अपनी २ कक्षा में स्थित करता तेज स्वरूप रमणीय स्वरूप के सहित ऐश्वर्य का दाता देदीप्यमान विद्युत रूप अग्नि संसारस्थ वस्तुओं को प्राप्त होता है उसको देखते हुए सम्यक प्रयुक्त कीजिये।"

कहा गया है स्वामी जी को याद नहीं रहा कि पहिले इस के अर्थ और कर आये हैं परन्तु यदि वैदिक शब्दों की विशेषता पर तनिक भी विचार किया जाता तो शंका हो ही न सकती। एक जगह सूर्य पर मन्त्रार्थ लगता है और दूसरी जगह विजली पर और तीसरी जगह आग पर, तो आप चाहे जिसमें मानें, वैदिक विद्वानों की दृष्टि में इससे न मूल में भेद है न अर्थ में, केवल अर्थ का सम्बन्ध भिन्न २ पदार्थों से दिखाया गया है ऐसे ही आत्मा, परमात्मा, ज्ञान, ज्ञानी, ब्राह्मण, संन्यासी, योगी तथा किसी वस्तु के आन्तरिक तत्त्वादि अनेक पदार्थों से एक ही

शब्द के अर्थ का सम्बन्ध हो सकता है। अतः आपके ऐतराज़ से केवल आपके ज्ञान वा विचार सम्बन्धी दोष का पता लगता है और वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने तथा स्वामी जी की अपूर्व विद्वत्ता पर कोई हर्फ़ नहीं आता।

ऋग्वेद १-२४ के जो पहिले २ मन्त्र मुक्तिसे पुनरावृत्ति विषय में प्रमाण रूप से पेश किये हैं, उनके सम्बन्ध में यह दोष आपने बताया है कि अनुवाद में अपनी तरफ़ से शब्द बढ़ाये जाते हैं जैसाकि "मुक्ति का सुख भुगा कर" हमें फिर माता पिता के दर्शन करता है," इसके पहिले शब्दों के लिए मूल में कोई शब्द नहीं परन्तु इसके उत्तर में केवल यह कहना काफ़ी है कि आप आकांक्षा के नियम को जान बूझ कर भूलते हैं। मूल के शब्दों की योग्यता की दृष्टि से यथार्थ आशय के स्पष्टीकरण के लिये जो शब्द परमावश्यक हों उनका जोड़ देना साधारण पुरुषों के लिये सुगमता पैदा करता है, अतः स्वामी जी स० प्र० की भूमिका में पाठकों को आकांक्षा का ध्यान दिलाकर इसका पूरा उत्तर देचुके हैं। हां आप इस बात का कोई उत्तर नहीं दे सकते कि आपने केवल अपने झूठ पर परदा डालने के लिये अपनी पुस्तक में सार वचन के अनेक शब्दों के अर्थ में ख्वामख्वाह बहुत से शब्द बढ़ाये हैं। उदाहरण रूप में इस एक कड़ी को लीजिये।

हे राधा तुम गति अति भारी, हे स्वामी तुम धाम अपारी।
राधास्वामी दोऊ मोहि गोद बिठारी॥

इसका अनुवाद आप इस प्रकार करते हैं—

"हे राधा! यानी आदि सुर्त तेरी गति याने पहुंच निहायत बुलन्द मुक़ाम तक है, हे स्वामी याने आद शब्द तेरा धाम अपार है, मैं उस धाम तक कैसे पहुंच सकता था लेकिन मुझ पर ऐसी दया हुई कि आद शब्द वा आद सुर्त के मखज़न राधास्वामी

दयाल ने सतगुरु स्वरूप धारण करके मुझे अपनी गोद में बिठा लिया।" इनमें एक भाग मूल शब्दोंका है और ३ भाग साहब जी ने अपनी ओर से मिलाये हैं।

सर्ग २१ — स्वामीजी का मन्तव्य तथा युक्तियां

६५—स्वामी जी ने अपने मन्तव्य की पुष्टि में जो युक्तियां दी हैं उन पर किए एतराजों की हक़ीक़त इस प्रकार है—

पहिला एतराज़ यह है कि एक ओर तो स्वामी जी वेद को स्वतः प्रमाण मानते हैं और दूसरी ओर वेद सम्बन्धी प्रतिज्ञाओं की सिद्धि के लिए दूसरे ग्रन्थों का प्रमाण देते हैं जैसे शतपथ ११, ४, ७, ३, के प्रमाण से अपने पक्ष को सिद्ध करते हुए एक प्रश्न के उत्तर में आप कहते हैं कि आदि सृष्टि में परमेश्वर ने अग्निआदि ऋषियों के आत्मा में एक२ वेद का प्रकाश किया। अब किसी को इस उत्तर की सत्यता का निश्चय कैसे हो। शतपथादि प्रामाणिक ही नहीं तो इस प्रमाण से लाभ क्या? इसे तो वही पेश करे जो शतपथ का प्रमाण माने।

(आर्य) स्वामी जी ने यह कहां लिखा है कि शतपथ का प्रमाण न माना जावे। आपने या तो स्वामी जी के शब्द को समझा नहीं या जान बूझ कर सत्संगियों को भ्रान्ति में डालते हैं। स्वामी जी वेद को स्वतः प्रमाण कहते हैं तो ब्राह्मण ग्रन्थों को परतः प्रमाण अर्थात वेद के अनुकूल होने से उन्हें साक्षीवत् प्रमाण मानते हैं। दूसरे मुद्दई के लिये यह क़ैद कहां है कि केवल उसी दस्तावेज का प्रमाण दे जिसे वह स्वयं सर्वथा सत्य मानता है। किसी भी काग़ज़ यहां तक कि दूसरे पक्ष के माने हुये काग़ज़ों

से अपने पक्ष में शब्द दिखा कर वह और भी अधिक लाभ .पा सकता है। सूर्य्य के प्रकाश को रोगी आंख सहार नहीं सकती, अन्धा हो जाने पर तो सूर्य्य देखा ही नहीं जा सकता परन्तु अन्धा होने से पूर्व का प्रकाश सम्बन्धी संस्कार उस के अन्दर मौजूद है और यह उसके लिये सूर्य्य के विषय में प्रबल प्रमाण है। इसी प्रकार वेद मन्त्रों में स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है कि ऋषियों के आत्मा में वेद का प्रकाश हुआ और शत पथ के ऊपर के शब्दों में इसी के अनुकूल भाव दर्शाया गया है अतः यह सत्य और स्वीकार करने योग्य है। यह कहना कि जो शतपथ को माने वही इसका प्रमाण दे आपके अपने ही व्यवहार से असत्य है। आप मानते हैं राधास्वामी मत की पुस्तकों को परन्तु प्रमाण देते हैं आप वेद, उपनिषद्, शास्त्र, मुकम्मल जीवन चरित्र स्वामी दयानन्द, ग्रन्थ साहब, गीता, कुरान, कृष्ण बीती, लूथर हिन्दी तथा अनेक मुसलमान कवियों के, हालांकि उन में से कोई भी मानना तो कहां राधास्वामी नाम तक का रवादार नहीं।

६६—दूसरा सबूत स्वामीजी की युक्ति के विरुद्ध यह देते हैं कि आपने कहीं वेद के मुलहिमों की योग्यता का प्रमाण नहीं दिया यह कहना कि अग्नि वायु आदि सब से योग्य थे इस लिये उन पर वेद का प्रकाश हुआ, अथवा यह कि उन पर वेद का प्रकाश होने से उनकी योग्यता सिद्ध होती है कोई प्रबल युक्ति नहीं। (आर्य्य) यह एतराज़ भी आप के विचार दोष अथवा पक्षपात पूर्ण भावों का ही परिणाम है। आप एक पराये पुरुष को हज़ारों रुपया देकर दूर देश में माल खरीदने भेजें परन्तु अपने पुत्र के द्वारा एक रुपया का भी सौदा मंगाने का साहस न करें तो क्या इससे उस पराये पुरुष के विश्वास पात्र होने तथा आप के पुत्र के व्यवहार के अयोग्य होने के बिना आप का कोई और भाव सिद्ध

हो सकता है । अतः जब अल्पबुद्धि मनुष्य में ऐसा फल निर्विवाद रूप से योग्यता के कारण है तो सर्वज्ञ परमेश्वर क्या अनधिकारियों पर वेद का प्रकाश कर सकता है ईश्वर के तो स्वभाव में ही अन्याय वा भूल आदि की संभावना नहीं और अयोग्य आत्माओं में ज्ञान को ग्रहण करने की योग्यता नहीं अतः ईश्वर का अग्नि वायु आदि के आत्मा में वेद का प्रकाश करना और अग्नि आदि का वेदको ग्रहण करने के योग्य होना दोनों बातें एक ही भाव रखती हैं तथापि आप का श्रुति प्रमाण का तकाज़ा पूरा करने को हम इशारा देते हैं कि वेद का प्रत्येक मन्त्र अपने मुलहिम ऋषि की योग्यता का प्रमाण है। ऋग्वेद का पहिला मन्त्र है "अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजम् होतारम रत्नधातमम। अग्नि नाम है ज्ञान के प्रकाश का, परमेश्वर का, सूर्य का, ज्ञान फैलाने वाले ऋषि का और पहिला ऋषि भी अग्नि नाम है और उसे पुरोहित, यज्ञ का देवता, ऋत्विज, होता और रत्नधातम कहा है जो उसकी असाधारण योग्यता का सुबूत है। इसी प्रकार यजुर्वेद का पहिला मन्त्र है "इषे त्वोर्ज त्वा वायवस्थ देवो०" इस में वायु ऋषि के गुणों का उत्तम प्रकार से बोध कराया गया है।

६७—इस के आगे एक और एतराज करते हुये आप स्वयं स्वीकार करते हैं यदि वह ऋषि मुक्ति से लौटे हुये थे तो निःसन्देह वह प्रतिष्ठित एवं सब से उत्तम थे। परन्तु इसके साथ ही आप कहते हैं कि अनन्त काल से अनन्त सृष्टियां और अनन्त ऋषि होते आने पर भी इस कल्प के आद में केवल ४ ही ऋषियों को मुक्ति की आयु खतम हुई है ऐसा मानना ठीक नहीं इससे ईश्वर के मोक्ष प्राप्ति सम्बन्धी प्रबन्ध और वैदिक धर्म की कारगुज़ारी पर हर्फ़ आता है।

(आर्य्य) प्रथम तो वैदिक शब्द यौगिक हैं रूढ़ी नहीं। वेद के

प्रकाश सम्बन्धी योग्यता बहुतोंमें हो तो भी ऋषि ४ ही कहे जायेंगे। जैसे चार वेद का ज्ञाता ब्रह्मा कहाता है एक हो या अनेक ब्रह्मा सब के लिये एक सा कहा जायगा। फिर संसार में अरबों मनुष्य हैं अंग प्रत्यंग सब के एक से हैं तो भी रूप रंगादि में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य है आज तक कोई से दो मनुष्य भी ऐसे नहीं हुये जो सर्व प्रकारसे पूर्ण समानता रखते हों। जीव मुक्त हो ईश्वरीय आनन्द में मग्न हो तो भी ब्रह्म और जीव की सत्तायें दो हैं। ऐसे ही मुक्त जीव कितनी भी संख्या में क्यों न हों सब के ज्ञान और आनन्द की मात्रा में अवश्य ही भेद रहता है। सर्वाङ्गपूर्ण तुलना कोई से २ जीवों में भी नहीं हो सकती। अतः हूबहू तथा पूरी वह योग्यता जो ज्ञान कांड के प्रतिनिधि ऋग्वेद को निश्चित पूर्ण एवं यथार्थ अवस्था में ग्रहण कराये एक अग्नि ऋषि में होना बहुत युक्त है। इससे ईश्वर के प्रबन्ध तथा वेद पर कोई दोष नहीं आता वरन उनका वह महत्व सिद्ध होता है जो बड़े से बड़े अभिमानियों का सिर उनके आगे झुका सकता है। परीक्षा के लिये एक श्रेणी के १०० विद्यार्थी बैठते हैं, स्कूल वही अध्यापक वही पुस्तक वही, प्रश्न वही, परन्तु नम्बर सब के जुदा जुदा हैं। अतः पूर्ण योग्यता तथा अनुकूलता की दृष्टि से एक एक की निश्चित स्थिति एक एक ही ऋषि की आवश्कता रखती है।

६८—धारा १०९ में अत्यन्त निरर्थक से एतराज किये गये हैं। स्वामी जी कहते हैं कि देश विशेष की भाषा में वेद का प्रकाश होता तो उस देश वालों के लिये सुगम और दूसरों के लिये कठिन होता और ईश्वर पर पक्षपात का दोष आता साहिब जो महाराज इस पर इन शब्दों में चोट करते हैं कि

"क्या खूब ईश्वर को अपने इन्साफ की फ़िकर पड़ी तो इसी बात के लिये कि दुनिया के लोगों को उसके इन्साफ के समझने

में दिक्कत कहीं गैर मुमावी न हो जावे।"

(आर्य्य) आपका यह रिमार्क भी विचित्र है जब और किसी बात में परमेश्वर के पक्षपात का ज़िकर ही नहीं तो यह शब्द सर्वथा निरर्थक तथा अयुक्त क्यों नहीं ? स्वामी जी के शब्दों से तो इसके विपरीत यह सिद्ध होता है कि वह परमेश्वर में पक्षपात का सर्वथा अभाव मानते हैं और इसीलिये देश भाषा विशेष में ज्ञान के प्रकाश होने को स्वीकार नहीं करते तथा स्वामी जी ने "किसी देश की भाषा" का शब्द उत्तर में लिखा है अन्यथा वह उस समय न भिन्न२ देश मानते हैं न उनकी भिन्न भाषायें। विपक्षी के मन में वर्तमान देश और उनकी भाषाओं के संस्कार थे अतः वह एकदेशी भाषाओं के दृष्टिकोण से हो प्रश्न कर सकता था अर्थात् अरबी, फारसी, अंग्रजी आदि में ज्ञान न मिलने का कारण पूछ सकता था इस विचार से कि किसी देश को तो वेद समझने में सुगमता होती इसी भाव को लक्ष्य रखकर स्वामी जी का यही उत्तर होना चाहिये था कि एक तो उस देश वालों का इस प्रकार पक्षपात होता और दूसरे शेष सारे देशों के लिये कठिनाई अतः कारण से कार्य्य होने के सर्वतन्त्र सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर से वैदिक भाषा में ज्ञान का प्रकाश होना ही ठीक है जो सब मनुष्य मात्र के लिये एक सी है। अतः उत्तर की प्रश्न के साथ संगति लगाने से साहब जी का यह परिणाम निकालना भी सर्वथा असंगत है कि इससे वेद के पूर्व अन्य देशों और भाषाओं का होना सिद्ध होता है।

६९—अब और एतराज़ सुनिये "ईश्वर के इन्साफ को अब क्या हो गया कि स्वामी दयानन्द जी और उनकी मार्फ़त आर्य्य भाइयों को तो वेदों के सही अर्थ मालूम होगये और बाक़ी तमाम दुनिया इस बख़शिश से महरूम है।"

(आर्य्य) वेद के यथार्थ अर्थ के विषय में तो और जगह विचार हो लिया। हां आपके इस एतराज के विषय में यह कहना आवश्यक है कि इसका उत्तर ऊपर आ चुका है। यदि सृष्टि के आदि में अग्नि आदि पर वेद का प्रकाश होने और दूसरे आत्माओं पर न होने से ईश्वर में पक्षपात का होना सिद्ध नहीं होता तो वर्तमान आर्य्यों और दूसरे लोगों में जो तत्सम्बन्धी अन्तर है वह भी न्याय और योग्यता के नियमों पर ही निर्धारित है। साथ ही नोट कर लीजिये कि यथार्थ रूप से यत्न न करने वाले आर्य्य पुरुष भी अब भी इस प्रकाश से वंचित हैं। समाज में नाम लिखा जाने मात्र से यह सम्मति स्थिर करना भूल है तथा आर्य्य समाज से बाहर के जिन देशी वा विदेशी विद्वानों को यत्न करने पर अनेक विषयों का वेद से यथार्थ अर्थ विदित होता है उन्हें भूल जाना और भी अधिक भारी ग़लती है।

७८—इससे भी अधिक विलक्षणता आपकी बुद्धि की इस ऐतराज़ से सिद्ध होती है कि "यह क्या बात हुई कि समाजी भाइयों को तो वेद मन्त्र नाज़ उनका सही मफ़हूम याने वेद और वेदों का सही ज्ञान दोनों बतलाये गये और सृष्टि के आदि में जिन चार ऋषियों पर वेद नाज़िल हुये और जिन्हें दुनियाँके सब जीवों से पाकतर माना जाता है उन्हे सिर्फ़ मन्त्रों पर टाल दिया गया।"

(आर्य्य) श्रीमान जी ! आप चाहें सो समझें और चाहे जो परिणाम निकालें आर्य्यों ने कभी दावा नहीं किया कि हम सबको वेद और उनका सही ज्ञान दोनों मिले हैं और आदिम ऋषियों को केवल मन्त्र मिले थे। हमारा सिद्धान्त तो यह है कि आदिम ऋषियों के आत्मा में तो वेद शब्द अर्थ और सम्बन्ध सहित अर्थात् पूर्ण ज्ञान के रूप में प्रकाशित हुए और उन्होंने मनुष्यों तक शब्द ही नहीं उनके आन्तरिक भावों के संकेत भी पहुँचाये।

आपको निर्मूल सो भ्रांति हो रही है कि आदिम ऋषियों के पीछे मन्त्र द्रष्टा ऋषियों का वर्णन होने से आदिम ऋषियों को आप अर्थ न मिलना समझ रहे हैं। यथार्थ स्थिति सर्वथा स्पष्ट है कि अर्थ का भान आत्मा को होता है वह वाणी का विषय नहीं अतः आदिम ऋषियों के उपदेश के द्वारा अर्थ के संकेत करने पर भी समाधि द्वारा यथार्थ अर्थ के साक्षात करने की आवश्यक्ता बनी रहती है और इसी शर्त को पूरा करने पर ऋषि पद की प्राप्ति होती है।

७१—स्वामी जी कसोटी पेश करते हैं कि जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार लेख हो वह ईश्वरोक्त होगी। इसपर कहा गया है कि इस से वेदाध्ययन से पूव ईश्वर के गुणादि समझने की मग़ज़ पच्ची करनी होगी पर जब ईश्वर के गुणादि का ज्ञान होगया तो वेदाध्ययन को आवश्यक्ता ही क्या रही।

(आर्य्य) प्रकरणानुसार प्रश्नोत्तरके आशय को समझे बिना जो जी में आये कहने लगना किसी शिक्षित वा सभ्य सज्जन पुरुष का काम नहीं हो सकता। प्रकरण यह है कि वेद ईश्वरोक्त है वा कोई अन्य पुस्तक ? यह नहीं कि ईश्वर के गुणादि का ज्ञान तथा ईश्वरोक्त वाणी की पहिचान कैसे वा किस अवस्थामें होसकती है। वादी प्रतिवादी दोनों ईश्वर और उसके इलहाम को तो सिद्धान्त रूप से मानते हैं। अपने २ तौर पर वह ईश्वर के गुणादि का भी ज्ञान रखते हैं। अतः दूसरे पुस्तकों की तुलनात्मक दृष्टि से वेद में ईश्वरोक्त होने की विशेषता दिखाने के लिये ईश्वर के गुणादि के अनुकूल वा प्रतिकूल होने की कसौटी अकाट्य युक्ति का काम दे सकती है। रही यह बात कि ईश्वर के गुणादि का ज्ञान हो जाने पर वेद की क्या आवश्यक्ता रही ? इसका उत्तर यह है कि ईश्वरीय

गुणादि के यथार्थ ज्ञान होने पर ही तो वेद के यथार्थ महत्व का भान होता है और ऐसा ज्ञानी पुरुष वेद से परे होने का कभी सहन नहीं कर सकता। क्या नेत्र से सांसारिक पदार्थों को देखलेने वाले के लिये सूर्य्य अनावश्यक हो जाता है।

७२—दूसरी कसौटी स्वामी जी ने यह बताई कि जिस में भ्रांति से रहित ज्ञान हो वह ईश्वरोक्त है। इस पर कहा गया है कि "पहिले इल्म वा मुस्तनद मफ़हूम पेश करो फिर फ़ैसला होगा कि ख़ता से बरी है कि नहीं।

(आर्य्य) जो प्रामाणिक अर्थ पेश किया जाय, उसके सत्यासत्य सम्बन्धी जाँच में क्या प्रमाण होगा वह पहिले बता दीजिये। भला जब बहस ही ज्ञान पर हो तो यथार्थ क्या बाहर रह गया ? और अर्थ के प्रमाण अप्रमाण विषय में क्या और प्रमाणों का और उनके लिये और कसौटियों का तक़ाज़ा न होगा। अतः यह एतराज़ कोरा कुतर्क है और यदि इसे संजीदा कहा जाये तो एतराज़ हो नहीं सकता क्योंकि जिसके मन में कोई अर्थ या भाव विशेष है ही नहीं वह ज्ञान के यथार्थ अयथार्थ होने की बहस कर ही नहीं सकता। प्राकृतिक प्रकाश में सूर्य्य परम प्रमाण है। इसलिये कि उससे तीव्र प्रकाश का मनुष्य के नेत्र को कभी अनुभव नहीं हुआ न उसमें आज तक कोई न्यूनता सिद्ध हुई है। इसी प्रकार वेद ईश्वर का ज्ञान है इसलिये कि कोई मनुष्य आज तक वेद में त्रुटि नहीं दिखा सका। साहब जी ने भी लाख हाथ पैर मारे पर जो भी शंका हुआ, विद्वानों के अनुवाद वा भाष्यादि के शब्दों पर हुआ वेद के शब्दों पर नहीं और यही आशय स्वामी जी की इस युक्ति का है।

७३—(साहब जी) "स्वामी जी एक एक मन्त्र के चार चार अर्थ करते हैं तथा वेद की ११२७ शाखा बताते हैं तब हम किस

शाखा की जांच करें।

(आर्य्य) यही रोना ले बैठना था तो पहिले ही चादर देख कर पैर फैलाते! स्वामी जी चार नहीं सौ अर्थ करें वह ११२७ नहीं ११ लाख शाखा मानें, आप को क्या ? ईश्वरोक्त बाणी वह मूल वेद को मानते हैं और वह आपके सामने है हिम्मत है तो इसमें दोष बताओ ? शाखाओं की जाँच करने के न आप योग्य हैं न अधिकारी न हमारी बहस से उनका सम्बन्ध है। व्यर्थ की बहाना बाजी आदि से लाभ क्या ?

७४—साहब जी-स्वामी जी ने यजुर्वेद की माध्यन्दिनी और ऋग्वेद की आश्वलायनी शाखा का भाष्य किया है अतः सब लोग उन्हें ही सत्य कैसे मान सकते हैं ?

(आर्य्य) आप सब लोगों की वकालत छोड़िये हम उनसे आप निपट लेंगे। यदि हम गरीबों के माने हुए वेद को आप शाखा मात्र समझते हैं तो पूरा मूल वेद और पेश कीजिये अन्यथा शाखा नाम से आर्य्य समाज के माने हुये वेद का कोई अपमान समझने को अपनी अज्ञता जानिये। यजुर्वेद का नाम माध्यन्दिनी शाखा होने का भाव यह है कि इस शाखा विशेष के अनुयाई आर्य्यसमाज के माने हुये यजुर्वेद के मूल वेद होने की शहादत देते हैं तथा आश्वलायन शाखा वाले क्रियात्मक रूप से यह साक्षी देते हैं कि आर्य्यसमाज ने जिसे ऋग्वेद माना है सच मुच वही मूल ऋग संहिता है। एतराज़ तब होता कि आप किसी शाखा ग्रन्थ के प्रमाण से यह दावा करते कि उस में मूल वेद के नाम से जो अमुक मंत्र है वह इस मूल वेद में नहीं। अब प्रश्न यह होगा कि यदि यजु और ऋग पूरे माने गये तो शाखा नाम क्यों हुआ ? इस का उत्तर यह है कि शाखा वाले जिस २

अर्थ में वेद मंत्रों को प्रयुक्त करते हैं वेद केवल उन अर्थों में परिमित नहीं । जैसे यजुर्वेद के ४० अध्याय को ईशोपनिषद् का नाम दिया गया है और उस से उसके अर्थ की विषय विशेष में ही संगति की गई है तो वह मूल वेद की भांति विस्तृत अर्थ से सम्बन्ध नहीं रखते अतः पूरे के पूरे वेद मंत्र मानते हुये भी परिमित वा विशेष सम्बन्ध वाले अर्थ में मंत्र का प्रयोग होने से उन्हें उपनिषद् वा शाखा वा ब्राह्मण ग्रन्थादि का नाम मिलता है और मूल वेद में उन्हीं मंत्रों को मानते हुये उन में अनन्त विद्याओं से सम्बन्ध होने को स्वीकार किया जाता है।

७५—(साहब जी) "इसी वक्त का हाल देखलो वेद भगवान मौजूद और दुनियां सही माने जानने के लिये परेशान है मगर वह बिलकुल ख़ामोश बैठे हैं और अगर सन्त दया फ़रमाकर ईश्वरीय उपदेश आसान अलफ़ाज़ में समझाते हैं तो वेद भक्त उनकी तज़हीक करते हैं।"

(आर्य्य) निस्संदेह वेद भगवान मौजूद है और मौजूद होगा और वह अब भी बोल रहा है जैसा आदि सृष्टिमें बोलता था और बोलता आया है । हां बहिरे कानों के लिये वह ख़ामोश है जैसा अज्ञानियों के लिये वह पहले ख़ामोश रहा है यदि वेद बोलता न होता तो दयानन्द के हृदय में सत्य की गूंज कैसे सुनाई देती और वेद भक्त शब्द जाल रच कर सरल हृदय मनुष्यों को सन्मार्ग से हटाने वाले का मखौल कैसे उड़ाते ?

७६—अमरीका की तारीकी लाखों करोड़ों बरस के बाद कोलम्बस की मारफ़त दूर हुई और कोलम्बस वेदों से क़तई ना आशना था तो क्या इतने अरसे तक ईश्वर अमरीका की तरफ से ला परवाह ही रहा और दुनियां पर मौजूद वेदों को वहां के दूर उफ़तादा जंगलियों का कोई ख्याल न आया"

(आर्य्य) कोई भी विद्वान वेदों से सर्वथा अनभिज्ञ नहीं सारी भाषायें तथा विद्यायें वैदिक शब्द और अर्थ का ही रूपान्तर हैं। जैसे रात्रि के अंधकार में पदार्थों के रूप का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता और सूर्य्य के उदय होने पर सुगमता से होता है, वैसे प्रचलित भाषायें तथा विद्यायें ईश्वरीय ज्ञान और मनुष्य के अज्ञान का नैमित्तक परिणाम है ज्ञान का सर्वथा अभाव इस समय भी नहीं। कोलम्बस आदि से पहिले भी आर्य्यों को अमरीका का पता था। परस्पर के रिश्ते नाते तथा व्यापार वा राज्य का सम्बन्ध अमरीका और भारत वर्ष के इतिहास से सिद्ध है। स्वामी जी का आशय यह है कि कोई भी मनुष्य आप से आप विद्वान नहीं हो जाता आदिम ऋषि परमात्मा से ज्ञान पासके और उन्हीं से विद्या का सिलसिला चला। देशों और जातियों में भी विद्यादि में उन्नति पाये हुये देशों वा जातियों के संसर्ग से उन्नति होती है। अमरीका का उदाहरण भी युरुप की सहायता से उस की उन्नति होने के कारण दिया गया है। रही ईश्वर वा वेद की लापरवाही, यह ठीक नहीं क्योंकि कोई भी समय किसी भी देश वा जाति के इतिहास में ऐसा नहीं मिलता कि विद्यादि विषय में यत्न करने पर उन्नति न हुई हो या योगाभ्यासादि करने पर आत्मोन्नति वा ज्ञान की वृद्धि न हुई हो। राधा स्वामी साहब पर लापरवाही का दोष अवश्य आता है कि दो अरब सालों तक सारी मानव जाति की ओर से लापरवाह रहे और अब खुदा २ करके कुफ़र टूटा भी तो आप अवतार लेकर केवल १८ साल मुट्ठी भर मनुष्यों को सहज योग सिखा कर चलते बने। आगरे के बिना सारे नगरों, देशों, जातियों आदि से तथा सारी त्रिलोकियों से पहिले भी ग़ाफ़िल रहे और अब भी ग़फ़लत और बेपरवाही का ही उनके विषय में व्यवहार जारी है।

५—क्या इस जमाने की साईंटीफिक मालूमात वेदों के जानने मानने व समझने वाले भाई कर रहे हैं या काइनात का मुशाहिदा करके क़दम क़दम आगे बढ़ाने वाले वेदों से क़तई नाआशना व लापरवाह युरुप व अमरीका के वाशिन्दे ?

आर्य्य—कोई भी साइंटाफिक आविष्कार हो, पूर्व पुरुषों से प्राप्त हुये ज्ञान का परिणाम है। अनन्त जन्म जन्मान्तरों से अनन्त वैज्ञानिक संस्कार आत्मा में हैं जो विद्याध्ययन होने पर उभरते हैं और उन ही संस्कारों का वैज्ञानिक फल यह आविष्कार हैं। इस विज्ञान का मूल वेद में है और संस्कारी ज्ञान भी वेद के विद्वानों की संगत का फल है। हो सकता है कि कोई ईजाद किसी को स्वतन्त्र नवीन रचना प्रतीत हो, परन्तु इस का आदि स्रोत वेद ज्ञान तथा ऋषियों के क्रियात्मक अनुभव के बिना कुछ सिद्ध न होगा। मनुष्य जड़ कला या यन्त्रका आविष्कार करता है, उस विज्ञान का नहीं जिस के आधार पर वह कला बनती है अतः असली आविष्कारक क्रियात्मक रूप में वेद को जानने मानने व समझने वाले हैं। आप को दृष्टि युरुप अमरीका के क्षितिज तक ही सीमित है अतः आप गुरु शिष्य परम्परा के लम्बे सिलसिले के पार नहीं पहुँच सकते, पर यदि सरसरी नजर दौड़ाने के साथ आप बुद्धि पूर्वक विचार करते हुये भूत काल में घुसते जायेंगे तो अन्त में आप को वर्तमान काल के प्रत्येक आविष्कार का असली मौलिक सांचा ऋषियों के वेद ज्ञान से प्रकाशित मस्तिष्क में दृष्टि गोचर होगा। आप का दर्शन मात्र भी ज्ञान का उत्पादक नहीं किन्तु मुशाहिदा, तजरुबा और दलील तीनों आत्मा के अन्दर विद्यमान वैज्ञानिक संस्कारों को उभारने वाले हैं यदि कोरा दर्शन मात्र ज्ञान का कारण होता तो सब कालिज स्कूलादि अनावश्यक होते।

७७—एतराज़—"तआज्जुब है कि ईश्वर ने सबसे ज्यादह पाक आत्मा ऋषियों को वेद मंत्र तो बतलाये उन के अर्थ न बतलाये यह फ़र्क़ क्यों किया गया ?

(आर्य्य) आपका कथन असत्य है। आदि में ऋषियों को अर्थ का ज्ञान न मिलता तो वह आर्य्यों को वर्णाश्रम, यज्ञ, संस्कार का बोध कैसे करा सकते। हम अनेकबार कह चुके हैं कि वेद ज्ञान का शब्द अर्थ और सम्बन्ध के रूप में प्रकाश हुआ। परन्तु वह ऋषि वाणी से वह अर्थ दूसरों तक पहुंचा न सकते थे क्योंकि वह आत्मा से ही ग्रहण हो सकता है। अतः पीछे समाधि द्वारा उस अर्थ का दर्शन ऋषि लोग करते रहे इससे आदि में ऋषियों को अर्थ न मिलना सिद्ध नहीं होता।

७८—ब्राह्मण ग्रन्थों में वही अर्थ हैं जो ईश्वर ने ऋषियों पर प्रगट किये तो इन ग्रन्थों को वेद तसलीम करने से क्यों इन्कार किया जाता है ? क्या सिर्फ मंत्र ही वेद हैं उनके अर्थ वेद नहीं ? अगर ऐसा है तो फिर कौत्स ऋषि और वह सनातन धर्मी भाई जो अक़ीदा रखते हैं कि मंत्रों का ठीक ठीक उच्चारण करने से ही फल मिल जाता है राहे रास्त पर क़रार पाते हैं और मंत्रों के मानों में उलझने वाले भाई राहे गलत पर"

(आर्य्य) ग्रन्थों में अर्थ दर्ज नहीं होते शब्द दर्ज होते हैं। यदि अर्थ दर्ज हो सकते तो मूल वेद होता ही अर्थ रूप, वह अपराविद्या में न गिना जाता। आप कुछ तो यथार्थ स्थिति को स्वयं नहीं समझे कुछ नावाक़िफ़ लोगों में भ्रांति फैलाने से अपनी प्रयोजन सिद्धि समझते हैं वेद विषय में जो शब्द का अर्थ कहा जाता है वह उस यथार्थ तत्त्व का नाम है जिसकी ओर शब्द संकेत करता है और जो केवल आत्मा का विषय है। परन्तु आप भाषान्तर के पर्याय शब्द का नाम अर्थ समझते हैं जैसे जल हिंदी

का, आब फारसी, पानी उर्दू और Water अंग्रेजी में अर्थ अनुवादक कहते हैं। अतः यथार्थ अर्थ का प्रकाश आत्मा में ही होता है ऋषि केवल अपने शब्दों से उस अर्थ के साक्षात करने की प्रेरणा करने वाले हैं। उनके शब्द वेद नहीं न उनके किसी भाषा वाली व्याख्या के शब्द वेद हैं वह तो केवल समाधि में साक्षात किये गये अर्थ के संस्कार मात्र का बोध कराते हैं। वैदिक शब्द अनन्त ज्ञान का संकेत करते और ऋषियों के शब्द उनकी अपनी स्मृति तथा परिमित ज्ञान की ओर, अतः ऋषि प्रणीत ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं।

७९—जब यह तसलीम किया जाता है कि ईश्वर ने वेदों का ज्ञान ऋषियों को उनकी मुरव्वजा जबान में बताया तो क्या इसका यह फ़ेल पक्षपात से बरी था ?

(आर्य्य) वेद से पूर्व न कोई भाषा प्रचलित थी न कोई स्कूल कालिज आदि था अतः एतराज़ निराधार है।

वेद मन्त्रों के माने वेद तसलीम नहीं किये जाते तो इन मंत्रों को वेद कहना ग़लत है क्योंकि शब्द वेद के माने ज्ञान के हैं, न कि मंत्र या अलफाज़। और अगर मन्त्र व अर्थ दोनों वेद हैं तो ब्राह्मण ग्रन्थ भी जिनकी निस्बत तसलीम किया जाता है कि उन में वेद मन्त्रों की शरह दर्ज है वेद तसलीम होने चाहियें। और इस सूरत में सायण भाष्य जो शतपथ वग़ैरा ब्रह्मणों के आधार पर मुरत्तब हुआ है वैसा ही मुस्तनद है जैसा स्वामी जी का भाष्य"

(आर्य्य) वेद मन्त्रों का अर्थ भी माना जाता है और सम्बन्ध भी अतः वेद निश्चय ईश्वरीय ज्ञान हैं, परन्तु आप भाषान्तर के पर्याय शब्दों को जो अर्थ कहते हैं यह ग़लत है ब्राह्मण ग्रन्थों वाला अनुवाद या भाष्य के शब्द उस अर्थ के संस्कारों के प्रतिनिधि हैं अर्थात् समाधि में साक्षात् हुऐ अर्थ की स्मृति मात्र हैं यथार्थ अर्थ

वाणी वा श्रोत्र का विषय ही नहीं न नेत्र का, तो भाष्यादि के शब्द वेद कैसे हो सकते हैं वह अल्पज्ञ मनुष्य के संस्कारी ज्ञान के प्रतिनिधि हैं और वेद के शब्द सर्वज्ञ ईश्वर के अनन्त ज्ञान के। और जब सायण और महीधर तथा दयानन्द सब पृथक २ संस्कार रखते हैं तो उनके भाष्य एक से तथा वेद कैसे माने जा सकते हैं।

८०—देश विशेष की भाषा में वेद का प्रकाश होने से ईश्वर पर जो पक्षपात का दोष आता है उसके विषय में फुट नोट में आप लिखते हैं।

"ऐसा करता तो दुनिया तो उसे रहम कहती ईश्वरने ज्ञान देने की कृपा भी की तो उस जबान में देने से क्या फ़ायदा जिसे कोई न जाने। यह तो लुक छपाई का खेल खेलना है।"

(आर्य्य) अल्पज्ञ मनुष्य की भाषाओं में सर्वज्ञ ईश्वर के ज्ञान को जाहिर करने की योग्यता ही नहीं न सृष्टि के आदि में इनमें से कोई भी भाषा प्रचलित थी न देश वा जातियाँ जुदा थीं केवल एक वैदिक भाषा ईश्वरीय ज्ञान में और एक मनुष्य जाती थी अतः उसी में उसका प्रकाश हुआ आप इसे लुक छपाई का खेल कहें तो भी मुज़ाइक़ा नहीं। ज्ञान देने वाले परमात्मा और ज्ञान को ग्रहण करने वाले आत्मा दोनों का ही जिनको ज्ञान न हो उनके लिये निश्चय यह लुक छपाई का खेल है, पर ऋषियों के आत्मा में परमात्मा और उसका ज्ञान दोनों ही एक रूप में प्रत्यक्ष हैं।

सर्ग १९—ईश्वर सिद्धि-प्रत्यक्षादि प्रमाणों से

८१—पृष्ठ १०५ से १२३ तक में 'इस्तदलाल के नमूने' का शीर्षक देकर "ईश्वर की हस्ती के मुतअल्लिक़ प्रत्यक्ष प्रमाण"

के विषय पर विचार किया है इस सम्बन्धमें पहिला पेच यह खेला है कि स्वामी जी ने तो लिखा था "ईश्वर की हस्ती का सुबूत सब प्रत्यक्ष वग़ैरा प्रमाणों से" इस से वग़ैरा का शब्द आपने छोड़ दिया है और स्वामी जी ने अनुमान वा शब्द प्रमाण विषय में जो लिखा उसे आप प्रत्यक्ष प्रमाण के दाइरे से खारिज बता कर अंड संड व्यवस्था देने लगते हैं।

८३—साहब जी महाराज फ़रमाते हैं कि "एक मनुष्य अपने कथनानुसार जेब से हीरा निकाल कर दिखा देवे तो यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। पर यदि कोई कहे मैंने ईश्वर को अपनी आंख से देखा तो चाहे यह उस के लिये प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसे कहा गया उसके लिये अवश्य ही शब्द प्रमाण है। प्रत्यक्ष उसके लिये जब हो कि बाह्य इन्द्रियों से उस को ग्रहण करादे।" इन दृष्टान्तों में ईश्वर को आंख से देखने वाली बात ग़लत है। इस के अलावा शब्द प्रमाण है तो भी स्वामी जी का पक्ष सिद्ध है और प्रत्यक्ष है तो भी क्योंकि "प्रत्यक्ष वग़ैरा" की प्रतिज्ञा के अन्तर्गत शब्द प्रमाण भी है। रहा दूसरे को भी आंख से दिखाना, सत्यासत्य के निर्णय में बुद्धि को युक्ति की प्रबलता से पराजय करना इस से अधिक गौरव रखता है।

८३—विपक्षी सूक्ष्म प्रकृति के विषय में मत भेद रखता हो या स्थूल पदार्थ के विषय में, अपने देश की किसी वस्तु के सम्बन्ध में या विदेश की, हर हाल में युक्ति और प्रमाण से ही यथार्थ विषय का प्रत्यक्ष कराया जाता है। विपक्षी नेत्रहीन हो तो उसे आंख से नहीं दिखाया जा सकता और बहिरा हो तो उसे कान से सुनाया नहीं जा सकता, परन्तु इस अवस्था में इस दिखाई वा सुनाई न देने से रूप और शब्द का अभाव नहीं हो जाता। अन्धों को कान के द्वारा तथा बहिरे को आंख के द्वारा अर्थात किसी न

किसी साधन से ज्ञान किया जाता है और आत्मा के लिये उसका प्रत्यक्ष हो जाता है । अतः इन्द्रिय और मन के शब्दों की आड़ में भ्रान्ति फैलाना सर्वथा अनुचित है।

८४—"हर जगह मौजूद है पर वह नजर आता नहीं-योग साधन के बिना उसको कोई पाता नहीं" इसे साहब जी महाराज इस अर्थ में लेते हैं कि नेत्र से दिखाई न देने के कारण परमेश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान हो नहीं सकता (२) ऐतरेय उपनिषद् में है ईश्वर मन और वाणी आदि इन्द्रिय की पहुँच से परे है (३) वैशेशिक दर्शन (८-१-२) में आत्मा और मन तक अप्रत्यक्ष कहे हैं। सांख्य दर्शन ९-१२ में युक्ति से ईश्वर की असिद्धि बताई है। न्याय दर्शन (१-४ १४) में इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से अव्यभिचारि आदि ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है इस से आप समझ लेते हैं कि स्वामी जी का ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण कहना सिद्ध नहीं हो सकता।

८५—परन्तु "इन्द्रियों के अर्थ से सन्निकर्ष" का भाव केवल बाह्य इन्द्रियों से नहीं, अपितु जिस भी साधन से आत्मा को ज्ञान वा अर्थ का अनुभव हो वही इन्द्रिय है । नेत्र का रूप से सम्बन्ध है और मनका नेत्रसे तभी मन उस रूपको देखता है। किसी अन्य विषय में मग्न होने पर मन आंख के सामने विद्यमान वस्तु को भी देख नहीं सकता। पर स्वप्न में नेत्र बन्द होने पर भी संस्कारों के कारण रूप देखा जाता है असल द्रष्टा आत्मा है वह अपनी स्वाभाविक शक्ति से स्वयं इन्द्रिय रूप होकर उस अवस्था में परमात्मा का प्रत्यक्ष कर सकता है जब मन को धारणा के द्वारा एक मुक़ाम पर टिका कर वह उस से पृथक हो। अतः सब से मुख्य प्रत्यक्ष वह है, जो आत्मा रूप नेत्र से परमेश्वर का होता है। समाधि, सुषुप्ति तथा मुक्ति में आनन्द भी इसी स्वाभाविक शक्ति

से ग्रहण होता है अतः न्याय वाला लक्षण सर्व प्रकार के प्रत्यक्ष पर चरित्रार्थ होता है । इसी लिये स्वामी जी लिखते है कि श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, वाणी, नासिका और मन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख दुख सत्यासत्यादि विषयों से सम्बन्ध होने पर जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष कहाता है। इस मे पांचों इन्द्रियां, मन, बुद्धि और आदि कहने से ज्ञान व आनन्द को ग्रहण करने वाला आत्मा सब आ गये। इस दृष्टि से सर्व प्रकार से परमेश्वर का प्रत्यक्ष ही प्रत्यक्ष और स्वामी जी का कथन सर्वथा निर्दोष सिद्ध है।

८६—परन्तु साहब जी महाराज की पक्षपात के कारण विचित्र ही अवस्था है।

(१) एक स्थान पर आप फरमाते हैं कि सुख दुःख और सत्यासत्य को पांच इन्द्रिय के शब्द स्पर्शादि विषयों के साथ गिनना सरासर अन्याय है क्योंकि यह तो जड़ पदार्थ के गुण भी हैं पर इससे पाया जाता है कि आप जीवात्मा में स्वाभाविक शक्तियों के होने को भी समझते हैं परन्तु आत्मा का हनन करके एक तो व्यर्थ का एतराज़ करते और दूसरे स्वामी दयानन्द पर दोष देते हैं।

(२) दूसरे स्थान पर आप इस चक्कर में पड़ते हैं कि क्या मन अपनी किसी विशेष शक्ति से सुख दुःख और सत्यासत्य का भी प्रत्यक्ष करता है। यदि ऐसा होता तो पांच से भिन्न कोई और इन्द्रिय भी कही जाती परन्तु सुख दुःख और सत्यासत्य का अनुभव तो आत्मा को होता है मन और बुद्धि केवल इन्द्रिय वत हैं।

(३) ज़रा और आगे चलकर आप इस चक्कर में पड़ जाते हैं कि न्याय दर्शन वाले सूत्र के स्वामी जी ने तीसरे समुल्लास में जो अर्थ लिये हैं उनमें सुख दुःख सत्यासत्यादि के शब्द नहीं परन्तु व्याख्या करते हुये मूल शब्दों के पर्याय वाची शब्दों में ही कोई

भी विद्वान कैद नहीं रह सकता। कानूनी बहसों में अनेक रिसालों वा ला रिपोर्टें तथा मिसलोंके उदाहरणादि पढ़े जाते हैं वकील अपने विवादस्पद विषय वा पक्षके अनुसार उचित शब्द लेता उनकी अपने शब्दों में व्याख्या करता है पर असल धारा के शब्द इससे बढ़ या घट नहीं जाते। कुरान में कहा है कि इस पुस्तक में मुख्य और गौण २ प्रकार की आयतें हैं और जो लोग झगड़े बढ़ाना चाहते हैं वह गौण मत भेद की आड़ ले लेते हैं। अतः देखना केवल यह चाहिये कि स्वामी जी वाली व्याख्या मूल सूत्र के आशय के अनुकूल तथा उसके अन्तर्गत है वा नहीं। यह झगड़ा ले बैठना कि दो स्थानों में लिखे गये अर्थ में एक दो शब्दों का भेद है केवल वक्ता की नियत को संदिग्ध बनाता है।

(४) स्वामी जी फ़रमाते हैं कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है गुणी का नहीं। जैसे आंख से रूप देखकर कहते हैं कि अमुक मनुष्य गोरा है वैसे ही कार्य्य जगत को देखकर कर्ता ईश्वर का और अद्भुत रचना को देखकर उसकी कारीगरी का ज्ञान होता है। साहब जी कहते हैं यह तो गुणों का प्रत्यक्ष हुआ ईश्वर का नहीं, परन्तु आपको यह ख़्याल नहीं आता कि ईश्वर की सत्ता उसके गुण उसका ज्ञान उसका बल उसकी क्रिया सब एक रूप हैं इसी लिये उसे ऐन जात और ऐन सिफात सलाम में कहा गया है। दूसरे पांच ज्ञान इन्द्रियों से मिलकर भी किसी पदार्थ का सत्य ज्ञान नहीं होता। इनसे केवल बाह्य स्थूल गुणों की पहिचान होती है उस केआन्तरिक परमाणुओं तथा गुणों का प्रत्यक्ष नहीं होता यह ज्ञान समाधि में प्राप्त होता है। अतः जब पांच वा एक दो इन्द्रियों से जाने गये गुणों पर प्रत्यक्ष प्रमाण का शब्द बोला जाता है तो ईश्वर के गुणों का ज्ञान होने पर भी प्रत्यक्ष कहने में कोई दोष होना असम्भव है।

(५) एक और एतराज़ यह है कि अगर दुनिया की सनअत और हिकमत को देखकर ईश्वर का ज्ञान होता है तो मग़रब से साइन्सदां और माहिरानं इल्मे जियालोजी, बयालोजी, फ़िज़िया-लोजी, नजूम वग़ैरा सब अन्धे हैं उन्हें क्यों सनअत और हिकमत नज़र नहीं आती और आती है तो वह क्यों ईश्वर की हस्ती से मुनकिर हैं" हम कहते हैं पहिले तो इन विद्याओं में कुशल आम मनुष्य प्रायः ईश्वर को मानते हैं आप उन पर नास्तिकता का दोष लगाने में अन्याय करते हैं। दूसरे यदि कोई नहीं भी मानता तो यह केवल संस्कारों को उभरने का अवसर न मिलने का परिणाम है। अनेक नास्तिक विद्वान एक आध युक्ति वा घटना के प्रभाव से अपनी सम्मति बदलने पर वाधित हुये हैं। महात्मा मुन्शीराम केवल दयानन्द की विद्वत्ता के प्रभाव से पलटा खाता है। पं० गुरुदत्त एम० ए० स्वामी दयानन्द की मृत्यु के दृश्य से ही प्रभावित होकर आस्तिक बन जाता है। अतः यह अविश्वास शिक्षा का दोष है किसी विचार पूर्ण निर्णय का फल नहीं।

(६) स्वामी जी की प्रत्यक्ष सम्बन्धी व्याख्या सर्वाङ्ग पूर्ण तथा सत्य है और न्याय दर्शनके आशयके अनुसार वाह्याभ्यन्तर दोनों प्रकार का प्रत्यक्ष इसमें आ गया है। साहब जी कहीं सांख्य-दर्शन के किसी सूत्र से वाह्य प्रत्यक्ष के अर्थ लेकर इसे स्वामी जी के विरुद्ध बताते हैं कहीं योगियों के आन्तरिक प्रत्यक्ष का वर्णन करके उनके कथन को सत्य स्वीकार करते हैं कहीं ऋग्वेदादि भा० भू० के अनुवादक वाली व्याख्या को अनुचित और कहीं उचित हस्ताक्षेप कहते हैं। पर इन से न कोई एतराज़ सिद्ध होता है न विरुद्ध युक्ति अतः साहब जी को हवा से बातें करता छोड़कर हम आगे चलते हैं।

८७—साहबजी स्वामीजी की इस युक्ति को अनुमान प्रमाण

कहने के भी विरुद्ध हैं कि जगत सम्बन्धी कारीगरी तथा बुद्धिमता को देखकर इसके बनाने वाले का ज्ञान होता है क्योंकि इसके लिये आवश्यक है कि पहिले ईश्वर और उसकी कारीगरी को एक जगह देखा हो परन्तु यह आक्षेप सर्वथा निराधार है क्योंकि कारीगरी के साथ कारीगर का और ज्ञान के साथ ज्ञानी का शब्द चाहिये। मनुष्य कारीगरों और ज्ञानियों को हम एक साथ देख चुके हैं इस लिये जगत व्यापक कारीगरी सर्वव्यापक कारीगर का बोध कराती है। आप आशंका करते हैं कि मनुष्य कारीगर के सशरीर होने से यह दृष्टान्त ठीक नहीं बैठता परन्तु जैसे पिण्ड में आत्मा वैसे ब्रह्मांड में परमात्मा अतः दृष्टान्त निर्दोष है। आप फ़रमाते हैं कागज़ को देख कर क्या ग्रामीण पुरुष अवश्य ही कागज़ की मशीन अथवा कागज़ बनाने वाले कारीगरों का अनुमान कर सकता है? हम कहते हैं क्या ग्रामीण पुरुषों का व्यवहार ही आप के सत संगियों का पथ प्रदर्शक है? अनुकरण विद्वानों का करना चाहिये मूर्खों के उदाहरण से सब को मूर्ख न बनाना चाहिये।

८८—(पृष्ठ १२०, धारा १३३) पर निम्न प्रकार के आक्षेप हैं:—

(१) रचना सम्बन्धी कारीगरी को देख कर यही अनुमान हो सकेगा कि कोई बड़ा कारीगर मनुष्य इस का बनाने वाला है क्योंकि निराकार ईश्वर कारीगर का तो उसे अनुभव ही नहीं, पर हम पहिले कह आये हैं कि सर्व प्रकार की कारीगरी का आधार आत्मा के ज्ञान पर है और वह निराकार है अतः जगत व्यापी कारीगरी के लिये जगत व्यापी निराकार आत्मा का ही अनुमान होगा।

(२) रचना सम्बन्धी क्रिया वैचित्र्य को देख कर भिन्न २ कारीगर माने जायेंगे, सूर्य्य, चन्द्र, पृथ्वी हाथी मच्छर मक्खी प्रत्येक का बनाने वाला भिन्न २ ईश्वर मानना होगा, परन्तु जब सब पदार्थों

का उपादान कारण केवल सत, रज, तम नाम तीन गुणों पर निर्भर है और सब पदार्थों में उत्पत्ति स्थिति तथा नाश सम्बन्धी एक ही प्रकार के नियम हैं, सूर्य्य. चन्द्र, पृथ्वी, नक्षत्र सब अपने २ स्थान में एक ही अटल नियम के आधीन भ्रमण कर रहे हैं तथा एक दूसरे का सहयोग कर रहे हैं, सूर्य्य की गरमी और रोशनी से पृथ्वी के मनुष्य उपकार पाते तथा अन्न अनाज पकते हैं और सब नक्षत्र और पृथ्वी सूर्य्य के गिर्द अपने २ नियत मार्ग पर चलते हैं अतः इन सब समान नियमों वा कामों का एक ही नियामक तथा व्यापक कारीगर है। यदि प्रत्येक पदार्थ का भिन्न २ बनानेवाला हो तो पहिले तो कारीगरों का परस्पर का झगड़ा तकरार तथा हरेक का प्रकृति पर अपना अधिकार रखने और दूसरे का उस से छीनने का यत्न, सूर्य्य वाला कारीगर सूर्य्य बना कर सब की रचना को जलाये, और वायु वाला सब को उड़ायेगा, समुद्र वाला बहायगा अतः सब शक्तियों का परस्पर का सहयोग देख कर उन सब के एक ही नियन्ता होने का प्रत्यक्ष रूप से प्रबल प्रमाण मिलता है।

(३) मनुष्य कृत चीजों का बनाने वाला तो माना जायगा, पर औरों के लिये अनुमान हो सकेगा और इस अवस्था में वह चीजें नित्य होंगी। पर सब चीजें नष्ट होती व बदलती देखी जाती हैं जिस से उनका स्वभाव से अनित्य होना सिद्ध है और जब अनित्य हुई तो उन का पैदा होना और पैदा करने वाला अवश्य हुआ।

(४) एक ही ईश्वर गौ जैसा कोमल प्रकृति वाला और शेर जैसा हिंसक पशु सूर्य्य जैसा प्रकाश मान और चांद जैसा अन्धेरा लोक बनावे यह हो नहीं सकता अतः इन के रचने वाले भिन्न २ सिद्ध हैं। पर इस अवस्था में एक चीज की एक ही रंग और एक ही तासीर माननी होगी। पर प्रत्येक वस्तु में भिन्न २ रंग है।

बीज काला है, तना सफ़ेद शाखा भूरी पत्ते सब्ज, फल लाल इत्यादि। अतः यह उपादान कारण से है न कि निमित्त कारण से ऐसा ही गौ और शेर के स्वभाव में बड़ा अन्तर है पर वही शान्त प्रकृति वाली गौ बच्चा देती है तो कोई भी उसके पास आवे उस पर हमला करती है बैल आपस में लहु लुहान होते हैं। इस के विपरीत हिंसक शेर अपने रक्षक मनुष्य आदि से अहिंसा भाव से बरताव करता देखा जाता है भेड़िया हिंसक पशु है पर न हे बच्चे को उठा ले जाये तो उसे प्रेम से पालता है अतः सब में दोनों प्रकार के गुण हैं जो दूसरे अर्थात पैदा करने वाले के सम्बन्ध में नैमित्तक अवस्था के रूप में प्रगट होते हैं।

(५) यदि जगत की कारीगरी आदि से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध है तो पदार्थ वेत्ता तथा वैज्ञानिक लोग ईश्वर को क्यों नहीं मानते? इस का उत्तर ऊपर आ गया। साथ ही यह आक्षेप आप के अपने व्यवहार से रद्द होता है आप साइन्स जानते हुये यदि ईश्वर से भी कई लोक ऊपर के राधा स्वामी को मानते हो तो ईश्वर से इन्कार कैसा? फिर जब प्रसिद्ध नास्तिक भी ज्ञान, बल, क्रिया सब गुणों को मानते हैं तो क्या यह दूसरे शब्दों में ईश्वर सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्त को स्वीकार करना नहीं?

८९—तीसरी युक्ति स्वामी जी ने यह दी कि जिसमें सृष्टिनियम प्रत्यक्षादि प्रमाण तथा सदाचार के विरुद्ध न हो वह ईश्वरीय वाणी है। साहब जो महाराज कुछ मंत्र देकर वेद में अश्लील तथा प्रत्यक्ष आदि के विरुद्ध बातों को विद्यमानता का दावा करते हैं, परन्तु ऐसा कहना उनके स्वयं भूल में होने को सिद्ध करता है।

(क) यजु० १३, १२, का स्वामी जी कृत अनुवाद दिया है—
"हे राजपुरुष! आप धर्म के विरोधी शत्रुओं को अग्नि में जला डालें। हे ऐश्वर्य्य युक्त पुरुष! जो हमारे शत्रु को हौंसला देता है

आप उसे उल्टा लटका कर काष्ठ की तरह जलाइये।"

(आर्य्य) साहब जी को विदित है कि सरकार दोषियों को कड़े से कड़े दण्ड देती है। हमारी सभ्य सरकार ने होनहार नवयुवकों को फांसी तक का दण्ड दिया। राजपुरुषोंने शत्रुओं को बिजलीकी तोप से उड़ा दिया। अस्सी मील तक मार करने वाली तोपें, समुद्र और भूमि के शस्त्रास्त्र, हवाई जहाज शत्रु दल को नष्ट करने वाली गैसें, सब का ज्ञान रखते हुये इस प्रमाण पर एतराज करना निःसंदेह आश्चर्य्यजनक है। मनुस्मृति में दण्ड को ही राजा कहा है, सरकारी कानून का नाम ही "ताज़ीरात" या "दण्ड पद्धति" है। यदि ब्राह्मण को वेद यह शिक्षा देता तो दोष लग सकता था। पर यहां तो सम्बोधन ही क्षत्रिय या राजपुरुष को किया गया है। साहब जी पक्षपात वा स्वार्थ पूर्ण व्यवहार जो वर्तमान क्षत्रिय सारे देशों में कर रहे हैं उस पर तो कभी विचार तक नहीं करते पर मनुष्य जाति के सुख तथा उन्नति की दृष्टि से धर्म के विरोधी मनुष्यों को निर्मूल करने के व्यवहार पर दोष लगाते हैं। साथ ही ब्राह्मण वा संन्यासियों को सत्योपदेश द्वारा जो पापी मनुष्यों को पुण्यात्मा बनाने का मुख्य उपदेश है उसको भी विचार में नहीं लाते।

(ख) घोड़े में, खच्चर में मस्त बकरे में जो कुव्वत बाह है उसक इस············में क़ाइम कर (अथर्व २४-४-८)

(ग) ओखली के सामने जाकर नंगी औरत इस प्रकार कहती है कि जिस प्रकार दरख्त से काटकर बनाया हुआ मूसल तेरे लिये है उसी तरह मेरे लिये भी······अथर्व २०—१३६—६७। नुक्तों वाले स्थान में बहुत अश्लील शब्द हैं यह फुटनोट में लिखा है।

(आर्य्य) हमें हर्ष है कि आप में शर्म व हया का प्रबल भाव है। पर शोक है कि आपने शिवालयों में लिंग और जलहरी का

चित्रादि देखकर कभी आवाज़ न उठाई। न इनके दर्शक स्त्रीपुरुषोंको रोका। मैडीकल कालिजों में इन गुप्त अंगों तथ स्त्री पुरुष के समागम सम्बन्धी चित्र और गन्दे रोगों का वर्णन जो विद्यार्थियों की अपनी पुस्तकों में नित्यप्रति देखने तथा पढ़ने होते हैं उनपर कभी किसी ने एतराज़ नहीं किया। तो धर्म ग्रन्थों में सन्तानोत्पत्ती के साधनों के सम्बन्ध में जो दृष्टान्तादि हो उसपर एतराज़ होने के क्या अर्थ। शिवालयों के चित्र उत्पत्ति के दृष्ठान्त थे। डाक्टरी कालिज के कोर्स भी मनुष्य जाति के उपकार के लिये इन विषयों का वर्णन करते हैं। इस ज्ञान का पूरा मूल वेद में है और वेद मंत्रों के द्वारा मनुष्य को सृष्टि की यथार्थ वृद्धि के बिषय में अनेक उच्च-कोटि के मौलिक सिद्धान्त मिलते हैं। परन्तु मर्यादा विरुद्ध व्यवहार करने वालों के आत्मा में लज्जा भय आदि के संस्कारों से वह भाव पैदा होता है जिसे ग़ैरत का नाम दिया जाता है। साहूकार खुले तौर पर हज़ारों लाखों का लेन देन करते हैं पर चोरी के नोट जिस के पास हों उसे देने हुए उसके मन में भय होता है इसी प्रकार स्त्री पुरुष के नियम विरुद्ध समागम अर्थात् विशेष शक्तियों के दुरुप-योग से गुप्त अंगों के सम्बन्ध में शर्म वा ग़ैरत का भाव है इसमें वेद वा उसके किसी भाष्य का दोष नहीं।

९०—प्रार्थना विषय में एतराज़ किया कि स्वामी जी समुल्लास ७ में तो कहते हैं कि:—

"इस प्रकार की प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न ईश्वर इसको स्वीकार करता है कि हे परमेश्वर! मेरे शत्रुओं का नाश करो मुझे सब से बड़ा करो। मेरी ही कीर्ति हो और सब मेरे आधीन होजायें इत्यादि। पर ऋग्वेदादि भा० भू० में लिखा है कि मनुष्य को चाहिये कि सर्वदा यत्न और पुरुषार्थ करता रहे और ऐसी इच्छा करे कि मैं ईश्वर की कृपा से सभापति का पद प्राप्त

करूं, देश २ के राजा मेरे आधीन हों तथा सारे भूगोल पर मेरा चक्रवर्ती राज्य हो।............(एतरेय ब्रा०)

ऋग्वेद १—३—१८—२ का अनुवाद भी ऋग्वेदादि भा० भू० से दिया है जिसमें परमात्मा आशीवाद देते हैं कि तुम्हारे अस्त्र शस्त्र विजयी हों तुम्हारे शत्रु पराजित हों इत्यादि।

(आर्य्य) इन प्रमाणों म कोई परस्पर विरोध नहीं। आशय सर्वत्र यह है कि यथार्थ विधि से जिस काम के लिये पुरुषार्थ हो उसी के लिये प्रार्थना हो। खाली प्रार्थना फल नहीं लाती साथ ही प्रार्थना द्वेष भाव से न हो कि एक दूसरे के नाश की इच्छा पाई जाय। हां सद्भावपूर्वक उन्नति तथा ऐश्वर्य्य की प्रार्थना सब मनुष्यों के विद्या तथा बुद्धि बल की वृद्धि करता है। गुरु यही उपदेश देता है कि सारी श्रेणी में प्रथम होने की कामना करो। इस मे किसी एक की उन्नति तथा शेष सब की अवनति का आशय नहीं अपितु सब को उच्चतम आदर्श को लक्ष्य रख कर यत्न करने की शिक्षा है। यही आशय सत्यार्थ प्रकाश में है जो इन शब्दों से सर्वथा स्पष्ट है "जो मनुष्य किसी बात की प्रार्थना करता है उसको आचरण भी वैसा ही करना चाहिये जैसे सब से उत्तम बुद्धि सम्बन्धी प्रार्थना की जाय तो इसके लिये अपनी ओर से भी जितना यत्न सम्भव हो अवश्य करे अर्थात अपने पुरुषार्थ के पीछे प्रार्थना करनी चाहिये।"

९१—साहब जी पूछते हैं कि मनुष्यको उन्नति तथा सभ्यताके लिये जिस बाह्य सहायता की आवश्यक्ता है, वह वेद के प्रकाश से पूरी हुई अथवा कलाधारी पुरुषों के आने से ? अग्नि आदि न होते तो वेद किस पर प्रकाशित होते। फिर यदि उनके पीछे ऋषि न होते तो वेदार्थ का प्रकाश किन पर होता और मनुष्य को शिक्षा तथा पथ प्रदर्शन कैसे होता ? अतः ऐसे पूर्ण पुरुषों के आने की

आवश्यकता है जो उस ज्ञान को अपने मन में लेकर दूसरों तक पहुँचा सकें ।

(आर्य्य) हमारा कभी यह दावा ही नहीं हुआ कि ऋषियों के बिना वेद या उनके अर्थ प्रकाशित हुये और जब वेद ज्ञान को स्वयं धारण करने तथा औरों तक पहुंचाने वालों की आवश्यक्ता आप स्वीकार करते हैं तो राधा स्वामी गुरुओं से लोगों को क्यों नहीं बचाते जो न स्वयं वेद को धारण करते न दूसरों तक पहुंचाते हैं पूर्ण पुरुषों वा ऋषियों की आवश्यक्ता इस लिये है कि वह ज्ञान का प्रकाश करे न इस लिये कि इस की आड़ में लोगों को लूटा जावे ।

९२—स्वामी जी ने लिखा है कि बुरे कामों के लिये जो भय वा लज्जा और अच्छे कामों के लिये जो प्रसन्नता वा उत्साहादि होते हैं वह जीव की तरफ से नहीं परमात्मा की तरफ़ से है । साहब जी महाराज ज़मीर की आवाज़ का मूल conscious mind को कहते हैं परमात्मा को नहीं पर स्वामी जी की युक्ति को आपने छुआ तक नहीं कि जीव की इच्छा तथा उस का ज्ञान तो उस समय उस चीज की तरफ़ झुक रहे हैं अतः पाप के विरुद्ध और पुण्य के पक्ष में प्रेरणा करने वाली परमात्मा की ही सत्ता है । आप स्वयं दृष्टान्त देते हैं कि आज एक मनुष्य मुसलमान है और उसकी ज़मीर उसे ईद की क़ुरबानी के लिये उकसाती है पर २ वर्ष पीछे वह आर्य्य समाजी बनता है और अब उसकी ज़मीर उसे मांस भक्षण के विरुद्ध उपदेश देती है । हमारे विचार में यह ज़मीर की आवाज़ की यथार्थ स्थिति नहीं, विचारों की दासता तथा मज़हबी पक्षपात है । परमेश्वर की प्रेरणा जिस की ओर स्वामी जी का संकेत है, एक अटल सिद्धान्त है । एक मनुष्य अपनी इच्छा से और अपनी सारी शक्तियों की सहायता से एक

धनवान को क़तल करता है। किसी ने उसे क़तल करते नहीं देखा न वह पकड़ा गया है रुपया इस क़तल से उसे लाखों मिल गया है फिर भी उसे कोई खुशी नहीं, वह छिपता फिरता और कहीं दूर निकल जाने की सोचता है। इस घटना की चर्चा सुनते ही उसका दिल धड़कता है। उसकी प्रत्येक चेष्टा तथा बोल चाल में ऐसा परिवर्तन होता है कि अनेक अवसरों पर अनुभवी पुलिस अफ़सर बिना किसी के कहे उस पर संदेह करते और वह अपने अन्दर के ही भय से दोष स्वीकार करने में विवश होता है अतः यह किसी आत्मा के आधीन शक्ति का काम नहीं। जीवात्मा के स्वभाव के साथ परमात्मा की प्रेरणा का मेल ही conscience है और conscious mind केवल आत्मा के संस्कारों के समुदाय विशेष का नाम है। जैसे पुत्र के किसी दूषित व्यवहार पर पिता की क्रूर दृष्टि होती और अच्छे काम पर उस से प्रशंसा होती है उसी प्रकार आत्मा में भय वा आल्हादादि परम पिता परमात्मा की विद्यमानता के सूचक हैं।

धारा ३७ पृष्ठ १२२ में साहब जी लिखते हैं कि हज़ारों मनुष्यों की ज़मीर ने बालकपन से लेकर अब तक अनेक विषयों में राय बदली है। इससे विदित होता है कि आप संस्कारों की प्रबलता वा निर्बलता के फल रूप में होने वाले परिणाम को ज़मीर कहते हैं पर स्वामी जी उस प्रेरणा की ओर संकेत करते हैं जो आदि सृष्टि से अब तक सारे आत्माओं से समान सम्बन्ध रखती आ रही है।

९३—स्वामी जी ने तीसरा प्रत्यक्ष समाधि अवस्था वाला माना है पर साहब जी इस ज्ञान का गौतममुनि वाले प्रत्यक्ष प्रमाण से सम्बन्ध नहीं मानते आप कहते हैं उस समय तो चित्त की वृत्तियों का निरोध हो चुका है। पर विदित रहे कि यथार्थ प्रत्यक्ष तो होता ही इस अवस्था में है। चित्त की वृत्तियों का निरोध किया

ही इसलिये जाता है कि आत्मा कह सके "त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि" निश्चय तूही प्रत्यक्ष ब्रह्म है ! इन्द्रिय का अर्थ से सम्बन्ध होने पर प्रत्यक्ष होता है और चूंकि सारी इन्द्रियों की कारण शक्ति आत्मा में है अतः परमात्मा के प्रत्यक्ष के लिये आत्मा ही प्रधान इन्द्रिय है स्वामी जी कहते हैं आत्मा उस ज्ञान को ग्रहण करने के लिये नेत्रवत है। साहब जी कहते हैं योगियों का प्रत्यक्ष ज्ञान साधारण मनुष्यों की पहुँच से परे है और उनके लिये यह शब्द प्रमाण है। निःसंदेह समाधि में साक्षात हुये ज्ञान को ऋषि जन स्मृति के अनुसार औरों तक पहुँचाते हैं पर प्रश्न न शब्द प्रमाण का है न किसी के उपकार का किन्तु केवल इस बात का है कि योग की अवस्था में जो ईश्वर का दर्शन है वह साहब जी के कथन से भी सर्वोत्तम प्रत्यक्ष सिद्ध होता है। सारांश यह कि न्याय वा सांख्य दर्शन के प्रमाणों से भ्रान्ति फैलाने के यत्न में साहब जी को सफलता होना सर्वथा असम्भव है।

सर्ग २३—बहानाबाज़ी वा छेड़खाना

९४—स्वामी जी ईश्वर को न्यायकारी कहते हैं साहब जी फ़रमाते हैं "ग़ायासुलुग़ात में न्याय (इन्साफ़) का अर्थ है दो टुकड़े करना और उन्हें बराबर करना अतः बताओ ईश्वर के साथ दूसरा कौनसा फ़रीक़ है जिस के साथ उसने इन्साफ करना है। हम यहां बिना किसी कारण के केवल बहाना ढूंढ कर झगड़ा करने की आदत साहब जी का देखते हैं। भला कहां वेद का न्याय शब्द जो सर्व प्रकार के धर्म कर्म और सुख दुख के फलादि में व्यापक है और कहां फ़ारसी का शब्द इन्साफ़ और ग़ायासुलुग़ात जिस के

विषय में हमारा कोई उत्तर दायित्व है ही नहीं, रहा दूसरा फ़रीक़ वह जीव रूप प्रजा आप के सामने है और दुख सुख रूप कर्मफल भी प्रत्यक्ष है। सरकार की ओर से प्रजाके मनुष्यों पर जो अभियोग चलते हैं उन में क्या दो पक्ष नही होते।

९५—ईश्वर को ज्ञान था कि जीव पुनः पुनः पाप करेगा और दुख पाता रहेगा अतः ईश्वर मजिस्ट्रेटी अधिकारों का भूखा है इसी पुरानी ख़ाहिश को पूरा करने को ही उस ने सृष्टि रची। यह एतराज़ करते हुये साहब जी निःसन्देह अपने आत्मा का हनन करते हैं। वह राधा स्वामी की धार से रचना होने तथा इस की सम्भाल वा देख भाल के लिये १८ पुरुषों का होना और उन सब पर राधा स्वामी दयाल का शासन होना को आप स्वीकार करते हैं। पर इस शासन में लूटमार, क़त्ल, मारपीट, फाँसी, कैद आदि से सब को रोते विल्लाते देख कर आप को यह नहीं सूझता कि यह सब राधा स्वामी की जान को ही रो रहे हैं कि सब को दुख में डाल आप आनन्द उड़ा रहा है और करतूत यह करते हुये भी नाम अपना दयालु रखाता है। क्या यह अपने राज करने वा स्वार्थ पूर्ण इच्छा के कारण नहीं। तथा साहब जी महाराज के हस्पताल में कड़वी दवाओं और चीर फाड़ से रोगियों के दुखी होने और रोने चिल्लाने तथा मृत्यु आदि से और अनेक संस्थाओं के कर्म-चारियों को अनेक बार बरख़ास्त तक करने से सिद्ध नहीं होता कि जनता के धन से अपना चौधरीपना क़ाइम करने को ही आपने सारा प्रपंच रच रखा है। अतः इस कुतर्क से बच कर ईश्वर के दया और न्याय के गुणों पर यथार्थ रूप से विचार कीजिये।

९६—साहब जी बाइबल का एक दृष्टान्त पेश करते हैं कि बाग़ीचे के मालक ने शाम को मज़दूरी देते हुये नये मज़दूरों को उजरत से कुछ अधिक दे दिया। जब दूसरे शाकी हुये तो कहा

तुम्हारी शिकायत अनुचित है । तुम्हारा हक तुम्हें मिल गया। मुझे अधिकार है जिसे चाहूं और दूं । इस से आप सिद्ध करते हैं कि ईश्वर अपने दया भरे क़ानून से सब की भलाई करता और कर्मानुसार दुख सुख देता है । नरमी से हो तो नरमी से और सख़्ती की आवश्यकता हो तो सख़्ती से काम लेता है और जो स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं उनसे विशेष व्यवहार करता है। अब मज़दूरों को पूरी उजरत देना तो न्याय है और किसी को बिना कारण के कुछ देना दूसरों पर अन्याय है, इस से मालक पर अनेक प्रकार के सन्देह तथा नि‌यम भंगादि दोष सिद्ध होते हैं। और यदि कारण विशेष से कुछ अधिक मिलता है जैसे स्तुति आदि से तो वह तो न्याय ही है और व्यर्थ के कुतर्क करते हुये साहब जो वैदिक सिद्धान्त को स्वयं इन शब्दों में स्वीकार करते हैं।

"यही हाल मालक के दया भरे क़ानून का है। दुनियां में जो कर्म शुभ माने जाते हैं मालक की भक्ति उन सब में उत्तम हैं इस लिये भक्त जन को विशेष उजरत मिलती है।"

अतः दया और न्याय दोनों का एक आशय सिद्ध है । यदि बढ़िया काम के कारण विशेष उजरत न मिलतो तो भक्ति के बिना भी किसी पर किस्मत का कड़छा चलता।

९७—इसी प्रकार सारी पुस्तक में वैदिक सिद्धान्तों को मानते हुये भी आप ज़ाहिरा उनके विरुद्ध असर डालते हैं। मुँडक उपनिषद २-२-८ में है कि ब्रह्म दर्शन की प्राप्ति पर मनुष्य के हृदय की ग्रन्थी खुलती है सारे संशय कटते हैं और कर्म क्षीण हो जाते हैं। साहब जी पूछते हैं, अब बताओ कर्म फल वाला क़ानून क्या हुआ ? हम कहते हैं जब यह अवस्था होती ही उसकी है जिसे ब्रह्म का दर्शन प्राप्त हुआ तो न्याय गया कहां वह तो ज्यों का त्यों मौजूद है।

९८—पृष्ठ १३७-१४१ धारा १५६-१५७ में अथर्व वेद के कुछ

मन्त्रों तथा सूक्तों की सुरखियां देकर शिकार मारना चाहा है जैसे वार्जाकरण, स्त्री वशीकरण, बिजुली और ओलों से खेती की रक्षा, रुधिर के बहने को रोकना। पर इन सब का सम्बन्ध गृहस्थ के सुख सम्पत तथा स्त्री पुरुष में उत्तम सन्तानोत्पत्ती के लिए स्त्री पुरुष अधिक से अधिक परस्पर का प्रम वा आकर्षण पैदा करना है, इसी को वीर्य्यवान होने वा वाजीकरण आदि से सम्बन्ध है क्या सब सत्य विद्याओं की कान वेद में सृष्टि के फलने फूलने की मुख्य विद्या का अभाव हो सकता है ? साहब जी जो भाव रखते हैं वह केवल उस भद्र पुरुष का है जो किसी पड़ोसी के दामाद के आने पर कहता है कि "आ गया है लड़की का यार" कौन बुद्धिमान् इस दुर्भाव के पक्ष में हो सकता है। देव शर्मा जी के आपने वेद विषय में जो शब्द उद्धृत किये हैं वह भी व्यर्थ की बहाने बाज़ो है किसी नवयुवक विद्वान् के शब्दों पर विशेषतः जो किसी दूसरे पुरुष के द्वारा प्रकाशित हों, किसा गम्भीर विचारक को इतना निर्भर न करना चाहिए।

सर्ग २४—वेद नित्य है

९९—ऋग्वेद ८, ८, ४८ के प्रमाण पर एतराज़ किया गया है कि ऋग्वेदादि भा० भू० में जो स्वामी जी ने इसका यह अर्थ लिखा है कि सब काइनात को क़ाइम रखने वाले परमेश्वर ने सूरज चांद वग़ैरा सब चीज़ों को मिसल साबक़ बनाया है। इसमें वेद का शब्द ही नहीं तो इसकी नित्यता की सिद्धि का क्या अर्थ ?

(आर्य्य) 'यथा पूर्वम कल्पयत' अर्थात् पूर्व कल्प के अनुसार रचना करने में स्वामी जी ने अन्य विद्वानों के सदृश वेदोत्पत्ति का भाव भी समझा और लिखा, जब मारे पशु पक्षी वृक्षादि सब बिना कहे आप मानते है तो इनका ज्ञान प्रकाश न हुआ यह विलक्षण विचार कैसा ? इसके अलावा पूर्व के ६, ७ मन्त्रों से प्रकरण भी यही बताता है सर्व प्रथम ऋत अर्थात् ज्ञान और सत्य को माना उसके पीछे अभीद्धा, तप, प्रलय, इसके पीछे अर्णवा समुद्र, सम्वत्सर तथा रात दिन, सूर्य चन्द्र सब को माना अतः अब यह सारी रचना पूर्व वत है और सर्व प्रथम इसमें ज्ञान लिखा है तो वेद का शब्द स्पष्ट रूप से मौजूद हुआ कि नहीं ?

१००—दूसरा एतराज़ यह है कि पातंजली मुनि के महाभाष्य के प्रमाण से वेद को नित्य कहना ठीक नहीं क्योंकि इसमें अक्षर और उनके संयुक्त शब्द अभिप्रेत हैं वेद मन्त्र नहीं । यदि यह भाव लिया जावेगा तो मनुष्य के मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द तथा राधास्वामी मत का उपदेश भी नित्य होगा ।

(आर्य्य) इस प्रमाण से महाभाष्यकार तथा स्वामीजी दोनों शब्द की ही नित्यता का आशय लेते हैं, वेद मन्त्रों और उनके अर्थों की नित्यता में तो वह प्रत्येक सूत्र में सर्वज्ञ ईश्वर का ज्ञान होने की अकाटय युक्ति देते हैं । अतः उतावले वा ओछे पन से काम लेने से क्या लाभ ? आप जो भ्रान्ति फैला सकते हैं उस को जड़ तो स्वामी जी पहिले ही काट चुके हैं । वह कहते हैं शब्द २ प्रकार का है नित्य वा अनित्य । ईश्वर के ज्ञान में जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध है वह तो नित्य है पर मनुष्य का शब्द अनित्य है क्योंकि जिस का ज्ञान वा क्रिया आदि नित्य हैं उसी के सर्व

गुणादि नित्य हो सकते हैं अतः ईश्वरीय ज्ञान का भंडार होने से वेद कदाचित नाशवान नहीं हो सकता।

१०१—स्वामी जी शब्द के नित्यानित्य विषय में गऊ शब्द का दृष्टान्त देते हैं कि पहिले ज़बान का सम्बन्ध ग से होता है। जब तक यह है ऊ से सम्बन्ध नहीं होता। मन का लक्षण यह है कि एक समय में दो का ख़्याल नहीं कर सकता तब उसके आश्रित वाणी किस प्रकार एक समय में दो का उच्चारण कर सकती है अतः पहिले क्षण में ग बोला गया और क्षण से भी न्यून समय में उसका नाश हुआ क्योंकि ऊ बोला नहीं जा सकता जब तक ग ख़तम न हो अतः मनुष्य के शब्द का एक २ अंग वा जो अक्षर क्षण क्षण में उत्पन्न वा नष्ट होता है वह नित्य नहीं। पर आकाश में गौ शब्द नित्य भी है यदि ऐसा न होता तो एक मनुष्य के एक बार गौ कह चुकने के पीछे वह ऐसा नष्ट होता कि कोई इसे बोल न सकता। और चूँकि हर मनुष्य, हर कहीं हर समय इसे बोल सकता है अतः आकाश में उस का नित्य अविनाशी रूप में होना सिद्ध है।

१०२—तीसरा एतराज़ है कि शब्द के नित्य सिद्ध करने से वेद नित्य सिद्ध नहीं हो सकते, क्योंकि वह शब्द समूह ही नहीं विचार समूह भी हैं और प्रत्येक भाषा के शब्द उसके बोलने वालों के विचारों का लिबास है। पर इसका उत्तर स्वामी जी ने सबसे पहिले दे दिया है, यह कह कर कि—

"ईश्वर की सारी शक्तियां निर्विवाद रूप से नित्य हैं अतः उसी ईश्वर से प्रकाशित होने के कारण वेद की नित्यता स्वतः सिद्ध है।" इसके साथ ही यह भी जानना चाहिये कि जब अनित्य मनुष्य के शब्दों को आप अनित्य मानते हैं तो नित्य परमेश्वर का

ज्ञान होने से उनकी नित्यता आपको स्वीकृत ही सिद्ध है।

१०३—चौथा एतराज़—स्वामी जी ने पूर्व मीमांसा का प्रमाण दिया है उसका अर्थ यह है कि नष्ट न होने से शब्द नित्य हो है क्योंकि उसका प्रकाश दूसरों के लिए है। इसमें शब्द को अनित्य कहा है वेद को नित्य वा अनित्य नहीं कहा।

(आर्य्य) असल सूत्र यह है—

नित्यस्तु स्याद्दर्श १ : पर.र्थत्व.त्

इसमें तो शब्द का शब्द ही नहीं पर प्रकरण शब्द का चल रहा है अतः जिसे दूसरे के अर्थ ज्ञान के लिये होने के कारण नित्य कहा वह शब्द ही है। फिर वेद को भो आर्ष साहित्य में शब्द कहा है और पहिले अध्याय मीमांसा के पहिले पाद में वेद का विषय है इस लिये नित्य वेद का ही ग्रहण होगा। दूसरे सूत्र में कहा है वेद में जिस अर्थ का विधान है वह धम है और पांचवे सूत्र में है वैदिक शब्द का अर्थ के साथ अटूट सम्बन्ध है उसका ज्ञान निर्भान्त उपदेश से होता है अतः शब्द नित्य हो तो भी वेद नित्य है और ज्ञान रूप लें तो भी अर्थ के साथ उसका पहिले ही सम्बन्ध माना गया है।

१०४—पांचवा एतराज़...वैशेषिक दर्शनवाले प्रमाणके अर्थ में जो "चारों वेद बे ज़वाल हैं" यह अर्थ कहां से आ गये। बे ज़वाल के लिये सूत्र में कोई शब्द ही नहीं।

(आर्य्य) असल सूत्र यह है—

"तद्वचनात आम्नायस्य प्रामाण्यात्"

अर्थात् ईश्वर का वाक्य होने से वेद को प्रमाण मानना चाहिये। इसमें वेद के परम वा स्वतः प्रमाण होने की युक्ति हो यह दो है कि वह ईश्वर का वाक्य है और चूंकि ईश्वर अविनाशी है अतः वेद के नित्यानित्य विषय में उसके इसी गुण को

जताने वाला शब्द 'बे जबरल' लाज़मी था।

१०५—छठा एतराज़-न्यायदर्शन २, १, ६६-विचार वेद प्रमाण विषय में है नित्यानित्य विषय में नहीं अतः नित्य शब्द क्यों लिखा गया है ?

(आर्य्य) जब आप ईश्वर का वाक्य होने से वेद की नित्यता पर एतराज़ नहीं कर सकते और स्वामी जी ने कहीं किसी नियत समय से वेद का सम्बन्ध होने का संकेत नहीं किया न आप ईश्वर की नित्यता पर आक्षेप करते हैं तब वेद के नित्यत्व के विषय में स्वामी जी का इस शब्द का प्रयोग करना आवश्यक क्यों हुआ ?

१०६—सातवां एतराज़—योगदर्शन १-२६ के प्रमाण में स्वामी जी ने ईश्वर को काल के बन्धन से रहित होने के कारण प्राचीन गुरुओं का भी गुरु कहा है। इस में भी वेद को नित्य कहने का ही दोष कहा है पर आपको इतना भी विचार नहीं रहा कि विवाद-स्पद विषय की दृष्टि से ही प्रमाण के अर्थों में उपयोगी शब्द प्रयुक्त होते हैं।

१०७—आठवां एतराज़-सांख्य दर्शन ५—५१ में कपल मुनि तो वेद को स्वतः प्रमाण सिद्ध करते हैं पर स्वामी जी अपने लिये यह परिणाम निकालते हैं कि ईश्वर को निज शक्ति से उत्पन्न हुये तथा नित्य हैं।

(आर्य्य) असल सूत्र यह है—

"निज शक्ति-यभि व्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्"

स्वामी जी यह अर्थ करते हैं कि वेदों का प्रकाश ईश्वर की स्वाभाविक शक्ति से होने के कारण वेदों को स्वतः प्रमाण मानना चाहिये। साहब जी महाराज यह अर्थ लिखते हैं कि अपनी शक्ति के प्रगट होने से वेद की स्वतः प्रमाणता है। आप इसका आशय यह बताते हैं कि वेदों के अन्दर अपनी शक्ति यथार्थ ज्ञान पैदा

करने की है इससे वेदों का स्वतः प्रमाण होना सिद्ध है। परन्तु वेदों के अन्दर यह शब्द न मूल में हैं न स्वामी जी के अनुवाद में न साहब जी वाले तर्जुमे में। अतः इन शब्दों की आकांक्षा सिद्ध किये बिना इनका अपनी ओर से बढ़ाना अनधिकार चेष्टा करना है। मूलमें शब्द हैं निज शक्ति। सोचना यह है कि किसकी निज शक्ति? साहब जी कहते हैं वेदों की! इस पर प्रश्न है कि काग़ज़ वा किताब रूपी वेद तो जड़ है उसमें निज शक्ति कैसी! अब कहा जायेगा, वेद नाम ज्ञान का है यथार्थ ज्ञान आप अपनी शक्ति से प्रगट होता है। हम कहेंगे, क्या वह ज्ञान ज्ञानी ईश्वर से जुदा है? आप कहेंगे नहीं। ईश्वर ही ज्ञान स्वरूप है। अच्छा जब ईश्वर ही ज्ञान स्वरूप है तो स्वामी जी पर एतराज़ क्या रहा? उन्होंने भी ज्ञान रूप स्वाभाविक शक्ति से ही वेद का प्रकाश कहा है और इसी लिये उसे स्वतः प्रमाण माना है। आप कहेंगे माना कि ईश्वर की ही निज शक्ति कपिल जी मानते हैं पर स्वामी जी ने अविनाशी शब्द क्यों लिखा? हम कहते हैं ईश्वर की निज शक्ति कहने का अर्थ ही यह है कि वह अविनाशी (नित्य) है। साथ ही विवादास्पद सूत्र आया ही नित्यानित्य की बहस में है। सांख्य दर्शन निश्चय वेद और ईश्वर का ऐसा ही भक्त है जैसे दूसरे दर्शन। इसी अध्याय में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध बताया है। वेद को अपौरुषेय वा इन्द्रियों की पहुंच से परे तथा आत्मा की स्वाभाविक योग्यता से ही समझ में आने वाला कहा है जैसे ईश्वर नित्य है वैसे ही वेद नित्य है। अतः स्वामी जी का पक्ष ही सांख्य दर्शन के अनुकूल है।

१०८—नवां एतराज़—वेदान्त दर्शन १–१–३ का स्वामी जी वाला अर्थ ही सत्य मान लें तो इससे यही सिद्ध होता है कि वेद का प्रकाशक ब्रह्म है इससे वेद नाश रहित कैसे हुये। सारी सृष्टि

का प्रकाशक भो तो ब्रह्म है और वह नाशमान है।

(आर्य्य) ईश्वर उस अर्थ में सृष्टि का प्रकाशक नहीं जिसमें वेद का है। प्रकृति उसी ब्रह्म में लीन होती और उससे प्रगट होती है, और वह नाश रहित है। सृष्टि का वह उत्पादक है प्रकृति के उपादान कारण से उसे पैदा करता है अतः 'शास्त्र योनित्वात' में ईश्वर को वेदादि सत्य शास्त्रों की योनि की उपाधि दी है और ईश्वर के नित्य होने से वेद को नित्य पूर्ण तथा स्वतः प्रमाण की।

१०९—दसवां एतराज़ सपर्यगाच्छुक्रम० को वेदों के नित्य होने में प्रमाण देना ठीक नहीं। पहिले भाग का तर्जुमा तो स्वामी जी ने ठीक दिया है पर "शाश्वतीभ्यः" से अगले अर्थों में मिलावट करदी है।

(आर्य्य) एतराज़ तो उस मंत्र के विषय में है जो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में आया है पर अर्थ आप देते हैं पं० जयदेव वाला यह क्यों ? क्या स्वामी जी ने आप इसके अर्थ नहीं लिखे ? अजी साहब ! सत्यार्थ प्रकाश, यजुर्वेद भाष्य, ऋग्वेदादि भा० भू० सब में स्वामी जी ने अर्थ दिये हैं उन्हें तो आपने नक़ल नहीं किया पं० जयदेव जी वाला नकल किया है और उत्तरदायित्व उससे स्वामी जी पर डाला है। क्या यही Character है जिसके बलबूते पर स्वामी जी जैसे महान पुरुष पर एतराज़ किया जाता है। मन्त्र का अन्तिम भाग यह है—

याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः

अर्थात् वह परमात्मा अपनी सनातन जीव रूप प्रजा के लिये ठीक २ अर्थों का प्रकाश करता है।

इन शब्दों से सिद्ध है कि वेद नित्य है क्योंकि जब जीव नित्य है तो उसके लिये जो ज्ञान दिया जाता है वह अनित्य कैसे हो सकता है। "याथातथ्यतः" से यह विशेष रूप से विदित होता है

कि ज्ञान नित्य एक रस है उसे ज्यों का त्यों जीवों को दिया जाता है यह बात भी बड़ी रहस्य पूर्ण है कि जहां मनुष्यों को ज्ञान का मिलना कहा जाता है वहां तो शब्द आता है वेद, क्योंकि उसके शब्द कान से सुने और जबान से बोले जाते हैं। पर आत्मा का विषय है ज्ञान अर्थात् वह अर्थ जिसकी तरफ शब्द संकेत करता है चूंकि यहां जीव रूप सनातन प्रजा को उपदेश मिलना है इस लिये 'यहाँ अर्थान' का शब्द आया है। अर्थात सच्चे अर्थ या ज्ञान का प्रकाश करता है। साहब जी ने पण्डित जयदेव वाले अर्थ लिखकर एतराज़ स्वामी जी पर किया है उन्होंने अर्थान का आशय समस्त पदार्थों से लिया है और सृष्टि रचना के प्रकरण में यह अर्थ भी ठीक हैं पर नित्यानित्य ज्ञान के प्रकरण में स्वामी जी का अर्थ सत्य होगा।

११०—प्रमाण ही नहीं स्वामी जी ने वेद की नित्यता के लिये अकाटय युक्तियां भी दी हैं।

(१) जैसे बांझ के बेटे का विवाह नहीं देखा जाता या जैसे पेड़ की जड़ न हो तो डालिया नहीं हो सकतीं ऐसे ही ईश्वर में अनन्त ज्ञान न होता तो न इलहाम होता न मनुष्य में ज्ञान का खोज मिलता।

(२) प्रत्येक मनुष्य को पूर्व अनुभूत बात ही सूझनी वा समझ में आती है। इस प्रकार की अनेक युक्तियों में से किसी पर कोई एतराज नहीं कर सकते तो कह देते हैं कि अच्छा साहिब एक वार नहीं हजार वार मानते हैं कि ज्ञान मिला वह ज्ञान भी माना वेद का ही था, यह भी माना कि सब विद्यायें वेद से ही फैली हैं, पर प्रश्न यह है कि क्या वेद का शब्द अर्थ और सम्बन्ध नित्य है वा अनित्य है। ऐसा ही कहीं यह कहा जाता है कि यदि अमुक एक ही युक्ति थी तो इतने ग्रन्थों के प्रमाण देने का कष्ट क्यों किया ?

पर एक भी युक्ति ऐसी नहीं जिसका भाव पूर्णतः वेद की नित्यता से सम्बन्ध न रखता हो और न ही कोई मनुष्य साहबजी के बिना कह सकता है कि स्वामी जी ने केवल एक ही युक्ति दी है।

१११—प्रश्न होता है कि वेद नित्य है तो अब वह क्यों दुनिया से मिट चुका है शाखाओं का तो पता नहीं और जिसे मूल वेद कहते हो वह भी शाखा ही है। यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा है और ऋग्वेद आश्वलयनी।

(आर्य्य) वेद न मिटा न मिट सकता है। गुरु नानक साहब फ़रमाते हैं "सच पुराना ना थियं नाम न मैला होय, वेद स्वयं कहता है "पश्य देव काव्यं न जीर्यति न ममार" अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान न पुराना होता है न मरता है। वेद यदि मिट चुका होता तो शंकराचार्य किस शक्ति से नास्तिकदल का सफ़ाया करता। वेद लोप होता तो स्वामी दयानन्द किस प्रकार मत मतान्तर को नोचा दिखाता। साहब जी स्वयं वेद के प्रमाण दे रहे हैं उनके अर्थ लिख रहे हैं संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी में उनके भाष्य हैं। सब मतों में सिद्धान्त की दृष्टि से वेद का छाप लग रही है। लोप हो सकता है तो काग़जी वेद, न वह असली ज्ञान या कानून जो सारी सृष्टि के नियन्त्रण तथा कर्म फ़लादि का मूल आधार है। कागज़ी वेद भी बराबर मौजूद हैं यहां तक कि स्वामी जी के समय में जर्मनी जैसे दूर देश में भी मौजूद पाया गया रही शाखायें वह भी लुप्त नहीं हो सकतीं विशेष उद्देश्य से कोई भी वेद मंत्र संग्रह शाखा हो सकता है। ११३१ शाखा की गिनती किसी काल में किसी अन्वेशक के विशेष परिश्रम से विदित हुई और चाहे वह भिन्न २ देशों वा समयों में मिलें चाहे उनकी संख्या बढ़े वा घटे इससे मूलवेद पर असर नहीं पड़ सकता। स्वयं माध्यन्दिनी और आश्वलायनी शाखा का नाम लेकर आप शाखा के लोप होने का खण्डन करते

हैं। रहा हमारे यजुर्वेद वा ऋग्वेद का शाखा विशेष होना यह सत्य नहीं हो सकता, यदि आप मूलवेद कोई और दिखा नहीं सकते और स्वामी जी से पूर्व के सायण और महीधर के भाष्यों से भी मूलवेद यही सिद्ध होते हैं तो व्यर्थ के मिथ्या भाषण से लाभ क्या ?

११२—एतराज़—क्या कोई भी मनुष्य इस समय संसार में है जो सच मुच चारों वेदों के मंत्रों का असली पाठ और अर्थ जानता हो ? यदि नहीं तो वेद का नाश तथा उनकी अनित्यता सिद्ध है।

(आर्य्य) किसी सच्चे गुरु, साधारण मनुष्य तथा किसी भी वैज्ञानिक वा धर्म पुस्तक से जो भी सचाई मिलती है वह वेदार्थ की विद्यमानता का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। चारों वेदों का पाठ सुनाने वाले एक क्या अनेक विद्वान हैं। स्वामी दयानन्द ने तो सुगम भाष्य मनुष्योक्त अधूरी भाषा में करके दिखा दिया। इसके अतिरिक्त अनेक वार यह सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक काल में कोई भी मनन करे वा योगाभ्यास, अर्थ वा ज्ञान के दर्शन कर सकता है। पहिले ऋषियों ने भी वह अर्थ देखा अब भी देखने वाले हैं और देखेंगे भी। वेद ज्ञान का अभाव तभी हो सकता है कि ईश्वर का अभाव हो पर यह असम्भव है। सूर्य रात को लोप हो तो भी आग, बिजली, लैम्पादि के रूप में उसका प्रमाण मिलता है। ऐसे ही जीवात्मा अज्ञानावस्था में हो तो भी ईश्वर में वेद ज्ञान ज्यों का त्यों है और सारे ऋषि वा मनुष्य कृत ग्रन्थ इसका प्रमाण हैं। आंख के विकार से सूर्य्य विकृत नहीं होता।

११३—स्वामी जी प्रत्येक शब्द को नित्य मानते हैं इसलिये गुलिस्तां बोस्तां यथार्थ प्रकाशादि सब पुस्तक नित्य हुए।

(आर्य्य) आपने न स्वामी जी को समझा न नित्य शब्द को। पहिले तो वह नित्य उस शब्द को कहते हैं जो आकाश का गुण है। दो चीज़ों के टकराने से पैदा होने वाला शब्द अनित्य है अतः

गुलिस्तां बोस्ता तथा यथार्थ प्रकाश वाले शब्द उनके कहने से अनित्य हैं और वह जो कान बन्द करके अन्दर की आवाजें सुनी जाती हैं वह भी अनित्य हैं इससे आप का यह दृष्टान्त भी निरर्थक है कि सब गौओं की ४ टांगें होने पर अपनी गौ की ४ टांगों में विशेषता क्या हुई ? हम कहते हैं यह गौ भी अनित्य, उसकी टांग भी अनित्य, आपका बोला हुआ गौ शब्द भी अनित्य, पर वह गौ शब्द जिससे आत्मा में पृथ्वी, इन्द्रिय, मन तथा चार टांग वाली इस गौ आदि का संकेत होता है वह नित्य है।

११४—एतराज़-ईश्वरोक्त होने से वेद नित्य है तो सृष्टि भी उसी से बनती है वह क्यों नित्य नहीं ? वेद का ज्ञान प्रलय में ईश्वर में बना रहता है तो सृष्टि भी तो प्रलय में ब्रह्म में रहती है।

(आर्य्य) आप भूलते हैं, सृष्टि ब्रह्म में लीन नहीं मानी जाती कारण प्रकृति में लीन होती है और प्रकृति निश्चय नित्य है वही ब्रह्म में लीन कही जाती है।

११५—वेद के नित्य होने की बहस लाभकारी नहीं हुई, क्यों कि साक्षी केवल वैदिक धर्मियों की है पर विपक्षी उन्हें मानते ही नहीं।

(आर्य्य) विपक्षियों से वेद के ईश्वरोक्त होने का सम्बन्ध है और नित्य विषय का वेद के मानने वालों के परस्पर के मत भेद से भी सम्बन्ध है। वेद शास्त्र के प्रबल प्रमाण होनेसे वैदिक धर्मियों के लिये तो यह बहस अत्यन्त उपयोगी है ही विपक्षियों की दृष्टि से भी यह पूर्ण सफलता युक्त है क्योंकि ईश्वर के नित्य तथा ज्ञान, वा भाषा के अटूट सम्बन्ध होनके विषय में भी शास्त्रोक्त प्रमाणों से सवतन्त्र सिद्धान्तों पर निर्धारित वह युक्तियां दी गई हैं जिन वैदिक धर्मी तथा अन्य मतावलम्भियों का एक सा सम्बन्ध है।

पांचवां अध्याय

राधास्वामी शिक्षा सार

सर्ग १—गुरुडम् हां खतरनाक गुरुडम्

हरचन्द मैं चाहता हूँ कि नाले न करूं,
पर इस दिलेनार्दा मे रहा भी नहीं जाता।

(१) प्रिय पाठकवृन्द ! हम युक्ति प्रमाण तक ही अपने लेख वा भाषण को सीमित रखना चाहते हैं। शान्ति और प्रेम पूर्वक तथा गम्भीरता पूर्ण वाद-विवाद द्वारा विवादास्पद विषयों पर प्रकाश डालना अपना कर्तव्य समझते हैं परन्तु जब भी हम यथार्थ प्रकाश के विषय में एकान्त में बैठकर विचार करते हैं, हमारे मन के सामने राधा स्वामी सतसंगियों का विचित्र ही चित्र उपस्थित होता है। राधा स्वामी मत एक लोहे का पिंजरा मालूम होता है जिसमें अनेक सरल भाव पूर्ण आत्मा उसी प्रकार की कूटनोति

से बन्द है जैसी कि शिकारी जाल पर दाना बखेर कर पक्षियों को फँसाने में करता है। यह आत्मायें मुक्त कंठ से यह पुकार करती सुनाई देती हैं कि है कोई दयावान् :जो पिंजरे का द्वार तोड़ दिखायें और हमारे फराते हुये परों को ऊँचे आकाश में खुली उड़ा लने का अवसर दिलाय।

(२) आर्य्य-समाज के कानों की साधारण सी चिकित्सा भी सफलता से हो गई तो यह पुकार बड़े करुणा-जनक भावों को उभारेगी और हमारे प्यारे सतसंगियों की मुशकिलें हल होंगी। परन्तु अधिक दुःखदाई दृश्य उन सहस्रों आत्माओं का है जिन पर गुरुडम् की भयंकर दम घुटने वाली गैस के कारण मृत्यु अपना अधिकार जमा चुकी है। इन कुशतों के पुशते तो निराशा के वायुमण्डल में हा पहुँचाते हैं परन्तु पुनर्जन्म का पवित्र वैदिक सिद्धान्त निराशा को आशा में बदलता है, जिस से प्रोत्साहन पाकर हम साधारणतः सर्व सत्यप्रिय सज्जनों और विशेषतः आर्य्य-भाइयों से अपील करते हैं कि वह इस अध्याय का विचार-पूर्वक पाठ करके अपने एक लाख से अधिक भाइयों का इस भयङ्कर गुरुड़म से निकाल कर सच्ची आस्तिकता तथा सत्याचरण के स्वस्थ वायु-मण्डल में रखने का प्रबन्ध करें तथा पवित्र एवं एकमात्र सच्चे ईश्वरीय धर्म की स्पिरिट फूंककर उन्हें पुनर्जीवित करें।

सर्ग २—भक्ति-मार्ग का शब्द जाल
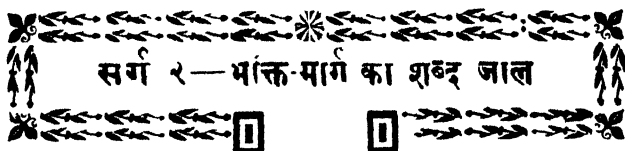
३—एक ओर तो गुरु, सतगुरु, सन्त सतगुरु के पवित्र शब्द राधा स्वामी मत में आत्मिक मृत्यु के लिये विष का काम दे रहे

हैं और दूसरी ओर अन्य प्रकार के मिथ्या वचनों से भ्रान्ति फैलाई जा रही है। कहा जाता है कि हमारा तो है भक्ति मार्ग जिसका आधार प्रेम और श्रद्धा पर है और दूसरों का आधार हैं ज्ञान मार्ग पर जिसमें प्राय: प्रेम और श्रद्धा का सम्बन्ध नहीं; उस पर चलने वाले ग्रन्थों के अध्ययन तथा विचार पर ही सन्तुष्ट रहते हैं। परन्तु स्मरण रहे यह केवल एक भ्रांति है। राधा स्वामी लोग भी तो सार वचन, सार उपदेश सुनते हैं। सुर्त शब्द अभ्यास में गुरु से शिक्षा पाते हैं। भाग ३ धारा ५ में आप स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि महा पुरुषों की बातों के पाठ से अन्तरी साधन में सहायता मिलती है और इस लिये इस मत में इसे विशेश गौरव दिया जाता है। आप सब धार्मिक सभाओं की अपेक्षा पढ़े लिखों की अधिक संख्या अपने मत में मानते हैं। यथार्थ प्रकाश के आरम्भ में ही आप "राधा स्वामी मत की तालीम" के शीर्षक से लेख लिखते हैं। यह सब बातें ज्ञान मार्ग के अन्तर्गत है। पृष्ठ ७२ पर यह कड़ी है—

गुरज्ञान न पाया है सखी जिन घट अंध्यारा

अर्थात् जिनके अन्दर अज्ञान है उनको गुरु का ही ज्ञान नहीं हो सकता। पृष्ठ ७३ पर है:—

सतगुरु शब्द स्वरूप हैं रहे अर्श मंझार

इससे पाया जाता है कि शब्द अर्थात् आप्त पुरुष का उपदेश ही असली सतगुरु है और यह सिद्धान्त ज्ञान मार्ग का है। पृष्ठ १७७ पर कहा है:—

इस जग की विद्या नहीं पढ़ते—तां ते उल्टे गिरें नादान

४—पहिले तो जग की विद्या जुदा नहीं है परन्तु मान लें कि ऐसा ही है तो भी तो ज्ञान मार्ग ही नाम रहेगा। साहब जी महाराज यह भी मानते हैं कि ब्रह्म पद की प्राप्ति तक हमारी सब मन-

जिल शामलात हैं और चूंकि इन सब मनजिलों का सम्बन्ध ज्ञान से है इस लिये ज्ञान मार्ग से जुदा होना इस मत को धार्मिक मृत्यु है यथार्थ प्रकाश के टाइटल पेज पर लिखा है:—

"सच्चा व असल मजहब एक ही हो सकता है और जुमला मजाहब की मजहबी तालीमें बय्यन मुशाविहत है अतः यदि दूसरे मत ज्ञान मार्गी हैं तो उन जैसी तालीम देने वाला राधा स्वामी मत किस प्रकार ज्ञान मार्गी नहीं क्या भक्ति मार्ग में अज्ञान का दखल है प्रेम और श्रद्धा भी ज्ञान रहित होने से पाप के बिना कुछ परिणाम नहीं ला सकती, ज्ञान के बिना न गुरु की ओर सच्ची प्रवृत्ति हो सकती है न भलाई की ओर । ज्ञान शून्य प्रेम होगा तो बुरे कामों वा किसी वैश्या से होगा इस से भलाई नहीं हो सकती और ज्ञान सहित प्रेम अपनी धर्म पत्नि से होगा । प्रेम और श्रद्धा के दोनों शब्द वैदिक धर्मियों के हैं और उन्हीं के आशय के अनुकूल इनका प्रयोग होना चाहिये। ब्रह्म यज्ञ क्या है कुल मालक के प्रेम और श्रद्धा का नतीजा, देव-यज्ञ है तो कुल रचना से प्रेम और श्रद्धा का प्रमाण, पितृ यज्ञ है तो सब वृद्धों से प्रेम और श्रद्धा के कारण । ऐसे ही बलि वैश्वदेव प्राणिमात्र से प्रेम का बोधक है और अतिथि यज्ञ मनुष्यमात्र से प्रेम और श्रद्धा का, सबका इससे अधिक प्रेम और श्रद्धा का आदर्श कोई मत न दिखा सका न दिखा सकेगा और इस लिये यदि भक्ति मार्ग का शब्द कहने में भलाई है वह भी वैदिक धर्म के लिये ही युक्त रूपेण प्रयुक्त हो सकता है।

५—प्रेम और श्रद्धा का रहस्य गुणों के यथार्थ ज्ञान में है। जितनी अधिक दृढ़ता से किसी के उत्तम गुणों का संस्कार अपने अन्दर होगा उतना ही अधिक प्रेम औप श्रद्धा का भाव उनके लिये पैदा होगा । वह प्रेम जो विषयासक्त मनुष्य काम के वेग

में अन्धा होकर कर रहा है कभी सच्ची भक्ति का अङ्ग नहीं हो सकता अतः सच्चा प्रेम और श्रद्धा एक ही ज्ञान रूप पिता के पुत्र और पुत्री हैं और ज्ञान और भक्ति दोनों का आन्तरिक भाव एक ही है। ईश्वर के दया, न्याय, सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमानादि गुणों का ज्ञान न हो तो उसके विषय में प्रेम और श्रद्धा का भाव हो नहीं सकता। इन विचारों से हमें निश्चय होता है कि भक्ति मार्ग नाम की आड़ इसी लिये ली जाती है कि न सतसंगियों में विद्या और बुद्धि की प्रधानता रहे न तर्क द्वारा अपने मत की पोल खुले।

सर्ग ३—गुरुडम् का बुनियादी पत्थर

६—ज्ञान मार्ग से अपने मत को पृथक् बताने की गर्ज़ भाग २ धारा ३ से विदित होती है जो निम्न प्रकार है:—

"राधा स्वामी मत भक्ति मार्ग है और इस मत में सच्चा कुल-मालक भगवन्त माना जाता है। दूसरे लफ़्ज़ों में राधा स्वामी मतानुयाइयों को सच्चे कुल मालक के चरणों में प्रेम व श्रद्धा क़ाइम करने की तलक़ीन की जाती है लेकिन चूँकि साधारण मनुष्य के लिये अव्यक्त मालक के चरणों में प्रेम व श्रद्धा क़ाइम करना निहायत दुश्वार बल्कि नामुमकिन है, इस लिये हिदायत है कि आरू में प्रेमी जन जिन्दा गुरु के चरणों में प्रेम व श्रद्धा क़ाइम करे।"

७—हमें बालपन की एक घटना याद है। हम तीन-चार बालक लट्टू खेल रहे हैं एक मनुष्य आकर पास खड़ा हो जाता है और बार-बार हमारे पक्ष मे बोलता वा हमारी जीत जाहिर करता है।

कुछ समय पीछे खेल बन्द करके हम घर को चलते हैं तो वह कहता है मेरे साथ चलो तो मैं तुम्हें बहुत लट्टू दूँ। हम खुशी २ उसके साथ चल कर दूर के भट्टे के पास पहुंचते हैं और ईंटों के ऊँचे ९ ढेरों के मध्य में बिठाकर वह बड़ा फुरती से हमारे दोनों हाथों से कड़े उतारता और मिट्टी का छोटा सा ढेर बनाकर कहता है इसके ऊपर बैठे रहो इसमें कड़े हैं मैं अभी उस कुयें से लट्टू लाता हूँ। हमने श्रद्धा पूर्वक उसके कथनानुसार काम किया। घण्टों बैठे रहे। सायंकाल होने पर ढेर की मिट्टी को हटाया तब मालूम हुआ कि कड़े तो हैं ही नहीं। अब तो रोते हुये घर को लौटने लगे। एक जानकार पड़ोसी ने हमें पहिचान लिया और गोदी में उठा घर पहुँचा दिया।

८—जीवन भर का अनुभव हमें बताता है कि राधास्वामी मत के अनुयायी भक्ति और नित्य मुक्ति के दमझांसे में सच्चे प्रेम और श्रद्धा का जेवर लुटवा चुके हैं। साहब जी महाराज फ़रमावें तो सही, क्या आज तक कोई भी सतसंगी जीवित गुरु वाली पहिली मन-ज़िल से पार हुआ है। निश्चय कोई भी सतसंगी मृत्यु से पूर्व अथवा राधा स्वामी मत को तिलाञ्जलि दिये बिना राधा स्वामी जीवित गुरु से पृथक नहीं हुआ। साधारण पुरुषों का तो यह हाल है, असाधारण पुरुषों के विषय में भी यह सत्य है कि कोई भी पुरुष आज तक ऐसा नहीं बताया जाता, जो कुल मालक से प्रेम और श्रद्धा करने का सौभाग्य पासका हो। अतः साधारण असा-धारण सब एक ही लाठी हांके जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त देखा यह जाता है कि सत्य मार्ग दिखाने वाले सच्चे विद्वान के साथ मनुष्य आप से आप प्रेम और श्रद्धा का व्यवहार करते हैं और फ़ारसी कवि कहता है कि जहाँ कहीं मीठा चशमा हो मनुष्य, पक्षी, तथा कीड़े आदि सब वहां आते हैं तब राधा स्वामी गुरुमें क

लिये ही प्रेमादि का पट्टा कैसा ? जिन्दा गुरू इस समय साहब जी महाराज ही हैं या और कोई भी। यदि और कोई भी है तो उनमें से किसी की तलाश आपके यहां कहां लिखो है और यदि नहीं तो साहब जी महाराज को यह परवाना कहां से मिला है कि आप ही सब से योग्य तथा कुल मालक से योग कराने के एक-मात्र ठेकेदार हैं। अतः स्पष्ट है कि यह मत ईश्वर प्राप्ति की पहिले से मौजूद इच्छा तथा एक अद्वितीय प्रभु सम्बन्धी व्यापक प्रेम और श्रद्धा को आरम्भ में ही एक नश्वर तथा तुच्छ मनुष्य की ओर परिवर्तित करता है। यही नहीं आद से अन्त तक उसी मनुष्य गुरु को क़ाइम रखता तथा आदर्श उपास्य से विमुख करता है जैसा कि अगले सर्ग से सिद्ध होगा।

सर्ग ४—गुरुडम् का विशाल भवन

या दग़ा तेरी आस !

१—मनुष्यकृत मतों में कुछ न कुछ गुरुडम् का भाव होना अनिवार्य है। परन्तु इनमतों के प्रवर्त्तकों की नियत प्रायः यह नहीं पाई जाती कि वह अपने व्यक्तित्व को मानव जाति के स्थाई रूप से मार्गच्युत रखने का कारण सिद्ध करें। अल्प विद्या, भ्रान्ति तथा अनुयाइयों का अन्ध बिश्वास पीछे चाहे क्या रङ्ग लावे प्रवर्तक का भाव प्रायः शुद्ध वा अपने समय की अवस्था की दृष्टि से हितकर ही प्रतीत होता है परन्तु राधा स्वामी मत में क्या प्रवर्तक क्या उनके अन्य स्थानापन्न सब की नियत ही यह पाई जाती है कि अधिक से अधिक नास्तिकता फैले। इस मत के गद्दीदार के अतिरिक्त किसी की पूजा प्रतिष्ठा न हो और वह सब के तन मन

धन आदि का एकमात्र मालक हो। यही कारण है कि ऐसे उपाय सोचे जाते हैं कि न आर्य्यों के ईश्वर या मुसलमानों के खुदा को माना जावे न किसी और गुरु या विद्वान मनुष्य का कोई मान करे और स्त्री पुरुष सब राधा स्वामी गुरु की स्वार्थ सिद्धि का साधन बनें इस भयङ्कर तथा हानिकारक स्कीम के लिये क्या ढोंग रचा तथा मकर का जाल बिछाया जा रहा है इसका दिग्दर्शन यहाँ कराया जाता है।

१०—सब से उच्च और सर्व प्रकार से पूर्ण सत्ता ईश्वर की है जिस पर प्रायः सब मतों का विश्वास है। उससे सर्व साधारण को विमुख करने के लिये यह घड़न्त घड़ी है कि उससे परे तथा उत्तम अन्य अनेक सत्तायें हैं और सब से ऊँचा पद राधा स्वामी दयाल कुल मालक का है। प्रसिद्ध कथा है कि किसी ने एक लकीर खींचकर दूसरे को कहा कि इस लाइन को छोटा करदो पर इसे काटो नहीं। वह बुद्धिमान था उसने उसे छुये बिना उससे जुदा लम्बी लकीर खींच दी। इसी प्रकार ब्रह्म वा ईश्वर के विश्वास को व्यर्थ सिद्ध करने के लिये कल्पित सत्ताओं तथा राधा स्वामी दयाल की घड़न्त हुई। इससे ईश्वर वा खुदा से तो अन्ध विश्वासी लोग विमुख हुये, पर अब यह चिन्ता हुई कि ईश्वर के स्थान में राधा स्वामी पर ही प्रेम वा श्रद्धा हो गई तो अपना क्या बना, यह तो पहाड़ से गिरा खजूर में अटका वाली बात होगी। इस लिये यह युक्ति दी गई कि राधास्वामी दयाल तो नजर नहीं आते इस लिये पहिले जिन्दा गुरु पर प्रेम और श्रद्धा करो। इसके साथ ही यह भी भय था कि चूंकि ब्रह्म को राधा स्वामी दयाल के एजेन्ट के तौर पर सृष्टि की उत्पत्ति तथा देख भाल के काम पर नियुक्त बताया है इस लिये सम्भव है सर्व साधारण उसे इसी हैसियत से पूजने लगें अतः कहा गया कि राधास्वामी गुरु का कुल मालक से सीधा सम्बन्ध है इस प्रकार

ब्रह्म का माध्यम भी जाता रहा। भाग २ धारा ४ में लिखा है:—

"राधा स्वामी मत में सतगुरु पदवी उस महा पुरुष को दी जाती है जिसका अन्तर में सच्चे मालक के साथ बराहे रास्त तअल्लुक़ हो और जिसके अन्दरमिसल उन दरियाओं के जो समुद्र में मिले हुये होते हैं ज्वार भाटा आने पर समुद्र का पानी आता-जाता है, सच्चे कुल मालक की रूहानी धार आती जाती है"

११—इस प्रकार राधा स्वामी दयाल और ब्रह्म दोनों का खटका तो दूर हुआ पर अब यह चिन्ता हुई कि प्रत्येक मनुष्य जो सोधा कुलमालक से सम्बन्ध तथा अपने अन्दर निरन्तर रूहानी धारके आने जाने का दावा करेगा, गुरु समझा जावेगा और यदि एक से अधिक दावेदार होंगे तो चुनावमें सम्भव है हम सफल न हों अत: आँखों में धूल डाली जाती है और लेख में विचित्र प्रकार की पेचीदगी से काम लिया जाता है अर्थात् गुरु की तलाशादि में स्वतन्त्रता भी लिखते हैं और अपने बिना किसो और के लिए कोई संभावना भी नहीं रहने देते। गुरु की पहिचान के साथ ही लिख देते हैं कि

"आप इन्सानों के लिए किसो दूसरे शख्स की रूहानी गति याने पहुँच का जानलेना ना मुमकिन है।" सार वचन में गुरु की पहिचान यह कही थी कि वह शब्द की कमाई करने वाला हो। यदि शब्द की कमाई का आशय वेद का मनन तथा उस के अनुकूल आचरण होता, तो निश्चय गुरु की योग्यता की पहिचान हो सकती, पर यहां तो कान बन्द करके जड़ शब्द सुनने के बिना किसी और आशय का संकेत ही नहीं पाया जाता। पृष्ठ २०४, बचन १३, शब्द १ में है।

गुरु सोई जो शब्द सनेही, शब्द बिना दूसर नहीं सेई,
शब्द कमावे सो गुरु पूरा, उन चरणन का होजा धूरा।
और पहिचान करो मत कोई, लक्ष अलक्ष न देखो सोई॥

१२—पर यदि शब्द की कमाई वाले भी बहुत हों तो भी साहब जी आदि के फ़ेल होने की संभावना है, इसलिए पहिले तो यह कहकर पहिचान को रोका कि किसी दूसरे की आन्तरिक गति की जांच होनी असंभव है। साथ ही यह लिखा कि जिज्ञासू पहिले वक्त गुरु को केवल बड़ा भाई समझे, और छोटे भाई की तरह सन्मानादि करता रहे, तथा ज्यों २ सतगुरु की उच्च आत्मता तथा आत्मिक गति की पहिचान आती जावे, उनके चरणों में श्रद्धा और प्रेम बढ़ाता जावे और जब अपना आत्मिक स्वरूप, सतगुरु का आत्मिक स्वरूप तथा कुलमालक का निज स्वरूप एक नज़र आवे तब उनके चरणों में पूरी श्रद्धा क़ाइम करे। हमारी सम्मति में इससे बढ़कर धोखा कोई मनुष्य अपने प्रेमियों को कभी नहीं दे सकता। अरे जब वक्त गुरु को ही बड़ा भाई समझना और उसीपर पूर्ण प्रेम वा श्रद्धा करना है तो जांच वा इन्तख़ाब के शब्द कोरी चाल वा धोखे के बिना क्या हैं?

१३—पञ्जाबी कहावत है "फँस गई तो फटकन क्या" इसके अनुसार गुरुजी ने जब अपना छोटा भाई कहकर किसी गांठ के पूरे को फुसला लिया तो पत्नी तो मानो पिंजरे में फँस गया अब जो पाठ पढ़ाया जायगा, गङ्गाराम वही पढ़ेगा अतः इस प्रकार के शब्द कोरे ढोंग मात्र हैं कि आत्मोन्नति तथा सकल स्वामी के योग का इच्छुक मनुष्य स्वभावतः संसार से कुछ उपराम सा होता है, रह रह कर उसे पूर्ण गुरु के मिलने की कामना होती है और वह इच्छा पूर्ति के लिये जहां तहां जाता, सफलता की आशा लगने पर टिक जाता अथवा पुनः पुनः हाज़र होता तथा पूरा संतोष होने पर नम्र भाव के साथ उस आत्म कल्याण वाले महात्मा की चरण शरण लेता हूँ। गुरु उसकी आत्म पिपासा बुझाता और वह प्रेम वा श्रद्धा की भेंट चढ़ाता है। इस प्रकार के शब्दों से

तो ऐसा मालूम होता है कि गुरु की तलाश के लिए पूरी स्वतन्त्रता है पर ज़रा रुक जाइए। आन्तरिक भाव और का और है। देखिये अगले ही शब्द क्या गुल खिलाते हैं, जब किसी क़दर सफ़ाई क़लब होने पर उसे अन्तर में गुरु महाराज के नूरानी स्वरूप का दर्शन होता है तो सरूर वा आनन्द में भरकर वह अपना तन मन धन उनके चरणों में न्यौछावर करने को उद्यत हो जाता है और अब गुरु महाराज बड़े भाई के स्थान में उसे रूहानी बाप, रूहानी पेशवा तथा रूहानी दोस्त नज़र आते हैं।

आह! वही जो बड़ा भाई था और वक्त गुरु, वही अब पिता तुल्य बनता है न कोई दूसरी व्यक्ति है न किसी की योग्यता की जांच है। गुरु जी ने गले में वह तौक़ डाला है कि किसी भी अंध विश्वासी से उसका उतरना असंभव है, एक हँसी की बात प्रसिद्ध है कि मीरासी दुर्भिक्ष से तंग आकर अपनी बीवी से विचार पूर्वक निश्चय करता है कि यहां से चलदें और जहां जिस का सींग समाये गुज़ारा करें। स्त्री ने कहा बच्चों को तो ननिहाल भेज देती हूँ। उनके चले जाने के पीछे आप उसने मेके में जाने की ठानी और मीरासी ने सोचकर कहा मुझे सुसराल के बिना कहां सहारा मिलेगा। कहते हैं सब चले तो गये पर पांचवें दिन सब के सब फिर एक ही घर में मिल बैठे। वही बात साहब जी महाराज कहते हैं कि परीक्षा भी ज़ोर शोर से हो गई और गुरु भी आपके आप ही रहे।

१५—पर गुरु महाराज को तन मन धन लेकर भी सन्तोष नहीं होता और लोभी गुरु जिज्ञासू को इन शब्दों से फुसलाता है कि उस प्रेमी के मन में पुनः पुनः यह उमंग उठती है कि जो भी मूल्य देना पड़े देकर वह सतगुरु के नूरानी स्वरूप का स्वागत अवश्य करे। पर इस उत्तम वस्तु की प्राप्ति के लिए विशेष प्रकार

की आत्मिक जागृति चाहिये इस लिए वह तड़प २ कर रह जाता है और मुर्ग़े बिस्मिल की तरह अपने दिन काटता है"।

ओह! कैसा मुहज़्ज़ब डाका! कैसी निर्दयिता पूर्ण लूट! पर यदि तन मन धन दे चुकने के पीछे वह गुरु की इच्छानुसार किसी प्रकार पूरा मूल्य भी अदा करदे तो उसे मिलेगा क्या? अपने आत्मा का उसे ज्ञान नहीं, गुरु के अन्दर प्रविष्ट नहीं हो सकता तब गुरु के नूरानी वा रूहानी स्वरूप उसे नजर क्या आयगा ख़ाक? और वह जो प्रेमियों के सर्वस्व का लालची है उसे गुरु कौन मान सकता है और उससे नूर और रूहानियत का सम्बन्ध क्या हुआ? अभी तो वह कह चुका कि गुरु के रूहानी स्वरूप के दर्शन से प्रेमी आनन्द और सरूर से भर गया और अभी कहता है कि मुर्ग़े बिस्मिल की तरह तड़प रहा है। एक फ़िकरे में तो कहता है भक्ति मार्ग आसान और पुर लुत्फ़ रस्ता है और दूसरे में कहता है इतना मुश्किल है कि शायद सारी आयु इसके लिये काफ़ी न हो। अतः ज़ाहिर है कि एक बार फंसने पर गुरु से छुटकारा होगा ही नहीं।

१६—तन, मन, धन, श्रद्धा प्रेम तो हुए गुरु के अर्पण, तो कुल मालक के लिए क्या रहा? उत्तर होगा, स्मरण वध्यान। पर स्मरण होता है राधास्वामी नाम का और इसका नामी है या तो चोटी के स्थान वाला कुलमालक जो किसी ने आज तक देखा नहीं या श्री शिवदयाल सिंह जी का जो उसके अवतार कहे जाते हैं। इनका दर्शन भी हुआ और इनकी तस्वीर भी मिली और उनके पीछे जो वक्त गुरु हुआ उसके भी दर्शनादि हुये और साथ ही कुलमालक को ग़ायब कहकर जीते गुरु पर प्रेम और श्रद्धा की शिक्षा थी। उस ग़ायब कुल मालक का न रचना से सम्बन्ध न उसे देखने का कोई साधन अतः स्मरण वा ध्यान बिना वक्तगुरु

आदि के किसी का होना संभव ही न रहा। साहब जी का कहना है कि—

"गुरु से प्रेम प्रीति का रिश्ता किसी क़द्र मजबूत होने पर प्रेमी जन के हृदय में सतगुरु की सूरत बस जाती है।" सार वचन पृष्ठ—१७७ पर है—

गुरु की मूरत हिरदय बसाओ, चन्द्र चकोर प्रीति घट आन।

अतः जब गुरु का पूर्ण अधिकार हो चुका तो कुलमालक की दाल कैसे गले? गुरु सच्चा होता तो अपने आप को भुलाकर कुलमालक को क़ाइम करता और शिष्य को चाहिये था कि नाशवान गुरु की जगह सच्चे मालक का मन्दिर अपने हृदय को बनाता क्योंकि कहा है कि एक मियान मे दो तलवारें समा नहीं सकतीं।

उसके तो दिल में शौकत जचती नहीं किसी की।
जिस दिल में वह रहा हो या रब जमाल तेरा॥

कहा जाता है गुरु कुलमालक का ही रस्ता बताता है परन्तु यह निरा ज़बानी जमाखर्च है क्योंकि आखिरी मंज़िल ही गुरु है तो और किसी का रस्ता कैसा? सिद्धि का अन्तिम प्रमाण ही यह है—कि गुरु का रूहानी स्वरूप और कुल मालक का रूहानी स्वरूप एक नज़र आवे। इससे सिद्ध है कि गुरु को ही अन्त में कुल मालक समझने की हिदायत है अर्थात् गुरु ही आद है और गुरु ही अन्त। जिस मन्दिर में लालची गुरु की मूर्ति स्थापित हो चुकी, उसमें ज्ञान का उपजना तथा परम उपकारी मालक के दर्शन कहां।

१८—स्मरण वा ध्यान के विषय में साहब जी के यह शब्द विचारने के योग्य हैं—

"चूँकि शुरू में इस मुक़ाम पर अभ्यासी की हालत महज़ एक

नौ जाईदा बच्चे की सी होती है इसलिए वह बार २ निचले मुक़ामात की तरफ़ गिरते हैं। इस कशमकश या कमज़ोरी में सतगुरु वक्तन फ़िवक्तन अभ्यासी के अन्दर उसकी रूह के निशस्त के मुक़ाम पर अपनी रूहानी धार रवां फ़रमाकर उसकी रूहानियत में इज़ाफ़ा करते हैं।"

(आर्य्य) यदि आत्मा की उन्नति इसी प्रकार हुआ करती है तो क्यों न स्कूल कालिजादि बन्द करके साहब जी की रूहानी धार से सारी विद्याओं का प्रकाश किया जाये। यदि गूढ़तम आत्म ज्ञान इस रूहानी धार से हो सकती है तो साधारण सी अन्य विद्यायें तो सुगमता से फैल सकती हैं। सत्संगी लोग भी सोचें कि ऐसी गप्पों में कुछ भी सार होना तो दयाल बाग़ वाली संस्थाओं की क्या आवश्यकता थी, रूहानी धार से सब काम हो जाता। कुछ हो हो गुरुडम की दृढ़ बेड़ी में जकड़े हुए सत्संगी स्मरण वा ध्यान में गुरु के ही कैदी हैं। साहब जी लिखते हैं कि "जैसे सूरज की किरण किसी आतशी शीशे के ज़रिये फ़ोकस करने पर एक छोटा सा सूरज ज़मीन पर क़ाइम होता है उसी तरह गुरु महाराज की नूरानी धार अभ्यासी की रूह के निशस्त के मुक़ाम पर फ़ोकस होने से उसके अन्तर में छोटे पैमाने पर उनका नूरानी स्वरूप प्रगट हो जाता है।"

प्रिय पाठक! विचारिये, न प्रेमी का आत्मा कोई साकार पदार्थ, न गुरु का, न किसी का आत्मा दूसरे के आत्मा में घुस सके, गुरु शिष्य का मेल शिक्षा देने लेने के लिये है। इसी से गुरु का शिष्य पर प्रभाव पड़ता है अतः रूह के स्थान पर रूहानी धार का फ़ोकस होना इसके इतर आशय रखता हो तो वह केवल पाखण्ड है। साथ ही गुरु साहब की चालाकी भी यहां प्रत्यक्ष है नाम कुलमालक का लें पर स्मरण वा ध्यान की विधि में भी अपनी

ही रूहानी धार को फ़ोकस करके अपना ही नूरानी स्वरूप प्रगट किया जाता है।

१९—यथार्थ गुरु भक्ति का पता उन आर्य्य ऋषि मुनि योगी संन्यासी महात्माओं के जीवन से ही चलता है जो घर बार तथा परिवार का छोड़, मनुष्य जाति को अपना परिवार समझ पाप और दुःख का नाश करते फिरते हैं। हर्ष शोक, मान अपमान से ऊपर उठकर निष्काम भाव से दूसरों के सुख और उन्नति में यत्नशील हैं। स्वामी दयानन्द निन्दा ईंट पत्थर सब का सहन करके सत्योपदेश देता है कोई शर्त नहीं लगाता कि मेरा मान वा मेरी सेवा करो तो मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा। यह आदर्श गुरु आदित्य वत प्रकाश फैलाते हैं और सच्ची गुरु भक्ति यही बताते हैं कि हम जो सत्य या ईश्वर आज्ञा का उपदेश सुनाते हैं, उसी पर आचरण करके लोक परलोक का सुख पाओ। इसके मुक़ाबले पर सार वचन या यथार्थ प्रकाश को पढ़िये। कोई विद्यादि वा सत्य शिक्षा नहीं कोई बात कबीर की चुराई कोई उपनिषद् की उड़ाई. कहीं गीता के श्लोक का टीका लिया कहीं किसी इसलामी बात को अपना रंग दिया है पर वह भी परोपकार के भाव से नहीं अंध विश्वासी लोगों को फांसने के लिए। गुरु कितना भी उपकार करे फिर भी वह ज्ञान स्वरूप कुलमालक का एक तुच्छ एजन्ट है। उसके काम से भी स्तुति का यथार्थ रूप से वही मालक पात्र है। तो भी यदि कोई मनुष्य गुरु के उपकार से कृतार्थ होकर कृतज्ञता का प्रकाश करे तो यह उसका धर्म है, पर राधास्वामी गुरु अपने मुँह से अपने ही गुण गाते और अपने प्रेमियों के मुख स्वयं अपनी तारीफ़ के शब्द डालते है और वह भी ऐसे जिनके वह किसी प्रकार अधिकारी नहीं।

२०—यहां हम इन गुरुओं के अपने बताये कुछ शब्द उद्धृत कर

हैं जो वह सत्संगियों के मुँह में डालते हैं।

गुरु मेरे पूरण पुरुष विधाता—गुरु है अगम अपार अनामी।
सत गुरु सब के भेद बतावें—गुरु ने सब का पद दर्साई।
तात सत गुरु सब के करता—सत गुरु हो हैं सब के हरता।
यातें सत गुरु का पद भारी, सत गुरु सम नहीं कोई विचारो।
जो गुरु मारग देहिं लखाई, सोई निज कम धर्म हुआ भाई।
गुरु आज्ञा में जो शिव करई, वह करतूत भक्ति फल देई।
जाके हिरदे गुरु परतीती, काल कर्म वा में नहीं जीती।
बिन गुरु वक्त भक्ति नहीं पावे, बिना भक्ति सत लोक न जावे।
वक्त गुरु जब लग नहीं मिलई, अनुरागी का काज न सरई।
प्रथम सीढ़ी भक्ति गुरु की, गुरु को पल पल माहिं रिझावे।
गुरु जब उसको प्यार होई, गुरु को प्यारा जब यह होई।
पूरण दया गुरु जब करई, भक्ति पदारथ जब ही मिलई।
गुरु भक्ति बिन काज न रत्ती। (पृष्ठ १५० वचन ८ श० १)
गुरु मिले परम पद दानी, क्या गत मति उनकी करूं बखानी।
गुरु से कोई अधिक न राखा, पुन सन्त वेद अस भाखो।
गुरु भक्ति बिन शब्द में पचतं—सो भी मनुष्य मूरख जान।
राधा स्वामी भक्ति बताई; गुरु की भक्ति करो यह जान।
और भक्ति सब दूर बहाओ, क्यों पड़ते चौरासी खान।
बिन गुरु और न पूजा काई, दर्शन कर गुरु पद नित सेई।
गुरु पूजा में सब की पूजा, जैसे समुद्र सब नदी समाजो।
देवी देवा ईश महेशा, सूरज शेष और गौर गनेशा।
ब्रह्म और पार ब्रह्म सतनामा तान लोक और चौथा धामा
गुरु सेवा में सब की सेवा, रञ्च भर्म न मानो भवा।
गुरु महिमा मैं कहां लग गाऊं, गुरु समान कोई और न पाऊं

ताते गुरु को लेवे रिझाई, औरन रीझे कुछ न भलाई।
गुरु परसन्न और सब रूठे, तो भी उसका रोम न टूटे।
औरन को परसन्न जो करता, गुरु में द्रोह घात जो रखता।
गुरु की निन्दा में नहीं डरता, गुरु को मनुष्य रूप समझता।
सो नरकी जानो अपघाता, उस संग दूत करें उतपाती।
या ते समझो बूझो भाई, गुरु को परसन करो बनाई।
गुरु की कर हर दम पूजा, गुरु समान कोई देव न दूजा।
गुरु चरणन की सेवा नित करिये, तन मन गुरु आगे धरिये।
गुरु दर्श करो आंखन में, गुरु वचन सुनो सरवन से।
गुरु ब्रह्म रूप धर आये, गुरु पार ब्रह्म गत धाये।
गुरु ध्यान धरो तुम मन में, गुरु नाम सुमिर छिन छिन में।
गुरु ही गुरु गाओ भाई, गुरु ही फिर होंय सहाई।
जितने पद ऊँचे नीचे, गुरु बिन कोई नाहीं पहुँचे।
गुरु की गति अगम अपारा, गुरु अस्तुति करो सँवारा।
गुरु राखो हिरदे माहीं, तो मिटे काल परछांई।
गुरु फंद छुड़ावें जम के, गुरु मर्म लखावें सम के।
भौजल से पार उतारें, छिन छिन में तुझे संवारें।
गुरु सम कोई और न रक्षक, कुल कुटम्ब सब जानो तक्षक।
ताते गुरु को कभी न छोड़ो, कनक कामिनी से मन मोड़ो।

२१—गुरु ही पूर्ण पुरुष विधाता, अगम, अपार, सब भेदों का ज्ञाता, सबका हर्ताकर्ता कहा गया है। पर यह कहनेवाला कौन है? स्वयं गुरु जी। कुलमालकको कहा गायब, ब्रह्म, ईश्वर, देवता ऋषि, मुनि किसी का मान करना नहीं। गुरु को ही पूजो। गुरु का ही स्मरण करो। गुरु को ही प्रसन्न करो और रिझाओ, उसे ही हृदय में रखो। उसे ही कान से सुनो। उसे ही आंख से देखो उसे मनुष्य न समझो। वह ब्रह्म रूप है। वह सबसे उच्च राधा
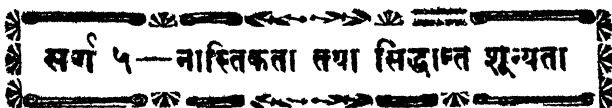
स्वामी दयाल का अवतार है। गुरु ही तुम्हारी गति संवारेगा, जम से छुड़ावेगा, आवागमन से मुक्ति दिलावेगा। अतः सब नाते छोड़ो परिवार वालों को काला नाग समझो तथा उनसे दूर भागो यह है वह भयंकर गुरुडम जिसने एक लाख से अधिक अंध विश्वासी भाइयों को फांस रखा है। गुरु के द्वारा शिखर स्थान पर पहुंचने का विचार भ्रम मात्र है क्योंकि वह स्थान तथा उस का राधा स्वामी नामी धनी केवल कपोल कल्पना मात्र है। उसकी प्राप्ति की आशा दिलाना एक धोखा है। 'हव्वल अव्वल हव्वल आख़िर' के अनुसार गुरु ही यहां आद है और गुरु ही अन्त।

७२—अनन्य भक्ति का शब्द उच्च कोटि के भक्तों से इस अर्थ में लिया जाता था कि एक परमेश्वर के बिना किसी और का ख्याल तक न रहे। पर भाग २ पृष्ठ ११३ पर साहब जी फ़रमाते हैं "कि प्रेमी के अन्तरमें जबतब सतगुरु महाराजके नूरानी स्वरूपका प्रगट होना, उनके दर्शन का सरूर दिनरात चढ़ा रहना, हर तरफ़ गुरु का ही स्वरूप नज़र आना, अपना आप भूल कर सिर से पाओं तक सत गुरु का स्वरूप बन जाना, उनके पवित्र नाम का स्मरण, उनके जमाल मुबारक का दर्शन हर लहज़ा मिलना, सतगुरु के नूरानी स्वरूप की चाह में दिनरात तड़पना ही अनन्य भक्ति है। यह भी कहा है कि सन्त सतगुरु की सेवा व भक्ति से प्रायः ऐसा रस व आनन्द प्राप्त होता है कि फिर संसार के सब रस फीके मालूम होते हैं। इस प्रकार की बातों से सिद्ध होता है कि ईश्वर वा कुल मालक के मेल की आवश्यकता ही नहीं। अतः हमारी सम्मति में ऐसा धोखा न किसी ने दिया होगा न दे सकेगा, कि दुहाई कुल मालक के दर्शन की मचाना और पूजा अपनी कराना। दमझांसा यह कि गुरु की पूजा कुल मालक के मेल की पहिली सीढ़ी है पर हर अगली सीढ़ी पर भी गुरु का भूत चिपटा है और सब्ज़ बाग़ दिखाते २

सतसंगियों का धर्म कर्म, माल दौलत, अमोलक आयु सब कुछ बरबाद करके अन्त में इशारा यह दिया जाता है कि अनन्य भक्ति में अपने अन्दर गुरु का ही नूरानी रूप नज़र आना, अन्तिम कोटि की सफलता है। पर जिसे अपने आत्मा का ज्ञान नहीं जो गुरू के आत्मा में घुस नहीं सकता जो निज धाम कहाँ ब्रह्म तक का हो ज्ञान नहीं रखता वह तीनों रूप और फिर एक ही रूप में कैसे देख सकता है। साहब जी ने कहीं उपनिषद् का प्रमाण दिया कि ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म ही है कहीं ग्रन्थ साहब का प्रमाण दिया कि ब्रह्म-ज्ञानी आप परमेश्वर या ब्रह्म ज्ञानी सब सृष्टि का करता! कहीं मसीह का प्रमाण दिया कि मैं और मेरा बाप एक ही हैं कहीं सूफ़ियों का वचन सुनाया कि औलिया लोगों का सतसंग करो दीदार होगा। हम नहीं समझते जब आप इस खुदा और उसके मानने वालों को त्याज्य बताते हैं तो उनको प्रमाण वा साक्षी कोटि में कैसे पेश करते हैं। जो लोग ईश्वर के विश्वासी और उसे सर्वोपरि मानते तथा किसी को उसके बराबर मानने वाले का मुख तक देखने के रवादार नहीं, उनको आप अपनी पुष्टि में कैसे पेश करते हैं जो बराबर कहाँ खुदा से कई लोक ऊपर राधा-स्वामी की कल्पना कर रहे हैं।

अतः स्पष्ट है कि आप गुरुडम् की भयंकर बेड़ियों को काटने के स्थान में सरल हृदय सतसंगियों को पहिले से भी अधिकतर दृढ़ बेड़ियों में बांध रहे हैं।

सर्ग ५—नास्तिकता तथा सिद्धान्त शून्यता

२३—ईश्वर सर्वोपरि है। उसके बराबर वा उससे अधिक

किसी को मानना उसकी निन्दा है। यह निन्दा नास्तिक का काम है यहीं नहीं ईश्वर जो अजन्मा है उसको कहीं कल्पित राधास्वामी से, कहीं सन्तों से पैदा हुआ मानना उससे भी अधिक निन्दा है। राधा स्वामी गुरु साहब स्वयं कहें कि ईश्वर परमेश्वर और खुदा की हमारे वाले ऊंचे पद तक रसाई नहीं तो 'गुरु जिन्हां दे टप्पने चेले जान छड़प' के अनुसार सतसंगी कौनसी कसर छोड़ सकते हैं यही कारण है कि इस मत में क्या ईश्वर और क्या वेद दोनों के विषय में अश्रद्धा और निन्दा का भाव बढ़ रहा है।

२४—कहा जायगा कि ईश्वर से इन्कार तो नहीं किया बल्कि "मुनकिराने खुदा व मजहब" के लेख में ईश्वर की महिमा का वर्णन है। हम कहते हैं इससे बेउसूलापन सिद्ध होता है न कि ईश्वर पर विश्वास। इस से एक ओर तो सत्य मार्ग दिखाने वालों तथा सच्चे नुक्ताचीनों के मार्ग में कठिनाइयां पैदा की जाती हैं। दूसरी ओर सरल हृदय मनुष्योंका विश्वासपात्र बनकर उन्हें गुरुडम की अन्धेरी ग़ार में धकेलने का अवसर भी मिलता है तीसरी ओर सर्वतन्त्र सिद्धान्तों के विषय में सत संगियों का भाव कमजोर किया जाता है और चौथी तरफ ईश्वरीय ज्ञान से विमुख होकर एक स्वार्थी गुरु भी जो कुछ कह दे धर्म मान लिया जाता है। सार वचन में उपदेश ही है कि:—

जो गुरु मारग देंहि लखाई. सोई निज कर्म धर्म होजाई।

यही सिद्धान्त शून्यता ईश्वरीय ज्ञान या वेद की निन्दा और नास्तिकता का लक्षण है।

२५—कहा जायगा कि ईश्वर को स्पष्टतः माना गया है और जब उससे परे और उससे कई दर्जे ऊपर उसके भी मालक को स्वीकार कर लिया तो नास्तिकता कैसी? हम कहते हैं किसी गप्प या कपोल कल्पना का नाम आस्तिकता कैसे? उत्तर मिलता है

यदि यथार्थ सत्ता न होती तो राधा स्वामी दयाल के अवतार का आविर्भाव कैसे होता ? देखिये तो सारवचन के आरम्भ में ही लिखा है ।

(१) परगट होना परम पुरुष राधा स्वामी का सन्त सतगुरु रूप धार कर वास्ते उद्धार जीवों के । (२) सुनावना अधिकारी को इस संदेस का कि परम पुरुष पूरण धनी राधास्वामी जीवों को महा दुखी और भर्म भूला हुआ देख कर आप उनके उद्धार के निमित्त सन्त सत गुरु रूप धारण करके प्रगट हूये और अति दया करके भेद अपने निज धाम का और जुगती उसकी प्राप्ति की सुर्त शब्द के मार्ग से उपदेश करते हैं ।

(आर्य्य) अरे भोले भाई ! इतना तो सोच यह लिखने वाला कोन है ? क्या मैं कहूं कि मैं सकल स्वामी का अवतार होकर सब का तारने आया हूँ । सकल स्वामी साहब का हुक्म है कि राधा स्वामी को अब मौकूफ़ कर दिया गया है जिस काम को उसे भेजा था वह तो किया नहीं, विद्रोह और विश्वासघात करके आप महन्त और कुल मालक बन बैठा अब उससे सब सावधान रहें इत्यादि, तो क्या यह सत्य होगा । यदि सच मुच राधा स्वामी है और उसने सृष्टि की देख भाल ब्रह्म के जिम्मे सौंप रखी है तो स्वयं यहां आने की खुजली उसे क्यों उठी ? क्या उनकी थूक चाटे-विना जीवों का उद्धार न हो सकता था या क्या श्रीमती राधाजी से विवाह कराये विना उनसे उच्च पद छीना जाता ? या क्या अब मनुष्यों के नहीं तो राधा स्वामियों के ही दुख दूर हो गये हैं । और दुःख दूर तो कहां वह बेचारे तो वैसे ही कुटम्ब रूप काले नागों से डसे जा रहे हैं । स्वयं साहब जी महाराज का मन ही न जाने किस २ से क्या २ चोट खाये बैठा है । तब कैसा सुर्त शब्द अभ्यास और काहे का उद्धार ? अरे ! तुम में से एक भी नहीं,

जिसने मलीन माया देश के धनी पुरुष ब्रह्म का ही दर्शन किया हो तब कई दर्जे ऊपर के धनी पुरुष के दर्शन के स्वप्न कैसे ?

२६—राधा स्वामी ने तो चिता दिया तरीका बता दिया। कोई न माने तो उसके भाग्य।

राधा स्वामी धरा नर रूप जगत में गुरु हुये जीव चिताये।
जिन २ माना बचन समझ के तिन को संग लगाये॥

(आर्य्य) क्या नानक मुहम्मद मसीहादि ने जीवों को नहीं चिताया। यदि चिताया है तो राधा स्वामी के आने और कुछ वर्ष पीछे नाकाम चला जाने में विशेषता क्या हुई ? सुर्त शब्द अभ्यास कबीर साहब के चेलों में प्रचलित था उसके सम्बन्ध में आपकी प्रचलित परिभाषादि का ज्ञान आपके परम गुरु साहब को वैदिक धर्मी पितरों से मिला तो निज धाम के धनी का दख़ल क्या।

अनुमान २ अरब वर्षों से किसी ने ईश्वर से ऊपर कभी किसी और मालक का नाम नहीं लिया, न उस कुल मालक ने आप को अब कोई ज्ञान दिया न भाषा न कोई विलक्षण काम दिखाया तो किसी से कुछ शब्द सुन कर अन्धा धुन्ध मानकर भेड़िया धसान पर आचरण करना किस प्रकार बुद्धिमत्ता का काम हो सकता है। लोहे को सोना बनाने के लालच से कीमिया गर धोखा देता है तो कुलमालक से मेल कराने आदि की चिकनी चुपड़ी बातों का आप को प्रलोभन मिल रहा है अतः मूर्ख न बनो बुद्धि मत्ता और दूरदर्शिता से काम लो।

सर्ग ६—कालानिक भोजन या आध्यात्मिक गगनयात्रा

२७—अनेक अन्य स्थानों को भान्ति साहब जी ने पृष्ठ १० पर सुर्त शब्द अभ्यास का इस प्रकार वर्णन किया है:—

"चूंकि राधा स्वामी मत का साधन याने सुर्त शब्द अभ्यास सुर्त को उन गिलाफों से दर्जा ब दर्जा आज़ादी दिलाने का ही अमल है और सुर्त का अन्तर में दर्जा ब दर्जा आला रूहानी मरकज़ों पर पहुँचना इन गिलाफ़ों से दर्जा ब दर्जा रुस्तगारी पाने ही का मज़हर है इसलिये कुदरती तौर पर इस साधन के बन पड़ने पर अभ्यासी के अन्दर दर्जा ब दर्जा लतीफ व अलतफ खवास (दिव्य ज्ञान शक्तियां) नमूदार होते हैं और एक दिन याने सुर्त शब्द के पूरे वेदार होने पर वह कुल मालक का बेगलाब दर्शन करके कृतकृत्य हो जाता है।

(आर्य्य) सुत शब्द अभ्यास वास्तव में श्रुति के शब्द का योगाभ्यास में साक्षात करना है। दिव्य शक्तियां नमूदार होने का कथन भी उसी पर चरितार्थ होता है क्योंकि वह है ही अर्थ वा ज्ञान वा प्रकाश पाने के लिये। पर यह राधा स्वामी परम गुरु साहब को लक्ष्य नहीं था ऐसा होता तो वह यह न लिखते कि हम ने प्राणायाम वाले योगाभ्यास में अनेक हानियां देखकर सुर्त शब्दअभ्यास का सरल सा टोटका निकाला है तथा यह जुगती पहिले किसी के ज्ञान में न थी। पृष्ठ ७ पर है कि सुर्त को अन्तर में चढ़ाकर सतपुरुष राधा स्वामी के चरणों में लगाना सुर्त शब्द अभ्यास है। अब यह स्पष्ट है कि स्थूल जगत का ज्ञान पाते २ अन्त में ईश्वर जीव प्रकृति का ज्ञान पाने वाले को दिव्य ज्ञान शक्तियों का प्रगट होते कह सकते हैं पर राधा स्वामी साहब केवल एक सरल साधन से राधा स्वामी के चरणों में पहुंचना इसको लक्ष्य बताता है और वैदिक ज्ञान ध्यान, ज्ञान योग, वैराग्य, का निषेध करता है। कहा है:—

ज्ञान ध्यान और योग बैरागा, तुच्छ समझ मैंने इनको त्यागा।

यदि राधा स्वामी कोई यथार्थ सत्ता होती तो ज्ञान ध्यानादि के

द्वारा ब्रह्म वा ईश्वर को साक्षात करने के पीछे उसके दर्शन का नम्बर बताया जाता हैं।

२८—जब ज्ञान ध्यान तुच्छ है तो दिव्य ज्ञान शक्तियों के प्रकाश से आप के अभ्यास का क्या सम्बन्ध ? ज्ञान शक्ति के बढ़ने का सार बचन के अभ्यास में कहीं संकेत तक नहीं। क़लन्दर जैसे बन्दर को नचाता था सरकस वाला जैसे कुत्ते आदि को बांस पर चढ़ाकर उसके खेल दिखाता वा उसे अनेक नाच नचाता है वैसे ही सत संगी बेचारे भी जो नाच नचाया जाय नाच देते हैं किसी सिद्धान्त वा वैज्ञानिक शिक्षा पर बुद्धि बल से विचार करने की यह लाइन ही नहीं इसके अतिरिक्त सार बचन में परस्पर विरोध भी इस विषय में प्रत्यक्ष है। एक ओर तो कहा जाता है।

"सतयुग त्रेता द्वापर बीता, काहु न जानी शब्द की रीता।
कलयुग में स्वामी दया विचारी, परगट करके शब्द पुकारी ॥
जीव काज स्वामी जग में आये, भव सागरसे पार लगाये। ३७।

इन शब्दों में सुर्त शब्द अभ्यास को सर्वोच्च साधन तथा पूर्वजों को इससे अनभिज्ञ बताया और इसलिये यह दावत ज़ोर से दी हैं मानो न मानो जीव अभागी, राधा स्वामी करी है सुहागी।
आओ दौड़ो पकड़ो चरणा, जैस बने तैस पाओ शरणा ॥

पर दूसरी ओर यह लिखा है कि यह साधन इसलिये दिया जाता है कि आज बल बुद्धि मीटी है अन्यथा पिछले जुगों में जीवों की अवस्था उच्च थी वह ईश्वर कोटि थे अतः वह प्राणायाम वाला योग करते थे।

वह तो धर्म जुगन पिछले का, इन जीवन का बल नहीं बूता।
जब थे जीव सब ईश्वर कोटी, अब जीवों की बुद्धि है खोटी ॥
जीव कोट में उनकी गिनती, यह नहीं धारें उनकी जुगती ॥
याते ज्ञान जोग दोऊ खण्डन भक्ति भाव सन्तन किया मण्डन ॥

यही नहीं कि इस जगह प्राचीन योग को उत्तम कहा है आगे यह भी कहा है कि जब तुम उन्नति कर जाओगे ईश्वर कोटि हो जाओगे तब तुम्हें उसी ज्ञान और जोग से लाभ होगा सब ऐरा ग़ैरा नत्थु खैरा इसका अधिकारी नहीं होसकता। यह बात कि आज कल कोई आसान सा टोटका काम दे सकता है और ईश्वर प्राप्ति का क़ानून बदल सकता है सर्वथा असत्य है तो भी वैदिक धर्मियों के योग की जो महिमा गाई तथा राधा स्वामियों की जो नीचगति बताई गई है वा जो विचित्र सर्टीफिकेट उन्हें दिया गया है वह सिद्ध करता है कि किसी सन्त सतगुरु वा सतसंगी का वेद शास्त्र को तुच्छ समझना केवल उनके अज्ञानादि का परिणाम है।

२९—सत्यार्थ प्रकाश में नक कटा पन्थ का अद्भुत दृष्टान्त मिलता है जिसका नाक कटा उसी ने रोने चिल्लाने के स्थान में हंसना और उछलना शुरू कर दिया कि आहा! नारायण मिल गये वह चतुर्भुज सामने खड़े हैं। वाह धन्य हो गुरु! धन्य हो क्या सहज बेड़ा पार किया, इत्यादि। वही उछल कूद यहां है। अशिक्षित धर्म कर्म से सर्वथा अनभिज्ञ पुरुष ही नहीं स्त्रियां तक भी गगन में सुर्त बढ़ाने और उच्च से उच्च लोकों के दर्शन पाने के बोल बोल रही हैं। आत्मा का कोई ज्ञान नहीं, मन बुद्धि इन्द्रियों के संयमादि का कोई विचार नहीं पर उनके मुख में आप स्वयं रचना करके यह शब्द डालते हैं:—

३०—इस उछलकूद के लिये यह शब्द विचारनीय हैं—

हंस सभा कहा बरनूं सोभा, होवत जहां शब्दन की वर्षा।
चमकत बिजली गर्ज अकाशा, और कहा कहूं अजब तमाशा॥
बंक नाजंक नाले छूटे-सुखमन नदियां भग्म पुल टूटे।
त्रिकुटी घाट बैठ मल धोई-मान सरोवर दुर्मत खोई॥
हंस रूप होय सुरत समानो-शब्द अगम धुन अन्तर जानी।
महा सुन्न के ऊपर गाजी-राधा स्वामी हो गये राजी॥

भंवर गुफा की खिड़की खोली-सत्त पुर्ष की सुनली बोली।
हंस सभी अगवानी धाय-अलख लोक से लेवन आये ॥
नाना विध जहां बजन बधाई-हंस सभी मिल आरत गाई।
बचन सुन नित्त कमाऊंगी, सुरत फिर गगन चढ़ाऊंगी।
सत्त चढ़ शब्द जगाऊंगी, नाद दस द्वार बजाऊंगी ॥
सन्त पद जाय समाऊंगी, उलट फिर जग में आऊंगी ।१५८
सुरत नैनन जमाऊंगी, सहस दल कंवल आऊंगी ॥
जोत दर्शन दिखाऊंगी, शब्द में जा समाऊंगी।
बंक द्वारा खुलाऊंगी, तिरकुटी जा बिठाऊंगी ॥
मानसर चढ़ निल्हाऊंगी, सारंगी धुन सुनाऊंगी।
महासुन्न पार पाऊंगी, गुफा धुन सरल गाऊंगी ॥
सोहंग बंसी सुनाऊंगी, ग़ैब धुन भेद गाऊंगी।
सत्त की राह धाऊंगी, नाम पद फिर जनाऊंगी ॥
दूर दुर्बीन लगाऊंगी, अलख को जा लखाऊंगी।
अगम गढ़ चढ़ दिखाऊंगी, भेद वहां का छिपाऊंगी ॥१५९
राधा स्वामी संग तिल तोड़ चलूं री, राधा स्वामी संग नभ फोड़ मिलूं री

"	फिर जोत लखूँरी,	"	सुन्न भेद तकूँरी।
"	नलबंक धसूँरी	"	चढ़ गगन हँसूंरी ॥
"	दस द्वार गहूँरी,	"	महा सुन्न चढ़ूंरी।
"	मैं गुफा रहूँरी,	"	सत नाम गहूँरी ॥
"	मैं अलख लखूंरी,	"	मैं अगम भखूंरी ।६१

आज मेरे धूम हुई है भारी, घाट अब हो गया सुख मन जारी।
प्रेम रंग भीज गई श्रुत सारी हुई जाय सुन्न में शब्द अधारी ॥
धुनन की होत सदा झनकारी, इड़ा तज पिंगला खोज करारी।
सोहंग में बन्सी आन पुकारी, सन्त सर गई सूरत पनिहारी ॥
भरी राधा स्वामी गगरी भारी, हन्सनी हो गई हन्सन प्यारी।

जुगनियां चढ़ी गगन के पार, लगनियाँ मगन हुई दस द्वार ॥
सुजनियां लखी शब्द की धार, वैरागिन भई जो सुरत हमार । ६७
सुरत चढ़ाय असमान भरूंगी, गगन मण्डल की सैर करूंगी ॥
धुन धधकार अनन्त सुणूंगी, सुखमन संग विलास करूंगी ।
बंक नाल में सहज धसूंगी, त्रिकुटी जा मैं ओंग गहूंगी ।
सुन्न महासुन्न पार सजूँगी, भंवर गुफा सत्त लोक रहूंगी, ६९
अलख अगम धुन नित्त भजूँगी, राधास्वामी चरण स्पर्श करूँगी ७०
सोधा दरसाया गुरु पूरे, बीन बजे जहां अचरज तूरे ।
आगे अलख पुरुष दरबारा, देखा जाय सुरत से सारा ।
तिस पर अगम लोक इक न्यारा, सन्त सुरत कोई करत विहारा ।
तहांसे दरसे अटल अटारी, अद्भुत राधास्वामी महल अँटारी २०३
छोड़ो कर्म धर्म पाखण्डा, सुरत चढ़ा फोड़ो ब्रह्मंडा ।
जब होवे हिये सुर्त अखण्डा, पहुंचे सत्तलोक सच खण्डा ।
वहां से अलख लोक को धावे, अगम लोक में जाय समावे । १०
देखे घट में जोत उजाला, सुने गगन में अजब धुनें ।
सुन्न जाय तिरबैनी न्हावे, हीरे मोती लाल चुने ।
महासुन्न में सुरत चढ़ावे, तब सतगुर तेरे संग चलें ।
भैंवर गुफा की बन्सी बाजी, महाकाल भी सीस धुनें ।
ले सुर बीन चली आगे को, अलख अगम का भेद भने । ३५७
यहाँ से आगे चली उमंग से, तब राधास्वामी चरण मिले ३५३
घाट घट खुले बाट तब चले, द्वार तिल धसे श्याम पद पाय ।
सन्त पहिचान जोत लख आन सुख मनाजान बंक धस जाय ।
शंख धुनि मिले सुरत फिर पिले, भेद तब खुले नाद तब गाय ।
सुन्न चढ़ आय मानसर न्हाय, हंस गतियाय चन्द्र में धाय ।
खोज कर चली महासुन्न मिली, पाये निज गली विहंग हो जाय ।
भंवर गढ़ तोड़ बांसरी घोर, सोहंग का शोर सुना रस खाय ।

पाय पद चार पुरुष धर प्यार, बीन धुनसार सुनी निज आय।
अलख घर मिला अगम गुल खिला, चाल धुर चला लिया सब
काज बनाय ३५६

३१—एक और श्रद्धाप्रेम, तन, मन, धन, स्मरण, ध्यान, सेवा, भक्ति, अनन्य भक्ति सब गुरु वा उसकी मूर्ति की, और दूसरी तरफ गगन में चढ़ते २ राधा स्वामी धाम तक पहुँचने की गप्प, दोनों से इस मत का पोल प्रत्यक्ष है। स्कूलों में Imagiary Banqnet या ख्याली जियाफत की कहानी पढ़ी थी। शेखचिल्ली की कथा भी प्रसिद्ध है, गप्पियों की गप्पोंका भी ठिकाना नहीं। पर राधा स्वामी गप्प सब को मात करती । ख्याली जियाफ़त में नौकर को बुलाना, खाना लाने का हुक्म देना, हल्वा फलादि का उत्तम से उत्तम किस्म का नाम लेना, आप ही उनके आजाने का जिकर करना, उनके स्वाद की प्रसंशा करना, अतिथि का पार्ट भी आप हो अदा करके अपने कथन की पुष्टि करता, सब कुछ एक ही पुरुष का काम है, ठीक उसी प्रकार एक ही राधा स्वामी साहब सब घर पूरे किये जाते हैं।

३२—भाग १ पृष्ठ ४५—४६ पर राधा स्वामी धाम का वर्णन है कि वह निर्मल चेतन देश का चोटी का मुकाम है। वहां माया का अधिकार नहीं न प्रलय महा प्रलय का गुज़र, सार यह कि प्राकृत जगत का कोई सम्बन्ध नहीं।

नहीं धरती नहीं वहां असमानी, जहाँ मेरे प्यारे राधा स्वामी ॥
तीनों गुन महा तत्त न जानी ” ”
नहीं आतम परमातम धामी ” ”
सुन्न और महा सुन्न अलगानी ” ”
भंवर गुफ़ा सत्त लोक निचानी अहो ”
अलख लोक और अगम ठिकानी, तिस परे ”

और न कोई रहे नाम निशानी जहां मेरे प्यारे " २४

परन्तु पृष्ठ १०-११ पर इससे एक शब्द ऊपर यह कड़ियाँ हैं—

हंसा पांति जोड़ जहां बैठे, झुण्ड २ जहाँ रहें इकट्ठे।
अरबन खरबन भान् उजारा, कहा कहूं सोभा भूम अपारा॥
कंवलन क्यारी चहुँदिश लागी, झालर मोती झूम-झूम आगी।
राग रंग धुन अति झनकारा, अमी सरोवर भरे अपारा
हीरे लाल रतन की धरती, चांद सूरज की चादर तंती।
जहाँ राधास्वामी का तख़्त बिराजे, हंस मण्डली अद्भुत राजे॥
धूम-धाम नित होत सवाई, आनन्द मङ्गल दिन प्रति गाई।
ऐसा देस रचा राधा स्वामी, निज भक्तन को करे बिसरामी॥

पृष्ठ ८० की निम्न कड़ियां भी विचारणीय हैं—

क्यों करूँ बखान महिमा मैं उस धाम की,
नील नील ससि भान इक इक कंगुरे लग रहे।
पदमन मणी जड़ी महलन में, सोभा वहां की कहुँ क्योंकर मैं॥
सख और महासंख ससि भान, गिर्द सिंघासन देखे आन।
क्या दृष्टान्त देऊँ मैं सही, गिन्ती भी वाकी नहीं रही॥

एक ओर किसी अन्य वस्तु का नाम निशान न होना और दूसरी तरफ हँसोके झुण्ड अरबों खरबों सूरज, अपार भूमि, कवलों की क्यारियां, मोतियों की झालर, राग रंग, धन, भरेभराये तालाब, हीरे लाल का धरती, चांद सूर्य्य की चांदनी, तख़्त ताज, आनन्द मंगल, भक्तों का बसेरा, एक एक किनारे के साथ नील नील सूर्य्य चांद, मनि हीरे लाल से जड़े हुये महल क्या परस्पर विरुद्ध तथा कपोल कल्पना मात्र नहीं।

सर्ग ७—राधा स्वामी परम गप्प या आसमानी सैर

३३—एक गप्पी कहता है मेरे पिता के पास एक भैंस थी,

जिसका एक सींग पेशोवर में था दूसरा कलकत्ते में। दूसरा गप्पी कहता है हमारे यहां इतना बड़ा नेज़ा था कि जब चाहते आसमान को चभोते और वर्षा करा लेते। (पहिला) वह नेज़ा रखते कहां थे? (उत्तर) तुम्हारे बाप की भैंस की चरणी में। बस अब तो तेरी चुप और मेरी चुप। इसी प्रकार सारवचन की गप्प सर्वोपरि है। पृष्ठ ५ पर लिखा है कि सब मतों का सिद्धांत हमारे सन्त मत की पहिली हद दूसरी मन्जिल में खतम है विधिपूर्वक सुर्त शब्द अभ्यास होने से मन और सुर्त निर्मल होकर और शब्द को पकड़ कर आकाश के परे चढ़ेगी नौ द्वार या पिण्ड देश को छोड़कर ब्रह्माण्ड या त्रिकुटी में चढ़ेगी फिर सुन्न से अलग होकर सुन्न महा सुन्न सत्त अलख अगम लोक से होती हुई राधा स्वामी के निज देश में प्राप्त होगी। सुर्त शब्द मार्गी को विष्णु, शिव, ब्रह्म, शक्ति कृष्ण, राम सब लोक तथा ब्रह्म पद जैनियों का निर्वाण पद, ईसाइयोंका खुदा और रूहुलकुद्दुस और मुसलमानों का जबरूत लाहूत नाम सब लोक सुन्न के नीचे २ रस्ते में पड़ेंगे। इन सब में नीति यह है कि दूसरे मतवादी भी चुप रहें कि हमारे खुदादि को माना गया है और अपने अन्ध विश्वासी चेलों को अकल यूं मारी जावे कि अपने गुरु सब से ऊंचे हैं।

३४—सारवचन ३८६-३९७ तकके पृष्ठोंमें सबसे उत्तम मतकी जांच तथा कुल मालकके मेलका सीधामार्ग बताते हुये राधास्वामी साहब फ़कीरों के दर्जों का गूढ़तत्व कहते हैं और इसलामी हदीस से चुराया हुआ सात आसमानों के सैर का मज़मून अपने रंग में इस प्रकार वर्णन करते हैं।

"जिस वक्त निगाह तुम्हारे दिमाग के भीतर उलट कर आसमान को देखेगा और रूह तुम्हारे जिस्म को छोड़कर ऊपर को

चढ़ेगी तो तुम को आकाश नजर पड़ेगा कि जिस थाना सहस्र दल कमल का है और हज़ारों पंखड़ियां, उसकी जुदा जुदा काम तीनों लोकों का दे रही हैं उसकी सैर को देख कर तुम बहुत खुश होंगे और तीन लोक के मालिक का दर्शन पाओगे। और बहुत से मज़हब इसी मुकाम को पाकरके और इसी को मालिक कुल गरदान कर धोखा खा गए और नूर और तजल्ली इस जगह को देख कर तृप्त हो गए। आगे चलने के रस्ते बन्द हो गए मरशद आगे का उनको न मिला जो मुरशद मिलता तो आगे को रस्ता खुलता, सो इससे आगे का हाल सुना—इस आकाश के ऊपर एक दरवाज़ह ऐसा बारीक और झीना है कि जैसे रौज़न सूई के नाके का होना चाहिए कि उस रौज़न में अपने रूह को प्रवेश करो और आगे उसके वंक नाल टेढ़ा रस्ता कुछ दूर तक सीधा गया, और फिर नीचा पड़ा और फिर ऊपर को चढ़ा उस नाल को पार करके दूसरे आसमान पर सूरत पहुंची, उस आसमान पर एक मुक़ाम त्रिकुटी कि उसको मुसल्लसी कहते हैं जो लाख योजन वसीअ और लाख योजन तवील हैं, उसमें लीला और तमाशे तरह बतरह के हैं शरह उसकी कहां तक करूं मगर कुछ कहता हूँकि हज़ार आफ़ताब और हज़ार माहताब उसकी रोशनीसे ख़िजल हैं और आवाज ओंग ओंग और हू हू और बादल को सी गर्ज बहुत सुहावनी आठ पहर होती रहती है। उस मुकाम को पाकरके रूह को बहुत सरूर हासिल होता है और रूह भी बहुत पाक और लतीफ़ हो जाती है। आलम रूहानी की खबर उस जगह से पड़नी शुरू होती है कोई दिन उस जगह की सैर करके फिर ऊपर चड़ती है, चढ़ते चढ़ते करोड़ योजन ऊपर चढ़कर तीसरा पर्दा फाड़कर सुन्न में पहुंची कि जिस को फ़ुक़राओं ने आलम लाहूत कहा है उसकी तारीफ क्या कहूं, उस मुक़ाम पर रूह बहुत विलास करती हैं और

रोशनी वहां की ऐसी है कि बारह बारह हिस्सा ज्यादह रोशनी त्रिकुटी से मालूम होती है तालाबे जुलाली व हाजि कैसरी पुरअज़ आबिहयात कि हिन्दी में उन को मानसरोवर कहते हैं जाबजा मौजूद हैं और कितने ही गुलशन और चमन खिले हुए नज़र पड़ते हैं और अक्सर रूहें बसूरति नाजनीनां मुक़ामाति मुख़्तलिफ़ पर रक़्स कर रही हैं व ग़िज़ाहा लतीफ़ अज़बस शीरां, व खुशनुमा तरोताज़ा तैयार हैं और नग़महां व तरानहा हर जानिब का हो रहे हैं। उस आनन्द व सरूर को रूह रसीदह जानती है, कहने में आ नही सकता और हर एक जगह झरने आबिहयात के जारी हैं याने अभी सरोवर भरे है अमृत धारा चल रही है। रौनक ज़ेबाइश उस मुक़ाम की क्या कहूं हीरों के चबूतरे पन्नों की क्यारियां, जवाहिरात के पौदे, लाल और चुन्नियां जड़े हुए नमदार हो रहे हैं। मछलियां मुरस्सै उन तालाबों में पैर रही हैं दम दम पर झलक दिखाती हैं, पल पल पर चमक उनकी दिल का पकड़ती है। आगे उसके अनन्त शीश महल बने हुए हैं और रूहें अपने अपने मुक़ामों पर मुवाफ़िक हुकम मालिक अपने के मुक़ीम हैं और कैफ़ियत और विलास नये नये परस्पर देखती हैं और दिखाती है कि हिन्दी में उन्हीं रूहों को हंस मडली करके बयान किया है। नक़्शबन्दी उन मुकामों का देखने से ही तअल्लुक़ रखता है कुल कारखाना उस जगह का रूहानी है याने चैतन्य लतीफ़ है ..स.फ़ और जड़ नहीं है और वहां की रूहां में लताफ़त और पाकअज़ बस है कसाफ़त और मलीनता जिसमानी यानी बदन की नहीं है और शरह उस मैरगाह की फ़कीर जानते हैं, ज्यादह खोलना उसका मुनासिब नहीं, मुद्दते कसीर उस जगह रूह इस फकीर की ने सैर को फिर मुरशिदां को हिदायत से आगे को चली, चढ़ते २ पांच अरब पछत्तर करोड़ योजन ऊंची गई आलमे लाहूत का

नाका तोड़ा उस आलम की सैर की उस मुक़ाम का बयान क्या करूं दस नील तक ज़ुलमात यामी अन्धेरा है। गहराई उस तिमर खण्ड की कहां तक वर्णन करूं खर्व योजन तक रूह नीचे उतर गई और थाह उसकी हाथ न लगी फिर उलटकर ऊपर चढ़ आई और जो निशान की मुनियों ने बताया था उसकी सुध लेकर उसी रास्ते पर चली और अन्त लेना उस स्थान का अनसब न समझा, आगे को बढ़ी यह मैदान महासुन्न का है। इस जगह चार मुकाम निहायत गुप्त है और किसी शख्स ने खोले नहीं, उस जगह रूहैं बेशुमार जो कि मरदूद दरबार सच्चे खुदा की हैं। उनके बन्दो खाने बने हुये हैं अगर्चे तकलीफ इन रूहों को उस जगह कुछ नहीं अपनी अपनी रोशनी में अपना २ कारज करती रहती हैं लेकिन दर्शन मालिक का उनको नसीब नहीं होता, दर्शन के न मिलने से अलबत्ता बेकली है मगर एक सूरत माफ़ी की उनके वास्ते भी मुक़र्रर रखी गई है कि जब जब सन्त उस रास्ते से गुजर करते हैं और जो रूहें कि नाचे के लोकों में से सन्तों के वसीले से जाती हैं जिन जिन रूहों को कि इत्तफाक़ उन सन्तों के दर्शनों का हो जावे उन रूहों के ले जाने की जो खुशी कि सन्तों को होती है और उस सच्चे खुदा की निहायत मेहरबानी और अलताफ़ इन रूहों पर होता है सन्त उन रूहों को बख्शा कर फिर सच्चे ख़ुदा के पास बुलवा लेते हैं और हाल उस जगह का बहुत से बहुत है। मगर कहां तक कहूँ उस मुक़ाम को छोड़ कर आलन हूत लहूत में पहुंची कि जिसको हिन्दी में भंवर गुफा कहते हैं कि वहां एक चक्कर कि जिसको हिंडोलना कहते हैं ऐसा लतीफ फिर रहा है और रूहें उस जगह सदा झूलती रहती हैं और गिर्द उसके अनन्त दीप रूहानी बने हुए हैं और उन दीपों में से आवाज़ सोहंग सोहंग व सदाये अनाहू अनाहू सदा उठ रही है

और रूहें और हंस उन्हीं धुनों से हमेशा बिलास करती रहती हैं और जो जो सिफ़ात इस मुकाम पर और हैं वह ज्यों की त्यों लिखने में नहीं आतीं देखने ही के तअल्लुक़ हैं जब रूह इस मार्ग को कमाती हुई पहुंचेगी तब आप देख लेवेगी इस वास्ते मुनासिब है कि इस तरीके की कमाई करे जाओ यह शग़लि आवाज है इसको मत छोड़ो अब यहां की सैर देखकर रूह आगे चढ़ी, आकाश मार्ग होकर याने ऊंचे को चढ़ती चली जाती है दूर से सुगन्ध मलियागिर की और किस्म २ के इतरियात की सी लपटें चली आती हैं और धुनें बांसरियों की अनन्त सुनाई देती है उन को सुनती और सूंघती हुई रूह याने सुरत आगे को चढ़ती चली जाती है। जब इस मैदान के पार पहुंची नाका सत्तलोक का हासिल हुआ कि वहां से आवाज़ सत्त सत्त और हक़ हक़ के बीन के बाजे में से निकलती सुनाई दी कि उसको सुन कर रूह मस्तानह वार घुसी चली जाती है और वहां नहरें सुनहरी और रुपहरी पुरअज़ आबिज़ुलाल दीखने लगीं और बाग़ बड़े २ नजर आए एक एक दरख़्त इसका करोड़ करोड़ योजन की बुलन्दी रखता है और सूर्ये और चांद करोड़ों बजाय फूल और फलों के लगे हुए हैं और अनेक रूहें और हंस इन दरख़्तों पर बजाय जानवरों के चहचहे और विलास कर रहे हैं अजब लीला इस मुकाम की है कि कहने में नहीं आसकती, यह लीला देखती हुई रूह याने सुरत सत्त लोक में दाखिल हुई और सत्य पुरुष का दर्शन पाया। अब सत्य पुरुष का वर्णन करता हूँ कि एक एक रोम उसका इस कदर मुनव्वर है कि करोड़ों सूर्य और चांद शरमिन्द हैं जब कि एक एक रोम की ऐसी सिफ़ात है तो तमाम रोमों की क्या सिफ़ात लिखने में आवे और जिस्म की तारीफ की कहां गुन्जाइश नेत्र नासिका और श्रवण मुख और हाथ और पांव

की क्या वर्णन करूं महज़ नूर ही नूर का समुद्र कहूं तो भी नहीं बनता एक पद्म पालंग घेर सत्त लोक का है और पालंग की शुमार यह है कि त्रिलोकी की एक पालंग है पस दराज़ी और वसअत सत्त लोक की किस कदर बड़ी हुई कि कयास काम नहीं कर सकता और रूहें पाक कि जिन को हंस कहते हैं वहां बसती हैं और सत्य पुरुषका दर्शन करती हैं और नवाय बीना जा बजा सुन रही हैं और ग़ज़ाए अर्मी हमेशह खाती रहती हैं। इस मुकाम का भी विलास देखकर रूह आगे को चली। और अलख लोक में पहुची अलख पुरुष का दर्शन पाया एक संख का घेर उस लोक का है और अरब खरब सूरजों का उजाला। एक एक रोम में अलख पुरुष के है फिर वहा से ऊपर को चली अगम लोक को पाया जिसका घेर महा संख पालंग है और करोड़ संख की काया अगम पुरुष की है और वहां के हंसों के रूप भी अद्भुत हैं और विलास भी वहां के अचरज हैं इस जगह बहुत मुद्दत विश्राम किया इस से आगे राधा स्वामी याने अनामि पुरुष का दीदार किया और उस में समाई वह बे इनतहा और बे शुमार और बे अन्त हैं और फकीरों का निज स्थान वही है उस को पा करके सब सन्त चुप होगए और मैं भी अब चुप होता हूँ।

३५—क्या अब भी राधास्वामी गुरु के मिथ्या भाषण में कोई सन्देह हो सकता है मुकाशफात की किताब, इसलामी हदीसों, गुरु नानक साहब सम्बन्धी सिखों के लेखों से बातें चुराने और रंग चढ़ाकर अपना बनाने का दोष ही नहीं, इस सैर को अपना सैर बताना और अपने पर विश्वास करने वालों को धोखा देना निश्चय अत्यन्त शोक का विषय है। साहब जी महाराज से हमारा प्रश्न है कि जब आप के परमगुरु लिखते हैं कि "बहुत अरसा इस फकीर की रूह ने सैर की" तो क्या आप बता सकते

हैं कि कितना समय और कब से कब तक की और इस का प्रमाण क्या ?

सर्ग ८—गृहस्थाश्रम का तिरस्कार

३६—मानव देह सर्वोत्तम योनि है, और मनुष्य जन्म की सफलता का मूलाधार गृहस्थाश्रम है जिसे ज्येष्ठाश्रम कहा जाता है। स्त्री और पुरुष के समागम से ही श्री शिवदयाल सिंह जी पैदा हुये और इसी समागम से राय सालगराम साहब तथा साहब जी महाराज हुये। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी सब का पालन पोषण इस आश्रम से है। घर में माता पिता, पुत्र पुत्री, पति पत्नी आदि के परस्पर के व्यवहार अच्छे न हों तो गुरु आदि से भी यथायोग्य व्यवहार की योग्यता नहीं आसकती और परमेश्वर से प्रेम वा श्रद्धा का होना और भी कठिन होता है अतः गुरु आदि विद्वानों का मुख्य कर्तव्य गृहस्थ स्त्री पुरुष को आदर्श मर्यादा पालन करने की शिक्षा देना है। वैदिक धर्म विषय लोलुपता तथा गृहस्थ के बन्धन में जकड़ा रहने का कट्टर विरोधी है पर वर्णाश्रम की यथार्थ मर्यादा पालन किये विना उन्नति आदि को असंभव बनाता है, उच्च आत्मा तो हर समय सांसारिक मोह से ऊपर उठ सकते हैं परन्तु साधारण कोटि के मनुष्यों को नियत समय के पीछे गृहस्थ से विरक्त होने की शिक्षा है। वानप्रस्थ और संन्यास वैराग्य का फल हैं गृहस्थ से घृणा आदि का नाम नहीं। गृहस्थ संन्यासादि का जन्म दाता है वानप्रस्थी और संन्यासी वेदोक्त शिक्षा से गृहस्थ रूपी माता की सेवा करते हैं। यदि वह प्रमाद से काम लें तो गृहस्थ की जंजीर टूट जाय और नरनारी पशुवत विचरते फिरें।

३७—राधा स्वामी मत इस आदर्श शिक्षा का विरोध तथा इस ज्येष्ठ आश्रम का तिरसकार करता है इस की शिक्षा यह है:—

कुल कुटुम्ब जग झूठ पसारा, तिन संग बांधा नातारी।
चलोरी सखी आज पिया से मिलाऊँ, तन मन धनकी प्रीत छुड़ाऊँ॥
पुत्र कलित्र जाल छुटकाऊँ, सुन्न मण्डल धुन अजब सुनाऊँ।
गुर सम कोई और न रक्षक, कुल कुटम्ब सब जानो तक्षक॥
ता ते गुर को कभी न छोड़ों, कनक कामिनी से मन मोड़ो।
जोरू लड़के गाली देवे, मूंछ पकड़ वह खैंच खिचीत॥
उनकी ताड़ मार नित सहता, उनसे तो भी मन न फिरीत।
उसकी प्रीति लगी अस दृढ़ होय, लोहे की संग लीत॥
अब तो चेत ज़रा तू हे मन, त्याग पशु की रीत।
लगे नहीं हाथ कुछ तेरे, कुटम्ब के साथ क्यों पिलता।
कुटम्ब परिवार मतलब का, बिना धन पास नहिं आई॥
कहां लग कहूं इस मत को, उन्हीं से मांस नुचवाई।
कोई मीत न जानों अपना, सब ढग बैठे फांसी लाय॥

३८—साहब जी का कहना है कि मालक के दर्शनाभिलाषियों को सावधान करनेके लिये कुल कुटम्ब के मोह को काला नाग कहा है (धारा १३३) पं० भगवद्दत्त के वैदिक वाङ्मय का इतिहास से ब्रह्मचर्यादि का नियम पालन करने के लिये स्त्री को नीची दृष्टि से देखने का प्रमाण दिया है। तथा बृहदारण्यक से मैत्रैयी याज्ञवल्क्य के गृहस्थ त्याग की और गृहस्थ छोड़ कर वानप्रस्थ में जाने की वैदिक मर्यादा को भी प्रमाण रूप में दिया है। परन्तु शोक यह है कि राधा स्वामी मत की शिक्षा वह उत्तर नहीं देती जिस की आड़ साहब जी लेते हैं। वहां तो कर्म धर्म, वर्ण आश्रम सब का प्रत्यक्ष निषेध है और केवल गुरू से नाता जोड़ने का उपदेश है। मसीह के शब्दों का प्रमाण दिया है कि "अगर कोई मेरे पास आये

और अपने बाप और मां बीवी बच्चों और भाइयों और बहिनों बल्कि अपनी जान से दुशमनी न करे तो मेरा शागिर्द नहीं हो सकता।" लूका १४, २५-२६ पर इस का इस बहस से क्या सम्बन्ध ? मसीह का आशय यह है कि सर्व प्रकार का कष्ट उठा कर भी सत्य का साथ देना चाहिये। स्वामी दयानन्द तथा सब ऋषि कहते हैं कि पिता वा गुरू भी धर्म के विरुद्ध कहें तो न माना जाये। "कूड़ राजा कूड़ प्रजा कूड़ सब संसार" गुरू नानक जी के इस बचन का यह आशय नहीं कि वह गृहस्थ के विरुद्ध हैं किन्तु यह कि सब कुछ असार है इस के लिये धर्म या आत्मा का हनन करना उचित नहीं वह अन्त में कहते हैं "तुद्ध वाझों कूड़ो कूड़" अर्थात एक ईश्वर के बिना शेष किसी का भरोसा नहीं हो सकता। कुरान भी यही कहता है "तुम्हारे माल और तुम्हारी औलाद बस बखेड़े हैं बड़ा अजर खुदा के पास है।" निस्सन्देह धर्म भाव और सदाचार का आध्यात्मिक धन के रूप में उत्तम फल निकलता है पर वह गृहस्थ आश्रम के विरुद्ध नहीं, वह विवाहादि गृहस्थ सम्बन्धी मर्यादाओं को भी भली भान्ति शिक्षा देते हैं।

साहब जी महाराज सार बचन का कोई भी प्रमाण पेश नहीं कर सकते जिस में गृहस्थ सम्बन्धी उपदेश हो पर यदि आप के परम गुरू साहब इसे सच मुच बुरा समझते तो राधा जी को ही त्याग दिखाते। त्यागना तो कहा उन्हों ने उन्हें अपने साथ पुजवाया अपने साथ उनकी आरती उतरवाई क्या कहें चेलों के लिये स्त्री काला नाग और गुरू जी की वह है स्वामिनी, बस हाथी के दांत वाला ही बात है।

हे राधा तुम गति अति भारी, हे स्वामी तुम धाम अपारो।
राधा स्वामी दोउ मोहि गोद बिठारी ॥१॥
राधा चरण गहे मैं आरी, स्वामी सरण हुई गति न्यार।

राधा स्वामी की हुई मैं प्यारी ॥ ३ ॥
राधा गुन क्या कहू पुकारी, स्वामी महिमा अकह अपारी ।
राधा स्वामी अब मोहि लोन सुधारी ॥ ४ ॥
राधा चरण सिंहासन धारी. स्वामी चरण सम्हार पखारी ।
राधा स्वामी चरण अब मिला अधारी ॥ ९ ॥
राधा गल अब हार चढ़ारी, स्वालीमीनल तिलक लगारी ।
राधा स्वामी पूजन आज करारी ॥ ११ ॥
राधा आगे भोग धरारी, स्वामी सन्मुख थाल भरारी ।
राधा स्वामी दोनों मान लियारी ॥ १२ ॥
प्रथम आरती राधा धारी, फिर आरती मैं स्वामी सम्हारी ।
राधा स्वामी आरत करलई सारी ॥ १३ ॥
राधा अपना धाम दिया री, स्वामी चरणन माहिं लियारी ।
राधा स्वामी दोनों पार किया री ॥ १७ ॥

——

३९—साहब जी महाराज कहते हैं कि स्त्री का पुरुष गुरु सेवा करना इसलिए दोषयुक्त नहीं कि भक्ति मार्गमें अपने भगवन्तको जिन ४ भावों से सम्बोधन किया जाता है उनमें प्रीतम प्रेमी भाव सबसे उत्तम है । रोमन कैथालिक Nons Brides of the Christ मसीह की बीबियां कहाती है । वेदादि में भी स्त्री पुरुष सम्बन्धी अलंकार हैं यहां तक कि उनमें लज्जास्पद बातें भी हैं ।

(आर्य्य) वेद के प्रमाणों का तो एक एक करके उत्तर आ चुका । हम ईश्वर को राजा, गुरु, मित्र, पिता, माता, स्वामी पति

आदि अनेक नामों से सम्बोधन कर सकते हैं और निश्चय ईश्वर से हमारा सम्बन्ध ही सार सम्बन्ध है परन्तु पति पत्नी भाव से सम्बोधन हर कोई नहीं कर सकता। अविवाहित पुरुष, या बालक ब्रह्मचारी, विरक्त, संन्यासी महात्मा आदि यदि सांसारिक विषय वासनादि संस्कारों को दबा चुके हों तो यह भाव उनके लिये विशेष रूप से त्याज्य है। शेष लोगों में से भी वही इस भाव से सम्बोधन करने के अधिकारी हैं जो पूर्ण सदाचारी और स्त्री पुरुष के सम्बन्ध को काम व मना की पूर्ति का साधन न समझकर इसे पवित्र आत्मिक सम्बन्ध जानते हैं। अन्यथा उनके पाप के संस्कार और भी बढ़ेंगे। कृष्ण नाम ईश्वर का और राधा नाम आराधना करने वाले जीव का रख कर वैष्णव सम्प्रदाय वाले परमेश्वर का चिंतन करने लगे, परिणाम यह हुआ कि देखादेखी सब में हर समय पतिपत्नी की काम वासना पूर्ण बातों का प्रचार हुआ और रास लीला आदि द्वारा आचार हीनता हुई। अतः वर्तमान समय में विशेष रूप से इस भाव का बुरा परिणाम हो सकता है। फिर यह दोष तो ईश्वर वा सच्चे मालक को इस भाव से सम्बोधन करने में है पर यहां विचार मनुष्य गुरु के सम्बन्ध में है और इससे बढ़ कर किसी स्त्री के लिये कोई दोष नहीं कि वह मन वचन या कर्म से स्वप्न में भी किसी अन्य मनुष्य के लिये पति भाव का प्रयोग करे। सारी आयु भर के तपस्वी स्त्रियों के संग में आने का अवसर पाते ही जितेन्द्रियता की दृष्टि से पतित हुए। ऋषि मुनि पर स्त्री चिन्तनादि को भी आठ प्रकार के मैथुनों में गिनते हैं अतः किसी गुरु का यह उपदेश देना कि पति पत्नि भाव से स्त्री चेली में और पुरुष गुरु में भाषण हो, अत्यन्त हानिकारक है हमें शोक है कि नित्य प्रति बड़े बड़े महात्माओं को इस विषय में बदनाम होते देख कर भी राधास्वामी भाई शिक्षा नहीं पाते। पर

शिक्षा लें भी क्या, स्त्री पुरुष दोनों की सरलता का लाभ उठाकर जब दोनों के तन मन धन, अपने अर्पण करा लिये जायें तो कौन पति अपनी स्त्रियों को सत्संगादि या गुरुओं के पास जाने से रोक सकते हैं। आह कहां वह गुरु जो शास्त्र की मर्यादा यह सुनाते हैं कि केवल ऋतु काल के नियम से गर्भाधान संस्कार के समय स्त्री पुरुष का समागम हो इसके अलावा पति पत्नि गृहस्थ सम्बंधी अन्य कर्तव्य धर्मानुसार पालें तथा भिन्न २ कमरे में सोया करें। पर पुरुष स्त्रीका दर्शन स्पर्शन तथा भाषण तो कहां ५ वर्षकी आयु के बालक तथा कन्याएँ भी एक दूसरे के गुरुकुलों में न जा सकें। साहब जी ने मनुस्मृति का यह वचन भी आप ही उद्धृत किया है कि ब्रह्मचारी मा बहिन लड़की इन सबके साथ अकेला मकान पर न रहे क्योंकि इन्द्रियां बड़ी बलवान हैं। महर्षि दयानन्द सा बाल ब्रह्मचारी ४ वर्ष की कन्या का दर्शन होने पर भी पवित्र मातृ शक्ति का स्मरण करता है वह कहता है स्त्री नेत्र के द्वारा ब्रह्मचारी के अन्दर घुस जाती है। यह सब विचार लक्ष्य रखते हुए पाठक महोदय सार वचन के इन शब्दों पर विचार करें।

पल पल फटकत बिरह करारी, जस हूलत कोई सेल कटारी।
बिन देखे दीदार न मानूं, जग संसार सभी विष जानूं॥
बिन राधा स्वामी मोहि कुछ न सुहावे, चार लोक मेरे काम न आवे।
मैं तो चकोर चंद राधा स्वामी, नहीं भावे सत नाम अनामी।
बिन जल मीन चैन न पावे केवल बिना अल क्यों ठहरावे॥
स्वान्ति बिना जैसे पहिहा तरसे, सुत वियोग माता नहीं सरसे॥
अस अस हाल भया अब मेरा, का से वरणूं कोई न हेरा।
मैं नारी तुम पुर्ष समानी, हे मेरे प्यारे राधा स्वामी।
बिरह भाव में हुई दिवानी, देख मेरे प्यारे राधा स्वामी॥

सन्तन साथ हुई सन्तानी, जो मेरे प्यारे राधा स्वामी।
देख रूप तुम रहूँ मगनानी, वाह मेरे प्यारे राधा स्वामी॥
मैं पल पल तुम दर्श दिवानी, तुम स्वान्ति मैं सीप निमानी।
तुम चुम्बक मैं लोह कठनानी, खिच रहूँ मैं प्यारे राधा स्वामी॥
मैं मृगनी तुम नाद समानी, मैं मछली तुम हुये मेरे पानी।
ऐसे चरण पर हुई मस्तानी, अंग अंग में प्रेम रंगानी॥
मैं प्यारी प्यारे राधा स्वामी की, मुख देखूं नैन निहार।
सब छूट गया संसार, फिर त्यागा कुल परिवार॥
लज्या जग दई निवार, गुरु ने लीना गोद बिठार।
किया मैं सब से आज किनार, करूं मैं गुरु संग बहुत प्यार॥
राधा स्वामी जिस पर मेहर करे री,

राधा स्वामी उसको पकड़ धरेगी।
सतगुर पूरे अंग लगाया, राधा स्वामी अचरज खेल दिखाया॥
किया मैं अचरज प्रेम सिंगार, बिराजे सतगुर वस्तर धार।
गुरु मेरे बैठे पलंग संवार, आज मेरा जागा भाग अपार॥
गुरु पर डारूं पन मन वार॥
राधा स्वामी देखा मैं दीदार, मिटा मेरे घट का सब ही खार।
मिले अब मेरे निज दिलदार, हुई मैं उनके गल की हार॥
विरोधी बैठे सब ही हार, डारिया उन पर तन मन वार।
बिन राधा स्वामी मोहि कौन सम्हारे, लोक चार मेरे ज़रा न अधारे।
मैं भई देही तुम भये स्वांसा, तुम बिन नहीं जीवन की आसा।
तुम भये मेघा मैं भई मोरा, तुम्हरे दर्श मैं करती शोरा॥
मैं बुलबुल तुम गुल की क्यारी, मैं कुम्हरी तुम सर्व अपारी।
तुम चन्दा मैं रैन अंधियारी, तुम से शोभा भई हमारी॥
तुम दीपक मैं भई हूँ पतंगा, भस्म किया मन तुम्हरे संगा।
तुम भृङ्गी मैं कीट अधीना, मिलगये राधा स्वामी अति परबीना॥

तुम चन्दन मैं भइ हूँ अवंगन, सीतल भई लग तुम्हरे चरणन ।
तुम समुद्र मैं लहर तुम्हारी, तुम से उठ फिर तुम ही समारी ॥
तुम मोती मैं भी भई धागा । संग तुम्हारा कभी न त्यागा ॥ १०२
सुरत को साध छबीली हो मगनी, चदरिया धोय अधरमें जा रंगना,
कर्म सब जार लगाले धर अगनी, मानमद छोड़ दूरकर सब विधनी।
सोवना छोड़ रैन का रहो जगनी,

गुरु यों कहे बातले मान करो लगानी ।

दुलहन करो पिया का संग ॥टेक॥
दुलहा तेरा गगन बसेरा, तू बसे नइहर अंग,
गुर के साथ चलो उस नगरी, चढ़े प्रेम का रंग ।
यह जोबन तेरा उतर जायगा, फिर तू होगी तंग ॥ ३५३
बेदन मेरी सतगुरु जानें । बिन दीदार नहीं मन मानें ॥
जल बल खाक किया मैं अंगा । जस जोती पर जले पतंगा ॥
आह आह कर निस दिन देहूं । सबर न आवे फिर पूछतेहूं ॥
मै तड़पूं जस जल बिन मीना । जिगर फटे तो कैसे मीना ॥ २१९
कैसी करूं कसक उठी भारी, मेरी लगी गुरु संग यारी,
दम दम तड़पूं छिन छिन तरसूं, चढ़ रही मन में बिरह खुमारी ।
सुलगत जिगर फटतति छाति, उठन लगी हिये मे चिगारी ॥५२२

४०—इन शब्दो में पुरुष गुरु के लिए स्त्री चेलियों की तरफ़ से ऐसी परिभाषाओं का प्रयोग होना अत्यन्त दोषयुक्त है जैसे वियोग सम्बन्धी व्याकुलता, वसल के लिये बेताबो तड़प, जिगर का फटना, छाती फटना, थारी लगना, दूल्हा दुल्हिन दिलदार, दीदार, अंग लगाना, अजब खेल दिखाना, गोद बिठाना, जगत लज्जा का त्याग, प्रेम सिंहार, गुरुका पलंग पर बैठना, चेली का भाग जागना, बुलबुल व गुल, चकोर चांद, शमा का परवाना, जोबन का उतर जाना, तंग होना इत्यादि । अंध विश्वासी मान

लेंगे कि इनके अन्दर पवित्र भाव हो सकते हैं, पर यदि जठ, परसादा, पीकादि सब स्थूल व्यवहार हैं उनका आशय आध्यात्मिक नहीं और अनपढ वा अल्पविन मूर्ख स्त्रियां विशेष रूप से आध्यात्मिक भावों को समझ ही नहीं सकतीं, न इन शब्दों से काम वासनादि सम्बन्धी संस्कारों की जागृति वा स्मृति के बिना और परिणाम निकल सकता है तब कौन ऐसा मूर्ख पुरुष होगा जो अपनी स्त्री को इन शब्दों के रटने तथा पुरुष गुरु के अर्पण होने के भयंकर अर्थ को जान न सकेगा। स्त्रियां उपदेश सुनने आती हैं महर्षि दयानन्द कहते हैं अपने पतियों को भेजो, वह हम से सुनकर तुम्हें समझा देंगे। हरियाना की माई भगवती अत्यन्त पवित्र भाव से प्रेरित होकर दूर देश से दर्शन को आती है स्वामी जी परदे की ओट से उससे बात करते हैं। जहां ब्रह्मचर्य सम्बन्धी इस प्रकार की सावधानता का विचार नहीं होता वहां बहिन भाई गुरु शिष्या, पिता पुत्री आदि शब्दों के प्रयोग पर भी महा कलंक लगे हैं और पवित्र भावों का ढोंग रचकर भारत में वह महानिन्दित कर्म होते हैं कि अमेरिका की मिस मेऊ तकको इस धर्म प्रधान देश के लिए संसार भर में बदनामी करने वाली पुस्तक लिखने का साहस होता है। क्या ही अच्छा हो कि राधास्वामी सतसगी अपने सच्चे हिताहित को समझने का यत्न करें।

४१—साहब जी महाराज गुरु शब्द के पवित्र अर्थों का संकेत करके जज़बात से अपील करते हैं पर गुरु नानकादि के जो वचन इस विषय में आप पेश करते हैं उनमें प्राया गुरु शब्द ईश्वर के लिये है और यदि जन्म मरण धर्मा गुरुके लिये पति पत्नी भाव सम्बन्धी शब्द प्रयुक्त हुये हैं तो परिणाम अवश्य भयंकर हुये हैं कृष्ण जी को य गीराज, ईश्वर अवतार तक मानते हुये भी ऐसे शब्द प्रयुक्त हुये तो चीर हरण लाला आदि तक को महा घृणित

कथायें प्रचलित हुईं। साथ ही यह बात और भी विचारने योग्य है कि किसी स्त्री ने स्वयं इन शब्दों की अपने प्रेम वा श्रद्धा के भाव प्रकाश के लिये रचना नहीं की गुरू साहब स्वयं यह कविता करके सरल स्वभाव चेलियों से यह शब्द रटवाते हैं। कहा जायगा कि विलक्षण सदाचार के स्वामी गुरू से पवित्रता पूर्ण संकेत होने में दोष क्या है पर वह विलक्षणता तो सारवचन के इस प्रमाण से उड़ जाती है कि—

देखो अचरज कहा न जाई, कलयुग का परभाव दिखाई।
हैं गुर बहन और गर भाई, तिन में निस दिन होत लड़ाई॥
काल दाव अपना यों खेला सत संग में आप कीन्हा मेला।
सेवा में घुस पाठ कराई, और तरह कोई घात न पाई॥
सेवा में अस कीन्हा पेचा, मन को सब के घर घर खैंचा।
गर ताड़ें सत सगी भीग्वें, काल लगाई ऐसा लीकें।
गर समझावे सीख न माने, मन मत अपनी फिर फिर ठानें।
गुर को देवें दोष लगाई, फिर फिर चोरासी भर माई॥

जब चेले चेलियों से गुरू पर दोष लगना सिद्ध है तो दूसरों को गुरू साहब की विलक्षणता का विश्वास कैसा ?

४२—पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी के ये शब्द जो "आर्य्य वीर" लाहौर के राधा स्वामी अंक से निकले, राधा स्वामियों को विशेष शिक्षा दे सकते हैं:—

"जरा अपने गुरू शिवदयालसिंह जी की तरफ तो ध्यान करो जो मरते हुये चारों तरफ़ चेलियों से घिरे हुये थे बकी कहती है महाराज मुझ को साथ ले चलो। खिल्लो कहती है महाराज मुझ को साथ ले चलो रोही कहती है मेरे लिये किस को तजवीज़ किया है और आप के गुरू फरमाते हैं चेलियो घबराओ नहीं तुम्हें जल्दी बुलाऊंगा।" श्री शिवदयालसिंह जी के भाव कितने उच्च हों, उन्होंने

चेलियों को चाहे अध्यात्मिक लाभ हो पहुंचाया हो तो भी पुरुष गुरू का स्त्रियों को चेलियां बनाना उन से अपनी सेवा कराना प्रत्यक्ष रूप से कुनीति है और साधारण पुरुष चाहे खरी न सुनायें पं० बुद्धदेव जैसे स्पष्टवक्ता मनुष्य का साहस न हो यह असम्भव है अच्छा हो कि साहब जी महाराज कृपया सर्व प्रथम अपने मत के इस दोष को दूर कर के आदर्श सदाचार की रक्षा करें।

सर्ग १०—बी. ए. की डिग्री और जूठा फ़ तामोफ़ी

४३—(य० प्र० भाग २, पृष्ट ११२) प्रशाद चरणामृत विषयक लेख पढ़ कर हमें अत्यन्त आश्चर्य हुआ। अच्छा होता कि साहब जी महाराज ग्रैजुएट न होते आप ने गुरू को थूकादि की पवित्रता तथा उसके पी जाने का जो वैज्ञानिक रहस्य बताया है, यदि सचमुच हार्दिक श्रद्धा भाव से लिखा है तो यह उस कालिज और यूनीवर्सिटी के लिये कलंक है जिससे आप की शिक्षा वा डिग्री का सम्बन्ध है। पर फारसी कवि कहता है, कालिजादि का क्या दोष लालच बुरी बला है। लालच बड़े २ समझदारों की आंख को सी देता है। लालच पशु पक्षी, मछली तक को जाल मे फंसाता है। निःसन्देह मनुष्य जाति ने सहस्त्रों वर्षों में एक ही दयानन्द पैदा किया है। हर किसी में यह साहस कहां कि गद्दी और महन्तों को लात मारे।

४४—प्रत्येक शक्ति का उपयोग भला भी हो सकता है और बुरा भी, विद्या सब से बड़ी शक्ति है वह भी जहां सर्व प्रकार की उन्नति और सुख का कारण हो सकती है तथा मनुष्य को जन्म

मरण से छुड़ा ईश्वर से मिला वा मुक्ति दिला सकती है वहां इस के द्वारा मनुष्य अपने सजातियों को घोर दुख दे सकता है । पदार्थ विद्या मे प्रवीण पुरुष आज बिजली की कला बना कर खज़ाने को सुरक्षित करने का उपाय करे तो पदार्थ विद्या को चोरी आदि के लिये प्रयुक्त करने वाली गुप्त सुसाइटियां दो दो तीन तीन मील तक की सुरंगें बना कर खज़ाने चुरा सकती हैं । वही वकील है जो एक अभियोग में किसी अन्यायी अत्याचारी से पीड़ित दुर्बल पुरुष को सुरक्षित करता है और वही दूसरे मुक़द्दमे में एक परले दरजे के जालसाज़, डाकू वा घातक मनुष्य को बचाने के लिये अपना दिमाग़ लड़ा रहा है। हमारा आशय स्पष्ट समझने को एक ओर दयानन्द का उदाहरण है जो नाना प्रकार के बड़े से बड़े विघ्नों के होते हुए धर्म की रक्षा कर दिखाता है और दूसरी ओर साहब जी की विद्या है जो जूठ, थूक या पीक की महिमा सिद्ध करने के लिए उनके मस्तिष्क को प्रेरणा कर रही है ।

४४—सार वचन में अनेक स्थानों पर परसादी और चरणामृत की शिक्षा है, वचन १३ शब्द १ में है ।

भेष नेष्टा नित प्रति धारे, ले परशादी चरण पखारे ।

इस शब्द में दर्शन की विधि बताई है ।

नित प्रति दर्शन परसन करे, रूप अनूप चित्त में धरे,
चरणामृत परशादी लेवे, मान मनी तज तन मन देवे ।
चरण दबावे पंखा फेरे, चक्की पीस पानी भरे ।। २२७
मोरा धो झाड़ू को धावे, खोद खदाना मिट्टी लावे।
हाथ धुला दातन करवावे, काट पेड़ से दातन लावे ।।
बटना मल अशनान करावे, अंग पोछ धोती पहनावे ।
धोती धोय अंगोछा धोवे, कंघा करे बाल बल खोवे ।।

वस्त्र पहिनावे तिलक लगावे, करे रसोई भोग लगावे ।
जल इचवावे हुक्का भरे, पलंग बिछावे बिनती करे ॥
पीक दान ले पाक करावे, फिर सब पीक आप पी जावे ।
नाना विधि की सेवा करे, नींच-ऊँच जो-जो आ पड़े ॥
कोई टहल में आर न लावे, जो गुरु कहे सो कार कमावे ॥

ऐसे ही पृष्ठ ८८० में राधा स्वामी के उठने और ध्यान और भजन में लगने पर क्रियात्मक रूप में सेवा का वर्णन है,

फिर भर हुक्का धर दिया आगे, सतसंगी आय दर्शन लागे ।
किया चरणामृत लई परशादी, हार चढ़ाकर बंदगी साधी ॥

फिर शौचके लिये लोटा धरने फिर चौकी व गद्दी बिछाने स्वामीजी के हाथ धुलाने दातन तथा मंजन कराने आदि के पश्चात्—

कुल्ली दई स्वामी कुल मेरा उधरा, जन्म सफल और तन मन सुधरा
वटना तन मल मैल गवाई, तेल मज़ा और चमक बढ़ाई ।
कर अश्नान पोंछ अंग लीना, कंघा किया स्वामी बाल सुधारे ॥
फिर भोजन कर बीड़ी लाई, बांटी बीड़ी कन्हैया भाई ।
सन्त प्रशाद सभी मिल लीना, जन्म जन्म के पातक छीना ॥
जो गावे यह सेवा बानी, सो पावे सत लोक निशानी ।

४४— वैसे तो पर पुरुष की ऐसी सेवा में स्त्रियों का भाग लेना और भी अधिक लज्जास्पद है पीक सब गट गट पी जाना, कुली से कुल का सुधरना, परशादी से जन्म २ के पाप दूर होना तथा इस सेवा वाणी के गाने से सत्त लोक पाना, सब बातें अद्भुत हैं और साहब जी जैसे शिक्षित पुरुष का ऐसा विधान होना अद्भुततर तथा ऐसे अज्ञान पूर्ण व्यवहार की पुष्टि में आप का युक्ति प्रमाण देने का यत्न करना अद्भुत तम तथा वर्तमान संसार का विशेष वैचित्र्य है। पृष्ठ ११३ पर आप फ़रमाते हैं। "जब कि यह तै हो चुका कि सतगुरु ज़ाहिर में तो मामूली इन्सान

होते हैं लेकिन अन्तर में उनका आत्मा बेदार होता है और उनका सच्चे मालक से बराहे रास्त तअल्लुक रहता है तो यह समझना मुशकिल न होगा कि जिस शरीर के अन्दर आत्मा चेतन है और सच्चे मालिक की परम पवित्र रुहानी धार हर वक्त रवां है उसका रोम रोम परम पवित्र और रुहानियत से लबरेज होता है और अगर किसी गन्दे पुरुष के छू देने से कपड़े मिठाई वगैरा गन्दे हो जाते हैं और किसी की खराब दृष्टि पड़ने से उनमें खराब असर आ जाता है तो सत गुरु के स्पर्श कर देने व दृष्टि डाल देने से उन चीज़ों में उनकी आला रुहानियत व परम पवित्रता का असर भी आ जाना होगा।"

(आर्य्य) कुल मालक से आपके सीधे सम्बन्ध और आपके अन्दर रूहानी धार के निरन्तर आने जाने तथा आपका रोम रोम परम पवित्र तथा रूहानियत से लबरेज़ होने का प्रमाण क्या यथार्थ प्रकाश के लेख ही हैं या कुछ और। क्या सर्व प्रकार के मिथ्या भाषण कुतर्क, हठ दुराग्रह आदि आपकी रूहानियतके ही अन्तर्गत हैं। क्या सारी शिक्षित जनता से छूत छात का भूत निकल जाने पर भी आप किसी के छूने मात्र से कपड़े और मिठाई का गन्दा होना माननेके भ्रम जाल में ही फंसे रहेंगे? गन्दे परमाणुओं के प्रवेश करने से चीज़ में उसके बुरे असर का आना माना जा सकता है छू देने मात्र से नहीं। रहा आसेब, सो 'चश्मे बद दूर' के अनुसार यह है तो भ्रम मात्र, पर आप जैसे शिक्षित पुरुष को भूतादि का विश्वासी सुनकर अवश्य कोई समझ सकता है कि सम्भवतः यह नजर लगने का परिणाम है पर ज्यों ही गुरुडम वा गद्दी की महन्ती के आन्तरिक रोग का ज्ञान होगा आसेब का भ्रम जाता रहेगा। परन्तु छूने मात्र से गन्दा होना मान भी लें तो इससे आत्मा पर क्या असर ? मिश्नरी पादरी कोढ़ियोंमें कामकरते २ स्वयं

इस रोग का शिकार हो गये,पर आत्मा की दृष्टि से वह शुद्ध तथा उन्नत ही हुये। अतः स्पर्श वा दृष्टि मात्र से प्राकृतिक पदार्थों में रुहानियत मानना तथा जूठ और पीक की वकालत करना सर्वथा अयुक्त है। वेद उपनिषद् के जूठ विषय में आपके प्रमाण सब अयुक्त हैं आप कोई प्रतिज्ञा नहीं करते, हेतु नहीं देते तो उदाहरण कैसा ? फिर आप स्वयं ही मानते हैं कि किसी मनुष्य का जूठा खाने में उस की बीमारी लग जाने का भय है अतः सावधानता से वरतना चाहिये। इस सिद्धान्त रूप से तो आप इस जूठ वा पीक़ादि को दूषित मानते है और राधा स्वामियों ने किसी गुरू के विषय में आज तक डाक्टरों से उनके निरोग तथा उनकी थूक के निर्दोष होने का सार्टिफिकेट नहीं लिया, तब इस प्रथा को चेलों के अन्धविश्वास और गुरू के विश्वासघात के बिना कह क्या सकते हैं। अन्य मतों के किसी ऐसे अयुक्त व्यवहार से आपका पक्ष सत्य नहीं हो सकता। रोमन कैथोलिक ईसाई इमारत की नींव में पादरी साहब की उँगलियों से स्पर्श किया हुआ जल छिड़कते हैं तो इससे क्या वह इमारत गिरती नहीं? यदि मसीह की उँगलियों, थूक और स्पर्श से कान और जबान का मिलना आप सत्य मानते हैं तो अमली तौर पर यह करामात दिखा ही क्यों नहीं देते वा यही कहिये कि इतने वर्षों की आप लोगों की पीक ने कितनों को कान और ज़बान दिये ? मसीह सबसे निचले धनी का पुत्र होने से आंख में थूककर समाखा कर सका तो आप सब से ऊँचे पद से सम्बन्ध रखने वाले क्यों सरकार को परामर्श नहीं देते कि आंखों के हस्पताल बन्द कर दो हमें दयाल जी ने कृपा करके ऐसा बलग़मी स्वभाव दिया है, कि पीक की कमी न रहने देंगे। हरतिया स्वामी की थूक बापा रावल के पाओं या मिट्टी वाले गारे पर पड़ने से उसका शरीर शस्त्रों से सुरक्षित हो गया

तो राधा स्वामी गुरुओं की पीक में कुछ भी असर न होने से आपका मत ढौंगमात्र ही है और हरतिया स्वामी मौन के समय बिमान पर चढ़कर आकाश को उठे तो आपके परम गुरु आदि को यह गौरव क्यों न मिला ?

४५—कबीर साहब का वचन दिया है कि—

गुरु को मानस जानते चरणामृत को पान ।
ते नर नरकी जायेंगे जन्म २ होय स्वान्त ॥

गुरु नानक साहब के विषय में है कि दासी ने रसोई के समय उन्हें जगाने के लिये उनके पैरों को जबान से चाटा तो उसके दिव्य नेत्र खुल गये। हम पूछते हैं कि गुरु को मनुष्य न समझें तो क्या समझें और चरणामृत पीने की राय नहीं तो क्या है और यदि पैर चाटने से दिव्य नेत्र खुलते हैं तो पीक पीने से क्यों किसी सतसंगी का कुछ न बना और क्यों उनको सुर्त शब्द योग का कष्ट दिया जाता है।

सुखमनि साहब का प्रमाण है—

चरण साध के धोय धाय पियो, अर्प साध को अपना जिओ ।
साध की धूर करो अशनान, साध ऊपर जाइये कुरबान ॥

परंतु इसका पीकादि से सम्बन्ध ही नहीं यह तो अतिथि सत्कार आदि का विशेष रूप है।

१०—इस प्रकार सारी दुनियां भर की अन्ध विश्वास तथा भ्रम-जाल की बातों को आप 'स्वार्थी दोषं न पश्यति' के अनुसार प्रमाण का पद दे रहे हैं। इससे बढ़कर विचित्र बात आप स्वामी जी के विषय में कहते हैं शूद्र, चमार, भङ्गी आदि का जूठा, जूते के तले में लगी हुई गन्दगी, पेशाब, गोबर, मिट्टी आदि वाली अपवित्र चीजें खाने से तो आप मना नहीं करते तो साध-सन्त महात्माओं का स्पर्श किया हुआ उच्छिष्ट भोजन किस प्रकार वर्जित

हो सकता है। परन्तु स्वामी जी कभी अपवित्र चीजों के खाने की आज्ञा देते ही नहीं आपको जिससे भ्रान्ति है वह केवल हिन्दुओं के परस्पर विरुद्ध व्यवहार पर आलोचना मात्र है कि अपवित्र लोगों के गुड़, चीनी, दूधादि को स्वीकार करने पर भी छूत-छात का आडम्बर कर रहे हैं। अतः स्वामी जी का मन्तव्य हर कहीं शुद्धि के सिद्धान्त का ही पोषक है।

११—भीलनी के जूठे बेरों का आशय यदि बेरों को मुँह से चखकर पास करने का ही हो तो भी यह श्री रामचन्द्र जी की मिशनरी स्पिरिट का प्रमाण है जैसे ईसाई पादरी कोढ़ियों तक की सेवा में दिखाते सुने जाते हैं। रामचन्द्र जी जूठ के हक़ में नहीं, न कभी उन्होंने ऐसा कहा न अमल किया और यदि आप लोग भी इस को सत्य सिद्धान्त मानते, तो कभी किसी गुरु ने भी तो किसी बलिष्ठ वा स्वस्थ नीच प्रेमी की थूक चाटी या पीक पी होती।

१२—कृष्ण महाराज ने सुदामा के चावल या बिदुर की स्त्री का पेश किया हुआ केले का छिलका खाया भी तो इससे जूठ वा पीक फ़िलासोफ़ी का क्या सम्बन्ध ?

१३—भागवत् १०—२३-१३ गोपी का नांचते हुये अपना कोमल कपाल कृष्ण जी के कपाल में मिलाना और कृष्ण जी का अपनी जूठी बीड़ी उसके मुख में देना की बात का न कोई आर्य्य-समाजी सत्य मान सकता है न सनातनधर्मी, तथा न कोई अन्य मतावलम्बी और हमें निश्चय है कि किसी भी राधा स्वामी गुरु और किसी सतसंगन में कभी इस प्रकार की कुचेष्टा होनी सम्भव नहीं। स्वयं साहब जी महाराज या कोई ११ वर्ष से न्यून आयु वाला गुरु भी पीक फ़िलासोफ़ी के सर्वथा असत्य समझा जाने को गवारा करलेंगे पर इस कपाल के मेल का जनता को दृश्य दिखाना स्वीकार न करेंगे। अतः जो क्रिया उनके लिये असम्भव है उसका उदाहरण

देने का साहस कैसा ?

१४—हज़रत मुहम्मद साहब के मुँह के लुआब से हज़रत अली की आंख का अच्छा होना न कुरान में है न कुरान के अनुकूल है न आपने कभी इस प्रकार किसी को आंख अच्छी की है अतः यह प्रमाण सर्वथा बे जान है।

सर्ग ११—सुर्त सम्वाद या खण्ड ज्ञान

सार बचन पृष्ठ ४८० से सुरत सम्वाद शीर्षक वाले लेख में तो विद्वानों तथा सच्चे अन्वेशकों के लिये पूर्णतः इस मत की अविद्या तथा निःसारता का प्रमाण मिलता है।

सुर्त का प्रश्न है कि स्वामी महाराज ! मुझे अपना भेद बताइये आप का धाम किस लोक में है यहां किस मौज में आये हो

मैं बिछड़ी तुम से कहो कैसे, देश पराये आई जैसे।

मन तन संग पड़ी मैं कब से, दुख पाये मैं बहुतक जब से॥

क्यों भूली मै देश तुम्हारा, आय पड़ी पर देश निहारा।

इसी प्रकार यह पूछा है कि आप पाताल मे बसते हैं या मृत्यु लोक में, स्वर्ग में या ब्रह्म लोक में, विष्णु या वैकुंठ लोक में, इन्द्र पुरी या शिवलोकमें, कृष्ण या राम लोक में, प्रकृति या पुरुष लोक में, अथवा तुम सब लोकों वा स्थानों और चराचर में व्यापक हो। मुझे क्यों काल लोक में डाला, हर्ष शोक में भरमाया।

अब क्यों आये मोहि चितावन, रूप धरा तुम अति मन भावन।

(आर्य्य) पराये देश का शब्द बताता है कि राधा स्वामी कुल मालक नहीं, फिर जब सुर्त को चिताने के लिये राधा स्वामी भी पराये देश में आये तो अपना देश क्या सूना ही रहा ? भिन्न २ मतों के माने हुये लोकों का खण्डन बताता है कि रूह केवल शरा-

रत की पुतली है जो राधा स्वामी गुरु के हाथ में कठपुतली है।

स्वामी साहिब उत्तर देते हैं।

मैं हूँ अगम अनाम अमाया, रहूं मौज में अधर समाया।
मेरा भेद न कोई पावे, मैं ही कहूं तो कहन में आवे॥

(आर्य्य) आप अनामी हैं तो राधा स्वामी नाम किसका है और यदि आप के कहे बिना आपका भेद पाया हो नहीं जा सकता तो साहब जी को व्यर्थ की मग़ज़ पच्ची से क्यों नहीं रोकते।

इसके अनन्तर अगम अलख सत्तरूप धारण करने फिर अनूप कला उतरने उसके दो रूप होने तथा झंझरी दीप में बैठकर त्रिलोकी रचने, तीन गुण, पांच तत्व आदि का वर्णन है पर न झंझरी दीप का किसी भूगोल से प्रमाण है न त्रिलोकी रचने का कोई इतिहास है हां यह कह दिया है कि मैं समुद्र हूं और यह त्रिलोकी मेरी एक बूंदका ही पसारा है। फिर यह बताया है कि मैं पाताल, स्वर्ग, मृत, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गोलोक साकेत, इन्द्रपुरी, ब्रह्म किसी लोक में नहीं, यह सब लोक मेरी बून्द का पसारा है, उसे ही वेद अपार ब्रह्म कहता है वेदान्ति ब्रह्म औरसिद्धान्ती शुद्ध, इस से आगे का किसी का भेद नहीं मिला बिना सत गुरु के सब धोखा खा रहे हैं। इस से पाया जाता है कि आप का भेद सतगुरु से मिलता है पर यह इस पहिली बात के विरुद्ध है कि बिना मेरे मेरा भेद कहने में नहीं आसकता, इसके पश्चात ब का खण्डन है कि—

जितने मत हैं जग के माहीं, इसी बून्द को सिंध बताहीं।
सिंध असल रहा इनसे न्यारा, वेद कतेब न ताहि सम्हारा॥
ब्रह्मादिक सब वेद भुलाय, ऋषि मुनि कर्म भर्म लिपटाय।
पोर पैग़म्बर कुतब औलिया, बून्द भेद पूरा नहीं मिलिया॥
(आर्य्य) मत जारी हुये तो आपकी बून्दसे, वेद ज़ाहिर हुयेतो

आपके अंश ब्रह्म से, तब ब्रह्मादि को भुलाने और ऋषियों मनियों को कर्म भर्म में लिपटाने वाले आप हुये या और कोई ? और एक शिवदयाल सिंह जी को समुद्र का और शेष सब पीर पैग़म्बर को केवल एक बून्द का भेद देने का अन्याय करने वाले भी आप हो। परन्तु अब सुर्त के असली प्रश्न का उत्तर सुनो—

सुनो सुर्त तुम अपना भेद, तुम हम में थी सदा अभेद।
काल करी हम सेवा भारी, सेवा बस होय कुछ न विचारी॥
तुम को मांगा हम से उसने, सौंप दिया तुम्हें सेवा बस में।
दुख में देखा तुमको जब ही, दया उठी हम आये तब ही॥

(आश्चर्य) धन्य हो दयाल जी महाराज धन्य हो! आप विना दुखिया सुर्त की सुध लेने वाला कौन था? पर वह सेवा जिसने आपकी इतनी अकल मारदी क्या थी? पीकदान में पीक कराई, दांतन तोड़े लाया था आपको हुक्का पिलाया था?

निःसन्देह राधा स्वामी साहिब हैं बड़े ही दीनदयाल, मौज में आयें तो सब सुर्तें और माया ही बख्श दें पर केवल आप मौजी ही नहीं तत्व विद्या भी आपको खूब आती है आप फरमाते हैं:—

मुफ़रद बून्द हमारी आई, दूसर माया आन मिलाई।
पांच तत्व तीनों गुन मिले, यह सब दस आपसमें रले॥
रल मिल कर इन रचना ठानी, तीन लोक और चारों खानी।

(आश्चर्य) कोई इस तत्व ज्ञानी से पूछे क्या माया से तीन गुण पृथक हैं और पांच तत्व क्या माया में नहीं क्या किसी घर मे चार दर आठ दीवार पांच कमरे, छ रोशनदान हों, और उसमें ५ स्त्री पुरुष और बच्चे दो गायें, दो भैंस, एक घोड़ी तथा एक सहन और दो चरणा हों तो वह घर ३६ तत्वों का बना हुआ माना जायगा स्वामी जी उत्तर देते हैं इस प्रकार के प्रश्न विचार वाले करते हैं पर बात यह है कि—

हमरे देश में एक सत्नाम, वहां विचार का कुछ नहा काम।

क्योंकि विचार मिलौनी में हैं हमारी देश में मिलौनो नहीं। निःसन्देह आपका उत्तर बड़ा युक्ति युक्त है और आप समझ सोच तथा विद्या बुद्धि आदि सब बन्धनों से मुक्त हैं पर कृपा निधान यह सम्वाद सुर्त के साथ तो आप बड़ा विचार पूर्वक कर रहे हैं, क्या आप भी मिलौना मे आ गये ?

प्रिय पाठक ! देखिये, इस मत की शिक्षा कहाँ तक विद्या-विचारादि का खण्डन करती है। यह भी समझने की बात है कि साहब जी इसी विद्यादि का प्रचार तथा यथार्थ प्रकाश में अनेक विषयों पर विचार करके इस मत की जड़ उखाड़ रहे हैं। और स्वामी जी साहिब ऐसे लोगों के विषय में फरमाते हैः—

कर विचार इन धोखा खाया, बूंद माहि यह जाय समाया।
करें दलील बुद्धि से भारी, हँसी उड़ावें वचन न धारी ॥
बुद्धि बल से वह करते तोल, कभी न पावें डांवाडोल।
विद्या पढ़ जो करें विचार बूंद भेद भी मिला न सार ॥

विद्या बुद्धि आदि के पीछे लठ लेकर फिरने वाले राधा स्वामी जी महाराज इसके पीछे कहते हैं कि सार बूंद त्रिकुटी पार है जोगेश्वर चढ़कर विचार करना है और प्राण जोग करता तथा वहीं का भेद बताता है आगे का गुर इनको मिला नहीं। परन्तु यदि आगेका भेद मिला नहीं तो यहीं तकका होनेमे दोष क्या है असमार्ग का जितना भाग तै हो उतना ही अच्छा है, जिसे वह हर कहीं रस्ते की मनज़िल सिद्ध करते है। इस प्रकार सुर्त को अज्ञान में फँसाते हुये आख़िर आप कहते हैं:—

तू तो सुरत अब सुन मम वचन, चढ़ और चल सुन सुन्न कीधुन
सुन सुन धुन चल देश हमारे, हम तुझको किया अब अपना रे ॥

इस निमन्त्रण पर सुर्त चलने की तैयारी करती है पर उस

एक शङ्का होती है अतः वह कहती है:—

सेवा बस तुम काल को सौंप दिया जब मोहि।
तो अब कौन भरोस है, फिर भी ऐसा होय॥

इस पर स्वामी जी कहते हैं कि हमारे मन में मौज उठी थी और हम नेजान बूझके लीला ठानी थी। हमने समझ सोचकर काल को रचा था, जीव को बिना काल के खौफ नहीं होता, न दयाल की क़दर बिना काल के होती है। उस दयाल को मौज उठी उसने काल को वहाँ से निकाल दिया। इस लिये अब वहाँ बेखटके रह सकती हो।

मैं समरथ हूँ सब विध जान, वचन मोर तू निश्चय मान।
काल न पहुँचे उसी लोक मे, अब न करूं कभी ऐसी मौज मैं॥
एक बार यह मौज ज़रूर, अब मतलब नहीं डाला दूर।
तू शंका अब मत कर मन में, चलो देश हमरे रहो सुख में॥

क्या बिना विचारे कालको रचने, पछताने तथा सुर्त के विश्वास-पात्र न रहने वाले सुर्त से क्षमा मांगने और भविष्य में ऐसी भूल न करने की प्रतिज्ञा करने वाले राधा स्वामी किसी विचारशील पुरुष के सम्मानादि के योग्य समझे जा सकते हैं।

साहब जी महाराज जो बनावटी बातों से इस मत की अन्य मतो से अनुकूलता दिखाते हैं उसका इस सम्वाद के शेष भाग से पूरा पोल खुलता है क्योंकि इसमें सब अन्य मतों से अपना विरोध दिखाया गया है।

कोई करे जप कोई तीरथ दाना, कोई मूरत कोई तप अभिमाना।
कोई अचार कोई नेमी धरमी, कोई विद्या पढ़ करते करनी॥
कोई वैराग त्याग सब देते, बन परवत मे जाकर रहते।
प्राण योग कर मुद्रा साधें, पांच मुद्रा धरें समाधें॥
चाचरी भूचरी खेचरी भाई, और अगोचरी उनमनी लाई।

चक्र वेध षट खेंचें प्राण, सहस कंयल चढ़ लावें ध्यान ॥
कोई ज्ञानी वाचक कोई लक्ष, कोई षट शास्त्र करते पक्ष ।
मीमांसा वैशेशिक न्याय, पातंजली जोग ठहराय ॥
सांख्य करे नित अनित विचार, वेदांती मिथ्या संसार ।
सब मत ऐसा धोखा खाया, सुर्त भेद काहू नहीं पाया ॥

मुसलमान हिन्दू और जैनी, ईसाइ क्या जानें कहनी ॥
कोई नमाज़ कोई रोज़ा रखते, कोई मसजिद कोई काबा फिरते ।
कोई कुरान पढ़ हाफ़िज़ होते, पढ़े वज़ीफा रात न सोते ।
कोई चिल्ला कर मुल्ला बनते, कोई आबिद कोई ज़ाहिद रहते ।
कोई मशाइख़ कालो हाल के कोई सरोद कोई रागो ताल के ॥
कोई शरीअत कोई तरीक़त, कोई मार्फ़त कोई हक़ीकत ॥

इसके आगे जैन ईसाई मत के विषय में तुक बन्दी है और सुर्त को सार यह बताया है कि—

सुन अब सुरत कहू मैं तो से, यह तो भूलें हैं सब गों से ।

कहां तक लिखा जाय सब मतों को खण्डन करना और एक कपोल कल्पित सत्ता को आगे रख कर अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए मनुष्यों को घोर अविद्या में फंसाने का महा दूषित एवं घृणित काम जो राधा स्वामी मत कर रहा है उसे जान कर विचार वाले पुरुष सर्व साधारण को उससे सावधान करें तो मनुष्य जाति अनेक भावी दुखोंसे बच सकती है । परमेश्वर कृपा करें सब सज्जन पुरुष अपने भाइयों को अन्धेरे से निकालने का यत्न करके अपने कर्तव्य का पालन करें ।

ओ३म् शम्